ISSN: 2249-2577

वर्ष 9 अंक 2
जुलाई-दिसंबर, 2017

विशेषांक :
सुशासन एवं विकास

लोक प्रशासन

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक
प्रो. एस. एन. मिश्र

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

सम्पादक

प्रो. एस. एन. मिश्र

पाठ संशोधक - स्नेहलता

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–110002

Ykkd i’kkl u

vuØef.kdk

	i"B
lEikndh;	v
Yk[k	
प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं सुशासन कौशल किशोर मिश्रा	1
सुशासन और इसके निर्धारक तत्व श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी	8
सुशासन की अवधारणा, चुनौतियाँ और निर्धारक तत्व गाँधीजी राय एवं शीला कुमारी	17
सुशासन एवं नागरिक समाज की भूमिका शशि भूषण कुमार	39
भारत में अधिकारी-तंत्र, लोकसेवा एवं सुशासन रणजीत कुमार	51
सुशाासन की अवधारणा–एक विश्लेषण बिन्दा कुमारी	66
प्रशासनिक संरचना एवं सुशासन की चुनौतियाँः कौटिल्य की दृष्टि से रुचि त्यागी	78
सुशासन एवं विकास सुधांशु त्रिपाठी	99
सरकारी तंत्र का जवाबदेही मूल्यांकन से संभव है सुशासन श्याम सुन्दर प्रसाद	109
महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन पंकज कुमार	117

सुशासन और विकास में ई-शासन की भूमिका
सीमा दास एवं प्रीति कुमारी 128

आपदा प्रबंधन में सुशासन की चुनौतियाँ
राजेंद्र कुमार पांडेय 138

पंचायती राज : सुशासन एवं विकास
ममता मणि त्रिपाठी 149

सुशासन, चुनावी भ्रष्टाचार और भारत में आदर्श आचार संहिता
जय गुप्ता 155

सुशासन : भागीदारी मॉडल के विशेष संदर्भ में
पंकज कुमार झा एवं प्रवीण कुमार झा 168

सुशासन एवं लोक प्रशासन के बदलते आयाम
अंजना कुमारी 175

बिहार में सुशासन का उत्कर्ष, अपकर्ष एवं पुनरूत्थान
(पटना जिला के मनेर प्रखण्ड की एक केस स्टडी)
सुरेन्द्र कुमार 184

बिहार के विकास में पंचायती राज एवं सुशासन की भूमिकाः एक अध्ययन
उमेश कुमार 199

बिहारः सुशासन के कार्यक्रम एवं विकास
पूनम कुमारी 205

सुशासन एवं ग्रामीण विकास
(लोक सहभागिता के संदर्भ में एक अध्ययन)
अर्चना कुमारी एवं रवीन्द्र कुमार वर्मा 220

भारत के सुशासन में नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व
राजबीर सिंह दलाल एंव सरबन कुमार 229

भारतीय प्रजातन्त्र में सूचना का अधिकार तथा सुशासन की स्थापना
पूनम 241

शासन.प्रशासन में सुशासन का सरदार पटेल मॉडल
जनक सिंह मीना 248

सुशासन की पूर्वनिर्धारित शर्त महिला प्रतिनिधित्व और सहभागिता
पिंकी पुनिया 254

विकास के लिए सुशासन की अनिवार्यता
मदन गोपाल सिन्हा 262

नौकरशाही और सुशासन
रितेश भारद्वाज 272

सुशासन, विकास एवं नौकरशाही
सच्चिदानन्द मिश्र एवं धर्मेन्द्र नाथ चौबे 279

भारत में सुशासनः एक सम्यक दृष्टिकोण
कमलेश नारायण मिश्र एवं अंजुलता मिश्र 286

भारत में आवास की समस्या के निदान में सुशासन की भूमिका
अमित कुमार सिंह एवं ममता पठानिया 289

सुशाासन एक अवधारणाः भारतीय परिपेक्ष्य
पंकज कुमार तिवारी 306

सुशासन एवं विकासः ग्रंथ सूची
हुकम चन्द यादव एवं सुनीता गौतम 309

Yk[kd

प्रो. कौशल किशोर मिश्रा – आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी– आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उ.प्र.।

डॉ. गांधीजी राय – सेवानिवृत्त आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुवंर सिंह, विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

कु. शीला कुमारी – शोधछात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुवंर सिंह, विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

शशि भूषण कुमार – सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, लक्ष्मी नारायण महाविद्यालय, भगवानपुर, वैशाली, बिहार।

रणजीत कुमार – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

बिन्दा कुमारी – सह-आचार्या, राजनीति विज्ञान विभाग, वीमेन्स कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार।

रुचि त्यागी – सह प्राध्यापिका, राजनीति विज्ञान विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. सुधांशु त्रिपाठी – आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, उ.प्र. राजर्षि टन्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ. श्याम सुन्दर प्रसाद – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

डॉ. पंकज कुमार – सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, बी.बी. कॉलेजिएट, मुजफ्फरपुर, बिहार।

डॉ. सीमा दास – सहायक-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रीति कुमारी – शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

डॉ. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय – सहायक-आचार्य, संघीय, अध्ययन केन्द्र, जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. ममता मणि त्रिपाठी – अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, श्री भगवान महावीर पी. वी.कॉलेज, पटवानगर, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. जय गुप्ता – सहायक-आचार्य, राजनीति विज्ञान, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

पंकज कुमार झा – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्व विद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. प्रवीण कुमार झा – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. अंजना कुमारी – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार – सह-आचार्य राजनीति शास्त्र विभाग बी.एस. कॉलेज, दानापुर, पटना।

प्रो. उमेश कुमार – आचार्य, अध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, वीर कुवंर सिंह, विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. पूनम कुमारी – प्राध्यापिका, राजनीति विज्ञान विभाग, जे.डी, वीमेन्स कॉलेज, पटना, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।

डॉ. अर्चना कुमारी – सह-आचार्या, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र विभाग, आर.एन. कॉलेज, हाजीपुर, बिहार।

डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा – सह-आचार्य, स्नातकोत्तर, राजनीति शास्त्र विभाग, आर. एन. कॉलेज, हाजीपुर, बिहार।

प्रो. राजबीर सिंह दलाल – आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, चौ. देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

श्री सरबन कुमार – शोधछात्र, लोक प्रशासन विभाग, चौ. देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा, हरियाणा।

कु. पूनम – शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

डॉ जनक सिंह मीना – महासचिव, सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

डॉ. पिंकी पुनिया – सहायक-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज नेहरू नगर दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. मदन गोपाल सिन्हा – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, हिन्दू पी.जी. कॉलेज, जमॉनिया, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रितेश भारद्वाज – सहायक-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, श्याम लाल कॉलेज (सांय) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

डॉ. सच्चिदानंद मिश्र – सेवानिवृत्त प्राचार्य, एस.डी.पी.जी. कॉलेज, मठ लार, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

डॉ. धमेन्द्र नाथ चौबे– प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, राजकीय इण्टर कॉलेज, सीतारगंज, उत्तर प्रदेश।

डॉ. अंजुलता मिश्र – सहायक-आचार्या, इतिहास विभाग, अवध सेन्टर ऑफ एजुकेशन फॉर वीमेन्स डिग्री कॉलेज, संत कबीर नगर, उ.प्र.।

डॉ. कमलेश नारायण मिश्र – सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, मदन मोहन मालवीय पी.जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया, उ.प्र.।

श्री अमित कुमार सिंह – सहायक-आचार्य, नगरीय विकास, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नयी दिल्ली।

डॉ. ममता पठानिया – सहायक-आचार्या, लोक प्रशासन, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नयी दिल्ली।

डॉ. पंकज कुमार तिवारी – प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, एस.बी.एस.एस. कॉलेज, गोपालगंज, बिहार।

lEikndh;

राष्ट्र समुदायों में शासन को सही तथा प्रजातांत्रिक तभी समझा जाता है जब संस्थानों का कार्यकलाप पारदर्शी हो। इस प्रक्रिया में शामिल हैं स्वच्छ चुनाव, कानूनी प्रक्रियाएँ जो भ्रष्टाचार से मुक्त हों और जवाबदेही से परिपूर्ण हों। अतः सुशासन निष्पक्षता, सहभागिता, बहुलवाद, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा विधि के शासन से संबंध रखता है।

सुशासन को सबसे बड़ा खतरा भ्रष्टाचार, हिंसा, गरीबी, अपारदर्शिता, असुरक्षा आदि से है। अतः सुशासन का अभिप्राय ऐसी शासकीय व्यवस्था से है जो सक्षम, जवाबदेह समग्रता तथा पारदर्शिता से परिपूर्ण हो। सुशासन का संबंध न केवल ऊपर वर्णित तथ्यों से है बल्कि इसका संबंध अच्छी राजनीति, अच्छा प्रबंधन एवं जनसहभागिता आदि से भी है।

मानवीय शासन का संबंध मुख्यतः तीन बातों से है। *पहला*, अच्छी राजनीतिक व्यवस्था, *दूसरा*, अच्छी आर्थिक व्यवस्था जिसका संबंध दीर्घजीविता से हो, संपत्ति सुरक्षा से हो, बाजारी व्यवस्था को दुरूस्त करने से हो। और *तीसरा* जिनका अंतिम रूप से संबंध लोगों के विकास, पर्यावरण सुरक्षा, न्याय के साथ आर्थिक विकास तथा अच्छा न्यायिक प्रबंधन जिसमें स्वतंत्र रूप से आपसी आदान-प्रदान हो, जो कि सशक्त संरचना से ऊपर हो तथा जिसमें महिलायें, गरीब, साम्प्रदायिक रूप से अल्पसंख्यक आदि शामिल हों।

जहाँ तक सुशासन और विकास का संबंध है। विकास एक बहुत ही भ्रामक अवधारणा है। अर्थशास्त्री इसका मतलब सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) से लगाते हैं। समाजशास्त्री मानते हैं कि विकास के दो पहलू हैं आर्थिक एवं गैर-आर्थिक विकास। गैर-आर्थिक में सामाजिक विकास, नैतिक विकास व शैक्षिक विकास, मानवीय विकास, पर्यावरणीय विकास, ग्रामीण विकास आदि शामिल है। इन विकासों की जब तक परिकल्पना नहीं की जाती तब तक सुशासन सुनिश्चित नहीं है। क्योंकि सुशासन और विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वर्तमान राज्य के सिद्धांत में नवउदारवादी प्रतिमानक परिवर्तन के उपरांत राजनीतिक विश्लेषण का केन्द्र 'सरकार' से 'शासन' पर खिसक गया है। इस नई अवधारणा में शासन या नियमन सिर्फ सरकार का कार्य न होकर एक ऐसी प्रक्रिया हो गई है, जिसमें राज्य, नागरिक, समाज तथा बाजार सभी प्रतिभागी हो गए

हैं। इसके फलस्वरूप पारंपरिक सहभागी लोकतंत्र, पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व की अवधारणाएं, निर्वाचन, विचारिका एवं जन संचार के माध्यमों तक सीमित न रहकर नागरिक समाज तथा विपणन की संस्थाओं तक विस्तारित हो गई हैं। इस परिपेक्ष्य में राज्य के क्रियाकलापों में परंपरागत गोपनीयता के स्थान पर पराकाष्ठा यथासंभव पारदर्शिता आवश्यक हो गई है। सुशासन एवं विकास इसी तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है। चूंकि सुशासन और विकास एक चुनौती के रूप में उभरकर आया है। अतः इस वर्ष का विशेष अंक सुशासन और विकास को समर्पित है।

लोक प्रशासन के इस अंक में प्रमुखतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर विविध लेखकों में बहुविधि प्रकाश डाले हैंः

1. सुशासन के निर्धारक तत्व
2. विकास और सुशासन का संबंध
3. सुशासन एवं लोकप्रशासन का बदलता स्वरूप
4. सहभागी प्रबंधन और विकास
5. नगर समाज का बदलता स्वरूप एवं सुशासन
6. पंचायती राज, सुशासन एवं विकास
7. सुशासन एवं मानव विकास
8. सुशासन के लिए लोक सेवाओं में सुधार

इस अंक के प्रथम आलेख *में कौशल किशोर मिश्रा* ने प्राचीन भारतीय समाज में सुशासन का जो स्वरूप था उसका विश्लेषण किया है। कालान्तर में सुशासन की स्थापना की दृष्टि से ही कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र की रचना की गई। लेखक ने अपने लेख में विभिन्न चिंतकों, विचारकों जिनकें द्वारा मानव जीवन व्यवस्था की विवेचना की गई। उनके बारे में श्लोकों सहित व्याख्या की गई है कि, उन सभी का मूलभूत सार शासन से ही था। सभी का उद्देश्य भी सुशासन की खोज रहा है।

सुशासन की प्रक्रिया एक अंतहीन प्रक्रिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान में सुशासन के अनेक प्रावधान किये गये। जिसमें संविधान की प्रस्तावना मार्गदर्शक है। निर्देशक तत्व राज्य के सन्मुख कुछ आदेश प्रस्तुत करते हैं। जिनके द्वारा देश के नागरिकों का सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्थान हो सकता है। इसी विषय पर *श्रीप्रकाशमणि त्रिपाठी* ने अपने लेख में रोशनी डाली है, कि यह कौन-कौन से निर्धारक तत्व हैं? और किस प्रकार सुशासन के लिये महत्वपूर्ण हैं।

सुशासन किसी भी लोकप्रिय लोकतांत्रिक सरकार की पहली पहचान है। सुशासन की स्थापना के लिये सरकारी स्तर पर हो रही पहल से आने वाले समय पर बेहतर स्थिति प्राप्त होगी। सुशासन की अवधारणा को सफल बनाने के लिए सहभागी व

गुणात्मक लोकतंत्र की स्थापना, शासन एवं प्रशासन में पारदर्शिता, जवाबदेहिता व सहभागिता के प्रसार की आवश्यकता है। *गांधीजी राय* व *शीला कुमारी* ने अपने आलेख में सुशासन की अवधारणा के साथ-साथ इसकी चुनौतियों तथा निर्धारक तत्वों का भी वर्णन किया है।

दमन और शक्ति के दुरूपयोग से मुक्त सुशासन की अवधारणा आज आकर्षण का विषय बनी हुई है। समावेशी विकास, निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता और अपनी नियति के बारे में स्वयं निर्णय लेने के सशक्तिकरण की मांग पर आधारित नीतिगत प्रयासों से सुशासन की अवधारणा को मजबूती मिली है। प्रस्तुत निबंध में *शशि भूषण कुमार* ने भारत के परिपेक्ष्य में सुशासन के उपादान एवं इसकी स्थापना में नागरिक समाज की भूमिका का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में अधिकारी-तंत्र, शासन-प्रशासन का मेरूदंड होता है। इसके बिना सुशासन एवं विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारत में नौकरशाही की छवि को भ्रष्टाचार, स्थनातंरण राजनीतिक हस्तक्षेप, लालफीताशाही तथा शासक प्रणाली ने नकारात्मक बना दिया है। इसलिये आज की नौकरशाही पर भी दक्षता, मितव्ययिता, पारदर्शिता एवं प्रभावशीलता प्राप्त करने का दबाव बढ़ा है, तथा इनकी अपनी शक्ति के बेज़ा इस्तेमाल पर भी नियंत्रण लगा है, फिर भी सुशासन एंव विकास को ध्यान में रखकर नौकरशाही की कार्य व सोच में बदलाव हेतु कई समितियों व आयोगों का गठन किया गया है। इसकी विवरण *रणजीत कुमार* ने अपने लेख में बखूबी किया है।

सुशासन एक सर्वकालिक, सार्वभौमिक, आदर्शात्मक एवं नागरिक केन्द्रित अवधारणा है। यह लोक प्रशासन को अधिक सक्षम एवं प्रभावकारी बनाती है। इसमें लोकतंत्र के अधिाक ऊर्जावान एवं समृद्ध होने की संभावना रहती है। इस अवधारणा की उत्पत्ति मूलतः पश्चिमी देशों में हुई सुशासन में जनकल्याण के तत्व हैं। सुशासन के संबंध में चिंतनों, मनीषियों एवं राजनेताओं ने अपने-अपने गहन विचार दिये हैं। *बिन्दा कुमारी* ने अपने आलेख में सुशासन की अवधारणा का अच्छा विश्लेषण किया।

किसी भी राजा को कुशल शासन के लिये प्रशासन तंत्र एंव विभिन्न विभागों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। प्रशासन की कुशलता एवं सक्रियता के लिये आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारी योग्य, अनुभवी, कर्तव्यपरायण और निष्ठावान हों तथा राजकीय आदेशों का समुचित पालन एवं क्रियान्वयन किया जाये। इसी को शासन का पर्याय मानते हुए कौटिल्य का कथन *शासने शासन मिलाचक्षते* है। इसलिए शासन की कुशलता के उद्देश्य से मंत्रियों, विभागाध्यक्षों एवं अन्य अधिकारियों की नियुक्ति का परामर्श भी दिया गया है। इन प्रशासनिक अधिकारियों के सतत् निरीक्षण, परीक्षण के लिये भी विशेष प्रावधान किए गये हैं। जिससे भ्रष्टाचार से बचा जा सकें।

सुधांशु त्रिपाठी ने प्रस्तुत लेख में सुशासन शब्द की परिचय एंव भारतीय परंपरा में व्याख्या करते हुए इसके अवधारणात्मक विकास का वर्णन किया है। जहाँ पश्चिम की अवधारणा में इसमें शाश्वत मूल्यों की तुलनात्मक कमी को दर्शाया गया है। वहाँ भारतीय परम्परा में इसकी संकल्पनात्मक समृद्धि को उजागर करते हुए तृतीय विश्व के देशों में इसकी आवश्यकताओं को रेखांकित किया गया है। इन सबके बारे में *रुचि त्यागी* ने अपने लेख में विस्तार से बताया है।

सरकार की बढ़ती कार्यों की फेहरिस्त ने अधिकारियों व नौकरशाही पर कार्यों का बोझ बढ़ा दिया है। लेकिन इसका वांछित फ़ायदा आम जनता को मिले इसके लिए सरकारी तंत्र की जवावदेही और बढ़ जाती है। क्योंकि सरकार के नीति एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की मशीनरी सरकारी तंत्र ही है। इस परिपेक्ष्य में सरकारी तंत्र के जवावदेही का मूल्यांकन करने की आवश्यता है। इसका विश्लेषण *श्याम सुन्दर प्रसाद* ने अपने लेख में विस्तार से किया है।

प्रस्तुत आलेख में *पंकज कुमार* ने महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन के बीच के अन्तः सबंधों को दर्शाने का प्रयास किया है। इस लिहाज से सुशासन को परिभाषित करना एवं इसकी अवधारणा पर प्रकाश डालना आवश्यक है। लैगिंग विभेद जो समाज की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा है। जिसे दूर किये बिना सुशासन की अवधारणा को मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता, इसलिये पिछले कुछ दशकों से राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं के सशक्त हस्तक्षेप बढ़ें हैं।

समाज का विकास किए बिना सुशासन के लक्ष्यों का प्राप्त भी नहीं किया जा सकता। हम ई-शासन को विकसित करके प्रशासनिक गतिविधियों को सरलता से बेहतर बना सकते हैं। इसके परिणाम से सुशासन में खुलापन, ईमानदारी कर्त्तव्यनिष्ठा बढ़ी है तथा भ्रष्टाचार व अनियमितता में भी कमी आई है। आज सरकार द्वारा भी सभी स्तरों पर ई-शासन प्रयोग का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि ज्ञान ही सुशासन का आधार है। ई-शासन इसी परिष्कृत ज्ञान को परिलक्षित करता है। जिस पर भविष्य का सुशासन व विवरण निर्भर है। अपने लेख में *सीमादास* और *प्रीति कुमारी* बताया है।

भारत जैसे देशों में जहाँ प्राकृतिक तथा मानव निर्मित आपदायें लोगों के जीवन में वर्षानुवर्ष तबाही कर रही हैं। वहाँ आपदा प्रबंधन का प्रभावी ढाँचा होना अनिवार्य प्रतीत होता है। पिछले बीस वर्षों ने आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में अनेकों कदम उठाये हैं, यदि हम आपदा प्रबंधन तंत्र को सुशासन की कसौटी पर कसते हैं, तो हम इसकी चुनौतियाँ से रूबरू होते हैं। इसके बारे में *राजेन्द्र कुमार पाण्डेय* ने अपने प्रालेख में इन चुनौतियों से रूबरू करवाने की सफल कोशिश की है।

भारत जैसे क्षेत्रीय विविधता और जातीय बहुलता वाले लोकतांत्रिक राज्य में

पंचायती राज ही वह माध्यम है। जिसने शासन को सामान्य जन के दरवाजे तक लाकर सुशासन स्थापित किया है, परन्तु उनमें कुछ सुधार की आवश्यकता है ऐसा होने पर ही पंचायती राज व्यवस्था द्वारा सुशासन के तथ्यों की प्रति कर विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। इसका विवेचन *ममतामणि त्रिपाठी* ने अपने लेख में किया है।

स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव भारत जैसे किसी भी लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है। परन्तु चुनावी भ्रष्टाचार भारत में लगातार विवादित विषय बना हुआ है। इससे निपटने के लिए भारतीय निर्वाचन आयोग चुनाव से पहले एक आदर्श आचार संहिता जारी करता है। जिसने आयोगों की शक्तियों को बढ़ाने तथा चुनावी भ्रष्टाचार को सीमित सीमा तक रोकने में सकारात्मक योगदान दिया है। *जय गुप्ता* ने अपने शोध पत्र में भारतीय लोकतंत्र के लिये समस्या बने चुनावी भ्रष्टाचार को रोकने में आदर्श आचार संहिता के प्रयास एवं इसके योगदान का विश्लेषण किया है।

पंकज कुमार झा एवं *प्रवीण कुमार झा* का लेख शासन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए हाल के दशक में विकसित एक मॉडल के रूप में भागीदारी को विस्तार से विश्लेषित करने की कोशिश करता है। साथ-साथ इसके होने वाले सामाजिक-प्रशासनिक परिवर्तन को वैश्विक रूप से भागीदारी संबंधी मॉडलों के रूप में उल्लेखित करता है। बहरहाल शहरी शासन की संकल्पना को समझने के लिये सर्वप्रथम शासन व सुशासन की संकल्पना को समझना होगा।

अंजना कुमारी के आलेख का मुख्य उद्देश्य सुशासन के अवधारणात्मक पक्षों एवं लोक प्रशासन में आये परिवर्तनों को लोक प्रशासन के आलोक में चिन्हित करना है। समकालीन समय में वैश्वीकरण एक ऐसी परिघटना है जो लोक प्रशासन को चुनौती दे रहा है। जिससे अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार तुलनात्मक लोक प्रबंध एवं निर्माण क्षेत्र में अनुसंधान वृद्धि हुई है। आज लोक प्रबंधक नागरिकों को उच्च स्तर की सेवा प्रदान करने का प्रतिबद्ध है सुशासन के लक्ष्य से अपने आपको जोड़ना ही आज लोक प्रशासन का लक्ष्य हो गया है।

बिहार भारत के पिछड़े प्रदेशों में से एक है। किन्तु बिहार का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है। इसके पतन का कारण ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियां थीं जिनके कारण खनिज, लोहे-अयस्क, कोयला एक ही मूल्य पर भारत में मिलने लगे *सुरेन्द्र कुमार* ने अपने आलेख में बिहार में सुशासन का उत्कर्ष, अपकर्ष एवं पुनरूत्थान किस प्रकार हुआ। यह पटना जिले के मनेर प्रखण्ड की एक केस स्टडी द्वारा प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार 2005-10 के बीच बिहार तीव्र गति से प्रगति करने वाले राज्यों में शुमार हो गया।

उमेश कुमार ने अपने लेख में बिहार के विकास में पंचायती राज एवं सुशासन की भूमिका के बारे में अध्ययन किया है। इस क्षेत्र में सर्वांगीण विकास के लिए

विकेन्द्रीकरण तथा सुशासन के द्वारा विकास योजनाओं का निर्माण व इसका क्रियान्वयन होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि बिहार में कई दशकों से आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में गतिहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस जड़ता को तोड़ने के लिए सुशासन के द्वारा प्रबल प्रयास की जरूरत है। ताकि बिहार को एक विकसित राज्य बनाया जाये।

2005 में बिहार में श्री नीतीश कुमार ने भी सुशासन के कार्यक्रम पर आधारित नीतियों कार्यक्रमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया। उन्होंने कई नीतिगत निर्णय लिये। उनके ठोस, अनुशासित एवं आधुनिक प्रशासनिक एवं वित्तीय सरंचना की स्थापना के परिणामस्वरूप बिहार का विकास द्रुत गति से हो रहा है। इसका विश्लेषण *पूनम कुमारी* ने अपने आलेख में भली-भांति किया है।

ग्रामीण विकास का संदर्भ सामाजिक-आर्थिक परिवेश से होता है जिसमें लोक भागीदारी की अहम् भूमिका होती है। इसी वैचारिक आलोक में *अर्चना कुमारी* एवं *रवीन्द्र कुमार वर्मा* ने प्रस्तुत लेख में सुशासन के विभिन्न अवयवों का परीक्षण ग्रामीण विकास एवं लोक भागीदारी के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। अतः यह आलेख सुशासन और ग्रामीण विकास के बीच अंतःक्रियाओं का परीक्षण करता है, तथा साथ ही इसमें संबंधित अवधारणात्मक समझ को स्पष्ट करने की कोशिश करना है।

नागरिक सहभागिता लोकतंत्र की गुणवत्ता एवं सफलता का पैमाना ही नहीं अपितु सुशासन का भी एक घटक है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। जिसके चलते प्रशासनिक उत्तरदायित्व को आम जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से तय कर पाना कठिन रहा है। वर्तमान आलेख में *राजबीर सिंह दलाल* व *सरबन कुमार* ने भारत में नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता, इनकी संकल्पना, विभिन्न आयामों तथा अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

सूचना का अधिकार तथा सुशासन में परस्पर गहन संबंध हैं। वर्तमान में स्थापित अधिकांश प्रजातांत्रिक राष्ट्रों के लिए यह विशेष लाभकारी होने के साथ ही अत्यंत प्रासंगिक गुण है। क्योंकि यह गुण अनिवार्य होने के साथ-साथ अपेक्षित भी है। *कुमारी पूनम* ने अपने लेख में यह व्याख्या करने की कोशिश की है कि किस प्रकार भारतीय लोकतंत्र में सुशासन कायम करने के लिए सूचना का अधिकार महत्वपूर्ण है।

शासन-प्रशासन में सुशासन का सरदार पटेल मॉडल के संदर्भ में *जनक सिंह मीना* ने अपने लेख में उस समय से लेकर वर्तमान में सरकार और प्रशासनिक तंत्र को पारदर्शी, उत्तरदायी, संवेदनशील, दक्ष, प्रभावशाली बनाने के लिए जिन घटकों, यथा समदृष्टि, समानता, समग्रता, सजगता, सत्यता, सशक्तिकरण और समर्पण की आवश्यकता होती है। पटेल मॉडल में वे सभी समावेशित हैं, जिनसे सुशासन को वास्तविकता के धरातल पर क्रियान्वित कर लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निहित समयावधि में प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय राजनीति में आजादी के 68 सालों के बाद भी महिलाओं की स्थिति को अच्छा नहीं कहा जा सकता है। देश की आबादी का आधा हिस्सा होने के बावजूद शासन और नीति-निर्माण के विविध स्तरों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है। संसद और राज्य व्यवस्थापिकाओं में भी इसका प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत आंका गया है, इसलिए महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व बढ़ाने की आवश्यकता पर काफी जोर दिया जा रहा है। *पिंकी पुनिया* ने अपने लेख सुशासन की पूर्व निर्धारित शर्त–महिला प्रतिनिधित्व और सहभागिता को जरूरी समझा है।

सुशासन एक पुरानी अवधारणा है जिसमें लोग बिना भय के निर्णय ले सकें। सबको धर्म व विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इसका विवरण *मदन गोपाल सिन्हा* ने अपने आलेख में किया है, कि किस प्रकार नीति-निर्धारण का कार्य धरातल से जुड़े लोगों द्वारा किया जाना आवश्यक है। इसलिये संकीर्णताओं से मुक्त होकर अच्छे लोगों को महत्वपूर्ण पदों पर आसीन करने का प्रयास करना चाहिये। यह सुशासन की अनिवार्यता है, और समाज का उत्तरदायित्व है।

आज दुनिया के सभी देशों, व्यावसायिक संगठनों एवं संस्थाओं के समक्ष चुनौतियाँ मौजूद हैं जो सुशासन की स्थापना कर सकें। प्रत्येक राज्य की अभिलाषा है कि उनके पास एक स्थायी तंत्र या नौकरशाही हो *रितेश भारद्वाज* ने अपने लेख नौकरशाही एवं सुशासन किस प्रकार एक-दूसरे को प्रभावित करता है। इसके बारे में बताया है।

सुशासन और विकास नौकरशाही के चरित्र एवं कार्य संस्कृति पर ही करता है। नौकरशाही यदि चरित्रवान, ईमानदार और अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक है तो सुशासन होगा अन्यथा नहीं और न ही विकास की परिस्थितियाँ निर्मित होंगी। इसका विश्लेषण *सच्चिदानन्द मिश्र व धमेन्द्र नाथ चौबे* ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री का उदाहरण देते हुए किया है।

भारत में सुशासनः एक सम्यक दृष्टिकोण *कमलेश नारायण मिश्र व अंजुलता मिश्रा* ने अपने लेख मे दिया है वैश्वीकरण तथा नवउदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर सुशासन की अवधारणा अस्तित्व में आयी। क्योंकि राष्ट्र निर्माण की संकल्पना किसी देश के विकास का राजनीतिक पक्ष प्रस्तुत करती है। राष्ट्र के विकास में सुशासन और विकास दोनों ही अपरिहार्य तत्व है। विकास तभी संभव है। जब सुशासन अस्तित्व में हो।

वर्तमान समय में किसी राष्ट्र की उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि उसने अपने शासन के प्रत्येक अंग का कितनी प्रभावी व लोक कल्याण की भावना से उपयोग किया है। अतः राष्ट्रीय सरकारों का लक्ष्य एक ऐसे शासन तंत्र की स्थापना होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक नागरिक उनकी इच्छाओं और क्षमताओं के अनुरूप एक सुरक्षित और उपयोगी जीवन प्राप्त करने का श्रेष्ठतम अवसर मिल सकें। इसके लिये आवश्यक

है कि राष्ट्र अपने समस्त भौतिक व मानवीय संसाधनों का प्रबंधन सुसंगत तरीके से करे। *अमित कुमार सिंह* एवं *ममता पठानिया* ने अपने लेख में बतलाया है कि कैसे भारत में आवास की समस्या के निदान में सुशासन की भूमिका महत्वपूर्ण है।

सुशासन एक विशद् हितकारी अवधारणा है। इसमें संबंधित कार्य ही लोक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं। सुशासन की इस अवधारणा को अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए सरकार को हरेक व्यक्ति को सुनना पड़ेगा। भारतीय परिपेक्ष्य में *पंकज कुमार तिवारी* ने अपने लेख में संक्षिप्त रूप से बताया है।

इस विशेषांक के संपादन में प्रो. महेन्द्र प्रताप सिंह, संपादक, आई.जे.पी.ए. के सहयोग-सद्भाव के लिए मैं अति आभारी हूँ। श्रीमती स्नेहलता की अथक सक्रियता एवं निष्पादन के लिए हम कृतार्थ हैं।

– प्रो. एस.एन. मिश्र

Iiknd

प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं सुशासन

कौशल किशोर मिश्रा

भारत ही नहीं वरन् विश्वभर में सुशासन की संकल्पना प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है। शासन में 'सु' उपसर्ग के जोड़ने पर सुशासन शब्द का निर्माण हुआ है जिसमें 'सु' उपसर्ग का अर्थ है 'शुभ' अथवा 'अच्छा'। इस प्रकार सुशासन शब्द का अर्थ होता है अच्छा शासन। प्रारम्भ में सुशासन की स्थापना प्रचलित परम्पराओं और कबिलाई संस्कृति के विकास के साथ-साथ हुई। इस विकासक्रम में परम्पराओं से अर्जित ज्ञान और लोककल्याण की भावनाओं की अवधारणा प्रबल भूमिका में रही है। इस अर्थ में शासन की सभी प्रणालियाँ कृत्रिम हैं।[1] सुशासन की अवधारणा को जानने के लिए शासन क्या है यह भी जानना आवश्यक है। इस अर्थ में किसी राष्ट्र की सरकार जो भी कार्य राज्य चलाने के लिए करती है वही शासन है। शासन का सम्बन्ध सरकार द्वारा लिये गये निर्णयों से होता है, जो किसी सरकार को शक्तिशाली अथवा कमजोर प्रमाणित करते हैं। शासन के दो रूप होते हैं– सुशासन और कुशासन जिस प्रकार सुशासन 'सु' उपसर्ग के जोड़ने पर बना है और कुशासन 'कु' उपसर्ग लगाने से। 'कु' उपसर्ग का अर्थ होता है अशुभ अथवा बुरा। इस प्रकार कुशासन का अर्थ होता है खराब अथवा बुरा शासन। सुशासन की संकल्पना का अर्थ कुशासन की प्रासंगिकता के सन्दर्भ में भी प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें दुःशासन या दुर-शासन तथा भ्रान्तिपूर्ण शासन या अधिकार भ्रान्ति सम्मिलित है। सुशासन शासन के इन प्रकारों दुःशासन, अशासन, अतिशासन और भ्रान्तिपूर्ण शासन को दूर करता है।[2]

राज्य और सुशासन सदैव से एक-दूसरे के प्रयोग में आते रहे हैं। राज्य की चाहे दैवीय उत्पत्ति की अवधारणा हो अथवा सामाजिक समझौते संबंधी उत्पत्ति की, चितकों, विचारकों यथा प्लेटो, सुकरात, हॉब्स, लॉक, रूसो, कौटिल्य, मनु इत्यादि ने राज्य अथवा मानव जीवन व्यवस्था की विवेचना की है, सभी का मूलभूत सार शासन से ही है और यदि गहन अवलोकन किया जाये, तो सभी का उद्देश्य भी सुशासन की खोज रहा है।[3]

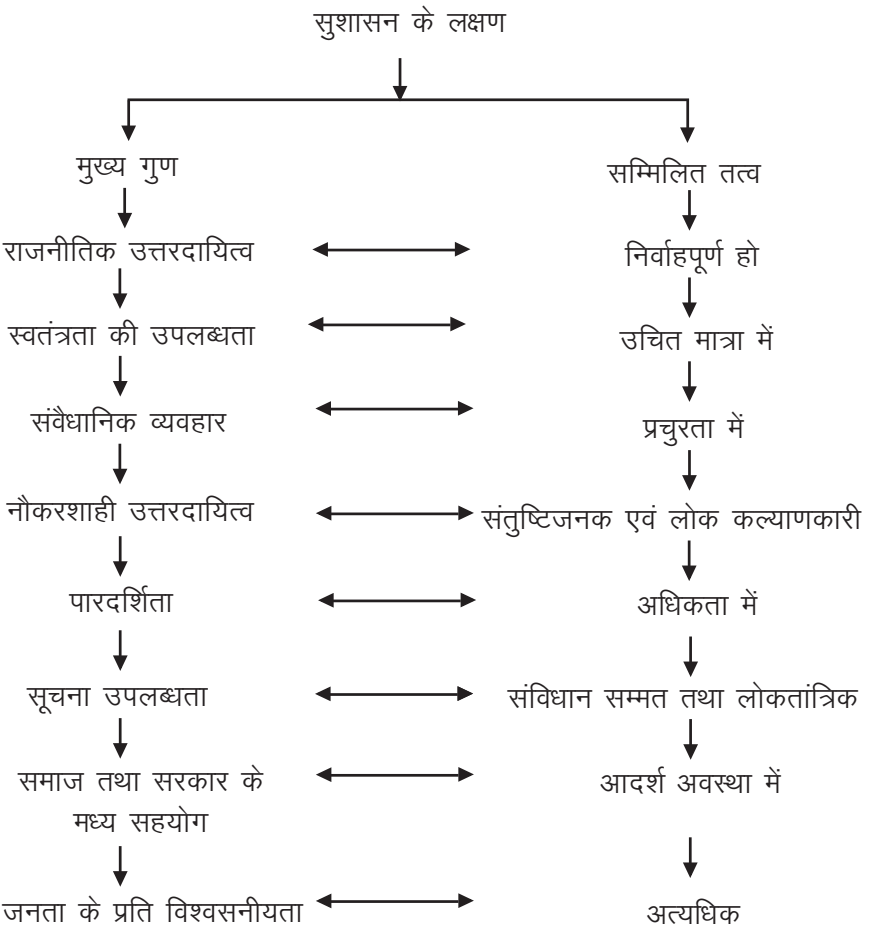

किसी भी राष्ट्र में चाहे उसमें कोई भी शासन प्रणाली क्रियाशील क्यों न हो, सुशासन की स्थापना सम्भव रही है। सुशासन की संकल्पना साथ ही साथ इन सभी शासन प्रणालियों के लिए अनिवार्य भी है। मुख्य रूप से, सुशासन एक ऐसी अवधारणा का भी नाम है जिसका प्रयोग अपने साथ विभिन्न सकारात्मक पहलुओं को लिए आता है। इसकी व्यवस्था राजतन्त्र, प्रजातन्त्र, अल्पतंत्र आदि सभी के लिए उत्तम मानी जाती है।

पाश्चात्य राजनीतिक-सामाजिक चिन्तन के साथ ही साथ भारतीय राजनीतिक चिन्तन में भी सुशासन की महत्ता तथा अनिवार्यता के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व का एक श्लोक है–

न राज्यं, न वै राजाआसीत्, न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मणैव प्रजाः सर्वं रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

अर्थात् प्रारम्भ में न तो कोई राजा था, न राज्य, न कोई दण्ड व्यवस्था थी और न कोई दण्ड देने वाला। सभी लोग परस्पर धर्मपूर्वक व्यवहार करते हुए एक-दूसरे के हितों की रक्षा किया करते थे।[4] प्राचीन काल में कबिलाई संस्कृति होने के कारण समझौतावादी सिद्धान्त से प्रभावित नियमों की व्यावहारिक दृष्टव्य होती है। इसके बाद ही धीरे-धीरे छोटे-छोटे कबीलों से बड़े कबीले, फिर गाँव और तत्पश्चात् नगर राज्यों का निर्माण हुआ। यही नगर राज्य वर्तमान में राष्ट्र राज्य के रूप में परिणत हुए।

कालान्तर में सुशासन की स्थापना की दृष्टि से ही कौटिल्य द्वारा अपने विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' की रचना की गई। जिसमें उसने अपना राज्य का सप्तांग सिद्धान्त का वर्णन किया। कौटिल्य ने पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित राज्य के चार तत्त्वों- भूमि, जनसंख्या, सरकार तथा सम्प्रभुता का विवरण न देकर राज्य के सात तत्वों का विवेचन किया है जो क्रमशः है– (1) स्वामी अर्थात् राजा (2) अमात्य अर्थात् मंत्री, (3) जनपद अर्थात् प्रजा या जनसंख्या, (4) दुर्ग अर्थात् किला, (5) कोष अर्थात् राजकोष, (6) दण्ड अर्थात् बल अथवा सेना और (7) सुहृद अर्थात् मित्र। कौटिल्य के द्वारा राज्य के अनिवार्य तत्त्वों के रूप में इन सातों को रखा गया यद्यपि कौटिल्य द्वारा वर्णित दण्डनीति का सुशासन स्थापना हेतु अत्यधिक महत्त्व है। कौटिल्य के अनुसार दण्डनीति धर्म पर आधारित होनी चाहिए। कानून सबके लिए समान हो। किसी अपराध के लिए निर्धारित दण्ड सबके ऊपर समान रूप से लागू होना चाहिए। अपराधी को वह समाज के लिए कष्टक अर्थात् काँटा मानते थे, उसे सजा दिलाने को कौटिल्य ने 'कष्टक शोधन' का नाम दिया है। गाली-गलौच, निन्दा, दूसरों को धमकाना आदि को कौटिल्य से 'वाकपारूष्य' अपराध की संज्ञा दी है। ऊँचे पदों पर बैठे लोग अपने अधिकारों का दुरूपयोग कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में कौटिल्य नीति स्पष्ट और व्यावहारिक है। ऐसा करने से रोकने के लिए शासन को सतर्क रहना चाहिए।[5] कौटिल्य शासक अर्थात् राजा के चरित्र को अत्यधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार राजा को संयमित जीवन जीना चाहिए। इसके साथ ही कौटिल्य ने राजा की दिनचर्या को भी नियमबद्ध किया था। राजा का चरित्रवान होना उसने राज्य के लिए अनिवार्य माना। कौटिल्य के अनुसार–

राज्ञधर्मणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः।।[6]

अर्थात् यदि राजा पुण्यात्मा है तो प्रजा भी वैसी ही होती है। यदि राजा पापी है तो प्रजा भी पापी। यदि वह सामान्य है तो प्रजा सामान्य। प्रजा के सामने राजा का उदाहरण होता है और वो उसका अनुसरण करती है। ठीक इसी प्रकार मनुस्मृति में भी राजा के गुणों को बताया गया है। मनुस्मृति के अनुसार –

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक।।

एतेपां निग्रहो राज्ञः पचांनां विषये स्वके।
साम्राज्यकृत्सर्जायेषु लोके चैव यशस्करः।।[7]

अर्थात् जिस राजा के नगर में न चोर हैं, न व्यभिचारी हैं, न कुवाच्य कहने वाले हैं, न लुटेरे हैं, और न मार-पीट करने वाले हैं वह राजा इन्द्रलोक को पाता है। इन पाँचों का अपने राज्य में निग्रह करने से राजा का राज्य और यश फैलता है। सार रूप में, भारतीय शास्त्रों में भी सुशासन की स्थापना हेतु शासक को विभिन्न प्रकार से निर्देशित किया गया तथा उसे क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना चाहिए आदि के बारे में विस्तृत चर्चा कर उसे अनुदेशित किया गया।

कर के सम्बन्ध में भी मनुस्मृति में विस्तारपूर्वक प्रावधान किया गया है। राजा को राजस्व वृद्धि के सम्बन्ध में कर किन से और कितना लेना चाहिए इस सम्बन्ध में बताया गया है–

क्रयविक्रयमध्वानं भकृं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान्।।
यथा फेलन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं कराम्।।[8]

जिसका अर्थ है क्रय-विक्रय, रास्ते का खर्च, रक्षा का खर्च और उनके निर्वाह को देखकर राजा, व्यापारियों से कर (टैक्स) ले। उद्यमियों को और राज्य को जिससे नफा पहुँचे ऐसा विचारकर कर लगाना उचित है। इस प्रकार राजा को विनिमय, व्यापार, सुरक्षा आदि पर उचित कर ही लगाना चाहिए जिससे जनता पर अनुचित भार न पड़े। यद्यपि वर्तमान सरकारों की स्थिति अलग है। करों के बोझ के कारण किसान आत्महत्याएँ तक करने पर मजबूर हो रहे हैं। ऐसी स्थिति को शास्त्रसंगत नहीं कहा जा सकता और यह सुशासन की संकल्पना पर भी एक प्रश्नचिह्न लगाती दिखती है। सत्ता को चाहिए कि अनुचित तथा जो कर अनिवार्य न हो उनको जनता पर न थोंपे। इसके विपरीत अनेक प्रकार के प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक संकट के समय जनता की मदद करे। उचित कर लगाते हुए कर चोरी पर सर्वप्रथम रोक लगाये तथा कर वसूल करे जिसे राजस्व के घाटे को भी रोका जा सके और राजकोषीय धन का उपयोग लोककल्याण हेतु किया जा सके।

पणं पानं तरेदाप्यां पौरुषोअर्धपणं तरे।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान।।
थाण्डपूर्णीन यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः।
रिक्तभाण्डानि यत्किषित्युमांसश्चापरिच्छदा।।
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम्।।[9]

इसका भावार्थ यह है कि नदी पार करने में खाली गाड़ी का एक पण, भार सहित मनुष्य का आधा पण, पशु और स्त्री का चौथाई पण और खाली मनुष्य से पण का

आठवाँ भाग वसूल ले। मालभरी गाड़ी पर उतरने का महसूल बोझे के अनुसार ले और खाली सवारी और गरीबों से थोड़ा सा ले। लम्बी उतराई का महसूल देशकाल के अनुसार होगा। यह नदी तट का नियम है। समुद्र के लिए कोई निश्चित नहीं हो सकता।

कौटिल्य ने राजा को अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने वाला होना चाहिए, ऐसा अनिवार्य माना है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में कहते हैं– *'अवशेन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति।'* अर्थात् अपनी इन्द्रियों को वश में न रखने वाला चक्रवर्ती राजा भी विनाश को प्राप्त हो जाता है।[10]

भारतीय प्राचीन राजनीतिक दर्शन की चार शाखाएँ है– अंतिम यथार्थ का ज्ञान, ज्ञान मीमांसा, तर्कशास्त्र तथा आचार शास्त्र। राजदर्शन का समबन्ध भी इन्हीं चारों शाखा से है। राजदर्शन एवं व्यापक दृष्टिकोण है, जिसके अन्तर्गत ज्ञान की चारों शाखा– आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति आती है। पाश्चात्य दर्शन का प्रादुर्भाव जिज्ञासा, ज्ञान पिपासा की शान्ति एवं विशुद्ध राजनीतिक उद्देश्य से हुआ हैं, जो प्रायः मन तक पहुँचते हैं। आत्म का विश्लेषण वहाँ देखने को नहीं मिलता है। भारतीय राजदर्शन सब विधाओं का सार है। राजदर्शन ही मानव समाज को चतुर्पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्पादन में प्रवृत्त कराता है। इसका ज्ञान पाश्चात्य की भाँति केवल शासक वर्ग तक ही सीमित नहीं है, अपितु प्रत्येक मानव को इसका ज्ञान अनिवार्य है। राजदर्शन सम्पूर्ण प्राणियों के पालन-पोषण, रहन-सहन तथा सुख-शान्ति की व्यवस्था के उपायों का ज्ञान करा देने वाली राजविधा है। यह सब विद्याओं तथा सब ज्ञानों का सार है।[11] महाभारत के शान्तिपर्व में स्वयं भीष्म ने राजधर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है–

''उपकाराय लोकस्य त्रिवर्गस्थापनाय च।
नवनीतं सरस्वतत्या बुद्धिरेषा प्रभाविता''।।[12]

अर्थात् राजदर्शन का ज्ञान प्रत्येक कुटुम्बी के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि वह अपने परिवार, कुटुम्ब का छोटा सा राजा है। कुटुम्ब का पालन-पोषण और उसका संयमन करना, उसे चरित्रवान बनाये रखना प्रत्येक कुटुम्बी के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य होता है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका में श्री विज्ञानेश्वराचार्य ने लिखा है कि – ''राजदर्शन का ज्ञान केवल शासकों के लिए ही नहीं, अपितु सभी मनुष्यों के लोक व्यवहारों में भी परम उपयोगी है। साम, दाम, दण्ड और भेद यें चार उपाय केवल एक राजव्यवस्था के लिए ही नहीं, अपितु मनुष्यों के लौकिक जीवन हेतु भी उपयोगी है।'' ऐते समदयो न केवलं राज्य व्यवहार विषया : अपितु सकललोक व्यवहारविषयाः।[13]

शान्तिपर्व के एक प्रसंग में राजा को सनातन देव कहा गया है। वहीं महादेवता जो मनुष्य रूप में पृथ्वी पर विचरण करता है। यही विचार मनु का भी है। इसी पर्व में राजा को पंचदेव, अग्नि आदित्य, मृत्यु, कुबेर तथा यम कहा गया है। वह अपने

शासनकाल में परिस्थिति के अनुसार इन देवताओं का पृथक-पृथक रूप तथा गुण धारण करता है पर भीष्म के अनुसार सभी राजाओं के सामने देवता भी आदरपूर्वक झुकते हैं, ऐसा यहाँ कहा गया है। धर्मानुसार शासन करने वाला राजा ही मनुष्यों के लिए देवता होता है वह न अपने कार्यों के लिए देवता के प्रति उत्तरदायी होता हैं और न उनका प्रतिनिधि होता है। यही पाश्चात्य विश्व के देवत्व और भारतीय देवत्व के बीच का अन्तर भी है जेा भारतीय राजनीतिक परम्परा भी है जो भारतीय राजनीतिक परम्परा को सुशासनात्मक व्यवस्था की ओर प्रवृत्त करता है।[14]

एक समय था जब लोकतन्त्र की यह अवधारणा ही लोगों को खुश करने के लिये काफी थी कि यह जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा प्रशासन है; किन्तु पिछले कुछ दशकों में प्रशासन की इस व्यवस्था में भी कई खामियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी थी। इसके बाद लोकतन्त्र के अन्तर्गत जनता के हित को सर्वोपरि रखते हुए, प्रशासन के प्रति सरकार की जवाबदेही और इसमें पारदर्शिता को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। इससे प्रशासनिक व्यवस्था अधिक सक्षम और प्रभावकारी हो सकी। इसी बेहतर प्रशासन व्यवस्था को लोगों ने सुशासन नाम दिया।

सुशासन के कई उद्देश्य होते है, इनमें से प्रमुख है– सक्षम, प्रभावकारी एवं सेवा उन्मुखी प्रशासन की स्थापना, स्वतंत्र न्याय प्रणाली की स्थापना प्रशासन में पारदर्शिता लाना, नागरिकों के हितों की रक्षा करना, विधि का शासन स्थापित करना, समावेशी विकास एवं प्रशासन में नागरिकों की सहभागिता बढ़ाना। सुशासन के इन उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो ही सकती है जब नागरिक समाज सशक्त एवं जागरूक हो।[15]

आज मानव समाज वैश्वीकरण, सभ्य समाज, अर्थव्यवस्था, उदारीकरण, सूचना तकनीकी, मानवाधिकार, प्रजातंत्र जैसे उपकरणों से सुसज्जित है और विकास के उच्चतम बिन्दु तक पहुँचने को व्यग्र है। इन सब लक्ष्यों, उद्देश्यों को वर्तमान व भविष्य में उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से अन्ततः प्रशासन की उच्च स्थिति को प्राप्त करना ही है।[16] राज्य का रूपान्तरण एक स्थिर और राजनैतिक स्वरूप से भी आगे प्रशासकीय और नौकरशाही राज्य बना और उसके भी आगे साइबरनेटिक राज्य बनने की ओर तेजी से कदम बढ़ा रहा है।[17]

सुशासन एवं सभ्य समाज दोनों का मूलभूत उद्देश्य जन कल्याण के कार्यों को प्रमुखता देना है। ऐसी ही परम्परा प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन की भी रही है। यद्यपि किसी भी देश, काल या परिस्थिति में यदि सरकार जनकेन्द्रित, समता-उन्मुखी और संवेदनशील है तो शासन को सुशासन कहा जा सकता है। परन्तु आज मुख्य प्रश्न यह है कि विश्व के कितने देशों में सुशासन के तत्व मौजूद हैं। सभ्य समाज का केन्द्र बिन्दु राज्य, राजनीति एवं प्रशासन न होकर नागरिक, स्वयंसेवी संस्थाएँ एवं स्वयंसेवक होते हैं। आज राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर सभ्य समाज की भूमिका बढ़ती जा रही हैं जो कि हमारी समृद्ध प्राचीन राजनीतिक परम्परा से भिन्न है।

सन्दर्भ सूची

1. w.m.wikipedia.org
2. सुनील गुप्ता एवं कमल कुमार सिंह, सुशासन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.–6.
3. सुनील गुप्ता एवं कमल कुमार सिंह, सुशासन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पृ.–31.
4. https://hi.wikibooks.org/wiki / सुशासन और भारतीय चिन्तन।
5. hindi.revoltpress.com
6. चाणक्य नीति।
7. पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, 'मनुस्मृति अर्थात् मानवशास्त्र' अध्याय–, श्लोक–,386,387.
8. वही, अध्याय–7, श्लोक 127–128 पृष्ठ-128.
9. वही, अध्याय–8, श्लोक– 404,405,406, पृष्ठ–314.
10. प्रो. इन्द्र (रूपान्तरकार) कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृष्ठ–22.
11. ज्योति सिंह, 'राज दर्शन : प्राच्य एवं पाश्चात्य;' भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, अंक–प्रथम, जनवरी–जून, 2015, पृष्ठ–13
12. म.शा.प. 59 / 76.
13. या.व.स्मृ. 1 / 346 मिताक्षरा।
14. विपिन दुबे, भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, अंक–प्रथम, जनवरी–जून, 2015, पृष्ठ–13
15. विज्ञान शोध पत्रिका, अंक-2, जुलाई-दिसंबर 2009, पृष्ठ –255
16. http://shreshthamibandhblogspot.in/2015/01/blogpos-html.
17. सुनील गुप्ता एवं कमल कुमार सिंह सुशासन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृष्ठ–32.
18. शिक ऐलेन, 'टुवर्ड्स साइबरनेटिक स्टेट ट्रांजिशन, ट्रैनजैक्शन' वाल्यूम–7, 1990.

सुशासन और इसके निर्धारक तत्व

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

सामयिक संदर्भों में वैश्विक धरातल पर सुशासन लोकहित और विकास का सर्वाधिक प्रभावी कारण और अवलंब माना जाता है। बाजार अर्थव्यवस्था और राजनीतिक बहुलवाद की दौर में इसकी महत्ता में अतिशय वृद्धि हुई है। तीन बड़े वैश्विक दबावों यथा–सूचना तकनीकी, वैश्विक संस्थाएँ तथा कार्यकुशलता एवं उत्पादकता के संदर्भ में राज्य की भूमिका में व्यापक परिवर्तन हुआ है। सामाजिक विषमताओं को समाप्त करना, अवसरों की समानता, स्वास्थ्य शिक्षा एवं आवास के क्षेत्र में गरीबों को संरक्षण प्रदान करना, राज्य सुशासन के माध्यम से ही सम्भव बना सकता हैं। इसके साथ ही भारत जैसे बहुधर्मी, बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषी देश में कानून व व्यवस्था के सुरक्षोपाय लागू करने की जिम्मेदारी के साथ ही शासन का दायित्व सर्वांगीण विकास के लिए समग्र नीति का क्रियान्वयन करना भी है।

वस्तुतः सुशासन की स्थापना एक अन्तहीन प्रक्रिया है जिसमें अच्छाई को सम्मिलित करना सदियों से ही समाज की इच्छा रही है, राज्य का रूप, सरंचना एवं प्रकार चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न रहा हो। राज्य के उद्‌भव से ही शासकों के सम्मुख सुशासन की स्थापना एक प्रबल चुनौती रही है। प्रारम्भिक काल में राज्य व सुशासन एक दूसरे के पयार्य रहे हैं। हाब्स, लॉक, रूसो, मिल, मार्क्स तथा गांधी जैसे विचारकों की यह मान्यता है कि समाज के व्यक्तियों ने राज्य को बाध्यकारी शक्ति एक सुशासन की स्थापना हेतु ही प्रदान की है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में जीवन के सभी पक्षों पर सम्यक विचार मिलता है, साथ ही इसमें व्यक्ति, समाज और व्यवस्था के अन्तर्सम्बन्धों का गहन निरूपण किया गया है। एक तरफ इसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ, मूल्य और अपेक्षाओं का विवेचन है तो दूसरी तरफ इसमें जीवन की सम्पूर्णता और परम तत्व का विधान है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में सुशासन के प्रतिमान निर्धारित हैं और शासकीय व्यवस्था तथा जीवन शैली में इसके लिए निश्चित स्थान है। शासकों के धर्म से बंधे होने की शासन व्यवस्था की प्राचीन भारतीय अवधारणा सच्चे अर्थों में जनता के लिए उत्तम शासन (सुराज) सुनिश्चित करने की परिचायक थी। यद्यपि

राजतंत्र मौजूद था फिर भी शासकों के दैवी अधिकारों अथवा स्वेच्छाचारी शासन का कोई सिद्धान्त नहीं था। राजधर्म आचरण की संहिता अथवा विधि व्यवस्था थी और वह शासक की इच्छा से ऊपर थी तथा उसके सभी कार्य उसी से शासित होते थे। जातक कथाएँ, महाभारत का शान्ति पर्व-अनुष्ठान पर्व, शुक्राचार्य का नीतिसार, पाणिनी की अष्ठाध्यायी, ऐतेरेय ब्राह्मण और बाल्मीकि रामायण तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र इन सभी में उत्तम शासन के पर्याप्त अंश वर्णित हैं।

मनुस्मृति के अनुसार शासन का उद्देश्य जनता के धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में सहायक होना है– अतएव राजा को अपने सुयोग्य मंत्रियों की सलाह से निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति का निरन्तर प्रयास करना चाहिए। राजा को सुशासन हेतु शासन के प्रत्येक विभाग हेतु बुद्धिमान एवं योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करनी चाहिए। निरीक्षण प्रशासन की एक आधारशिला है जिसके द्वारा राजा अपनी जनता को कतिपय सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्ट प्रशासन और अत्याचार से बचा सकता है। आचार्य कौटिल्य ने राजा के लिए ऐसे ऊँचे मानदण्डों का आधार प्रस्तुत किया जिसकी अन्तःतोगत्वा परिणति 'सुशासन' के रूप में होती है। राजा का कर्त्तव्य प्रजा के सुख व कल्याण की साधना करना है। कौटिल्य के अनुसार –

राज्ञो हि ब्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।

दक्षिणा बृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिणोनम्।।

''प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियम् हितम् ।।''[1]

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख है तथा प्रजा के हित में राजा का हित है, राजा का हित अपने आपको अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में नहीं है, वरन् वह प्रजा को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में है। उनके सुशासन का अभिप्राय विधि का शासन, मानवाधिकार का सम्मान, एक ईमानदार, कार्यकुशल, सहयोगी और योग्य प्रशासन से है।'' सदैव क्रियाशील रहना ही राजा (शासक) का व्रत है। शासन कार्य के लिए अनुशासन पर चलना ही यज्ञ है, उसकी निष्पक्षता ही यज्ञ की दक्षिणा है, उसका राज्याभिषेक ही यज्ञ करने वाले का स्थान है।[2] राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की सब व्याधियों से रक्षा करे और राज कर्मचारियों से भी उनकी रक्षा करें। गुप्तचरों द्वारा घूसखोरों का पता लगाकर उन्हें दण्डित करे और साहूकारों एवं व्यापारियों से प्रजा की रक्षा करें। भारत की प्राचीन सभ्यता से प्रशासनिक सुव्यवस्था के चिन्तन की परम्परा के प्रमाण परिलक्षित होते हैं। सम्राट अशोक व चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी शासकों के इतिहास से स्पष्ट है कि भारतीय नागरिकों हेतु प्रशासन की व्यवस्थित प्रक्रिया रही है। सुशासन सम्बन्धी विचारधाराओं व परम्पराओं का विकास मौर्यकाल से लेकर समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी चक्रवर्ती शासकों के काल में हुआ।

'आधुनिक लोकहितकारी राज्य के प्रसंग में, लोकहित का अभिप्राय राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति अवसर की असमानता को दूर कर उसकी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करना है। जिसका उद्देश्य किसी समुदाय विशेष या समाज के किसी विशेष अंग का हित साधन नही है, अपितु उसका उद्देश्य जनता के सभी लोगों के आवश्यक हितों की पूर्ति करना होता है।[3]

शासन का अभिष्ट सदैव सुशासन ही होता है। आधुनिक लोक प्रशासन की शब्दावली में यह शब्द 1990 के दशक में प्रविष्ट हुआ है। सुशासन की अवधारणा इन प्रश्नों से अनिवार्यतः आबद्ध है, जैसे शासन का लक्ष्य क्या है? शासन किसके लिए है? और शासन का आदर्श रूप क्या है? विश्व बैंक के एक दस्तावेज 'Governance and Development'(1990) में सुशासन शब्द का प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में किया गया है जिसमें शासन-शक्ति का प्रयोग राष्ट्र के विकास के लिए तथा राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक संसाधनों का प्रबन्ध करने के लिए किया जाता है। *इन्द्रजीत कौर* के अनुसार, 'सुशासन एक ऐसे पर्यावरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है जो सशक्त और समान विकास को बढ़ाता है ये सबल आर्थिक नीतियों का पूरक है। सुशासन की संकल्पना विकसित देशों के द्वारा विकासशील देशों के सन्दर्भ में बनाई गई है तथा लोक प्रशासन के शब्दकोश में यह 1990 में प्रविष्ट हुई है। सन् 1994 में *विश्व बैंक* ने सुशासन के अभिप्राय को इस प्रकार अभिव्यक्त किया था– ''सुशासन, भविष्यवाणी योग्य, खुला और प्रबुहद, नीति-निर्माण, एक नौकरशाही जो व्यावसायिक गुणों से लवरेज़ है, एक कार्यपालिका जो अपने कार्यों में भाग लेता है। खास बात ये है कि ये सभी विधि के शासन में अपना कार्य करते हैं, और अंततः जनता की भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में सुशासन के अनेक प्रावधान किए गये हैं, जिसमें संविधान की 'प्रस्तावना' मार्गदर्शक है। निर्देशक तत्व राज्य के सम्मुख कुछ आदर्श प्रस्तुत करते है, जिनके द्वारा देश के नागरिकों का सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उत्थान हो सकता है। संविधान की प्रस्तावना द्वारा नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय प्रदान करने का लक्ष्य, जिन्हें सुशासन आदेशों के क्रियान्वित पर ही पूरा किया जा सकता है। ये निर्देशक तत्व एक प्रकार से राज्य के लिए नैतिकता के सूत्र है तथा देश में सुशासन की दिशा में प्रेरणा देने वाले तत्व हैं।[4]

सामान्यतया 'सरकार' और 'शासन' को पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। राजनीति विज्ञान की शब्दावली में इन दोनों का आशय अलग है। *आर.एन. प्रसाद* ने अपनी पुस्तक Governance in India (2002) में लिखा है कि, 'शासन शब्द का अर्थ सरकार से कहीं अधिक व्यापक है। सरकार एक मशीनरी तथा संस्थात्मक (Institutional) व्यवस्था है जो समुदाय के बाह्य हितों को पूरा करने के लिए सम्प्रभु

शक्ति का प्रयोग करती है, जबकि समुदाय के हित के लिए प्राधिकृत निर्णय लेने की प्रक्रिया और निर्णय के क्रियान्वयन को शासन कहते हैं।' इस प्रकार सरकार एक संस्था है जबकि शासन एक प्रक्रिया है।

शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी Governance शब्द मूलतः यूनानी भाषा के 'Kubernao' शब्द से उदभूत है जिसका अर्थ होता है– परिचालन करना (Steering)। शासन शासित करने की कला है। वह राज्य सुशासित राज्य कहलाता है जिसमें नियम भले ही कम हो, लेकिन उन पर अमल कठोरता से किया जाता हो।

सुशासन : अर्थ और निहितार्थ

सुशासन से तात्पर्य है कि सभी स्तरों पर देश के कार्यो का प्रबन्ध करने के लिए आर्थिक, राजनीति और प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग शासन शक्ति द्वारा किया जाता है। यह कार्य इस प्रकार किया जाता है कि नागरिकों के कल्याण पर पूरी तरह से ध्यान दिया जा सके। लोगों की भागीदारी, विधि का शासन, पारदर्शिता, समानता, सक्रियता, निर्णय करने में सर्वसम्मति, प्रभावशीलता, उत्तरदायित्व, जबाबदेही, कुशलता, अनुक्रियाशीलता, प्रभावशीलता, दक्षता और बदल रही आवश्यकताओं और चुनौतियों के सापेक्ष परिवर्तनशीलता से सुशासन का बोध होता है। शासन की बुनियादी उद्देश्य जनकल्याण रहा है और यही प्राप्त करना सुशासन है। शासन में 'सु' उपसर्ग लग जाने से सुशासन का जन्म होता है। 'सु' का अर्थ है–शुभ, सुन्दर, अच्छा एवं मंगलकारी जैसे भावों को व्यक्त करने वाला। भारत में सुशासन की अवधारणा नयी नही है बल्कि यह 'रामराज्य' एवं 'स्वराज' की परम्परा अवधारणा का नया नाम है। *'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'* के मूलमंत्र पर आधारित लोकल्याणकारी राज्य की अवधारणा भी अंततः सुशासन की दिशा में ही एक कदम है। सुशासन यह स्पष्ट करता है कि बेहतर शासन प्रणाली के विकास में सरकार, नागरिक व अन्य संगठनों की प्रभावी भूमिका होती है। अतः यह सरकारी तंत्र की लोकजीवन में निष्ठा बढ़ाने तथा नागरिकों को शासन संचालन में सहयोग प्राप्त करने वाली प्रक्रिया है। सुशासन एक गतिशील अवधारणा है जो हर युग के लिए आवश्यक है।[5] साधारण शब्दों में सुशासन का अर्थ होता है समस्त जनता के हित में कार्य करना। सुशासन को विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है –

वी.ए. पाई पानन्दीकर के अनुसार ''सुशासन का आशय उस राष्ट्र से है जहाँ वह जनता को शांतिपूर्ण, व्यवस्थित, समृद्ध, उचित, सहभागितापूर्ण जीवन व्यतीत, करने के लिए निर्देशित करता है।''[6] मिनोचा के अनुसार, ''सुशासन वह है जहाँ राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता की उपलब्धि, कानूनपालक, नौकरशाही, उत्तरदायित्व सूचना में पारदर्शिता, जो प्रभावी एवं कुशल और सरकार तथा समाज में सहयोग हो।''[7] वी.के.डे. के अनुसार, ''सुशासन का अर्थ राज्य में लोगों के कार्यों को नियमानुसार वैधानिक सत्ता

द्वारा संचालन करना है। पुनः जनता की लोकतंत्र में आस्था होने के कारण, सुशासन को जनता की सरकार, जनता द्वारा और जनता के लिए कल्याण, सद् या हित के लिए कार्य करना है।''[8] एमर्सन की मान्यता है कि ''सुशासन प्रजातांत्रिक ढांचे में समर्थ एवं प्रभावशाली प्रशासन से जुड़ा है।''[9]

यूनेस्को के अनुसार, ''सुशासन एक प्रक्रिया, एक संस्था तथा एक यंत्र विन्यास की तरह है जो समाज के वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं तथा हितों को ध्यान में रखते हुए शक्ति और अधिकार का प्रयोग करती है।''

अतएव स्पष्ट है कि ''सुशासन की परिभाषा कभी लक्ष्य के रूप में, कभी साधन के रूप में और कभी लोकतांत्रिक निर्धारित उद्देश्य के रूप में की जाती है। स्मरणीय है कि समय के साथ सुशासन की परिभाषा में भी विस्तार आया है। आज के वैश्वीकरण के युग में उसकी वैचारिक कठिनाई तब प्रारम्भ होती है जब विश्व के समृद्धशाली देश और इकाइयों द्वारा विकासशील देशों के विकास हेतु दी जाने वाली आर्थिक सहायता के लिए पहले से शर्त निर्धारित की जाती है।[10]

सुशासन का उद्देश्य समावेशी विकास को अपनाना तथा अपने सभी नागरिकों को बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करना है। समाज के वंचित वर्गो को सशक्त बनाने और उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल करने के लिए सामाजिक कल्याण की योजनाएं संचालित करने के साथ-साथ समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास करना है। इसके अलावा इसके द्वारा ऐसा वातावरण मुहैया करवाया जाना चाहिए जिसमें लोगों की रचनात्मक क्षमता को साकार रूप दिया जा सके और कला-कौशल, वैज्ञानिक प्रवृत्ति और उद्यमशीलता की भावना को फलने-फूलने का अवसर मिल सके। इससे मानव संसाधन का निर्माण होगा और वे एक महान राष्ट्र के निर्माण में योगदान दे सकेंगे।

l'kklu dk fu/kkjd rRo %& सुशासन हेतु विभिन्न प्रकार के कारकों की उपादेयता होती है, जिनसे परिस्थिति विशेष में जनकल्याण एवं विकास के लक्ष्य पूरे होते हैं। सुशासन के तत्वों के निर्धारण में विविधताएँ परिलक्षित होती हैं। ESCAP (एशिया और पैसेफिक के लिए सामाजिक और आर्थिक परिषद्) में सुशासन के आठ तत्वों की चर्चा की गई हैः–

1–सहभागीपरक

2–आम सहमति पर आधारित

3–उत्तरदायित्व

4–पारदर्शी

5–अनुक्रियात्मक

6–प्रभावशाली और कार्यकुशल

7–समतामूलक और

8–विधि का शासन।

fo'o cSd u: l|'kklu d: N% rRoksa dh ppkZ dh gS&

1–उत्तरदायित्व

2–राजनीतिक स्थिरता

3–प्रभावशीलता

4–नियामक

5–विधि का शासन तथा

6–भ्रष्टाचार पर नियंत्रण।

**UNDP ¼1977½ d: vuqlkj l|'kklu d: fofo/k rRoksa dh ppkZ dh xbZ gS]
;Fkk&**

1–सहभागिता

2–विधि का शासन

3–पारदर्शिता

4–अनुक्रियाशीलता

5–जनसहमति

6–न्यायसंगत

7–प्रभावशीलता

8–जवाबदेही

9–सामरिक दृष्टि।

महात्मा गांधी ने भारत में ऐसे शासन का स्वप्न देखा था जिसमें 'रामराज्य' के तत्व विद्यमान है। तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' के सप्तम् एवं अंतिम काण्ड 'उत्तर काण्ड' में जिस 'रामराज्य' का वर्णन किया गया है उसमें सुशासन के सभी तत्व स्पष्ट परिलक्षित होते हैं –

''दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

अर्थात् रामराज्य में किसी को भी शारीरिक, मानसिक और भौतिक किसी प्रकार

का कष्ट नहीं था, सब एक-दूसरे से प्रेम सहित रहते हुए अपने-अपने धर्म के अनुसार नीति और मर्यादाओं का पालन करते थे। वर्तमान सुशासन हेतु यह मूलमंत्र हो सकता है। सुशासन हेतु इन्हीं तत्वों को अनिवार्य बताया गया है।

वर्तमान समय में सुशासन के कुछ सर्वमान्य निर्धारक तत्व हैं यथा– जनसहभागिता, विधि का शासन, जवाबदेही, पारदर्शिता, अनुक्रियाशीलता, प्रभावी एवं कार्यकुशल, न्यायसंगत, समावेशी एवं आम सहमति।

1. **tulgHkkfxrk&** निर्णय-निर्माण और विकास कार्यों में जनता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष व्यापक भागीदारी सुशासन की आधारशिला है। न्यायसंगत मांगे व्यापक जनसहभागिता की स्थिति में ही की जा सकती है। इससे समाज की आधारभूत मान्यताओं को सहमति मिलती है और सामाजिक एवं राजनीतिक समरसता को बढ़ावा मिलता हैं। जनसहभागिता को बढ़ावा देने के लिए एक तरफ सूचनाओं और संगठन की आवश्यकता होती है तो दूसरी तरफ अभिव्यक्ति तथा संगठन बनाने की स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। इसके लिए एक सुसंगठित नागरिक समाज आवश्यक शर्त है।

2. **fof/k dk 'kklu %&**सुशासन सदैव विधि के दायरे में रहकर ही कार्य करता है। विधि के समक्ष सभी लोग समान है और सभी को विधि का समान संरक्षण उपलब्ध है। अर्थात् 'सबके लिए विधि एक जैसी है।' जिससे शासन में स्पष्ट एवं स्वच्छ विधिक प्रारूप प्राप्त होता है और उनका बेहतर क्रियान्वयन सम्भव होता है। विधि का निष्पक्ष एवं तटस्थ लागू होना स्वतंत्र न्यायपालिका की मौजूदगी में ही सम्भव है। विधि का शासन तीव्र एवं बेहतर विकास का सूचक है जो स्वतंत्र न्यायपालिका के साथ-साथ दक्ष, निष्पक्ष एवं भ्रष्टाचाररहित पुलिस बल की गतिशीलता पर भी निर्भर करता है।

3. **tokcngh %&**प्रशासन का जनोन्मुख होना सुशासन की आवश्यक शर्त है। सरकारी संस्थाओं के लिए ही नही अपितु निजी क्षेत्रों तथा लोक समाज के संगठनों के लिए भी जनता के प्रति जवाबदेह होना अत्यंत आवश्यक होता है। इस हेतु यह आवश्यक है कि न सिर्फ उनके कार्यों की स्पष्ट परिभाषा हो अपितु कार्यों के क्रियान्वयन के समय मानवोचित दृष्टिकोण भी हो। विशेषतः सार्वजनिक निधि के आवंटन, उपयोग एवं नियंत्रण के क्षेत्र में ऐसा अवश्य होना चाहिए।

4. **ikjnf'kZrk %&** सुशासन हेतु पारदर्शिता एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में विद्यमान है। लोकतंत्र में शासन और जनता के मध्य पारदर्शिता अत्यन्त आवश्यक है। नियमों एवं विनियमों का पालन करते हुए निर्णय लेना व लागू करना संगठन की पारदर्शिता को बढ़ाता है। अर्थात् सरकार के कार्यों के बारे में जनता को सुस्पष्ट एवं सुगम सूचना की उपलब्धता सरकार द्वारा न केवल प्रदान करना अपितु उन्हें यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि अधिक से अधिक नागरिकों को सूचनाएँ उपलब्ध हों।

इससे जनसमुदाय प्रशासन के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण का तार्किक निर्धारण करने में सफल होता है। इस दृष्टि से भारतीय संसद द्वारा 2005 में पारित 'सूचना का अधिकार अधिनियम' महत्वपूर्ण है।''

5. **lrr fØ;k'khyrk %&** शासन सदैव क्रियाशील होना चाहिए अर्थात् इसका क्रियान्वयन इस प्रकार से हो कि जनमानस को वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की अधिकतम् सम्भावना विद्यमान हो। सुशासन के लिए यह नितांत आवश्यक है कि प्रशासन तंत्र द्वारा उपयुक्त समयान्तर्गत पूरी सचेतनता व भेद-भाव रहित नागरिक सेवाएँ उपलब्ध कराई जाये। इसके अभाव में सुशासन की कल्पना कोरी कल्पना सिद्ध होगी।

6. **izHkkoh ,oa dk;dq'kyrk %&** सुशासन का प्रभावी एवं कार्यकुशल होना सुशासन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शासन का निर्णय परिणामपरक होना चाहिए एवं इसकी कार्य कुशलता तेज और समयबद्ध होनी चाहिए। यही सुशासन की कसौटी है।

7. **U;k;lxr ,oa lekos'kh %&** शासन का न्यायसंगत और समावेशी होना परमावश्यक है। समाज के प्रत्येक नागरिक को यह महसूस होना चाहिए कि शासन के क्रियाकलाप न्यायोचित है। जन कल्याण इस तथ्य पर आधारित होता है कि उपलब्ध संसाधनों का स्वच्छ एवं निष्पक्ष वितरण सुनिश्चित हो। सुशासन हेतु यह नितांत आवश्यक है कि समाज का हर वर्ग विशेषतः आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लोग, महिलायें, बच्चे, वरिष्ठ नागरिक, दिव्यांग जन, अल्पसंख्यक एवं साधनहीन जन समूह यह अनुभव करे कि शासन की मुख्य धारा से जुड़े है तथा उन्हें सर्वांगीण विकास के पर्याप्त अवसर प्राप्त हैं।

8. **vke lgefr %&** सुशासन यह सुनिश्चित करता है कि सामान्य महत्व के सामाजिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर समाज में क्रमशः आम सहमति विकसित होनी चाहिए। प्रथम चरण में सरकार गैर सरकारी संगठनों और जनमानस के बीच सीधा संवाद होना चाहिए, दूसरे चरण में विभिन्न स्तरों पर विचारों का मंथन होना चाहिए, तीसरे चरण में आम सहमति विकसित होनी चाहिए और अन्तिम चरण में सर्वमान्य सहमति को क्रिया रूप में परिणत किया जाना चाहिए। इसके अभाव में सुशासन का लक्ष्य से भटकाव हो जायेगा।

विकास के लिए देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों का कुशल प्रबंधन सुशासन का हेतु है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी दक्षता के युग में जनहित में नीति निर्माण एवं तत्सम्बन्धी क्रियान्वयन की संरचना एवं उसमें जन भागीदारी से ही संतुलित एवं सतत् विकास (जिसके लिए पर्यावरण संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना अनिवार्य है।) का अभिष्ट प्राप्त किया जा सकता है। सुशासन समाज के

बुनियादी मूल्यों की पहचान है और इसके पालन करने से सम्बन्धित है। स्पष्ट है कि विधि के शासन से परिपूर्ण ऐसी सक्षम, संवेदनशील और प्रभावशाली प्रशासन व्यवस्था जिसमें सरकार अपने कार्यों एवं नागरिकों के प्रति उत्तरदायी हो, जिसमें नागरिकों की सहभागिता हो, सभी नागरिकों के साथ समता का व्यवहार हो तथा समावेशी विकास पर ध्यान दिया जाता हो, वही शासन वस्तुतः सुशासन की श्रेणी में आता है। शासन की सार्थकता जन सामान्य के सर्वांगीण अभ्युदय में है और उस व्यवस्था में है जहां संवाद, सहयोग, और समन्वय की आदर्श स्थिति हो।

संदर्भ

1. कौटिल्यीय अर्थशास्त्र अधिकरण–1, पृ.–16
2. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–2, पृ.– 604
3. वर्थवाल, सी.पी. ''गुड गवर्नेस इन इण्डिया, ''दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 2003–पृ.–53–56
4. एस.पुरी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग हाऊस, जालंधर, 2003, पृ.–50, 89,90
5. अवस्थी एवं महेश्वरीः भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, जयपुर, 2012, पृष्ठ–353
6. R.C. Shekhar, Ethics, The Other name of good Governance, Published in IJPA, 1998, P.355.
7. R.C. Shekhar, Ethics, The Other name of good Governance, Published in IJPA, 1998, P.355.
8. Dey. B.K. Defining Good Governance, Article Published in IJPA, 1998, P. 412.
9. वर्थवाल, सी.पी., ''गुड गवर्नेन्स इन इण्डिया'',दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, राजौरी गार्डेन, नई दिल्ली, 2003, पृ.–56
10. अवस्थी एवं अवस्थी : भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण पब्लिकेशन, आगरा, 2016, पृ.–355

सुशासन की अवधारणा, चुनौतियाँ और निर्धारक तत्त्व

गाँधीजी राय एवं शीला कुमारी

प्रारंभिक मानव जाति के इतिहास से लेकर आज तक के कई समाज सेवक और राजनीतिक विद्वानों के सामने यह विचारणीय विषय रहा है कि राज्य की शासन-प्रणाली कैसी हो और राज्य के नागरिकों को आदर्शपूर्ण स्थितियाँ कैसे प्रदान की जाएँ? समाज सेवकों एवं राजनीतिक वैज्ञानिकों के ऐसे प्रश्नों की खोज में ही 'सुशासन' की अवधारणा का विकास हुआ है। यदि राज्य की शासन-प्रणाली में शासक उच्च एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण, चरित्रवान, योग्य एवं ज्ञानी होंगे तो राज्य में स्वतः सुशासन की स्थापना हो जाएगी।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सुशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि काफी प्राचीन एवं उत्प्रेरक रही है। अनेक सामाजिक चिंतकों, राजनीतिक दार्शनिकों तथा सुधारकों ने अपने-अपने समय में सुशासन की स्थापना के लिए संघर्ष करते हुए काफी प्रयास किये। प्राचीनकाल के ऐसे प्रमुख चिंतकों द्वारा सुशासन की स्थापना के लिए किये गए प्रयासों का विश्लेषण करना यहाँ प्रासंगिक होगा। ये महान विचारक यूनान के सुकरात (जन्म 470 ई. पू.), प्लेटो (जन्म 427 ई. पू.), अरस्तू (जन्म 384 ई. पू.) और भारतवर्ष के कौटिल्य (जन्म लगभग 400 ई. पू.) थे। इन्होंने अपने-अपने समयों में सुशासन की स्थापना संबंधी निम्नलिखित बहुमूल्य सुझाव देकर 'सुशासन' शब्द को प्रासंगिक बना दिया है।

lqdjkr& राजनीतिक दर्शन के इतिहास में सुकरात एक अद्‌भुत और अनुपम चरित्र के दार्शनिक थे। उन्होंने कहा था कि शासन एक कला है जिसके संचालन के लिए एक विशिष्ट योग्यता एवं निःस्वार्थ सेवा की आवश्यकता होती है। एक पूर्ण, शिक्षित, ज्ञानी, गुणी और निपुण व्यक्ति ही शासन-यंत्र का सफल संचालन कर

सकता है।[1] सुकरात के सिद्धांत का मुख्य सार यह है कि 'गुण ही ज्ञान है' (virtue is knowledge) और 'अच्छाई का अर्थ विवेक है' (good means intelligence)। सुकरात को 70 वर्ष की आयु में मृत्युदंड (399 ई. पू.) इसलिए दिया गया कि उसने अपने लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए लोगों को शिक्षा प्रदान करनी चाही। सुकरात को विष पान द्वारा मरते हुए प्लेटो एवं अन्य शिष्यों ने देखा था।

lyVk& प्लेटो ने न्याय एवं लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष करते हुए अपने गुरू सुकरात को जहर का प्याला पीकर मरते देखा था। उसने अपने सभी सैद्धांतिक मान्यताओं को गुरू सुकरात से ग्रहण किया। अर्नेस्ट बार्कर का कहना है कि प्लेटो की *'रिपब्लिक'* सुकरात की मान्यताओं से आरंभ होती है[2] जिसमें प्लेटो ने एक आदर्श राज्य के निर्माण करने की बात कही थी। उसकी मान्यता थी कि एक राज्य तभी आदर्श रूप प्राप्त कर सकता है जब उसका शासन योग्य, कुशल, ज्ञानी एवं स्वार्थहीन दार्शनिक शासकों के हाथों में हो। नगर-राज्यों को विनाश से बचाने एवं मानवता के कल्याण के लिए प्लेटो ने दार्शनिक राजा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने लिखा है, ''जब तक दार्शनिक राजा नहीं होंगे या इस संसार के राजा एवं राजकुमार दर्शन की भावना और शक्ति से अनुप्राणित नहीं होंगे, तब तक नगर-राज्यों को अपनी बुराइयों से त्राण नहीं मिलेगा''।[3] उसने सुशासन की बागडोर विवेकी, विशेषज्ञ और प्रशिक्षित शासकों के हाथों में सौंपने की एक दार्शनिक परिकल्पना की थी। उसका दार्शनिक समस्त गुणों का आगार, सत्य का अन्वेषक, ज्ञान का प्रेमी, शांति का पुजारी, न्यायी, निःस्वार्थ, साहसी और संयमी होता है। वह प्रकृति के श्रेष्ठतम गुणों से युक्त होता है और उनका वह उत्तम ढंग से प्रयोग करता है।[4]

vjLrw– अरस्तू ने अपनी पुस्तक *'पॉलिटिक्स'* में सुशासन की दृष्टि से ही राज्य के कार्यों को सकारात्मक कहा है और बताया है कि राज्य सभी समुदायों में सबसे श्रेष्ठ समुदाय है जिसमें सभी के हित सन्निहित होते हैं। इस दृष्टि से राज्य का उद्देश्य सर्वोच्च हित को पूरा कर सर्वोत्तम जीवन का विकास करना है।[5] उन्होंने लिखा है कि राज्य की उत्पति जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है, लेकिन श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिए राज्य निरंतर अस्तित्व में रहता है।[6] इस प्रकार, राज्य का अस्तित्व सिर्फ जीवन व्यतीत करने के लिए नहीं, बल्कि श्रेष्ठ जीवन के लिए है। यही श्रेष्ठ जीवन अरस्तू का सुशासन है जिसका तात्पर्य मुख्य रूप से भौतिक और नैतिक विकास से है। उसका राज्य तो नैतिक जीवन की प्राप्ति के लिए एक आध्यात्मिक समुदाय है जिसका उद्देश्य नागरिकों को चरित्रवान और सद्गुणी बनाकर उनमें अंतर्निहित श्रेष्ठ गुणों का विकास करना है। श्रेष्ठ गुणों से विकसित नागरिक सुशासन की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

dkfVY;& कौटिल्य ने अपने ग्रंथ *'अर्थशास्त्र'* में एक राजा के लिए जो मानदंड

निर्धारित किया है, उससे सुशासन की नींव पड़ती है। कौटिल्य के राजा का उद्देश्य सिर्फ आर्थिक प्रगति करना ही नहीं, वरन् मानव जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक आदि सभी पहलूओं का समुचित विकास भी करना है। कौटिल्य का राजा विद्वानों और ब्राह्मणों का उचित सत्कार, वृद्धों, अपंगों, असहाय स्त्रियों, अनाथों एवं रोगियों का पालन-पोषण, दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों की सहायता एवं अन्य परोपकारी कार्यों का संपादन करता है। राज्य का कार्य सिर्फ नागरिकों की सुरक्षा करना एवं उनका पालन करना ही नहीं, अपितु योगक्षेम की व्यवस्था भी करना है। 'योग' का अर्थ यदि वस्तुओं की सफलतापूर्वक उपलब्धि है तो 'क्षेम' का अर्थ उन उपलब्ध वस्तुओं का भोग करना है।[7] वस्तुतः योगक्षेम में लोककल्याणकारी राज्य के भाव निहित हैं जिनके द्वारा राज्य अपने नागरिकों के सुख एवं आनंद के लिए प्रयास करता है। *अर्थशास्त्र* में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ''प्रजा के सुखी होने पर ही राजा सुखी हो सकता है और प्रजा का कल्याण होने पर ही राजा का कल्याण संभव है। जो राजा को प्रिय हो, वह राजा का हित नहीं है। प्रजा को जो प्रिय हो, वही राजा का हित होता है''।[8] इस प्रकार, कौटिल्य के राज्य का उद्देश्य शासकों के स्वार्थों की पूर्ति करना नहीं, अपितु प्रजाजनों का कल्याण करना है। प्रजा के कल्याण के विचार 'अर्थशास्त्र' में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उदाहरणस्वरूप, एक जगह कहा गया है कि वस्तुओं के क्रय-विक्रय में राजा को प्रजा के लाभ का सदा ध्यान रखना चाहिए। यदि राजा को बहुत लाभ हो, किंतु प्रजा को कष्ट पहुँचे तो राजा को अपना बहुत बड़ा लाभ भी त्याग देना चाहिए।[9] पुनः, कौटिल्य के अनुसार राजा और प्रजा का संबंध पिता और पुत्र के संबंध के समान घनिष्ठ होना चाहिए एवं किसी भी आकस्मिक विपत्ति या भय उपस्थित होने पर राजा को पिता के समान प्रजाजनों की रक्षा करनी चाहिए।[10]

इस प्रकार कौटिल्य के राज्य का उद्देश्य पुलिस-राज्य की तरह न तो सिर्फ शांति और व्यवस्था बनाए रखना है और न करों की वसूली करना है। वस्तुतः उसका राज्य एक लोककल्याणकारी राज्य है जो जनजीवन के सभी क्षेत्रों में अपने दायित्वों को निभाते हुए एवं सदा तत्पर रहते हुए सुशासन की स्थापना करता है। कौटिल्य का राजा स्वामी होते हुए भी जनता का सच्चा सेवक है। सही अर्थ में वह राज्य कोष का मात्र न्यासधारी (ट्रस्टी) होता है। वह अपनी शक्तियों का प्रयोग सत्य, न्याय और धर्म के अनुकूल करता है। अपनी पुस्तक *अर्थशास्त्र* में सुशासन के लिए कौटिल्य ने अग्रलिखित दस सूचकों[11] का उल्लेख किया है– 1. प्रजापालन में व्यक्तित्त्व का विलय 2. उचित निर्देशित प्रशासन 3. लक्ष्य की अपेक्षा किये बिना अतिशय से बचना 4. राजा और मंत्रियों का अनुशासित जीवन 5. राजा और नागरिक सेवकों का निश्चित वेतन 6. कानून व्यवस्था राज्य का मुख्य कर्तव्य 7. लेखापाल तथा लेखकों को विशेष सम्मान 8. भ्रष्ट अधिकारियों के विरूद्ध दंड की व्यवस्था 9. सचिवों और अधिकारियों की नियुक्ति तथा 10. प्रशासन में योग्यता का महत्त्व।

सुशासन की अवधारणा का विकास

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद का अंत हुआ और एशिया, अफ्रीका व लातीनी अमेरिका के राज्य उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त होकर स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आए। इन नवीन राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए 1950 में राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में एक नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। इस नवीन सिद्धांत का उद्देश्य विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आधुनिक राजनीतिक मूल्यों जैसे– लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता और न्याय की स्थापना करना था। 1960 में राजनीतिक विकास के रूप में नवीन अवधारणा का प्रतिपादन किया गया जिसका मुख्य उद्येश्य राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता को बढ़ाना तथा शासन प्रक्रियाओं में जन भागीदारी को सुदृढ़ करना था। वैश्वीकरण तथा नवीन उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यांकन के लिए सुशासन की अवधारणा का प्रतिपादन 1992 में विश्व बैंक ने किया और यह स्पष्ट किया कि सुशासन का मुख्य उद्देश्य ऐसी धारणा का प्रतिपादन करना था, जो सरकार के कार्यों का मूल्यांकन निष्पादन के आधार पर कर सके। विश्व बैंक के अनुसार सुशासन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई भी सरकार सामाजिक व आर्थिक संसाधनों के लिए शक्ति का प्रयोग करती है, अर्थात सुशासन के अंतर्गत यह देखा जाता है कि किसी राजनीतिक सत्ता के द्वारा किस प्रकार निर्णय लिए जाते हैं और उसका क्रियान्वयन कहाँ तक प्रभावी है।

सुशासन का अर्थ एवं विशेषताएँ

शासन आदिम युग की कबीलाई संस्कृति से लेकर आज तक के आधुनिक मानव सभ्यता के विकासक्रम में अलग-अलग विशिष्ट रूपों में प्रणाली के तौर पर विकसित और स्थापित होता आया है। इस विकास क्रम में परंपराओं से अर्जित ज्ञान और लोक कल्याण की भावनाओं की अवधारणा प्रबल प्रेरक की भूमिका में रही है। 'शासन' शब्द में 'सु' उपसर्ग लग जाने से 'सुशासन' शब्द बनता है। 'सु' उपसर्ग का अर्थ शुभ, अच्छा, मंगलकारी आदि भावों को व्यक्त करने वाला होता है। राजनीतिक और सामाजिक जीवन की भाषा में सुशासन की तरह लगने वाले कुछ और बहुप्रचलित घिसे-पिटे शब्द हैं जैसे– प्रशासन, स्वशासन एवं अनुशासन आदि। इन सभी शब्दों का संबंध शासन से है। इस प्रकार, सुशासन का अर्थ उसके शाब्दिक स्वरूप से ही स्पष्ट हो जाता है, अर्थात ऐसा शासन स्थापित हो जिसमें शासक और शासित के मध्य पारदर्शिता के साथ-साथ जबाबदेही भी दिखाई पड़े।

शासन और प्रशासन की शब्दावली में 'सुशासन' शब्द अपेक्षाकृत हालिया शब्द है। आधुनिक लोक प्रशासन की शब्दावली में यह शब्द 1990 दशक से प्रविष्ट हुआ

है। विश्व बैंक के एक दस्तावेज में 'सुशासन' शब्द का प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में किया गया है जिसमें शासन-शक्ति का प्रयोग राष्ट्र के विकास के लिए तथा राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक संसाधनों का प्रबंध करने के लिए किया जाता है। *इन्द्रजीत कौर* का मत है कि विकासशील देशों में एक साहूकार के रूप में प्राप्त अनुभवों के आधार पर विश्व बैंक एक निष्कर्ष पर पहुँचा कि सुशासन एक ऐसे पर्यावरण के निर्माण के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जो सशक्त और समान विकास को उत्प्रेरित करता है। यह सबल आर्थिक नीतियों का पूरक है[12] और इसकी संकल्पना विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के संदर्भ में बनाई गई है। उन्होंने लिखा है, ''सुशासन, प्रदान की जाने वाली सेवाओं की दर, विकास के स्तर और जन-संतुष्टि की दर को प्रतिबिंबित करता है। इन संकेतों की उच्चतम दर ही प्रशासन की सफलता का द्योतक है।''[13]

शासन शासित करने की कला है जिसका संबंध परिचालन (steering) लिए किए गए निर्णयों से है। परिचालन की कला अपने–आप में एक ऐसा कौशल है जो सही दिशाओं में संचालित होता है। सही दिशा ही सुशासन के लिए प्रयास है। अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से सुशासन को परिभाषित किया है। *वी. ए. पाई पनान्दीकर* ने 'सुशासन' का आशय उस राष्ट्र से माना है जहाँ जनता को शांतिपूर्ण, व्यवस्थित, समृद्ध, उचित, सहभागितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए निर्देशित किया जाता है।[14] *रेने डिस्कोर्टेस* की दृष्टि में 'सुशासित राज्य वह है, जिसमें नियम भले ही कम हों, लेकिन उस पर अमल कठोरता से किया जाता हो।[15] जहाँ *मिनोचा* की दृष्टि में 'सुशासन में राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता की उपलब्धि, सूचना में पारदर्शिता तथा सरकार एवं समाज में सहयोग होता है,'[16] वहाँ विवेक चोपड़ा के अनुसार 'सुशासन समाज के बुनियादी मूल्यों की पहचान और इसके पालन करने से संबंधित है।'[17]

सुशासन की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर प्रो. एस. आर. माहेश्वरी का मत है कि सुशासन की परिभाषा कभी लक्ष्य के रूप में, कभी साधन के रूप में और कभी लोकतांत्रिक निर्धारित उद्देश्य के रूप में की जाती है। उनका मानना है कि भ्रष्टाचार सुशासन का सबसे बड़ा दुश्मन है और यह निजी लाभों के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग दर्शाता है। यह आर्थिक या प्रतिष्ठा संबंधी लाभों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भूमिका अर्थात सुशासन के प्रति औपचारिक कर्तव्यों से विचलन है।[18] यह स्मरणीय है कि समय के साथ सुशासन का अर्थ एवं परिभाषा में विस्तार आया है। आज के वैश्वीकरण के युग में सुशासन की वैचारिक कठिनाई तब प्रारंभ होती है जब विश्व के समृद्धशाली देश और अन्य इकाइयों द्वारा विकासशील देशों के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता के लिए पहले से शर्तें निर्धारित कर दी जाती हैं।

तीन अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के सुशासन संबंधी नजरिए

1- fo'o cSad& 1994 में विश्व बैंक ने 'सुशासन' पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है, ''सुशासन का अभिप्राय है, भविष्यवाणी योग्य, खुला और प्रबुद्ध नीति-निर्माण, एक नौकरशाही जो व्यावसायिक गुणों से लबरेज़ है, एक कार्यपालिका जो अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी है, एक मजबूत नागरिक समाज जो जन-कार्यों में भाग लेता है। खास बात यह है कि ये सभी विधि के शासन में अपना कार्य करते हैं।''

2. la;qDr jk"Vª fodkl dk;ZØe& इस अंतरराष्ट्रीय संस्था में सुशासन का कतिपय वृहत अर्थ लेते हुए इसके अंतर्गत इसमें उन प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है जिनके माध्यम से जनमानस और समूह अपने हितों का संधियोजन करते हैं, वैधानिक अधिकारों का उपभोग करते हैं, वैधानिक उत्तरदायित्व की पूर्ति करते हैं और अपने भिन्न दृष्टिकोण में सामंजस्य स्थापित करते हैं।[19]

3. ,f'k;k vkj i'kkar {ks= dh fy, vkfFkd ,oa lkekftd ifj"kn& इस अंतरराष्ट्रीय संस्था ने शासन को उसी स्थिति में सुशासन माना है यदि भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए ठोस कदम उठाए गए हों, यदि समाज के अल्पसंख्यक वर्ग और समाज के निचले तबके की बात निर्णय-निर्माण में सुना जाना सुनिश्चित हो और यह समाज की वर्तमान और भावी समाज की आवश्यकताओं के प्रति अनुक्रियाशील हो।

सुशासन संबंधी उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सुशासन एक जीवंत अवधारणा है। यह (सुशासन) सहभागी, पारदर्शी और दायित्वपूर्ण, प्रभावशाली और समतामूलक होता है। यह विधि के शासन को बढ़ावा देता है और सुनिश्चित करता है कि राजनीति, सामाजिक और आर्थिक प्राथमिकताएँ समाज की वृहद सहमति पर आधारित हों और समाज के कमजोर तबके की बात निर्णय-निर्माण और विकास संसाधनों के आवंटन में सुनी जाए।[20] मोहित भट्टाचार्या ने सुशासन पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, ''नागरिकों को सुशासन की माँग करने का अधिकार है। साक्षरता, शिक्षा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि से उनकी इस माँग में वृद्धि हुई है। सरकार को जनता की इस माँग के प्रति अनुक्रियाशील होना चाहिए''।[21]

विशेषताएँ

एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ESCAP) में जहाँ सुशासन की *आठ* विशेषताओं– 1. सहभागीपरक 2. आम सहमति पर आधारित 3. उत्तरदायी 4. पारदर्शी 5. अनुक्रियात्मक 6. प्रभावशाली और कार्यकुशल 7. समतामूलक तथा 8. विधि के शासन का उल्लेख किया गया है, वहाँ *विश्व बैंक* ने

सुशासन के छः संकेतों– 1. उत्तरदायित्व 2. राजनीतिक स्थिरता 3. प्रभावशीलता 4. नियामक 5. विधि का शासन तथा 6. भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की चर्चा की है। *संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम* (UNDP) में सुशासन के लिए 1.सहभागिता 2. विधि का शासन 3. पारदर्शिता 4. अनुक्रियाशीलता 5. आम सहमति 6. न्यायसंगत 7. प्रभावशीलता 8. जवाबदेही तथा 9. सामरिक दृष्टि जैसी विशेषताओं का जिक्र किया गया है।[22] अनिल विश्वास ने भी अपने आलेख[23] में सुशासन के लिए सहभागिता, आम सहमति, पारदर्शिता, अनुक्रियाशीलता, कार्यकुशलता, विधि के शासन तथा न्यायसंगत एवं समावेशी संबंधी तत्त्वों का उल्लेख किया है। सुशासन संबंधी उपर्युक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि सही अर्थ में सुशासन का वातावरण सरकार के सभी अंगों से उत्पन्न होना चाहिए। यदि सरकार के सभी अंग शासन के प्रति जवाबदेह और जागरूक हैं और ऊपर से नीचे तक शासन में लगे लोगों के मन में सेवा की भावना प्रेरित है तो वहाँ सुशासन की स्थापना हो सकती है। सुशासन से संबंधित तथ्यों से स्पष्ट है कि सुशासन आज के समय की माँग है। यह संक्रामक रोगों की तरह बढ़ते भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक ऐसी पहल है जो राजनेताओं और नौकरशाहों को परिणामोन्मुखी संगठन में बदलने का संकल्प लेता है। मानव संसाधनों का प्रबंध में सुधार, कार्य नियंत्रण एवं जवाबदेही सुनिश्चित करना, प्रक्रियाओं के स्थान पर परिणामों पर बल देना, नीति से हटकर प्रबंध को अपनाना तथा सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता आदि इसके प्रमुख स्तंभ हैं।

यह बताया जा चुका है कि सुशासन की अवधारणा को व्यवस्थित व प्रभावी रूप से लाने का श्रेय विश्व बैंक का है जिसने 1989 में अपने सब सहारा अफ्रीकी राज्यों से संबंधित दस्तावेजों में 'सुशासन' का उल्लेख 'ठोस विकास प्रबंध' के परिपेक्ष्य में किया। उस समय सुशासन के लिए प्रमुख चार बिंदुओं को रेखांकित किया गया– 1. सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबंध, 2. जवाबदेही, 3. विकास के लिए वैधानिक ढाँचा और 4. पारदर्शिता एवं सूचना।[24] *विश्व बैंक रिपोर्ट*, 1992 ने सुशासन की नई अवधारणा का प्रतिपादन किया,[25] जिसके संबंध में विश्व के प्रायः सभी देशों में आज विचार मंथन किया जाने लगा है। आज विश्व के प्रायः सभी विकसित तथा विकासशील राज्यों के मध्य सुशासन की अवधारणा काफी लोकप्रिय हो रही है। सुशासन का मुद्दा लोक प्रशासन के विद्वानों के विचार-विमर्श का प्रमुख विषय बन गया है। अतः प्रश्न है कि सुशासन का क्या मापदंड होना चाहिए? डेविड ओसबोर्न और टेड गैबलर ने सुशासन को उद्यमी सरकार का पर्यायवाची मानते हुए ऐसे शासन की कल्पना की जिसमें अग्रलिखित लक्षण पाए जाते हैं[26]– 1.उत्प्रेरक सरकार 2. समुदाय आधारित सरकार 3. प्रतिस्पर्धा सरकार 4. ग्राहकोन्मुखी सरकार 5. परिणामोन्मुखी सरकार 6. उद्यमी सरकार 7. पूर्वानुमान लगाने वाली सरकार 8. विकेंद्रित सरकार एवं 9. बाजारोन्मुखी सरकार।

सुशासन के निर्धारक तत्त्व

भारत में सुशासन के आधार को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक तत्त्व निम्नलिखित हैं :–

1. ikjnf'kZrk& नियमों एवं विनियमों का पालन करते हुए निर्णय लेना और उसे लागू करना संगठन की पारदर्शिता को बढ़ाता है। पारदर्शिता का अर्थ है सरकार के कार्य-कलापों के संबंध में आम जनता को जानकारी की सुस्पष्टता एवं उपलब्धता। इससे जनसमुदाय प्रशासन के संबंध में अपने दृष्टिकोणों का तार्किक निर्धारण करने में सफल होता है।

2. Hkkxhnkjh& भागीदारी या प्रतिभागिता किसी भी कार्यरत् नागरिक समाज का एक अत्यावश्यक तत्त्व है। सार्वजनिक क्षेत्र में मीडिया की स्वतंत्रता को सशक्त करने वाले विधान को लागू करके, एक स्वतंत्र निर्वाचन प्रबंधन संस्था की स्थापना करके तथा सरकारी योजनाओं और बजट-निर्माण की निर्णय प्रक्रिया में लोगों के सुझावों को प्रोत्साहन देकर जन-भागीदारी का विकास किया जा सकता है।

3. vuqfØ;k'khyrk& सुशासन के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी मशीनरी या तंत्र द्वारा उपयुक्त समय के अंदर पूरी सचेतनता एवं बिना विभेद के नागरिकों को सेवा उपलब्ध कराई जाए। प्रशासनिक अनुक्रियाशीलता के अभाव में सुशासन की कल्पना नहीं की जा सकती।

4. nkf;Ro'khyrk& दायित्वशीलता सार्वजनिक क्षेत्र के कामकाज के मूल्यांकन के लिए संस्थापित माप-दंडों पर आधारित है। लोक अभिकरणों की दायित्वशीलता की संरचनाओं से आम लोगों को परिचित कराया जाना चाहिए।

5. izHkko'khyrk& सुशासन के लिए आवश्यक है कि योजनाओं का कार्यान्वयन लागत प्रभावी हो। साथ-ही-साथ ऊर्जा संरक्षण एवं पर्यावरणीय संवेदनशीलता भी प्रशासनिक गतिविधियों में दिखाई देनी चाहिए। सक्षमता की अवधारणा के प्रति व्यापक पैमाने की निगाह इस बात पर जमी रहती है कि सरकार किस हद तक उत्पाद और वितरण की आर्थिक रूप से सक्षम प्रणाली को बढ़ावा देकर अनिश्चितता को कम कर रही है।

6. lerk ,oa leko'ks'ku& समाज का कल्याण इस बात पर निर्भर करता है कि संसाधनों एवं उत्तरदायित्वों का स्वच्छ एवं निष्पक्ष वितरण किस मात्रा में हुआ है। सुशासन के लिए आवश्यक है कि समाज के हर तबके के लोग, महिलाएँ, बच्चें, वरिष्ठ नागरिक एवं शारीरिक विकलांग लोग प्रशासनिक निर्णयों एवं गतिविधियों में पर्याप्त स्थान प्राप्त करें तथा उन्हें अपने विकास का पर्याप्त अवसर मिले।

7. tokcnsgrk& जवाबदेयता या मानवोन्मुखता सुशासन के लिए आवश्यक है। सरकारी संस्थाओं के साथ निजी क्षेत्रों तथा लोक समाज के संगठनों के लिए भी

जनता के प्रति जवाबदेह होना आवश्यक होता है। उनके लिए यह आवश्यक है कि न सिर्फ उनके कार्यों की स्पष्ट परिभाषा हो, वरन् कार्यों के क्रियान्वयन के समय मानवोचित दृष्टिकोण भी हो।

8- erD;rk& सुशासन विचारों की सार्वभौमिकता एवं सर्वांगीणता का समर्थक होता है। किसी भी समाज में मतों के समर्थक अलग-अलग पद्धतियों का सहारा लेकर प्रशासनिक निर्णय-निर्माण को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह समेकित दृष्टिकोण अपनाकर चक्रीय व्यवहार की अवधारणा का सहारा लेकर समस्या सामाधान के प्रयास में मतैक्य विकसित करने की कोशिश करे।

9- fof/k dk 'kklu& सुशासन में स्पष्ट एवं स्वच्छ विधिक प्रारूप होते हैं और उनका बेहतर क्रियान्वयन भी होता है। विधि का निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से लागू होना स्वतंत्र न्यायपालिका की मौजूदगी में संभव है। यह बेहतर विकास का सूचक है जो स्वतंत्र न्यायपालिका के साथ-साथ दक्ष, निष्पक्ष एवं भ्रष्टाचार रहित पुलिस बल की गतिशीलता पर भी निर्भर करता है।

10- o/kkrk& वैधता एवं प्रतिभागिता में गहरा संबंध है। बेहतर प्रतिभागिता मीडिया की स्वतंत्रता और बहुलता को सशक्त करने वाले विधानों के कार्यान्वयन के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। इसे सरकारी योजनाओं एवं बजट संबंधी निर्णय-प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपकरणों के माध्यम से लोगों के सुझाव प्राप्त करके प्राप्त किया जा सकता है।

ukxfjd lyXurk& नागरिक संलग्नता को नागरिकों के सार्वजनिक जीवन में सक्रिय सहभागिता एवं साझा हित के लिए उनका योगदान समझा जाता है। सरकार एवं लोक संगठनों में विश्वास का स्तर एक मुख्य कारक है जो नागरिक संलग्नता की मात्रा एवं गुणवता को निर्धारित करता है।

lpuk dh ikjnf'kZrk ,oa jgL;kn?kkVu& सूचना सुशासन के लिए बेहद जरूरी है क्योंकि यह सरकार की गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं को प्रतिबिंबित एवं नियंत्रित करती है। सरकार द्वारा नागरिकों को मुहैया कराई जाने वाली सूचना का मुख्य उद्देश्य खुलेपन, पारदर्शिता एवं जवाबदेही को प्रशासन में प्रोत्साहित करना है।

flfVtu pkVj& लोकतंत्र में सभी शक्तियाँ लोगों से संबद्ध हैं। चूँकि लोग सरकार का चुनाव करते हैं, इसलिए सरकार को लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। इस संदर्भ में *नागरिक घोषणा-पत्र* (citizen charter) का निर्माण, कार्यान्वयन, निगरानी एवं मूल्यांकन नितांत रूप से अपरिहार्य है।

ykd f'kdk;r fuiVku& सुशासन की स्थापना के लिए प्रत्येक मंत्रालय/विभाग में लोक *शिकायत निपटान तंत्र* मजबूत किया जाना चाहिए और इसकी समय सीमा

शिकायत दर्ज करने और उनकी प्रगति की निगरानी करने के लिए एक ऑनलाइन कंप्यूटरीकृत लोक शिकायत निपटान एवं निगरानी तंत्र स्वतंत्र प्राधिकरण की देखरेख में स्वचालित किया जाना चाहिए।

Lor= ,o fu"i{k eh fM;k– सुशासन के संवर्द्धन में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष मीडिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह सरकार के कार्यों एवं योजनाओं से नागरिकों को अवगत कराकर सरकार तक उनकी सहज पहुँच को सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाता है।

i'oj lxBu& इन संगठनों की वैधता उनके द्वारा व्यवस्थित पेशेवर मानकों पर आधारित होती है। सुशासन के प्रोत्साहन और भ्रष्टाचार से लड़ने के संदर्भ में उनकी जिम्मेदारी उनके मानकों पर प्रचार-प्रसार करती है और उन सदस्यों पर प्रतिबंध लगाती है जो इनका उल्लंघन करते हैं। इसमें आचार संहिता या भ्रष्टाचार विरोधी प्रावधान शामिल होते हैं।

ukxfjdk dh o;fDrd ifrc)rk– वैयक्तिक प्रतिबद्धता भी सुशासन के लिए आवश्यक है। देश के नागरिक जानकारी प्राप्त करके अपने जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों में सक्रिय भागीदारी द्वारा ऐसा कर सकते हैं।

भारत में सुशासन की चुनौतियाँ

वर्तमान में वैज्ञानिक, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ तथा स्वयं नागरिक समाज इस संबंध में चिंतित है कि भारत में सुशासन की व्यवस्था किस प्रकार सुचारू रूप से चले। यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय गणतंत्र के करीब सात दशक बाद भी सुशासन की अवधारणा व्यवहार में नहीं है। अनेकता में एकता की पहचान लिए भारत में आज सुशासन को आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, सांप्रदायिकता तथा रूढ़िवादिता जैसी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सामाजिक दूरियों के साथ भारत में जातिगत और धार्मिक उन्माद भी बढ़ा है। 20वीं सदी के अंतिम दशकों में राजनैतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय एवं सांप्रदायिक दलों के उदय ने राजनैतिक वातावरण को बहुत दूषित किया है जिससे सुशासन को अपने अस्तित्त्व के लिए अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ के लोगों की धार्मिक पद्धतियाँ, शिक्षा का स्तर, स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का आकलन करके ही भारत को सुशासन की पदवी दी जा सकती है। भारतीय संविधान के कृषि, रोज़गार, वन-संपदा की देखभाल व चहुँमुखी संसाधन मानव विकास लक्षित नहीं हैं। यहाँ स्त्रियों का सम्मान, धार्मिक सहिष्णुता, मानव की गरिमा, जनता के रोजगार के अवसर, शिक्षा का अधिकार आदि विषयों पर मार्गदर्शी नीति-निर्देशों के अनुरूप कार्रवाई अपेक्षित है।

यदि हम भारत के *भौगोलिक स्वरूप* पर ध्यान दें तो इसमें काफी विविधताएँ पाई

हैं। 1990 से भारत सरकार की *आर्थिक स्थिति* अर्थात व्यापार, वाणिज्य और उद्योग गहरी परिर्वतनशीलता की स्थिति में है। आज संपन्नता लाने की दौड़ में प्राकृतिक साधनों के दोहन के लिए नीजी और शासकीय दोनों के लिए अनेक समझौते हो रहे हैं। *नक्सल समस्या* भी एक चुनौती है जिसने दक्षिण के दुरूह पहाड़ी इलाकों में विकास का रास्ता रोकते हुए सुशासन के लिए गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दी है। इसके अलावा, भारत में सुशासन की एक बड़ी समस्या यह भी है कि आम आदमी के पास *आय के साधन कम* हैं। यदि सभी लोग पूरी कार्य क्षमता से, नैतिक मूल्यों के आलोक में सुसंगत आचरण करें तो आम आदमी की आय बढ़ सकती है। इसके साथ ही, भारत की *आम गंदगी* भी सुशासन की एक बड़ी चुनौती है जिसके चलते आज अनेक गरीब लोग छुआछूत की बीमारियों से ग्रसित होकर अपने खून-पसीने की कमाई अपने इलाज में लगा रहे हैं। इलाज का खर्च बेतहाशा बढ़ा हुआ है। इस संबंध में सरकार काफी चिंतित है। इसके अलावा, *सिविल प्रशिक्षण संस्थानों* में ऐसे लोगों को पदस्त किया जाता है जिनका रिकॉर्ड सर्वोतम नहीं होता। भारत में सुशासन के लिए एक चुनौती के रूप में *युवाओं का रोजगार* भी जिम्मेदार है। यदि वे बेरोजगार होते हैं तो अपराधों में लिप्त होकर पैसा कमाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं।

यह बात सही है कि विधि के शासन, स्वतंत्र न्यायपालिका, सूचना का अधिकार तथा शिक्षा के अधिकार आदि क्षेत्रों में भारत में काफी प्रगति हुई है, लेकिन सामाजिक न्याय, राजनीति व प्रशासनिक जवाबदेयता तथा प्रशासन की प्रभावशीलता के क्षेत्र में ठोस कदम उठाकर ही सुशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। भारत जैसे बहुजातीय, बहुभाषी एवं बहुधार्मिक देश में आज एक *सामान्य राष्ट्रीय दृष्टिकोण* विकसित करने की आवश्यकता है। यहाँ की संसदीय प्रणाली में आई गिरावट के चलते बड़ी संख्या में सदस्यों का सदनों में अनुपस्थित होना, वादविवाद का उनका निम्न स्तर तथा सामान्य संसदीय प्रक्रिया की अवहेलना आम बात हो गई है।

राजनीति का अपराधीकरण भी भारत में सुशासन की स्थापना के मार्ग में एक बहुत बड़ा रोड़ा है। यह सभी प्रकार के भ्रष्टाचार की जननी है और यह निर्वाचन प्रक्रिया में प्रवेश कर चुका है। आपराधिक प्रवृत्ति के उम्मीदवारों का निर्वाचन इसकी संपुष्टि करता है। राजनीति एवं अपराध के बीच साँठ-गाँठ के चलते ही 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह ऐतिहासिक निर्णय दिया कि चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शैक्षिक योग्यता, अपने विरूद्ध दर्ज आपराधिक मामलों तथा वित्तीय स्थिति की घोषणा करनी होगी। सर्वोच्च न्यायालय की इस व्यवस्था के बावजूद राजनीति में अपराधियों का बढ़ता प्रवेश सुशासन की एक बहुत बड़ी चुनौती है।

सुशासन के लिए एक अन्य चुनौती की तरह भ्रष्टाचार अपने उग्र रूप में राज्य एवं समाज के हर क्षेत्र में फैला हुआ है। आम आदमी नियम, परिनियम और अधिनियम के

चक्कर में काफी समय गवाँ देता है। सुशासन की माँग है कि समाज और राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार से मुक्ति पाई जाए। भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों एंव राजनेताओं की पहचान करना शासन के दायित्व के साथ-साथ नागरिकों का भी यह कर्तव्य है कि वे न तो ऐसे राजनेताओं को मत दें और ऐसे अधिकारियों को बर्दाशत करें। इसी संदर्भ में एक बेहतर न्यायिक प्रणाली के बावजूद भारत में आम आदमी को न्याय पाने के लिए आज बहुत संघर्ष करना पड़ता है। एक कहावत है कि 'देर से न्याय पाना, न्याय नहीं पाने' (justice delayed is justice denied) के बराबर है।

प्रभावशाली संस्थाओं की कमी भी भारत में सुशासन का एक संकट है। सुशासन का पूरा बल राजनीतिक संस्थाओं की क्षमता, लोकतंत्र और सहभागिता पर है। *कुलदीप माथुर* ने लिखा है,''भारत के समक्ष मुख्य चुनौती राज्य-क्षमता निर्माण की है। राज्य-क्षमता का निर्माण प्रभावशाली संस्थाओं से होता है। पूरे विश्व का अनुभव यह प्रदर्शित करता है कि संस्थाओं का आयात नहीं किया जा सकता। संस्थाओं की जड़ें सांस्कृतिक परिवेश में होती हैं। इसके लिए स्वदेश-निर्मित नीति और राजनीति की आवश्यकता होती है।[27] भारत में सुशासन के समक्ष एक सर्वाधिक बड़ी बाधा गठबंधन सरकारों का भी निर्माण है जो भ्रष्टाचार की व्यापकता को बढ़ाता है। इसमें राजनीतिक व प्रशासनिक दोनों तरह के भ्रष्टाचार सम्मिलित हैं। *गठबंधन सरकारों* के दौर में बढ़ती राजनीतिक अस्थिरता ने शासन व प्रशासन दोनों ही स्तरों पर भ्रष्टाचार व अनुत्तदायित्व को जन्म दिया है। इससे मंत्रीमंडलीय उत्तरदायित्व को क्षति पहुँची है और शासन एवं प्रशासन का एक-दूसरे पर नियंत्रण ढीला हुआ है। ऐसी स्थिति ने अदक्ष, अनुत्तरदायी व असंवेदनशील नौकरशाही को बढ़ावा दिया है।[28]

प्रो. एस. आर. माहेश्वरी ने अपने आलेख Political Reform for True Governance' में वर्तमान राजनीति की कुछ समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो प्रशासन के मार्ग में बड़ी बाधाएँ हैं। उनके अनुसार ये *तीन* बाधाएँ हैं– 1. राजनीतिक अस्थायित्व, 2. नए राजनीतिक दलों के बनने की प्रवृत्ति तथा 3. राजनीति का अपराधीकरण। जहाँ तक राजनीतिक अस्थायित्व का प्रश्न है, उनका मानना है कि सुशासन के लिए राजनीति का स्थिर रहना अति आवश्यक है।[29] उन्होंने 1970 के बाद के वर्षों के दौरान भारतीय राजनीति की खींचतान की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालकर यह सिद्ध किया है कि जब ऐसी परिस्थितियाँ बनी होती हैं तब राजनेताओं का आंतरिक उद्देश्य सुशासन के बदले सत्ता में बने रहना होता है।[30] जहाँ तक नए राजनीतिक दलों के बनने की प्रवृत्ति का प्रश्न है, प्रो॰ माहेश्वरी का कहना है कि जब तक देश में राजनीतिक दलों का पंजीयन आए दिन होता रहेगा तब तक देश की दिशा सत्ता-प्राप्ति की होड़ में लगी रहेगी, क्योंकि ये राजनीतिक दल तोड़-मरोड़ की राजनीति करते हुए अपनी शर्तें, अपने क्षेत्रीय, भाषायी एवं जातीय हितों के पोषण में दबाव समूहों की तरह करेंगे और ऐसी स्थिति में सुशासन की कल्पना नहीं

की जा सकती। ऐसे ही *राजनीति के अपराधीकरण* के प्रश्न पर प्रो॰ माहेश्वरी का मानना है कि आज राजनीति व्यवसाय की तरह उपयोग की जाती है और राजनीति का अपराधीकरण और अपराधियों का राजनीतिकरण हो चुका है। प्रोॉ माहेश्वरी के अतिरिक्त प्रसिद्ध संविधानविद् *सुभाष कश्यप* ने भी सुशासन की *चार* समस्याओं पर प्रकाश डाला है– 1. राजनीति में मूल्यों की भारी गिरावट, 2. राजनीतिज्ञ-नौकरशाही-व्यापारी वर्ग में आपराधिक साँठ-गाँठ 3. संसद में राजनीति का गिरता स्तर तथा 4. संसदीय प्रणाली की असफलता।[31]

भारत में सुशासन के लिए किये गये प्रयास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 26 जनवरी 1950 को जब स्वतंत्र भारत ने अपना संविधान लागू किया तब उसके अंतर्गत सुशासन स्थापित करने के अनेक सपने देखे गए। लेकिन, बीतते समय के साथ हम शासन तो करते रहे, लेकिन सुशासन की स्थापना नहीं कर पाए। आज सुशासन की स्थापना सरकार की एक चुनौती और महत्त्वपूर्ण दायित्व बन गया है। भारत में सुशासन की कार्य योजना की रूपरेखा *अंतर -राज्य परिषद* सचिवालय द्वारा 28 जून, 2005 की बैठक में तैयार की गई थी। इस कार्य योजना की रूपरेखा केंद्रीय मंत्रियों, राज्य सरकारों और श्रेष्ठ संस्थानों के साथ परस्पर बातचीत के आधार पर तैयार की गई। इसमें दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक योजनाएँ हैं। दीर्घकालिक कार्य योजना में सभ्य समाज की भूमिका, न्यायिक सुधार, नागरिक सेवा संबंधी सुधार, ई-शासन, सीमा प्रबंधन एवं अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति संबंधी विशेष मुद्दे शामिल किये गये हैं। अल्पावधि कार्य योजना में संस्थागत क्षमता निर्माण और विशेष मुद्दों के लिए राष्ट्रीय सुशासन केंद्र (NCGG) का गठन करने के साथ ही सरकार के स्वरूप में परिर्वतन के अंतर्गत, सुधार, विकास-अनुकूल सरकार के अंतर्गत सुधार, नागरिक केंद्रित सरकार के अंतर्गत सुधार तथा क्षमता निर्माण शामिल है।[32]

भारत में सुशासन का संकट अपने शासन तंत्र में दो बड़ी खामियों का परिणाम है। *पहली* खामी है कि भारत में सद्व्यवहार को न तो मान्यता प्राप्त है और न इसके लिए शासन की तरफ से कोई पुरस्कार ही मिलता है। इसके साथ ही बुरे व्यवहार को न तो रोका जाता है और न ऐसा करने वाले को दंडित किया जाता है। इसके चलते लोगों का दृढ़ विश्वास हो चला है कि भ्रष्ट व्यवहार से ही इस व्यवस्था में सम्मान और सफलता सुनिश्चित होती है। शासन तंत्र की *दूसरी* खामी है कि शासन व्यवस्था में सत्ता की बागडोर नौकरशाही द्वारा संभाली जाती है। यदि सत्ता की परिभाषा इस तरह की जाए कि यह घटनाओं, प्रक्रियाओं, संसाधनों और मानव व्यवहार को सार्वजनिक हित में प्रभावित करने की क्षमता है, तो अब लगभग प्रत्येक स्तर पर राज्य के कार्यकर्ताओं में ऐसी सत्ता कम बची है।[33] लेकिन, यदि सत्ता की परिभाषा अधिकार, संरक्षण, छोटे स्तर की तानाशाही, परेशान करना है तो कहा जा

सकता है कि इस समय सरकार में बैठे अधिकांश पदाधिकारी अकुशलता और बहानेबाजी के पर्याय बन गए हैं। नागरिक असहाय हो रहे हैं और वांछित परिणामों को लेकर उनमें लगातार हताशा व्याप्त हो रही है।[34] इनके चलते राज्य की सभी संस्थाएँ गंभीर रूप से विफल होकर बिखरने के कगार पर पहुँच गई हैं।

शासन के इस संकट से निकलने का एक ही शांतिपूर्ण रास्ता है कि भारतीय शासन व्यवस्था का संपूर्ण कायाकल्प किया जाए। इसमें सत्ता के आधारभूत प्रक्रियाओं का ध्यान रखा जाए और सुनिश्चित किया जाए कि यह सही अर्थों में लोकतांत्रिक और स्वनियामक तंत्रों से युक्त हो। सुधार के प्रत्येक पक्ष से भारतीय सुशासन के संकट तत्त्व दूर होते हैं। इस प्रकार की व्यापक सुधार प्रक्रिया से सुधार का प्रत्येक तत्त्व दूसरे तत्त्व को सुदृढ़ करेगा और जोखिम कम करते हुए ऊर्जा स्थापित करेगा।[35] सुशासन के ऐसे प्रयासों पर आमतौर से समाज के सभी वर्गों में सहमति होना आवश्यक है, भले ही उनमें प्रतिस्पर्धा की भावना हो। समाज के प्रत्येक खंड को इस कार्यक्रम में हित धारक बनना होगा। उन सभी मुद्दों को, जो सुशासन की बुनियादी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, लोकतांत्रिक सुधारों के कार्यक्रम में शामिल करना होगा। इसके अलावा, लोकतंत्र के पाँच घटकों- स्वतंत्रता, स्वशासन, लोगों का सशक्तिकरण, विधि का शासन और स्वनियामक सांस्थानिक संरचना को भी सुधारों के कार्यक्रम में सम्मिलित करना होगा। यदि सुधार कार्यक्रमों को पक्षपात रहित और न्यूनतम बनाया जाता है और उनमें विघटनकारी मुद्दे शामिल नहीं किए जाते हैं तो उन पर व्यापक सहमति बन सकती है।[36]

अतः लोकतंत्र को सुशासन में सुधारों का वैचारिक आधार बनना चाहिए जिससे शासन संवेदनशील बन सके। स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है और इस नाते वह स्वतंत्रतापूर्वक सभी काम कर सके, बशर्ते की उन कार्यों के चलते अन्य नागरिकों की स्वतंत्रता पर कोई आँच न आती हो।[37] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में स्वतंत्रता का स्थान काफी ऊँचा होने के बावजूद देश के अधिकांश गरीबों द्वारा इस स्वतंत्रता का पूरा आनंद नहीं उठाया जाता है, क्योंकि अपर्याप्त संस्थान और कौशल इस रास्ते में बड़ी बाधाएँ हैं और ये बाधाएँ भारतीय शासन-तंत्र की विफलता के कारण उत्पन्न हुई हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन के हर क्षेत्र में भरपूर आजादी के लिए पर्याप्त अवसर देकर ही सुशासन के रास्ते को आसान किया जा सकता है। इसी प्रकार, विधि का शासन सभी लोगों के विधि द्वारा शासित होने की अवधारणा है। यह लोकतांत्रिक शासन का आधार है जिससे कार्यपालिका और न्यायपालिका सहित हमारी सभी संस्थाएँ जुड़ी हुई हैं।

सुशासन की दिशा में कुछ सफल प्रयास

भारत में सुशासन की दिशा में किए गए कुछ सफल प्रयास निम्नलिखित हैं–

1. Hkkxhnkjh ;kstuk& इसे जन योजना के नाम से भी जाना जाता है। भारत में स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के दायरे में भागीदारी योजना को संस्थागत रूप देने में केरल राज्य बेहद अग्रणी रहा है। भागीदारी योजना वह प्रक्रिया है जिसमें नागरिक अपनी आवश्यकताओं की पहचान कर सकते हैं और सामाजिक-राजनीतिक रूप से स्वीकार्य बातचीत के दायरे में सक्रिय होकर आवश्यकताओं की प्राथमिकताएँ तय कर सकते हैं।

2. ukxfjd fjiksVZ dkMZ& सेवाओं की गुणवता के संबंध में लोगों के सरोकार के प्रत्युत्तर में *पब्लिक अफेयर्स सेंटर* द्वारा बंगलुरू में 1993 में *नागरिक रिपोर्ट कार्ड* विकसित किए गए। नागरिक रिपोर्ट कार्ड एक सर्वेक्षण के रूप में लोक सेवाओं के उपयोगकर्ता द्वारा सेवाओं की समीक्षा है। सेवाओं के संबंध में की गई अन्य तकनीकी एवं आर्थिक समीक्षाओं से अलग हटकर नागरिक रिपोर्ट कार्ड इस बात पर प्रकाश डालता है कि उपयोगकर्ताओं को सेवाओं का लाभ कैसे मिलता है और प्राप्त सेवाओं से वे किस सीमा तक संतुष्ट हैं। ऐसे रिपोर्ट कार्डों का प्रयोग भारत के अहमदाबाद, कोलकाता, चेन्नई, दिल्ली, मुंबई एवं पुणे जैसे शहरों में किया जा रहा है।

3. lkekftd vadsf{k.k& भारत में सामाजिक दायित्वशीलता संबंधी जितनी भी युक्तियों का प्रयोग किया गया, उनमें सामाजिक अंकेक्षण अनूठा था। भारत में इसका सर्वप्रथम प्रयोग *मजदूर किसान शक्ति संगठन* द्वारा किया गया जो राजस्थान में मजदूरों और भूमिहीन किसानों को एकजुट करने वाली संस्था है। सामाजिक अंकेक्षण का प्रारंभ बुनियादी अधिकारों और विशिष्ट अधिकारों के मुद्दों के समाधान के प्रयास के रूप में तथा प्रशासन की भ्रष्ट प्रथाओं को उजागर करने के लिए किया गया था। यह पारदर्शिता, पूर्वानुमान, परामर्श, सहमति और दायित्वशीलता जैसे सार्वजनिक विषयों में कुछ आधारभूत नियम-कायदों को प्रोत्साहित करने का माध्यम है।

4. tulquokbZ& यह एक प्रकार का भागीदारीपूर्ण सामाजिक अंकेक्षण है जिसमें सार्वजनिक बहस के दौरान सरकारी अधिकारी नागरिकों के आमने-सामने पेश किए जाते हैं। जनसुनवाई की मदद से अधिक बिल आने, नकली मस्टर रॉल, कम मजदूरी के भुगतान और सिर्फ कागज पर किए गए काम जैसी भ्रष्ट प्रथाओं की पहचान करने में मदद मिलती है। इसे सर्वप्रथम राजस्थान में प्रारंभ किया गया।

5. ifjorZu& यह दिल्ली स्थित एक व्यक्तिगत पहल का नाम है। इसने अगस्त, 2002 में दिल्ली स्थित सुंदरनगरी और सीमापुरी क्षेत्रों में किए गए कार्यों की प्रतिलिपियाँ प्राप्त कीं और नुक्कड़ बैठकें करके स्थानीय लोगों को उन विस्तृत कार्यों के संबंध में बताया जिन्हें दिल्ली नगर-निगम द्वारा उनके प्रखंडों में किए जाने का दावा किया गया था।

b-'kklu dk c<kok& कंप्यूटर, सैटेलाइट व दूरसंचार के अन्य माध्यमों से प्रशासनिक कार्यों का निष्पादन ही ई-शासन है। ई-शासन कम समय में बेहतर सेवा प्रदान करने के साथ भ्रष्टाचार व लालफीताशाही जैसी समस्याओं को कम करने का एक प्रयास भी है। यह सरकार को सक्षम, सर्वश्रेष्ठ और प्रभावी बना रही है, अर्थात ई-शासन से सरकार में सुशासन को स्थापित किया जा रहा है। इसे शासन की ऐसी प्रणाली से जोड़ा गया है, जिसमें जनता तक सरकारी सेवाएँ और सूचनाएँ पहुँचाने में विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक विधियों और उपकरणों को काम में लाया जाता है। यह सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की एक विकसित तकनीक है जिसका उपयोग सरकारी काम-काज में करके शासन की प्रक्रिया को सरल, पारदर्शी, संवेदनशील, उत्तरदायी व जवाबदेह बनाया जाता है।[38]

उल्लेखनीय है कि भारत सरकार के द्वारा ई-शासन को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 1990 तक राज्यों की राजधानियों में 'निकनेट' (NICNET) स्थापित किया गया व साथ ही सभी जिला मुख्यालयों में 'डिसनिक' (DISNIC) का विस्तार किया गया।[39] इसी प्रकार, 1999 में भारत सरकार द्वारा *केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय* का गठन और तत्पश्चात वर्ष 2000 में सभी केंद्रीय मंत्रालयों एवं विभागों में ई-शासन के क्रियान्वयन के लिए 12 सूत्री न्यूनतम कार्य सूची तैयार की गई। साथ ही, भारत सरकार द्वारा 15 अगस्त, 2000 को *केंद्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय* में एक पृथक 'ई-शासन केंद्र' की स्थापना की गई, जो पूरे भारत में ई-शासन की अवधारणा के अनुप्रयोग के विस्तार के लिए कार्य कर रही है।[40] ई-शासन की उपयोगिता और विकास की गति को देखते हुए ही वर्ष 2001 को संपूर्ण भारत में 'ई-शासन वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा भारत सरकार द्वारा की गई।[41] तदोपरांत भारत सरकार द्वारा 8 मई 2006 को 'राष्ट्रीय ई-शासन योजना' को स्वीकृति प्रदान की गई जिसके तहत पूरे भारत में ई-शासन के क्रियान्वयन के लिए[42] *मिशन मोड़ परियोजना* का निर्माण किया गया। इस प्रकार, ई-शासन के माध्यम से एक ऐसी 'एकल खिड़की' का निमार्ण किया गया है, जिससे एक ही समय में विभिन्न सेवाओं का लाभ नागरिकों द्वारा लिया जा सकता है। आज भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय ई-शासन योजना के माध्यम से आम जनता के लिए कम खर्च व न्यूनतम अवधि में बेहतर व गुणवत्ता युक्त सेवा प्रदान की जा रही है तथा इन सेवाओं के माध्यम से कार्यकुशलता, पारदर्शिता व विश्वसनीयता को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है।[42] इस प्रकार, भारत सरकार द्वारा शासन व्यवस्था को 'स्मार्ट' बनाने के लिए ई-शासन को एक मूल मंत्र के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

नरेंद्र मोदी सरकार की सुशासन की नई पहल

नरेंद्र मोदी की सरकार ने 'न्यूनतम सरकार' (minimum government) और 'अधिकतम शासन' (maximum governance) का नारा देकर अभिशासन की स्थापना

करने के लिए प्रौद्योगिकी से युक्त डिजिटल इंडिया, स्र्टाट अप, स्कील इंडिया जैसी योजनाओं को प्रारंभ कर शासक और शासितों के मध्य दूरियाँ कम करने का प्रयास किया है।

राज्यों में सुशासन को बढ़ावा देने की *नीति आयोग* की पहल यही बताती है कि सरकारी मशीनरी के तौर–तरीकों में सुधार की आवश्यकता है। नीति आयोग का उद्देश्य राज्यों के स्तर पर पुराने पड़ चुके कानूनों को खत्म करने, कुछ विभागों की संख्या में कटौती करने के साथ ही योजनाओं की संख्या को भी तर्कसंगत बनाना है। इसने जो रूपरेखा तैयार की है, उससे कार्यक्रमों पर प्रभावी ढंग से अमल सुनिश्चित हो सकेगा। प्रारंभिक तौर पर केरल और राजस्थान में इस रूपरेखा को लागू करने और इसके बाद झारखंड, गुजरात और मध्यप्रदेश में भी अमल करने की बात की गई।[43]

मोदी सरकार के शासन के दौरान पिछले तीन वर्षों में ऐसी कई नई पहल की गई है जिनसे पता चलता है कि सरकार प्रशासन की गति को तेज कर प्रशासनिक व्यवस्था को अधिक कुशल, निर्णायक एवं समावेशी बनाना चाहती है। इसमें योजनाओं की परिणाम आधारित निगरानी, उच्चतम स्तर पर परियोजनाओं में तेजी लाना, राज्यों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना पैदा करना, मंत्रालयों में एकांगी रूप से काम करने की प्रवृत्ति को तोड़ना और सरकार में प्रतिभाओं का समावेश करना आदि शामिल है।[44] नरेंद्र मोदी के शासनकाल के दौरान *पहला* महत्त्वपूर्ण सुधार यह हुआ है कि प्रशासनिक ध्यान 'इनपुट' और 'आउटपुट' से हटकर परिणाम पर केंद्रित हो गया है और उसकी समीक्षा और निगरानी स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा की जा रही है। स्वाभाविक तौर से नागरिक केंद्रित और सहभागितापूर्ण शासन व्यवस्था स्थापित करने के लिए पहला कदम यह हो सकता है कि व्यवस्था को परिणामोन्मुख बनाया जाए। परिणाम अधारित समीक्षाएँ कई क्षेत्रों में की जा रही हैं। कुल बजट परिव्यय (2017-18) में 72 प्रतिशत की हिस्सेदारी रखने वाले 15 बुनियादी ढाँचें और सामाजिक क्षेत्रों की परियोजनाओं की समीक्षा की गई है और उसके बाद कई निर्णय भी लिए गए हैं। उदाहरण के लिए वित्त वर्ष 2017 में रेलवे के शेयर को 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 35 प्रतिशत करने का निर्णय लिया गया है ताकि 2032 तक इसे 50 प्रतिशत करने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। इसी प्रकार चिकित्सा शिक्षा में भी बड़े सुधार किए जा रहे हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण पहल *'प्रगति'* है। यह सक्रिय शासन और समयबद्ध कार्यान्वयन की ऐसी पहल है जिसके अंतर्गत बुनियादी ढाँचा और सामाजिक क्षेत्र की ऐसी महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं पर प्रधानमंत्री के स्तर पर चर्चा और समीक्षा की जा रही है।[45]

'प्रगति' परियोजनाओं के सभी पक्षों को अपने विचार रखने एवं मुद्दों के समाधान के लिए मंच उपलब्ध कराता है, अधिकारियों को स्पष्ट और निश्चित समय-सीमा के

अंदर पूरा किए जाने के लिए जिम्मेदारियाँ सौंपता हैं और केंद्र और राज्यों को एक ही मंच पर लाकर विकास परियोजनाओं में तेजी लाता है। इससे मुख्य परियोजनाओं पर देश के सर्वोच्च अधिकारियों की निगरानी बनी रहती है। यह विभिन्न सरकारी अभिकरणों के बीच के गतिरोध को भी समाप्त करता है और इसके द्वारा सर्वोत्तम कार्यशैलियों को साझा करना संभव हो पाता है। मई 2017 तक 18 'प्रगति' बैठकें हो चुकी हैं और 8.31 लाख करोड़ रूपये से अधिक की राज्य परियोजनाओं की गति को तेज किया गया है।[46] 'प्रगति' के लागू होने के बाद से अफगानिस्तान में सलमा बाँध, पटना में गंगा पर रेल-सह-सड़क सेतु, भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण और भारतीय महापंजीयक के आधार नामांकन में काफी तेजी आयी है। इस प्रकार 'प्रगति' कई अर्थों में एक अनूठी व्यवस्था साबित हुई है। इसने केंद्र और राज्यों के बीच की दीवारों को तोड़ा है, परिणाम और लक्ष्य की ओर ध्यान केंद्रित किया है और कार्यान्वयन की निगरानी करने के लिए एक पारदर्शी मंच उपलब्ध कराया है।[47] मोदी सरकार के दौरान *तीसरा* प्रमुख प्रशासनिक सुधार *रैंकिंग* के जरिए राज्यों और जिलों के बीच प्रतिस्पर्द्धा की भावना जगाना है। इसने नगर निकायों के स्तर पर बदलाव को प्रोत्साहित किया है। *चौथा* मुख्य सुधार *सचिवों के समूहों का गठन* करना है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2016 में विभिन्न विषयों पर आठ 'सचिव समूहों' का गठन किया गया था। इन समूहों का एक अनूठा पहलू यह था कि इनमें ऐसे वरिष्ठ अधिकारियों को शामिल किया गया जिनके विभाग इन विषयों से सीधे संबंधित नहीं थे। इसने रचनात्मक विचारों को प्रोत्साहित किया है। वर्ष 2017 से इन समूहों को अपनी सिफारिशों को कार्यान्वित कराने का दायित्व सौंपा गया है।[48] नरेंद्र मोदी सरकार ने सरकारी प्रक्रिया को नए सिरे से आकार देने के उद्देश्य से 25 दिसंबर, 2015 को पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के 90वें जन्मदिन के मौके पर भारत में 25 दिसंबर को *सुशासन दिवस* के रूप में मनाया और अपने संदेश में कहा, ''आज प्रिय नेता, पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का जन्मदीन है। इस अवसर पर, हम इस देश के लोगों को पारदर्शी, प्रभावी और जबाबदेह सरकार उपलब्ध कराने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दोहराते हैं।''[49] उल्लेखनीय है कि नरेंद्र मोदी सरकार ने सकुर्लर भेजकर सभी कार्यालयों को निर्देश दिया कि इस दिन सरकारी कर्मचारी शपथ लेंगे कि वे सुशासन लाने में सरकार की सहायता करेंगे।[50] उन्होंने कहा कि उनकी सरकार मई 2014 से ही 'नागरिक पहले' (citizen first) के मंत्र पर काम कर रही है जिसे 'ई-लर्निंग मॉडल' (E-Learning Model) के जरिये उपलब्ध कराया जाएगा।[51] सरकारी प्रक्रिया को नए सिरे से आकार देना एक अहम काम है जिसके लिए भारत सरकार के मंत्रियों और विभागों को निर्देश दिए गए हैं कि वे अपने कार्यक्षेत्र पर गौर करें, अपनी आंतरिक प्रक्रिया की पड़ताल करें और देखें कि उन्हें कैसे आसान और तर्कसंगत बनाया जा सकता है।[52] उन्होंने ट्वीट किया कि

''विकास और सुशासन आगे बढ़ने का एकमात्र रास्ता है कि हम साथ मिलकर लोगों के जीवन में सकारात्मक प्रभाव लायें और एक विकसित भारत की स्थापना करें। सरकारी कामों को आसान बनाने के लिए 'एकल खिड़की प्रणाली' लागू करें ताकि लोगों को इधर-उधर न भागना पड़े और काम एक ही जगह से संपन्न हो जाये।''[53]

21 अप्रैल, 2017 को *सिविल सेवा दिवस* के अवसर पर नरेंद्र मोदी ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को एक बार पुनः प्रेरित-प्रोत्साहित करते हुए उन्हें नसीहत के साथ हिदायत भी दी कि नौकरशाहों को सुशासन लाने के उद्देश्य से अपनी रीति-नीति बदलने के मामले में बहुत कुछ करना है। उनके अनुसार प्रशासनिक सुधार की दिशा में कई कदम उठाए जाने की आवश्यकता है, लेकिन सबसे ज्यादा ध्यान इस पर दिया जाना चाहिए कि राज्यों के स्तर पर नौकरशाही का राजनीतिकरण न हो।[54]

l'kklu vkj fMftVy Økfr dk vk/kkj& नरेंद्र मोदी सरकार ने आधार के जरिये सुनिश्चित किया है कि केंद्र से भेजा गया हर रूपया पूरा का पूरा सीधे जरूरतमंद लोगों तक पहुँचे। आधार विश्व में सबसे बड़ा अनूठा डिजिटल पहचान प्रोग्राम है। ''भारत ने आधार कार्यक्रम को सुशासन और अपने गरीब तथा वंचित लोगों के सशक्तिकरण और उनकी सेवा के लिए विकसित किया है– नरेंद्र मोदी सरकार ने आधार के जरिये सुनिश्चित किया है कि सरकार द्वारा भेजा गया हर रूपया पूरा का पूरा सीधे करोड़ों लोगों के बैंक खातों में पहुँचे।''[55] वर्तमान में सरकार द्वारा आधार का विस्तार लगभग 100 कल्याण कार्यक्रमों तक कर दिया गया है। इस तरह यह सुनिश्चित किया गया है कि सरकारी लाभ सिर्फ वांछित लोगों को मिले और बेईमान बिचौलियों द्वारा इसे हड़पा न जा सके।[56]

निष्कर्ष

अतः यह कहा जा सकता है कि सुशासन किसी भी लोकप्रिय लोकतांत्रिक सरकार की पहली पहचान है। यदि सरकार का मुखिया सुशासन स्थापित करने की दिशा में संकल्पित है तो हम कुछ उम्मीद कर सकते हैं। किसी भी सरकार के लिए जर्जर हो चुकी व्यवस्था को सुधारने के लिए बहुत बड़े संकल्प की आवश्यकता होती है। सुशासन की स्थापना के लिए सरकारी स्तर पर हो रही पहल से हम कुछ उम्मीद जता सकते हैं कि आनेवाले समय में बेहतर स्थिति प्राप्त होगी। सुशासन की अवधारणा को सफल बनाने के लिए सहभागी व गुणात्मक लोकतंत्र की स्थापना, शासन एवं प्रशासन में प्रर्याप्त स्तर तक पारदर्शिता, जबावदेहिता व सहभागिता का प्रसार, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय को एकीकृत रूप में लेते हुए समतामूलक सामाजिक परिवेश का निर्माण, लोकपाल व लोकायुक्त जैसी संस्थाओं का प्रोत्साहन तथा स्वस्थ राजनीतिक परंपराओं की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ॰ ब्रज किशोर झा ‖ *प्रमुख राजनीतिक चिंतक* (बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना), पृ॰ 18

2. Earnest Barker, *Greek Political Theory: Plato and His Predecessor*, 5th ed. (Methuen and co. Ltd, London, 1960), p. 113

3. *The Republic*, Book v, p. 203

4. उपरोक्त,

5. Aristotal, *Politics*, Book 1, p. 28

6. उपरोक्त,

7. देखिए, Kangle, The Kautilya Arthashartra (University of Bombay, 1965, vol. 3), p. 118

8. प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते रतम्। नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्। *अर्थशास्त्र* 1/19

9. उपरोक्त, 2/16

10. उपरोक्त, 813

11. देखिए अरूण दत्त शर्मा द्वारा उद्धृतः *राजनीति विज्ञान* (अरिहंत पब्लिकेशन्स इंडिया लिमिटेड, आगरा), पृ॰ 720

12. इन्द्रजीत कौरः *लोक प्रशासन–नए क्षितिज*, पृ॰ 513

13. उपरोक्त,

14. अरूण दत्त शर्मा द्वारा उद्धृतः *पूर्वोक्त*

15. उपरोक्त

16. उपरोक्त,

17. प्रो॰ नंदलाल द्वारा अपने आलेख 'सुशासन' में उद्धृत, देखिए, *प्रतियोगिता दर्पण* (फरवरी, 2015), पृ॰ 104

18. एस॰ आर॰ माहेश्वरी, ''भ्रष्टाचार : समाज का कैंसर,'' *पॉलिटिक्सि इंडिया*, नई दिल्ली, नवंबर 1998, पृ॰ 15

19. देखिए UNDP,1977

20. संतोष कुमारः गवर्नेंस एण्ड पब्लिक पॉलिसी–वर्टिकल मीटिंग होराइजन्स, *योजना* (अँग्रेजी), जनवरी, 2013, पृ॰ 21

21. मोहित भट्टाचार्या : *न्यू होराइजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, पृ॰ 259

22. देखिए UNDP, 1977

23. देखिए अनिल विश्वास का आलेख "Corruption, Participatory Development and Good Governance" (*Yojana*: January, 2013)

24. शिवराज सिंह, *पब्लिक एडमिनिसट्रेशन इन द न्यू मिलेनियम* (अनामिका पब्लिर्शस, नई

दिल्ली, 2003), पृ॰ 67–74

25. देखिए विश्व बैंक रिपोर्ट, 1992
26. डेविड ओसर्बोन एण्ड गैबलर, *रिइनवेंटिग गर्वमेंट* (लंदन, 1992), पृ॰ 29
27. कुलदीप माथुर : *फ्रॉम गवर्नमेंट टू गवर्नेन्स*, पृ॰ 133
28. मनीष कुमार पटेल, ''वैश्विक परिपेक्ष्य में सुशासन : एक अवधारणात्मक समीक्षा,''*भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका,* वर्ष–तृतीय, अंक–प्रथम, जनवरी–दिसंबर 2011
29. अरूण दत्त शर्मा द्वारा उद्धृत, *पूर्वोक्त*, पृ॰ 721
30. उपरोक्त में उद्धृत
31. उपरोक्त में उद्धृत
32. जयंत कुमार रे, इंडिया : *इन सर्च ऑफ गुड गवर्नेंस* (के॰ सी॰ वागची एण्ड कंपनी, कोलकता, 2001), पृ॰ 103–107
33. जय प्रकाश नारायण ''नागरिकोन्मुखी सुशासन'', *योजना* (जनवरी, 2010), पृ॰ 31
34. ओ॰ पी॰ द्विवेदी एण्ड डी॰ एस॰ मिश्रा, ''गुड गवर्नेंस : ए मॉडल फॉर इंडिया'' इन अली फराजमंद एण्ड जैक पिनकोवस्की (एडीटेड), *हैंडबुक ऑफ गलोबलाइजेशन, गवर्नेंस एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (टेलर एण्ड फ्रांसिस, न्यूर्याक, 2007), पृ॰ 710–712
35. जय प्रकाश नारायण (2010), *पूर्वोक्त*, पृ॰ 32
36. उपरोक्त, पृ॰ 33
37. सुरेन्द्र मुंशी, *गुड गवर्नेस, डिमोक्रैटिक सोसाइटी एण्ड ग्लोवलाइजेशन* (सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2000), पृ॰ 14–17
38. डॉ॰ मन्ना लाल मीना, 'ई–गवर्नेंस : उपयोगिता एवं कियान्वयन', *प्रतियोगिता दृष्टि* (अप्रैल, 2013), पृ॰ 29
39. देखिए, C. Prabhu, E-Governance: Concepts and case studies (PHI Uearing Private Limited, New Delhi, 2012), pp. 10-11
40. देखिए डॉ॰ सुरेंद्र कटारिया, *भारत में लोक प्रशासन* (नेशनल पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 2014), पृ॰ 779
41. उपरोक्त,
42. देखिए, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 11वीं रिपोर्ट (भारत सरकार, नई दिल्ली, 2008), पृ॰ 128
43. देखिए, *दैनिक जागरण* (पटना 30 जुलाई, 2015), पृ॰ 14
44. उपरोक्त,
45. उपरोक्त,
46. उपरोक्त,
47. उपरोक्त,
48. उपरोक्त,

49. देखिए, *दैनिक जागरण* (पटना 26 दिसंबर, 2015), पृ॰ 1
50. उपरोक्त,
51. उपरोक्त,
52. उपरोक्त,
53. उपरोक्त,
54. देखिए, संपादकीय *दैनिक जागरण* (पटना, 22 अप्रैल, 2017), पृ॰ 10
55. उल्लेखनीय है कि पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने कहा था कि केंद्र से भेजे गए एक रूपये में से सिर्फ 15 पैसे ही लोगों तक पहुँच पाते हैं। देखिए रविशंकर प्रसाद : 'सुशासन और डिजिटल क्रांति का आधार', *दैनिक जागरण* (पटना 22 अप्रैल, 2017), पृ. 10
56. उपरोक्त,

सुशासन एवं नागरिक समाज की भूमिका

शशि भूषण कुमार

विश्व के सभी नागरिक अपने राष्ट्र, राज्य और इसके अंगों से उच्च गुणवत्ता के प्रदर्शन की आशा रखते हैं। इसके लिए जरूरी है कि नागरिकों को भी खुले और पूर्ण रूप से राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता का अवसर मिले। सुशासन का संबंध जवाबदेह एवं निष्पक्ष राजनीतिक नेतृत्व, प्रखर नीति-निर्माताओं और कार्यकुशल लोक सेवकों से है। सशक्त नागरिक समाज के साथ-साथ स्वतंत्र प्रेस और स्वतंत्र न्यायपालिका सुशासन की पूर्व शर्तें हैं। सुशासन का उद्देश्य सामाजिक अवसरों का विस्तार, गरीबी-उन्मूलन, न्याय की रक्षा, सशक्तिकरण, रोज़गार और सेवाओं का प्रभावी निष्पादन है।

दमन और शक्ति के दुरूपयोग से मुक्त सुशासन की अवधारणा आज आकर्षण का विषय बनी हुई है। समावेशी विकास, निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता और अपनी नियति के बारे में स्वयं निर्णय लेने के सशक्तिकरण की मांग पर आधारित नीतिगत प्रयासों से सुशासन की अवधारणा को मजबूती मिली है। प्रस्तुत निबंध में भारत के परिपेक्ष्य में सुशासन के उपादान एवं इसकी स्थापना में नागरिक समाज की भूमिका का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

2017 का भारत आज भी विकासशील समाज की विशेषता से विभूषित है जिसकी वजह है राष्ट्रीय आय का कुवितरण जो कि व्यापक रूप से फैले गरीबी से परिलक्षित होती है। इस समस्या का हल मानव एवं भौतिक संसाधनों के अच्छे प्रबंधन में छुपा है जो वर्तमान में सुशासन की अवधारणा में समाहित है। वैश्विक अर्थव्यवस्था की उदार नीतियाँ कलाम के ''विज़न 2020'' को हकीकत में बदल सकती हैं और भारत अपने को विकसित देशों की श्रेणी में ला सकता है। भारतीय समाज में इसे हासिल करने की क्षमता है और भारतीय राजनीति भी ऐसे 'सामर्थ्य निमार्ण' के लिए मजबूत हो गयी है। जरूरत है कार्यकुशल और प्रभावोत्पादक सरकार और प्रशासन के व्यावहार्य (Viable) और कार्य करने योग्य मॉडल की खोज जो सहभागी राजनीति की लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा आगे बढ़ सकें।

ऑसबोर्न और *गैबलर* द्वारा प्रकाशित निबंध Reinventing Government[1] के

बाद से लोकतंत्र के प्रयाण में सभी राजनीतिक बीमारियों के लिए रामबाण के रूप में 'सुशासन' शब्द का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। अपने आलेख में निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं कि लोगों को ज्यादा अथवा कम सरकार की जरूरत नहीं है बल्कि उन्हें अच्छी सरकार अथवा अच्छे अभिशासन (Governance) की जरूरत है। भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति वयस्क मताधिकार की सफलता पर गौरवान्वित होती रही है लेकिन सच्चाई यह है कि सरकार पर्याप्त न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रही है जो कि नागरिक-हितैषी (Citizen-centric) सरकार के लिए अनिवार्य है। लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार को आम जनमानस भारतीय समाज में नवाचारी परिवर्तन उत्प्रेरित करने की दिशा में नहीं देखती है। यहाँ तक कि विकेन्द्रीकरण की अवधारणा भी लाखों करोड़ों ग्रामीणों के कल्याणार्थ सहभागी राजनीति को विकसित करने में असफल रही है। भारत में जिले के स्तर पर अथवा पंचायत स्तर पर सामुदायिक सरकार अभी भी दिवा स्वप्न की तरह है।

सुशासनः अवधारणात्मक ढांचा

सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव काल से ही मानव सुशासन का अभिलाषी रहा है। सामयिक विश्व में वैश्वीकरण की विचारधारा के अंतर्गत अपनाई गई उदार आर्थिक नीतियों की सफलता के लिए विश्व बैंक एवं फोर्ड फाउंडेशन जैसी संस्थाओं द्वारा सुशासन को अपरिहार्य बताये जाने के कारण सुशासन की धारणा अत्यधिक प्रासंगिक हो गई है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं धर्म ग्रंथों, यथा-जातक कथाएँ, महाभारत का शांति पर्व, अनुष्ठान पर्व, शुक्राचार्य का नीतिसार, पाणिनी की अष्टाध्यायी, बाल्मीकि की रामायण तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र इत्यादि ग्रंथ उत्तम शासन के वर्णनों से परिपूर्ण है। अर्थशास्त्र के अध्याय पांच का समापन इस कथन के साथ होता है कि ''उत्तम शासन के लिए यह आवश्यक है कि शासक सुशिक्षित हो, विज्ञान की अच्छी समझ रखता हो, उत्तम अभिशासन के प्रति समर्पित हो एवं लोगों की भलाई के लिए उद्दत हो''।

पाश्चात्य जगत में भी प्लेटो, अरस्तू से लेकर कार्ल मार्क्स, जॉन रॉल्स, मैकफर्सन आदि विचारकों के चिन्तन का उद्देश्य सुशासन स्थापित करना ही रहा है। वर्तमान संदर्भ में सुशासन की धारणा का प्रतिपादन विश्व बैंक द्वारा 1989 में उप सहारा अफ्रीकी देशों में विकास प्रशासन को दृष्टिगत रखते हुए किया गया।[2] विश्व बैंक के अनुसार तीसरी दुनिया के देशों में प्रजातांत्रिक सरकारें कुशासन के कारण निष्प्रभावी हो गयीं। यही कारण था कि विश्व बैंक ने तीसरी दुनिया के राष्ट्रों को वित्तीय सहायता देते समय सरकारों के समक्ष सुशासन स्थापित करने एवं इसके लिए संस्थात्मक परिवर्तनों को अपनाए जाने की शर्त रखी। स्पष्ट है कि सुशासन की धारणा आधुनिक संदर्भ में एक उपचारात्मक एवं मूल्यात्मक धारणा के रूप में सामने आई है।

सामान्यतः अभिशासन एवं सुशासन (Good Governance) को एक मान लिया जाता है लेकिन दोनों के बीच एक विभाजक रेखा है। अभिशासन राज्य की संरचना में आए परिवर्तनों एवं निजी क्षेत्र एवं नागरिक समाज के कर्ताओं से इसके संबंध को अभिव्यक्त करता है। विश्व बैंक अभिशासन को इस रूप में परिभाषित करता है– अभिशासन लोक संगठनों की सांस्थानिक क्षमता से संबंधित है जो संसाधनों की कमी के होते हुए भी प्रभावशाली, पारदर्शी, निष्पक्ष तथा जवाबदेह तरीके से देश की जनता द्वारा मांगी गई वस्तुओं और सेवाओं को प्रदान करती है।[3] इस प्रकार अभिशासन की इस परिभाषा ने सुशासन के चार घटकों को अपरिहार्य माना जो कि विश्व बैंक द्वारा ऋण प्राप्तकर्ता राज्यों के लिए नीतियों के दिशा-निर्देशक के रूप में स्वीकार किया गया :

(1) निजी क्षेत्र की पहल और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन के लिए लोक सेवा में सुधार की अपरिहार्यता;

(2) विकास के लिए कानूनी ढांचा;

(3) संस्थाओं को मजबूत बनाने के उद्देश्य से जवाबदेही ताकि सरकार की जवाबदेही बनाए रखी जा सके; और

(4) पारदर्शिता तथा सूचना जो स्वतंत्र प्रेस को मदद करे।

सुशासन एक बहुआयामी, सकारात्मक एवं समावेशी अवधारणा है। इसलिए विभिन्न संस्थाओं एवं विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इसे परिभाषित किया है। आज सुशासन विकास की प्रक्रिया से अभिन्न रूप से जुड़ गया है। जिसके माध्यम से न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणाम की अपेक्षा की जाती है। विकासात्मक अर्थशास्त्री इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि सुशासन केवल बाजार को आगे बढ़ाने तथा निजी निवेश को प्रोत्साहित करने मात्र से ही संबंधित नहीं है बल्कि स्थायी राजनीतिक शासन-व्यवस्था, समुचित कानूनी ढांचा, प्रेरक सामाजिक संस्थाएँ तथा सामाजिक मूल्य भी महत्वपूर्ण हैं। लोकतंत्र इस परिपेक्ष्य में मूल्यवान है क्योंकि यह सुशासन के लिए वैधता मुहैया कराता है।[5] लेकिन लोकतंत्र नियतकालिक चुनावों एवं राजनीतिक दलों जैसे औपचारिक संस्थाओं की विद्यमानता भर ही नहीं है। इसका अर्थ यह है कि लोकतंत्र के सार को महत्व प्रदान किया जाये और यह व्यापक विकेन्द्रीकरण, सत्ता में हिस्सेदारी तथा समानता और न्याय के मुद्दे पर सरकार की व्यापक संवेदनशीलता द्वारा संसाधनों के प्रयोग और प्रबंधन में लोगों की अधिकाधिक भागीदारी से आता है।

पॉल एच. एपलबी जैसे विद्वान का अभिमत है कि सुशासन का उद्देश्य एक ऐसा वातावरण निर्मित करना है जिसमें प्रशासक एवं राजनेता उदारवादी जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति उत्तरदायी एवं आग्रहशील बन सकें।[6] विश्व बैंक के अनुसार सुशासन

शक्ति के प्रयोग का वह तरीका है जिसके माध्यम से राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक संसाधनों का समुचित प्रबंधन किया जाता है ताकि न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणाम प्राप्त किया जा सके।[7] संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने 1997 के अपने पॉलिसी डाक्यूमेंट-गवर्नेंस फॉर सस्टेनेबल ह्यूमन डेवेलपमेंट में अभिशासन को राष्ट्र के प्रत्येक स्तर के कार्यों के प्रबंध में आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक सत्ता के प्रयोग के रूप में देखता है।

भारत में दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के छठे अध्याय में विकास के मुद्दे के साधन के रूप में सुशासन की विवेचना की गई है। इस अध्याय में सुशासन के लिए अग्रांकित को आवश्यक माना गया है– जनसहभागिता, विकेन्द्रीकरण, सूचना का अधिकार, नागरिक समाज का सन्निवेश, लोकसेवा में सुधार (आकार कम करना, पारदर्शिता, जवाबदेही, पेशेवराना अंदाज), प्रक्रियात्मक सुधार, न्यायिक सुधार, सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग, हाशिए पर रहने वाले लोगों का सशक्तिकरण, आर्थिक दृष्टि से निजीकरण, विनिवेश, औद्योगिक जगत का विस्तार, उदारीकरण, नियमों की कठोरता में कमी, सामाजिक क्षेत्र में सुधार, निजी क्षेत्र एवं गैर-सरकारी संगठनों का प्रवेश। फोर्ड फाउंडेशन ने इस अवधारणा में एक नया आयाम जोड़ते हुए यह प्रतिपादित किया कि प्रशासन के कामकाज का नियमन व नियंत्रण एक सक्रिय, सक्षम एवं सुसंगठित नागरिक वर्ग द्वारा होना चाहिए।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) के दस्तावेजों में शासन की गुणवत्ता में महत्वपूर्ण सुधार की जरूरत को रेखांकित किया गया ताकि समावेशी विकास, गरीबी में कमी और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विसंगतियों को कम करने के लक्ष्यों की तरफ आगे बढ़ाया जा सके। यह समझना मुश्किल नहीं है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया से विभिन्न स्तरों पर निष्पक्षता के साथ निर्वाचित सरकारों के गठन के संवैधानिक अधिकार को सुनिश्चित करना भी सुशासन की अनिवार्य शर्त है। इसके अलावा जवाबदेही, पारदर्शिता, भ्रष्टाचार-उन्मूलन तथा जनता को प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण तरीके से सामाजिक तथा आर्थिक सेवाएं सुलभ करवाना भी सुशासन का अभिन्न अंग है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना पर अमल के दौरान सुशासन की दिशा में एक कदम के रूप में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग प्रतिवेदन (2007) द्वारा प्रशासन में सुधार के लिए 15 पहलुओं के बारे में की गई सिफारिशों को शामिल किया जा सकता है।[8] ये सिफारिशें सूचना के अधिकार, शासन में नैतिकता, ई-शासन, मानव पूंजी को अवमुक्त करने, आपदा प्रबंधन, आम व्यवस्था, स्थानीय शासन, आतंकवाद से निबटने, टकरावों से निबटने की क्षमता पैदा करने, नागरिक-केन्द्रित प्रशासन, भारत सरकार के प्रशासनिक ढाँचे, वित्तीय प्रबंधन तथा राज्यों एवं जिलों के प्रशासन के क्षेत्र में सुधार के बारे में हैं। सरकार व इसके विभिन्न मंत्रालय इन सुधारों पर धीरे-धीरे अमल आरंभ कर प्रशासनिक सुधार कर सुशासन की तरफ अग्रसर हो सकते हैं।

अभिशासन से इतर सुशासन एक ऐसा पदबंध है जिसमें कुछ सहज गुण जैसे– कार्यकुशलता, जवाबदेही, पारदर्शिता, सहभागिता, कानून का शासन, न्याय और भ्रष्टाचार के प्रति शून्य सहिष्णुता इत्यादि स्वाभाविक रूप से जुड़ जाते हैं। सुशासन में जन सेवा अंतर्निहित है। सरकार इस तरीके से कार्य करे जिससे कि नागरिकों के कल्याण एवं सुरक्षा में अभिवृद्धि हो। लोकतंत्र, जवाबदेही, ईमानदारी, एवं सेवाओं के प्रति वचनबद्धता ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिसके द्वारा सुशासन को प्रदान किया जा सकता है। संक्षेप में, सुशासन को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए संसाधनों के प्रबंधन एवं सामाजिक नियंत्रण हेतु राजनीतिक सत्ता के प्रयोग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। सुशासन के अंतर्गत प्रभावकारी यांत्रिकी, प्रक्रियाएँ तथा संस्थाएं शामिल हैं जिसके माध्यम से नागरिक एवं समूह अपने हितों को संधियुक्त करते हैं, अपने कानूनी अधिकारों का इस्तेमाल करते हैं, अपने दायित्वों को पूरा करते हैं तथा अपने मतभेदों को दूर करते हैं।

सुशासन की विशेषताएँ

सुशासन एक छतरीनुमा अवधारणा है जो समाज के आधारभूत मूल्यों की खोज करता है तथा समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों सहित मानव अधिकार को हासिल करने हेतु एक जवाबदेह तथा ईमानदार प्रशासन की मांग करता है। यह केवल प्रशासन के तरीके को व्यक्त करता है कि प्रशासन किस प्रकार जीवन जीने के लिए आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध एवं उत्पन्न कर समाज के सदस्यों के जीवन स्तर में सुधार लाता है और एक बेहतर भविष्य की आशा उनके दिलों में स्थापित करता है; व्यक्तिगत विकास के लिए समता आधारित अवसरों को प्रदान करता है; प्रतिसंवेदी न्यायिक व्यवस्था, जो स्वच्छ, पूर्वाग्रहरहित तथा अर्थपूर्ण रूप से न्याय प्रदान करता है, को उपलब्ध कराता है; और सरकार के कार्य करने वाले प्रत्येक अंग में जवाबदेही और ईमानदारी बनाये रखता है।[9] सुशासन के निम्नलिखित विशेषताओं की चर्चा इस प्रकार की जा सकती है :

1) *सहभागिता* – प्रत्यक्ष अथवा वैध मध्यकारी संस्थाओं के माध्यम से अपने हितों को व्यक्त करने हेतु प्रत्येक स्त्री-पुरुष की निर्णय-निर्माण में सहभागिता होनी चाहिए। इस प्रकार की विस्तृत सहभागिता का निर्माण संगठन बनाने एवं बोलने की आजादी तथा सकारात्मक तरीके से भाग लेने की क्षमता द्वारा होती है।

2) *कानून का शासन* – कानूनी ढांचा को निष्पक्ष होना चाहिए तथा समदर्शी तरीके से विशेषकर मानवाधिकारों के संदर्भ में, लागू किया जाना चाहिए।

3) *पारदर्शिता* – सूचनाओं का स्वतंत्र प्रवाह होना चाहिए। प्रक्रियाएँ, संस्थाएँ

तथा सूचनाएँ संबंधित व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए।

4) *अनुक्रियाशीलता* – संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं को सभी दावेदारों को तुष्टि करना चाहिए।

5) *सहमति उन्मुखीकरण* – सुशासन को अंतर हितों के बीच मध्यस्थता करनी चाहिए ताकि समूह के बेहतर हितों हेतु एक विस्तृत मतैक्य पर पहुंचा जा सके।

6) *समता* – सभी स्त्री-पुरुषों को अपने कल्याण को बेहतर बनाने अथवा बनाए रखने हेतु समान अवसर मिलने चाहिए।

7) *प्रभावशीलता एवं दक्षता* – प्रक्रियाओं एवं संस्थाओं को ऐसे परिणाम देने चाहिए जो संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल द्वारा जरूरतों को पूरा करने लायक हो।

8) *जवाबदेह* – सरकार, निजी क्षेत्र तथा नागरिक समाज संगठनों के नीति-निर्माताओं को जनता तथा संस्था से जुड़े दावेदारों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए।

9) *सामरिक दृष्टि* – नेताओं तथा जनता में सुशासन एवं मानव विकास के प्रति विस्तृत एवं दूर दृष्टि होनी चाहिए तथा ऐसी समझ भी होनी चाहिए कि इस तरह के विकास के लिए क्या आवश्यक है।[10]

सुशासन में नागरिक समाज की भूमिका

अभिशासन की प्रक्रिया में जवाबदेही, पारदर्शिता, कानून का शाासन तथा जन भागीदारी सुशासन अथवा खुले शासन की आधारभूत मान्यताएँ हैं। नागरिक समाज लोकतांत्रिक व्यवस्था में इन्हीं मूल्यों को स्थापित करने की वकालत करता है ताकि लोकतंत्र को ज्यादा से ज्यादा अर्थपूर्ण बनाया जा सके। सुशासन स्थापित करने की दिशा में नागरिक समाज की भूमिका प्रशंसनीय रही है।

उम्दा संविधान रखने वाले भारत जैसे विकासशील और बड़े देश की संसद में जब ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल की अद्यतन रिपोर्ट 2016[11] का हवाला देते हुए भ्रष्टाचार के भयावह स्तर पर गंभीर चिन्ता व्यक्त की जाती है अथवा दुनिया में भुखमरी के हालात का जायज़ा लेने वाला *ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2016*[12] जारी किया जाता है तब एक आम नागरिक जरूर सोचता है कि शासन को कैसा होना चाहिए और उसका क्या स्वरूप हो गया है। समय के घूमते पहिए ने शासन-प्रशासन की जिम्मेदारियों को निःसंदेह बढ़ाया है और इसी बढ़े हुए काम को पूरा करने के लिए नागरिक समाज (Civil Society) का जन्म हुआ। *रूडोल्फ और रूडोल्फ* ने अपनी पुस्तक *इन*

परस्युट ऑफ लक्ष्मीः द पॉलिटिकल इकॉनोमी ऑफ द इंडियन स्टेट, 1987 में टॉकविले को उद्धृत करते हुए लिखा है, कि मानव संविधान द्वारा निर्मित संस्थाओं के अतिरिक्त विभिन्न संगठनों से भी जुड़ता है जिससे कि वह अपनी स्वतंत्रता और जनतंत्र को सुरक्षित रख सके। जब तक संवैधानिक रूप से समान किन्तु अलग-अलग और शक्तिहीन व्यक्तिगण संगठनों में नहीं जुड़ेंगे तब तक जनतंत्र के अत्याचारतंत्र में परिणत होने की संभावना बनी रहेगी और नागरिक राज्य के स्वेच्छाचारी कार्यों को सीमित, प्रभावित और नियंत्रित नहीं कर सकेंगे। संक्षिप्ततः नागरिक समाज की उपयोगिता यही है कि वह सार्वजनिक संप्रभुता को लक्ष्य की ओर ले जाने में मदद करता है।[13]

सुशासन को एक जरूरी विचार मानने वालों को वर्तमान समय में यह भली-भांति स्पष्ट हो चुका है कि राज्य और नागरिक समाज के बीच पर्याप्त अंतर है। नागरिक समाज वैसी सभी औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठनों और समूहों का समुच्चय है जो राज्य से पृथक और स्वतंत्र रूप में कार्य करते हैं तथा समाज में मौजूद विभिन्न हितों को संवर्धित करने की भूमिका निभाते हैं। नागरिक समाज, समाज का वह रूप है जो राज्य की संस्था के साथ परिवार की संस्था से भी अलग माना जाता है। नागरिक समाज राज्य के मुकाबले नागरिकों के अधिकारों और उनकी सत्ता को व्यक्त करने वाली प्रक्रियाओं और संगठनों से मिलकर बनता है। इसका उद्देश्य होता है– राज्य को संयमित करना और उसे नागरिक नियंत्रण में लाना।[14] मोटे तौर पर देखें तो नागरिक समाज ऐसे व्यक्तियों का समुच्चय, समूह या संस्थाएँ हैं जो सामूहिक हित में कार्य करती हैं और अक्सर ये कार्य लोक कल्याण को लक्ष्य मानकर किये जाते हैं जो सुशासन की भी पहचान हैं।

नागरिक समाज वह जगह है जहाँ समाज और राज्य का संबंध बनता है। यदि राज्य यहाँ समाज को नियंत्रित करने के लिए आता है, तो यहीं पर नागरिक समाज राज्य से संवाद और संघर्ष करता है। यह जगह एक सार्वजनिक क्षेत्र है जहाँ समाज के सभी सदस्य स्वतंत्रतापूर्वक मिलते हैं, साझे सरोकारों पर बातचीत एवं बहस करते हैं, अपने संघ या संगठन बनाते हैं और राज्य को समाज के प्रति जवाबदेह तथा नागरिकों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए संघर्ष करते हैं। स्पष्टतः ऐसा सार्वजनिक क्षेत्र लोकतांत्रिक राज्य में ही हो सकता है।[15] नागरिक समाज का होना राज्य के लोकतांत्रिक होने को सुनिश्चित करता है। राज्य के कार्यों में अप्रत्याशित वृद्धि के कारण सुशासन ने राज्य के चरित्र को पहले 'प्रशासकीय राज्य' से 'लोक कल्याणकारी' राज्य की ओर मोड़ा और अब इसकी दिशा 'लोक कल्याणकारी' राज्य से 'सेवाधर्मी' (Service-provider) राज्य की तरफ मुड़ रही है। नागरिक समाज के माध्यम से सेवाधर्मी राज्य के लक्ष्य तक आसानी और शीघ्रता से पहुंचा जा सकता है। नागरिक समाज के अनेक संगठन विकास कार्यों के लिए निरंतर कोशिश कर रहे

हैं जिनका सिद्धांत सुशासन पर ही आधारित है।

लोकतात्रिक शासन को 'जन-केन्द्रित' शासन माना जाता है। नागरिक समाज आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रिया में सभी नागरिकों की भागीदारी के लिए एक संस्थागत ढांचा उपलब्ध कराता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार शासन-संरचना के चयन का अवसर प्राप्त करते हैं। वह नीतियों के विधायन से लेकर इसके कार्यान्वयन तथा आगे इसके उल्लंघन की स्थिति में निर्णय हेतु आम आदमी में जागृति उत्पन्न करता है। नागरिक समाज व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता को मजबूत बनाने में सहायता करता है। एक सक्रिय, वैविध्यपूर्ण नागरिक समाज सुशासन को आगे बढ़ाने में अक्सर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह राज्य को अनुशासित कर सकता है तथा राज्य द्वारा नागरिकों के हितों को गंभीरता से लिए जाने को सुनिश्चित करता है एवं एक बड़े नागरिक व राजनीतिक सहभागिता को प्रोत्साहित करता है। समाज में नैतिकता, सभ्यता और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ सहयोग की भावना का विकास करना नागरिक समाज का प्रमुख कार्य माना जाता है। राज्य के अनावश्यक आधिपत्य को कम करने के लिए नागरिक समाज बहुलतावाद की वकालत करता है। यह व्यक्तियों को शिक्षित करके नागरिकता को बढ़ावा देता है।

गरीबी की समस्या, प्रतिनिधित्व की कमी, असमानता, रोजमर्रा की हिंसा, शासन-प्रशासन में भ्रष्टाचार इत्यादि के लिए दूरगामी समाधान की जरूरत है जो पूरे क्षेत्र में मजबूत मौलिक तत्वों और सामाजिक सिद्धांतों पर निश्चित रूप से आधारित हों। इसके लिए सर्वप्रथम वैसी सूचनाओं और अभिमतों की जरूरत है जो नागरिकों, राजनीतिज्ञों तथा नीति-निर्माताओं को अवगत विचार-विनिमय एवं निर्णय-निर्माण हेतु एक सामूहिक आधार प्रदान करते हों। तत्पश्चात् बहुलवाद एवं मत विभिन्नता को समुचित स्थान देने की जरूरत है। इसके उपरान्त सहमति-निर्माण के लिए तकनीक की जरूरत है जो नागरिकों को राष्ट्रीय जीवन के लिए स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर एक समझौते तथा सामान्य उद्देश्यों की पहचान को अनुमान्य करे। चौथे स्तर पर सरकारी क्रिया-कलापों में पारदर्शिता एवं जवाबदेही को पराकाष्ठा पर लाने की जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित हो कि ये सम्मिलित दृष्टिकोण निर्वाचित पदाधिकारियों के द्वारा लागू किये जा रहे हैं। उपरोक्त सभी बातों के लिए नागरिक समाज जन-सहभागिता बढ़ाने के साथ-साथ परामर्श, पारदर्शिता एवं जिम्मेदारी के लिए रास्ता उपलब्ध कराता है जो सुशासन को विकसित कर सकता है।[16]

सुशासन को बढ़ावा देने में नागरिक समाज कुछ निश्चित सूचकों के द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है जो इस प्रकार हैंः सार्वजनिक शिक्षा एवं जन-जागरूकता; मताधिकार वंचित समुदाय का सशक्तिकरण; बहुलता के लिए गुंजाइश का प्रबंधन; शासकीय संरचना में जवाबदेही एवं पारदर्शिता का प्रोत्साहन; शासन के

लिए वैधता को स्थापित करना; जनसमूह के बीच संवाद को सुसाध्य बनाना; अच्छी वैकल्पिक नीतियों की वकालत करना; संघर्षों के समाधान में सहायता करना; समाजीकरण और नागरिक समाज की नम्य और नवाचारी संरचना।

भारत में सुशासन की दिशा में नागरिक समाज

दुनिया भर में नागरिक समाज को राज्य एवं बाजार से परे तीसरे प्रक्षेत्र के रूप में स्वीकार किया जाता है, भारत में भी नागरिक समाज सुशासन की स्थापना की दिशा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह आजादी के पूर्व से कर रहा है। भारत में नागरिक समाज ने अपनी शक्तियों को स्वैच्छिक सेवा की गांधीवादी परंपरा से हासिल किया है। लेकिन आजकल यह अपने-आपको सक्रियता के विविध रूपों में अभिव्यक्त कर रहा है। ढांचागत विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं के अधिकार, बच्चों एवं बुजुर्गों की समस्याएँ, पर्यावरण सुरक्षा, मानवाधिकार संरक्षण इत्यादि मुद्दों पर भारत में नागरिक समाज की सक्रियता स्पष्टतः दृष्टिगोचर है जो सुशासन की स्थापना में मददगार सिद्ध हुआ है।

भारत में वैसे तो स्वैच्छिक सेवा की पुरानी परंपरा रही है फिर भी आधुनिक काल में नागरिक समाज 80 के दशक से लोकप्रिय हुआ और 21वीं सदी में इसकी प्रगति की रफ्तार बहुत तेज हो गई। स्वैच्छिक सेवा की प्राचीन परंपरा ने आधुनिक भारतीय समाज में भी इस तरह के प्रयोगों के लिए उर्वरक का काम किया और आज विभिन्न स्तरों पर अनेक तरह के नागरिक समाज जनता के कल्याणार्थ सराहनीय कार्य कर रहे हैं जो किसी न किसी रूप में सुशासन की स्थापना की दिशा में कदम है। आज न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में नागरिक समाज के विमर्श एवं उसकी पहल के पाँच प्रमुख क्षेत्र हैं जिसमें सुशासन की स्थापना की झलक देखने को मिलती है:

1) महिलाओं के अधिकार;
2) पर्यावरणीय न्याय एवं पर्यावरण संरक्षण;
3) मानवाधिकार, जातीय, धार्मिक और यौन-अल्पसंख्यक;
4) नागरिक सहभागिता के लिए आंदोलन एवं जिम्मेदार शासन; और
5) अन्यायपूर्ण आर्थिक वैश्वीकरण एवं एकपक्षीय सैन्यीकरण के विरूद्ध प्रतिरोध एवं संघर्ष।

कमोवेश भारत में भी उपर्युक्त क्षेत्रों में नागरिक समाज की सक्रियता दृष्टिगोचर है। पिछले 25-30 वर्षों में नागरिक समाज संगठनों की वकालत एवं लगातार मुहिम के कारण अनेक नवाचारी विधायनों को अनुमति प्रदान की गई है तथा इसे लागू किया गया है। नागरिक समाज संगठनों ने लामबंद होकर भारत सरकार पर दवाब बनाकर अनेक कानूनों के निर्माण तथा कार्यान्वयन में अपनी महती भूमिका अदा की

है जैसे, सूचना का अधिकार कानून 2005, मनरेगा 2005, शिक्षा का अधिकार 2009, घरेलू हिंसा रोकथाम कानून 2007 तथा आदिवासी समुदाय का जमीन पर अधिकार कानून इत्यादि। नागरिक समाज तथा महिला अधिकार संगठनों के प्रयास एवं पहल से ही आज राजनीतिक सहभागिता हेतु महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण विधेयक भारतीय संसद में राजनीतिक विमर्श के केन्द्र में है। नागरिक समाज के सद्प्रयासों से आज भारत में अनेक स्तरों पर सरकार में पारदर्शिता एवं जवाबदेही की झलक देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त भारत में पर्यावरण संरक्षण एवं विस्थापितों की समस्या को लेकर बहुगुणा का *'चिपको आंदोलन'*, मेधा पाटेकर का *'नर्मदा बचाओ आंदोलन'*, नोबेल पुरस्कार विजेता कैलाश सत्यार्थी द्वारा चलाए जा रहे बाल अधिकारों के लिए आंदोलन और रेमन मैग्सेसे पुरस्कार विजेता राजेन्द्र सिंह द्वारा चलाए जा रहे *'तरूण भारत संघ'* जैसे आंदोलन सुशासन हासिल करने की दिशा में नागरिक समाज की भूमिका को बारीकी से रेखांकित करते हैं। बुजुर्गों के हितों के संरक्षण के लिए 'हेल्प एज फांउडेशन' तथा 'एज वेल इंडिया' जैसे संगठन संघर्षरत् हैं। मानवाधिकार संरक्षण को लेकर पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़, बाबा आम्टे का कुष्ठ रोग उपचार केन्द्र, 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद्' की केरल मे 100 प्रतिशत साक्षरता लाने का प्रयास, दिल्ली में 'परिवर्तन' नामक सामाजिक कार्यकर्ताओं का संगठन सुशासन की दिशा में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'ग्रीन पीस' जैसे आंदोलनों ने अनेक राज्य व्यवस्थाओं को सुशासन की ओर मोड़ा है।

नागरिक समाज के आंदोलन की झलक न्यायिक निर्णयों में भी देखने को मिल रही है। चुनाव सुधार एवं मानवाधिकारों के संरक्षण को लेकर हाल के दिनों में न्यायपालिका की ओर से अनेक ऐतिहासिक निर्णय आए हैं जिसके लिए नागरिक समाज वर्षों से संघर्षरत है। आपराधिक छवि के जनप्रतिनिधियों को संसद/राज्य विधायिकाओं से बाहर रखना नागरिक समाज संगठनों की कार्यसूची में शामिल है। 2011 में गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे के नेतृत्व में 'इंडिया अगेन्स्ट करप्शन' ने देश के सार्वजनिक संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार के मुद्दे को प्रमुखता से उठाया और अंततः 2014 में संसद ने इस हेतु लोकपाल एवं लोकायुक्त कानून 2013 प्रभावी बनाया। सुशासन के लिहाज से इसे एक बड़ी उपलब्धि मानने से कोई इंकार नहीं कर सकता।

भारत सरकार की स्वैच्छिक क्षेत्र पर राष्ट्रीय नीति 2006 एक स्वतंत्र, सर्जनात्मक एवं प्रभावशाली स्वैच्छिक क्षेत्र को बढ़ावा देने पर बल देती है। बावजूद इसके, भारत में अनेक ऐसे समूह हैं जो नागरिक समाज की पहुँच से बाहर एवं सुशासन के लाभों से वंचित प्रतीत होते हैं। भूमिहीन मजदूरों, नर्सों, ट्रेड यूनियन कर्मचारियों, बस

कंडक्टरों जैसे समूहों के हितों का संरक्षण भी सुशासन में अपरिहार्य है। सुशासन का लक्ष्य नागरिक समाज के बिना पूरा नहीं हो सकता लेकिन एक यर्थाथपरक पक्ष यह भी है कि सुशासन तो दूर, हमारे यहाँ नागरिकता की बुनियादी सीख का भी अभाव देखने को मिल जाता है। सार्वजनिक सूचना-पटों पर फिल्मी पोस्टर चिपकाये जाते हैं, पुरातात्विक महत्व के स्थलों पर खुरच-खुरच कर नाम-पते लिखे रहते हैं और सार्वजनिक शौचालयों के भीतर अपशब्दों की भरमार रहती है। सार्वजनिक जमीनों पर कब्जा करना, सड़कों पर अपने चौपहिया वाहनों को रात-रात भर खड़ा करके बाकी लोगों के यातायात को अवरूद्ध करना, शादी-विवाह के बाद भारी मात्रा में कचड़े और गंदगी को सड़क पर छोड़ देना, मुंह से ईमानदारी की बड़ी-बड़ी बातें करना और हाथों से रिश्वत ले लेना क्या सुशासन के लक्षण कहे जा सकते हैं? नैतिकता के ये दोहरे मानदंड नागरिक समाज और सुशासन के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हैं और इन बाधाओं को केाई भी तकनीक दूर नहीं कर सकती।

आज सुशासन के लिए सबसे जरूरी तो यही है कि वह सामाजिक सीमा रेखाओं को समाप्त करके सामर्थ्य निर्माण करे और समाज के उस हिस्से की मदद करे जो ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों से वंचित हैं और हाशिए पर खड़े हैं। इस दुनिया का एक हिस्सा भले ही डिजिटल हो चुका हो, लेकिन एक बड़ा हिस्सा अभी भी नॉन-डिजिटल ही है। इस डिजिटल डिवाइड की खाई को पाटना सुशासन के लक्ष्यों को पूरा करने हेतु सबसे जरूरी है। सुशासन के विकास का एक कारण वैश्वीकरण की अवधारणा भी रही है। पूरी दुनिया एक भूमंडलीय गांव में सिकुड़ गई है और इसे एक बाजार के रूप में देखा जा रहा है। लेकिन यह बाजार दुनिया की आधी आबादी को स्वच्छ पेय जल एवं एक अरब की आबादी को भरपेट भोजन उपलब्ध करा पाने में असमर्थ है। विचारकों का मानना है कि सुशासन का इस्तेमाल वैश्वीकरण तथा क्रूर बाजार की अमानवीय बुराईयों को हटाने के लिए भी किया जा सकता है। सार-संक्षेप यही है कि नागरिक समाज के तत्व इन कमियों को दूर करने में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे सरकार बाजार को नियंत्रित करती है ताकि इसके दुरुपयोग का असर समाज पर न पड़े, नागरिक समाज की भूमिका यह सुनिश्चित करने में है कि सरकार न सिर्फ नागरिकों के प्रति जवाबदेह और उत्तरदायी हो, बल्कि यह सामाजिक न्याय की गारंटी देने के लिए अपनी भूमिका का निर्वाह भी करे। प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक मैक्स वेबर ने राजनीतिक दलों को लोकतंत्र की संतान कहा था। कहना न होगा कि नागरिक समाज लोकतंत्र की सबसे योग्य संतान साबित होती जा रही है और आज के समय की जरूरत है कि सुशासन के हित में इस संतान की परवरिश ठीक-ठाक माहौल में संपन्न कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

संदर्भ

1. शर्मा, बी.एम.एवं शर्मा, अभिषेक, ''डेवेलपमेंट, गुड गवर्नेंस एण्ड ह्यूमन राईट्स'', *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, वोल. LX, नं. 02, अप्रैल–जून 2014, पृ. 227.
2. वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट, *सब–सहारा अफ्रीकाः फ्रॉम क्राइसिस टू ससटेनेबल ग्रोथ*, 1989, वाशिंगटन डी.सी.
3. माथुर, कुलदीप, *फ्रॉम गवर्नमेंट टू गवर्नेंस*, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, 2008, पृ. 6.
4. *वही*, पृ. 7.
5. हर्स्ट, पॉल ए., *डेमोक्रेसी एण्ड गवर्नेंस*, 2000, उद्धृत पियरे (संपा.), *डिबेटिंग गवर्नेंस*, ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000.
6. एपलबी, पॉल एच., *लैण्डमार्क्स इन इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन*, नई दिल्लीः इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 2007.
7. वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट, *गवर्नेंस एण्ड डेवेलपमेंट*, 1992, वाशिंगटन डी.सी.
8. भारत सरकार, *द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन*, 2007.
9. सबरवाल, जस्टिस बाई. के., ''वैलेडिक्टरी अड्रेस एट नेशनल कोलोक्विम ऑन एथिक्स इन गवर्नेंस–मूविंग फ्रॉम रेटोरिक टू रिजल्ट,'' प्रशासनिक सुधार आयोग एवं राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी द्वारा आयोजित। देखें; मिश्रा, सुरेश, *स्ट्रेंथेनिंग ऑफ एथिकल एण्ड मोरल वैल्यूज इन गवर्नेंस*, नई दिल्लीः इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 2016, पृ. 24.
10. *वही*, पृ. 26.
11. *ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल रिपोर्ट 2016* के अनुसार वैश्विक स्तर पर भ्रष्टाचार के मामले में भारत 176 देशों की सूची में 79वें स्थान पर है जो देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के भयावह स्तर को दर्शाता है।
12. अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान (आई एफ पी आर आई) द्वारा 2016 में जारी *ग्लोबल हंगर इंडेक्स* में भारत का स्थान 118 देशों की सूची में 97 है जो भारत में भूखमरी की गंभीरता को दर्शाता है।
13. कुमार, शशि भूषण, ''जनोन्मुखी एवं जवाबदेह लोकतंत्र के विकास में नागरिक समाज की भूमिका'', नई दिल्लीः *लोक प्रशासन*, वर्ष 6, अंक 2, जुलाई–दिसंबर 2014, पृ. 369.
14. सेठ, धीरूभाई, *सत्ता एवं समाज*, अभय कुमार दुबे (संक. एवं संपा.), नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2009, पृ. 505.
15. चंडोक, नीरा, ''नागरिक समाज की अवधारणा'', *कथन*, नई दिल्ली, अंक 72, अक्टूबर–दिसंबर 2011, पृ. 68.
16. स्कॉल्टे, जे. ए., ''सिविल सोसाइटी एण्ड डेमोक्रेसी इन ग्लोबल गवर्नेंस'', *सी.एस.जी. आर. वर्किंग पेपर*, नं. 65/1, यूनिवर्सिटी ऑफ वारविक, 2001.'

भारत में अधिकारी-तंत्र, लोकसेवा एवं सुशासन

रणजीत कुमार

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में अधिकारी-तंत्र शासन-प्रशासन का मेरूदंड होता है। यह सरकार के लिए आँख-कान, हाथ-पैर के समान होता है जिसके बिना सुशासन एवं विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है लेकिन भारत में नौकरशाही संक्रमणकाल से गुजर रही है। सुरसा की तरह बढ़ता भ्रष्टाचार, दोषपूर्ण स्थानांतरण एवं पदोन्नति प्रणाली, कुलीनतंत्रीय मानसिकता, राजनीतिक हस्तक्षेप, लालफीताशाही तथा शासक वाली ठसक आदि ने भारत में नौकरशाही की छवि को नकारात्मक बना दिया है।

उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं बाजारीकरण की अवधारणा ने नौकरशाही के समक्ष गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दी है तथा उन्हें अपनी कार्यप्रणाली एवं मानसिकता में बदलाव लाने हेतु मजबूर किया है। इसीलिए आजकल प्रशासनिक निर्णयों एवं गतिविधियों में जनभागीदारी पर बल दिया जाता है। जनता एवं लोकसेवक के बीच की दूरी को मिटाने का प्रयास हो रहा है। सुशासन की व्यापक अवधारणा जिसमें समस्त विश्व के संपोषित विकास का दर्शन शामिल है पर्यावरण को भी अपने लक्ष्यों में समेटे हुए है, इसलिए आज की नौकरशाही भी पर्यावरण अनुकूलता प्राप्त कर रही है। आज नौकरशाही पर भी दक्षता, मितव्ययिता, पारदर्शिता एवं प्रभावशीलता प्राप्त करने का दबाव बढ़ा है। इसीलिए अधिकारी-तंत्र के आकार की जगह गुणवत्ता एवं विशेषज्ञता पर जोर दिया जा रहा है। लोक सेवाअधिकार गारंटी कानून, सूचना का अधिकार कानून तथा सूचना तकनीक के तीव्र विकास के कारण नौकरशाही की एक और नकारात्मक प्रवृत्ति पर भी लगाम कसा जा रहा है। लोकतांत्रिक मूल्यों, सिविल सोसाइटी की बढ़ती सक्रियता आदि के कारण नौकरशाही द्वारा अपनी शक्ति के बेजा इस्तेमाल पर भी नियंत्रण लगा है। फिर भी सुशासन एवं विकास को ध्यान में रखकर नौकरशाही की कार्यसंस्कृति एवं सोच में बदलाव हेतु कई समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया लेकिन दुर्भाग्यवश उनकी अधिकांश सिफारिशों को

आज तक लागू नहीं किया गया है। अतः सरकार को बिना देर किए उन सुझावों को ईमानदारी से लागू करना चाहिए ताकि सुशासन का मार्ग प्रशस्त हो सके। यह सुखद संयोग है कि वर्तमान केन्द्र सरकार शासन-प्रशासन में नवोन्मेश को बढ़ावा दे रही है। नौकरशाही को सक्षम, प्रभावी एवं जनोन्मुख बनाने हेतु रिफार्म, परफार्म एवं ट्रांसफार्म पर जोर दिया जा रहा है। न्यूनतम सरकार अधिकतम शासन सरकार का नारा है जो एक प्रकार से सुशासन की अभिव्यक्ति है। प्रशासन द्वारा मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, डिजिटल इंडिया, क्लीन इंडिया, ट्रांसपेरेंट इंडिया और ट्रांसफर्मिंग इंडिया जैसे नए-नए शब्द गढ़े जा रहे हैं जो बदलते और बढ़ते भारत की कहानी बयां कर रहे हैं। सुशासन एवं विकास को केन्द्र में रखकर भारतीय नौकरशाही भी वैश्विक बदलाव के साथ कदमताल करने का प्रयास कर रही है लेकिन सुशासन की चाभी अधिकारियों की कार्यसंस्कृति एवं मानसिकता बदलने में निहित है। अन्य तथ्य तो स्वतः बदल जाएँगे।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में अधिकारी-तंत्र शासन-प्रशासन का मेरूदंड होता है। लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में कार्यपालका दो तरह की होती है – राजनीतिक एवं अराजनीतिक कार्यपालिका। राजनीतिक कार्यपालिका का कार्यकाल चुनाव के परिणाम पर निर्भर करता है तथा मतदाता के विश्वासपर्यन्त ही कायम रहता है। इसलिए इसे अस्थायी कार्यपालिका भी कहा जाता है। अराजनीतिक कार्यपालिका के तहत अधिकारीतंत्र या नौकरशाही वर्ग आता है जो राजनीतिक कार्यपालिका के नियंत्रण एवं निर्देशन में काम तो करता है मगर राजनीतिक सत्ता परितर्वतन से अप्रभावित रहता है। इसलिए इसे स्थायी कार्यपालिका भी कहा जाता है। अधिकारी-तंत्र की वजह से ही समय-समय पर होने वाले सत्ता परिवर्तन के बावजूद शासन-प्रशासन में स्थायित्व एवं निरंतरता बनी रहती है। गौरतलब है कि अधिकारीतंत्र एक निर्धारित सेवाशर्त के अधीन, नियम-कानून के दायरे में रहकर शक्ति एवं सत्ता का जनहित में उपयोग करते हैं तथा राजनीतिक नेतृत्व के प्रति और अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं इसीलिए इन्हें लोकसेवक भी कहा जाता है। ये अपनी प्रकृति से निष्पक्ष, कार्यकुशल, दक्ष एवं प्रशिक्षित प्रशासक होते हैं जो राजनीतिक नेतृत्व (सरकार) को नीति-निर्माण में सहयोग एवं परामर्श देते हैं तथा सरकार के निर्णयों को कार्यान्वित करते हैं। लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने राज्य के कार्यक्षेत्र को असीमित एवं अनंत बना दिया है फलतः अधिकारी-तंत्र की भूमिका अत्यंत विस्तृत, व्यापक, बहुउद्देश्यीय, बहुआयामी तथा निर्णायक हो गई है। सुशासन एवं विकास की महती जवाबदेही अधिकारीतंत्र के जिम्मे ही है। अतः अधिकारी-तंत्र सरकार के लिए आँख-कान, हाथ, पैर के समान होते हैं जिसके बिना सुशासन एवं विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रो. डोनहम के शब्दों में ''यदि हमारी सभ्यता असफल होती है तो ऐसा मुख्यतः प्रशासन के पतन के कारण होगा। राज्य

की क्रियाओं की सफलता या विफलता लोक प्रशासन पर ही निर्भर है।''[1] दुर्भाग्य से भारत में अधिकारी-तंत्र या नौकरशाही की छवि आमजनमानस में सकारात्मक कम एवं नकारात्मक ज्यादा है।

काबिलेगौर है कि ब्यूरोक्रेसी एक फ्रेंच शब्द है जिसका सबसे पहले प्रयोग 1745 में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री विंसेट डी गार्ने ने किया। गार्ने ने कहा कि फ्रांस में एक बीमारी है जो हमें तबाह कर रही है, यह बीमारी *ब्यूरोमेनियम* कहलाती है। नौकरशाही शब्द का प्रयोग प्रारंभ में एक ऐसी सरकार को बताने के लिए किया गया जो अधिकारियों द्वारा चलाई जाती है। इसी आधार पर जॉन वीग ने कहा है कि विकृति और व्यंग्य के रूप में नौकरशाही शब्द का अर्थ काम में घपला, मनमानी, अतिव्यय, हस्तक्षेप तथा वर्गीकरण माना जाने लगा है।[2] के. डी. बाटा नौकरशाही की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि संरचनात्मक दृष्टि से यह मूल्यों से परे है, न यह नायक है और न ही खलनायक, इसे ऐसी घटना समझा जा सकता है जो किसी भी बड़े तथा जटिल संगठन के साथ जुड़ी हो। व्यवहार की दृष्टि से इसे ऐसा संगठन समझा जा सकता है जिसके कुछ कार्यात्मक तथा विकृत वैज्ञानिक चित्र प्रकट होते हैं। लक्ष्य की पूर्ति अथवा उपलब्धियों की दृष्टि से यह ऐसा संगठन है जो प्रशासन में कार्यकुशलता को अधिक से अधिक बढ़ाता है।[3] मैक्स वेबर को नौकरशाही की आधुनिक अवधारणा का जनक माना जाता है क्योंकि उन्होंने प्रतिकूल निहितार्थों से मुक्त नौकरशाही के आधुनिक समाजशास्त्रीय अध्ययन की नींव डाली और किसी संगठन के लक्ष्यों की तर्कसंगत प्राप्ति के लिए नौकरशाही की अनिवार्यता पर बल दिया। वेबर का कथन है कि नौकरशाही का विकास इसलिए हुआ कि यह अपनी विवेकशीलता और तकनीकी श्रेष्ठता के गुण के कारण आधुनिक जटिल समाज की समस्याओं और कार्यों का सामना करने के लिए सबसे उचित यंत्र साबित हुआ है। नौकरशाही के उदय के अन्य कारणों में बढ़ते केन्द्रीयकरण, तार्किकतावाद, सरकारी कार्यों में वृद्धि, आर्थिक-सामाजिक संकट, आर्थिक विकास, राष्ट्रराज्य का विकास जैसी घटनाएँ भी शामिल हैं जिनके कारण नौकरशाही तेजी से बीसवीं सदी में एक अपरिहार्य व्यवस्था के रूप में पूरी दुनिया पर छा गई। वेबर आगे कहते हैं कि नौकरशाही किसी भी दूसरे रूप से ज्यादा कुशल, तार्किक और श्रेष्ठ है। यह अनिवार्य एवं स्थायी है।[4] योग्यता के आधार पर चयन, कार्य विभाजन, पदसोपानी क्रम, नियमों की व्यवस्था, भूमिका निर्धारण, तार्किकता, अवैयक्तिकता, नियम निर्देशिता एवं तटस्थता माना है। काबिलेगौर है कि प्रारंभ में नौकरशाही एवं लोकसेवा (सिविल सर्विस) के बीच अंतर माना जाता था। नौकरशाही के अंतर्गत सैन्य एवं न्यायिक प्रशासन भी शामिल है जबकि लोकसेवा के तहत केवल असैन्य प्रशासन को शामिल किया जाता है। लोकसेवा से अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्षता से चयनित, प्रशासनिक रूप से कार्यसक्षम, राजनीतिक तौर पर निष्पक्ष तथा समाज की सेवा की

भावना से ओत-प्रोत हो। चूँकि वेबर के प्रतिमान में बताई गई लगभग सभी विशेषताएँ कमोवेश हमारी लोक सेवाओं में भी पायी जाती हैं इसलिए कालांतर में हम लोक सेवाओं को ही नौकरशाही कहने लगे हैं। विकसित अधिकारी-तंत्र की अनिवार्यता आधुनिक युग का केन्द्रीय राजनीतिक सत्य है।[5] इस संबंध में मार्टिन क्रिगिर का कहना है कि एक प्रशासनिक संगठन के रूप में जो हर प्रकार के उपक्रम में पाया जाता है, इसका प्रभाव आधुनिक संसार में विवेकशीलता के किसी भी अन्य वाहक की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत है और प्रशासनिक संगठन के रूप में सबसे अधिक विकसित होने के कारण यह अधिक शक्तिशाली है तथा उसके प्रभाव से बचना अधिक कठिन है।[6]

सुशासन और विकास की प्रक्रिया को स्थापित करने में जहाँ तक नौकरशाही की भूमिका का सवाल है तो इस पर गौर फरमाने के पहले सुशासन के क्या मायने हैं और समावेशी विकास के लिए सुशासन क्यों जरूरी है, इसे उद्घाटित करना समीचीन होगा। मानव सभ्यता के विकास के समय से ही राज्य और सुशासन एक दूसरे के पूरक माने जाते रहे हैं। राज्य की उत्पत्ति निःसंदेह मानव कल्याण के लिए हुई तथा मानव समाज ने राज्य की सत्ता को सामान्य हित, मानव कल्याण, न्याय, और सुशासन की व्यवस्था को प्राप्त करने की आशा में स्वीकार एवं आत्मसात किया है। ऐसे में राज्य द्वारा सदैव से अच्छे शासन की कल्पना की जाती है और यही अपेक्षा की जाती है कि राज्य अपने नागरिकों को विकास के शिखर बिन्दु तक ले जाएगा। यह अच्छा शासन की अवधारणा ही 'सुशासन' है। सुशासन को जनसाधारण की भाषा में अच्छा शासन कहा जाता है जिसका अंग्रेजी रूपांतरण गुड गवर्नेंस है। अतः सुशासन या अच्छे शासन को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि 'शासन' क्या है और तब शासन में 'अच्छा' क्या है। समकालीन संदर्भ में शासन को तीन अर्थों में समझा जा सकता है। प्रथम, यह एक राजनीतिक प्रणाली है जिसमें सामान्य जनता पर शासन किया जाता है। दूसरे, यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राधिकार का प्रयोग कर देश के आर्थिक और सामाजिक संसाधनों का अधिकतम प्रयोग किया जाता है। तीसरे रूप से यह एक ऐसा तंत्र और सरकार की क्षमता है जिसमें लोकनीतियों का निर्माण हो सके तथा उन नीतियों का सही कार्यान्वयन हो सके। शासन शब्द में 'सु' उपसर्ग जोड़ कर सुशासन बना है जिसका मतलब है – सुन्दर शासन, वैसा शासन जो शासितों की अपेक्षाओं और कसौटियों पर खरा उतरे। इस दृष्टिकोण से सुशासन की अवधारणा बहुत व्यापक अर्थ समेट लेती है जिसका उद्भव हम वेद, गीता, महाभारत, बाइबल, कुरान जैसी धार्मिक पुस्तकों व राजनीतिक विचारकों की कृतियों जैसे प्लेटो की रिपब्लिक, कौटिल्य के अर्थशास्त्र अथवा मार्क्स की कृतियों में भी पाते हैं। भारत में सनातन धर्म, संस्कृति और उसके राजनीतिक दर्शन में सुशासन एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जो सामान्य हित को संरक्षित और

परिवर्धित करता है, लोकसेवाओं को अपने कर्तव्यों एवं आचरण के प्रति सजग रखता है। भारतीय वेदों में कहा गया है कि

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया

सर्वे भद्राणि पश्युन्तु मा कश्चित दुखभाग भवेत।

अर्थात् सभी लोग सुखी हो, सभी निरोगी हो तथा सभी कल्याण को देखें और कोई भी दुख का भागी न बने। वास्तव में सुशासन का सार भी यही है। भारतीय संस्कृति की एक और प्रचलित दार्शनिक अवधारणा *'वसुधैव कुटुम्बकम'* आज भी प्रासंगिक है। जब हम सुशासन एवं वैश्वीकरण को साथ-साथ रखकर देखते हैं तो पाते हैं कि जब तक हम संपूर्ण विश्व को अपना परिवार नहीं समझेंगे तब तक सभी का कल्याण संभव नहीं है। मनु स्मृति में भी कहा गया है कि सभी अधिकारी प्रजा की भलाई के लिए ही कार्य करे।[7] कौटिल्य ने अपनी जगत प्रसिद्ध रचना 'अर्थशास्त्र' में राजा से सर्वाधिक अच्छे आचरण की अपेक्षा की है। उसके अनुसार प्रजा की भलाई में ही राजा का हित है। जो कुछ भी राजा को अच्छा लगता है, उसे ही अच्छा नहीं समझना चाहिए वरन् जो प्रजा को अच्छा लगे, उसे अच्छा मानना चाहिए।[8] महात्मा गाँधी ने तो स्वराज और सुराज दोनों ही अवधारणाओं को प्रकट किया। उन्होंने स्वराज के माध्यम से सुराज स्थापित करने पर बल दिया। उनकी सुराज की अवधारणा भारतीय संस्कृति की 'रामराज्य' की अवधारणा से प्रेरित थी जिसमें एक ही घाट पर बाध एवं बकरी पानी पी सकते थे। वस्तुतः उनका सुराज का चिंतन आज भी प्रासंगिक है जब हम वंचितों व सुविधा संपन्न दोनों को ही शासन में उचित भागीदारी देते हैं। वास्तव में सुशासन का ध्येय भी यही है कि समाज के शोषित, दलित, उत्पीड़ित एवं हाशिए पर रहने वाले लोगों को मुख्यधारा में लाया जाए तथा गरिमामय जीवन जीने की परिस्थितियों का निर्माण किया जाए। लोक प्रशासन के जनक विल्सन ने लिखा है कि मानव सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं है और सभी के लिए कार्य करना सबसे महान सिद्धांत है। हमें प्रशासन के विज्ञान की जरूरत है ताकि दक्षता की प्राप्ति हो। राजनीति मूल्यों से जुड़ी है और प्रशासन तथ्यों से जुड़ा है। प्रशासन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निर्धारित कार्य को कैसे सबसे कम पैसे, श्रम, समय तथा सबसे अधिक कुशलता से किए जा सकते हैं।[9] आज हम सुशासन के माध्यम से भी यही खोजने का प्रयास कर रहे हैं। गुड नाउ ने अपनी पुस्तक 'राजनीति एवं प्रशासन' में लिखा है कि राजनीति राज्य की इच्छा को प्रतिपादित करती है तथा प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से संबंधित है। राज्य की इच्छा और कुछ नहीं मात्र अच्छी सरकार या सुशासन स्थापित करना है।[10] स्पष्ट है कि सुशासन उद्देश्यपरक तथा विकासोन्मुख प्रशासन के समान है जो जनसामान्य के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु कटिबद्ध है। यह व्यवस्था की साख, उसकी वैधानिकता तथा उच्चतम दक्षता को स्थापित करने हेतु शासन के नवीन

मूल्यों को आत्मसात करने की ओर इंगित करता है।[11] आम आदमी की नजर में सुशासन बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, बिजली, पानी, कुपोषण एवं कानून-व्यवस्था की समस्या के समाधान करने का विकल्प है। सुशासन प्रशासन के उच्चपदीय गुणों को स्थापित करने तथा उसके दुर्गुणों एवं कुरीतियों को दूर करने का कार्य है। स्पष्ट है कि सुशासन दक्ष, उत्तरदायी, पारदर्शी, साखयुक्त और वैधानिक प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करता है जो नागरिक मित्र, मूल्ययुक्त तथा लोकभागीदारी से परिपूर्ण होता है। यह विकास की बुनियादी शर्त है।

गौरतलब है कि सुशासन के माध्यम से ही विकास के निर्धारित लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। भारत जैसा विकासशील लोकतांत्रिक देश जो अभी मानक विकास से कोसो दूर है, जहाँ एक-तिहाई आबादी आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन हेतु मजबूर है, रोटी, कपड़ा और मकान भी सबको मयस्सर नहीं है, बुनियादी शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा की दशा सोचनीय है, ऐसी स्थिति में विकास एवं बदलाव हेतु सुशासन अनिवार्य है और सुशासन स्थापित करने की महती जवाबदेही अधिकारी-तंत्र या नौकरशाही की है।[12] स्पष्ट है कि सुशासन ही वह राजपथ है जिसपर विकास का घोड़ा सरपट दौड़ सकता है और सुशासन रूपी राजपथ के निर्माण, तथा उसे विघ्नबाधाओं एवं अवरोधों से मुक्त रखने की जवाबदेही नौकरशाही की ही है। ऐसे में देश, काल, परिस्थिति के अनुसार नौकरशाही के सांचे, कार्यप्रणाली एवं मानसिकता में बदलाव वक्त की मांग है। इसी परिपेक्ष्य में नौकरशाही कार्यप्रणाली में हाल के वर्षों में काफी परिवर्तन आया है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही प्रतिमान को आदर्श इसलिए माना था कि वह संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि का साधन था किन्तु अनुभव यही सिद्ध करता है कि नौकरशाही प्रणाली ने किसी भी शासकीय संगठन में कार्यकुशलता या दक्षता को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया बल्कि स्वयं नौकरशाही कठोरता, औपचारिकता एवं अकार्य कुशलता का पर्याय बन चुकी है। आज जबकि शासन दिन-प्रतिदिन नई प्रवृत्तियों, चुनौतियों से उलझ रहा है तथा सुशासन आज की आवश्यकता बन गया है, फिर भी नौकरशाही की कार्यप्रणाली एवं मानसिकता में यथोचित बदलाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इसका मूल कारण बदलाव की गति का धीमा होना है। नौकरशाही में व्याप्त अनेक त्रुटियों के बावजूद वर्तमान में कल्याणकारी राज्यों में इसकी भूमिका, सर्वोपरि बनी हुई है, क्योंकि अभी तक नौकरशाही का विकल्प न मिलने के कारण विकास तथा कल्याण के कार्य भी पूर्णतः नौकरशाही पर निर्भर होते हैं और आने वाली अवधारणाओं का भी यही आधार होगा। तथापि नौकरशाही ने अपने आपको काफी बदला है तथा उसकी आधुनिक प्रवृत्तियों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

आज लोकसेवा के चरित्र में बड़ा परिवर्तन आया है। पुराने नकारात्मक स्वरूप ने अब सकारात्मक स्वरूप के रूप में स्थान लेना शुरू कर दिया है। 18वीं एवं 19वीं

सदी में नौकरशाही की व्याख्या शासकीय कार्यालयों तथा तार्किकों की शक्ति के रूप में की जाती थी। कालांतर में शास्त्रीय अवधारणा के फलस्वरूप नौकरशाही निरंकुश, कठोर, औपचारिक, अहंग्रस्त तथा आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति ग्रहण करती गई। कार्य में विलंब, दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, अनुत्तरदायित्व, अहं मानसिकता, प्रायः इसके साथ जुड़ गई। परंतु आज नौकरशाही का सकारात्मक सिद्धांत अधिक माना जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि इसकी बुराईयाँ एकाएक खत्म हो गई वरन् हम उसकी अच्छाइयों को सकारात्मक रूप से बढ़ा रहे हैं, ताकि उसके दुष्प्रभाव कम हो सके। परंपरागत नौकरशाही में पर्यावरणानुकूल परिवर्तन भी लाए गए हैं, जो अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी, जनसेवी भावना से युक्त, जनोन्मुख, मानवीय मूल्यों से युक्त, दक्षता, प्रभावशीलता से योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आक्रामक रूप तैयार किया जा रहा है। नौकरशाही अब जनता को आदेश नहीं दे सकती, उसे अब जनता की सहमति प्राप्त करनी है।[13]

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विकास के साथ-साथ नौकरशाही में भी विशेषीकरण को सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर करती है। कल्याणकारी राज्य का बढ़ता महत्व इसके क्षेत्र एवं दायित्व दोनों में वृद्धि कर रहा है। अतः राज्य में चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, विधि तथा अन्य तकनीकी विषयों की भांति 'प्रशासन' भी एक महत्वपूर्ण विशेषज्ञतापूर्ण कार्य माना जाने लगा है। दूसरी ओर सामान्य अधिकारी स्वयं को प्रशासन का और सामान्य प्रशासन के अधिकारी अपने आप को किसी विशिष्ट क्षेत्र का विशेषज्ञ सिद्ध करने को उत्सुक है।

बीसवीं सदी के अंत में कंप्यूटर तथा मानव संसाधन की उन्नति में अप्रत्याशित वृद्धि ने नौकरशाही का मानव विकास संसाधन की ओर झुकाव बढ़ा दिया है। मशीन, वित्त सामग्री तथा प्रक्रियाओं की भांति कार्मिक के रूप में कार्य करता मानव भी संगठन की अमूल्य संपदा है। इसी तथ्य के मद्देनजर रखते हुए वर्तमान नौकरशाही में भी कर्मचारियों के दृष्टिकोणों तथा सक्षमताओं का विस्तार बड़े पैमाने पर दृष्टिगोचर हुआ है। इनमें सेवीवर्गीय नीति का निर्माण, योग्यता आधारित भर्ती, पर्याप्त प्रशिक्षण, पदोन्नति, आकषर्ण वेतन, कार्य निष्पादन, मूल्यांकन तथा वृत्ति का विकास इत्यादि सम्मिलित है। किसी भी संगठन में कर्मचारियों का बना रहना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि कर्मचारियों का संतुष्ट व प्रतिबद्ध रहना। विकास प्रशासन और सुशासन पर जोर दिए जाने से मानवीय संबंधों की महत्ता उजागर हुई है तथा अब नौकरशाही से भी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक संबंधों के साथ औपचारिकता को हटाकर अनौपचारिकता को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है। यद्यपि नौकरशाही की कार्यप्रणाली कठोर तथा संवेदनशून्य मानी जाती है, परंतु नौकरशाही की परंपरागत कार्यशैली में समयानुकूल प्रजातांत्रिक परिवर्तन अपरिहार्य होते जा रहे हैं।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में नौकरशाही व राजनीति को एक दूसरे से पृथक माना

जाता था। मिनोंब्रुक सम्मेलन (1968) के बाद यह मान्यता प्रबल होती गई कि राजनीति और प्रशासन एक दूसरे के पूरक हैं। आज विकास तथा सुशासन की जरूरतों ने अनामता तथा तटस्थता संबंधी परम्परागत नौकरशाही की अवधारणाओं को बदलने पर मजबूर कर दिया है। बदलती परिस्थितियों में प्रशासन और राजनीति के बीच समीपता ही नहीं अपितु अंतःनिर्भरता भी बढ़ी है। उदारीकरण, बाजारीकरण व वैश्वीकरण की अवधारणा ने नौकरशाही के समक्ष गंभीर चुनौती उत्पन्न कर दिया है तथा उन्हें अपनी कार्यप्रणाली एवं सोच में बदलाव लाने हेतु मजबूर किया है। इसलिए आजकल प्रशासनिक निर्णयों एवं गतिविधियों में जनभागीदारी पर बल दिया जाता है। जनता एवं प्रशासक के बीच की दूरी को मिटाने का प्रयास हो रहा है। सुशासन की व्यापक अवधारणा, जिसमें समस्त विश्व के संपोषित विकास का दर्शन शामिल है, पर्यावरण को भी अपने लक्ष्यों में समेटे हुए है, इसलिए आज की नौकरशाही भी पर्यावरणीय अनुकूलता प्राप्त कर रही है। प्रशासनिक संस्थाएँ जहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश को प्रभावित करती है वही उस पर्यावरण से खुद भी प्रभावित होती हैं। आज नौकरशाही पर भी दक्षता, मितव्ययिता तथा प्रभावशीलता प्राप्त करने का दबाव बढ़ा है। इसीलिए अधिकारीतंत्र के आकार की जगह गुणवत्ता एवं विशेषज्ञता पर जोर दिया जा रहा है। सूचना तकनीक के तीव्र विकास के कारण नौकरशाही की एक और नकारात्मक प्रवृति ''लालफीताशाही' पर भी लगाम कसा जा रहा है। लोकतांत्रिक मूल्यों, सिविल सोसाईटी की बढ़ती सक्रियता आदि के कारण नौकरशाही द्वारा अपनी शक्ति के बेजा इस्तेमाल पर भी नियंत्रण लगा है।[14]

काबिलेगौर है कि द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व तक नौकरशाही का मूल कार्य भांति व्यवस्था तथा नियमावली कार्य को बनाए रखना था। कालांतर में विकास प्रशासन की अवधारणा को बल मिला तथा प्रशासन का मुख्य कार्य विकास गतिविधियों को शीघ्रता व सफलतापूर्वक संचालित करना हो गया। इसी कारण से अब प्रशासन को विकास प्रशासन भी कहा जाता है। किन्तु विगत् कुछ दशकों में सुशासन की अवधारणा का प्रादुर्भाव भी इसी की सहयोगी अवधारणा के रूप में हुआ है तथा भूमंण्डलीकरण, उदारीकरण तथा बाजारीकरण ने आज नई प्रवृत्ति को जन्म दिया है जो विकास प्रशासन के साथ इसे पुनः नियामकीय कार्यों की ओर अग्रसर करती है। आज देश विकसित हो या विकासशील या अल्पविकसित, राज्य को नित नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है और उसके पास मौजूदा हथियार के रूप में कार्यकारी नौकरशाही या लोकसेवा है, जिससे उसे उन चुनौतियों से निपटना है, भले ही वह कैसी भी हो। आज नौकरशाही के समक्ष उत्तरदायी, पारदर्शी, संवेदनशील, लक्ष्योन्मुख, भागीदारी उन्मुख तथा ज्यादा प्रतिबद्ध बनने की चुनौती है जो उसकी परंपरागत मान्यताओं, नियमबद्धता, पदसोपानीक्रम, अवैयक्तिकता, तटस्थता और तार्किकता के विरूद्ध है।

प्रशासन में जवाबदेही एवं पारदर्शिता की मांग उठने से जटिलताएँ और अधिक गंभीर हो गई हैं। जैसे ही नागरिकों में समझ विकसित होती है तथा वे सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार होते हैं तब प्रशासन का नीति-शास्त्र एक नया आयाम तथा महत्व ग्रहण करता है। पिछले कुछ वर्षों से प्रशासन और राजनीति में भ्रष्टाचार से कार्यकुशलता की अत्यधिक हानि हुई है। सिविल सोसाइटी द्वारा विभिन्न स्तरों पर ये मांग जोरदार ढंग से उठी है कि राजनेताओं एवं अधिकारी वर्ग को नैतिकतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। प्रशासनिक निर्णयों में पारदर्शिता लाने हेतु न्यायपालिका भी काफी सक्रिय है। सूचना का अधिकार कानून तथा लोकसेवा गारंटी अधिनियम से समयबद्ध पारदर्शी निर्णय लेने की प्रवृति अधिकारी-तंत्र में बढ़ा है। इससे आमजन का विश्वास प्रशासन में बढ़ा है तथा उनकी परेशानी भी कम हुई है।

आजकल घरेलू निर्णयों को अंतर्राष्ट्रीय मंचों तथा संस्थाओं द्वारा लिए गए निर्णयों से संबद्ध किया जाता है तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, संसाधनों और राजनीतिक निर्णयों की ये भूमंडलीय शाखा-प्रशाखाएँ हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद, मानवाधिकारों की बढ़ती मांग, साइबर अपराध के साथ-साथ जनजातीय विकास, लैंगिक समानता, सामाजिक सुरक्षा, पर्यावरण प्रबंधन, वामपंथी अतिवाद, समावेशी विकास जैसे ज्वलंत मुद्दों की भरमार है जिससे प्रशासन को निबटना हैं तथा सर्वस्वीकार्य समाधान भी खोजना है। स्पष्ट है कि जनआकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के उफान के दौर में नौकरशाही की भूमिका, जबावदेही एवं चुनौतियाँ और बढ़ गई हैं। लेकिन भारत में नौकरशाही खुद संक्रमण के दौर से गुजर रही है जिससे सुशासन और विकास की प्रक्रिया प्रभावित होती है। प्रशासन में भ्रष्टाचार एवं पक्षपात भारतीय नौकरशाही की सबसे बड़ी बीमारी है जो विकास के मार्ग में अवरोध पैदा तो करती ही है, जनता के बीच इसकी नकारात्मक छवि भी प्रस्तुत करती है। आमलोगों के बीच ऐसी धारणा है कि राजनेता, नौकरशाह एवं ठेकेदार के बीच निहित स्वार्थ का गठजोड़ बन गया है जो विकास की राशि का बड़ा हिस्सा डकार जाता है। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने भी कहा था कि विकास में लिए निर्धारित राशि का मात्र 15 प्रतिशत ही जमीन तक पहुँच पाता है, शेष राशि बिचौलिए डकार जाते हैं। मशहूर कवि दुष्यंत कुमार ने ऐसे हालात पर क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा था –

''यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा''।

यह भ्रष्टाचार की वीभत्स तस्वीर पेश करता है। यही कारण है कि विकास की अधिकांश योजनाएँ कागजों पर काफी अच्छी प्रतीत होतीं हैं परंतु धरातल पर दम तोड़ देती हैं। यदि, स्वतंत्रता से अब तक विकास के नाम पर खर्च की गई सार्वजनिक निधि का आकलन करें तो पाएगें कि इतनी विशाल धनराशि के व्यय से निश्चय ही विकास हो गया होता लेकिन आजादी के 70 साल बाद भी देश में गरीबी,

कुपोषण, बेरोजगारी, लचर शिक्षा एवं स्वास्थ्य व्यवस्था का आलम है। एक चौथाई आबादी आज भी गरीबी रेखा के नीचे गुजर बसर कर रही है, 80 प्रतिशत आबादी की प्रतिदिन आमदनी 20 रू. से कम है, देश के 58 प्रतिशत संसाधनों पर मात्र एक प्रतिशत धनिकों का कब्जा है, विगत् 20 साल में आर्थिक तंगी की वजह से 3,18000 (तीन लाख अठारह हजार) किसानों ने आत्महत्या कर ली है, आदिवासियों ने हिंसक प्रतिरोध का मार्ग चुन लिया है और इन सबके मूल में विकास की गलत नीति एवं राजनीतिक-प्रशासनिक विफलता तो है ही, प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, लूट-खसोट एवं भाई-भतीजावाद भी एक बड़ा कारण है। काबिलेगौर है कि सरकार चलाने वाले नेता बहुत जानकार और विशेषज्ञ नहीं होते इसलिए राजनेताओं को लूट-खसोट का रास्ता नौकरशाह ही बताते हैं और फिर शक्ति व सत्ता के दुरुपयोग में राजनेता के साझीदार बन जाते हैं। स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार के मामले में नौकरशाही की जवाबदेही औरों की तुलना में ज्यादा है। इसीलिए वर्तमान केन्द्रीय नेतृत्व सबका साथ, सबका विकास के साथ-साथ *'न खाएगें न खाने देंगे'* की बात कहकर भ्रष्टाचार के प्रति जीरो टालरेंस की नीति पर चल रही है।

प्रशासनिक स्तरों की बहुलता नौकरशाही की कार्यकुशलता एवं दक्षता के मार्ग में दूसरी बड़ी बाधा है। भारतीय प्रशासन के बारे में बहुत पहले पॉल एपल्बी ने कहा था कि भारतीय प्रशासन में ब्रेक तो अनेक हैं लेकिन एक्सेलरेटर एक भी नहीं है। यह बात आज भी उतना ही सच है क्योंकि किसी भी काम को करने से पहले इतने विभागों तथा अधिकारियों से अनुमति लेनी पड़ती है कि वास्तव में काम हो पाना ही मुश्किल लगने लगता है। भारतीय नौकरशाही में स्तरों की संख्या अधिक होने के कारण संचिका लगातार एक मेज से दूसरी मेज का चक्कर लगाती रहती है। उदाहणार्थ सचिवालय में लिपिक -सहायक-अधीक्षक -उपसचिव -सहायक सचिव -अपर सचिव -संयुक्त सचिव- सचिव-प्रधान सचिव आदि के नौ स्तर होते हैं। जब भी कोई मामला सचिवालय पहुँचता है, उसे एक चक्र पूरा करने में 16 स्तरों से गुजरना पड़ता है और मंत्री तक पहुँचने एवं निर्णय होने में हफ्तों-महीनों लग जाते हैं जिस कारण से नौकरशाही की प्रभावशीलता एवं दक्षता दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज उदारीकरण एवं बाजारवाद के दौर में जहाँ त्वरित निर्णय करने की जरूरत है वहाँ नौकरशाही विफल सिद्ध होती है।[15]

भारतीय प्रशासन में विगत वर्षों में बहुत हद तक नौकरशाही का राजनीतीकरण हो गया है। पहले यह राज्य स्तर पर दिखाई पड़ता था लेकिन अब केन्द्रीय स्तर पर भी नौकरशाही गुटों में विभाजित प्रतीत होती है। राजनेता अपने मनमाफिक अधिकारियों की तैनाती अपने क्षेत्र एवं मंत्रालयों में करने हेतु दवाब बनाते हैं तो नौकरशाह स्थानांतरण, पदोन्नति एवं मलाईदार पदों पर तैनाती हेतु राजनेताओं से समझौता करने लगे हैं। फलतः पूरी प्रशासनिक मशीनरी ही राजनीति में रंगी प्रतीत होने लगी

है। प्रशासकों में किसी न किसी राजनेता को अपना 'गॉडफादर' स्वीकार कर उनके इशारों पर काम करने की आदत विकसित होती जा रही है। इसी तरह निष्ठावान और प्रतिबद्ध अधिकारियों को तटस्थ एवं ईमानदार अधिकारियों की योग्यता एवं वरिष्ठता लाँघकर पुरस्कृत किया जाने लगा है। इसीलिए पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन ने 1993 में भारतीय अफसरशाही को परिष्कृत वेश्या (Polished Callgirls)[16] कहकर पुकारा था जो राजनीतिज्ञों की चापलूसी एवं चाकरी में लगी रहती है। इससे सुशासन की प्रक्रिया प्रभावित होती है। मोरिस जोन्स ने भी लिखा है कि ''यदि प्रशासक मंत्री की जी-हजूरी करता है, प्रत्येक कार्य मंत्री को खुश करने के लिए करता है, उचित कार्य भी मंत्री की नाराजगी के डर से नहीं करता और इस प्रकार प्रशासन के मानदंडों को गिरा देता है। भारत में ऐसे अफसरों की कमी नहीं जो अपने दरबारी दृष्टिकोण के कारण मंत्रियों के पैर छूते हैं और उनके गलत कार्यों की आलोचना न करके उनका बेड़ा तो गर्क करते ही हैं, सुशासन की आत्मा को भी चोट पहुँचाते हैं''।[17]

भारत में अन्यायपूर्ण पदोन्नति प्रणाली की वजह से भी अधिकारियों का मनोबल गिरता है और कार्य प्रभावित होता है। पदोन्नति एक ऐसा पुरस्कार है जिसके द्वारा कर्मचारी के कार्य निष्पादन को सुधारा जा सकता है लेकिन भारत में अधिकांश पदोन्नतियाँ वरिष्ठता के आधार पर की जाती हैं। वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति देने का दोष यह होता है कि यह पुरस्कार न रहकर अधिकार बन जाती है फलतः उन सरकारी अधिकारियों में काम करने की भावना ही समाप्त हो जाती है क्योंकि उच्च अधिकारी द्वारा जो वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट लिखी जाती है वह अभी भी वैज्ञानिक व उचित मानदंडो के अनुरूप नहीं है। रिपोर्ट लिखते समय चापलूसी, आपसी संबंध, धर्म, जाति आदि तत्व भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इन रिपोर्टों के जरिए हो सकता है किसी उभरते हुए तथा उत्कृष्ट कर्मचारी का कैरियर बर्बाद हो जाए है।

इसी तरह मनमानीपूर्ण स्थानांतरण प्रणाली, भर्ती एवं प्रशिक्षण की दोषपूर्ण प्रणाली, नौकरशाहों की गरीब विरोधी एवं कुलीनतंत्रीय मानसिकता, निर्णय लेने के मामले में औपचारिकता पर जोर तथा लकीर का फकीर बने रहना, प्रशासकों में गाँव, गरीब, मजदूर, किसान से जुड़ाव एवं आत्मीयता का अभाव के कारण विगत् सात दशकों में नौकरशाही का मान-सम्मान समाज में घटा है तथा सुशासन का स्तर भी गिरा है।

अब यहाँ सवाल उठता है कि अधिकारी-तंत्र में किस प्रकार का बदलाव और सुधार लाया जाए जिससे सुशासन और विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। गौरतलब है कि विरासत में मिली ब्रिटिश प्रशासनिक प्रणाली में सुधार हेतु अनेक आयोग एवं समितियाँ अब तक गठित की जा चुकी है। अब तक दो प्रशासनिक सुधार आयोग

-1966 में प्रथम ए.आर.सी. तथा 2005 में द्वितीय ए.आर.सी. का गठन किया गया। वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाली द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने 2008 तक कुल 8 प्रतिवेदन समर्पित किए। कमिटी ने सूचना के अधिकार कानून को सुशासन का मास्टर चाभी बताते हुए उसे और प्रभावी बनाने पर जोर दिया। इसी तरह कमिटी ने प्रशासन को नागरिक केन्द्रित बनाने, ई-गवर्नेंस को बढ़ावा देने तथा प्रशासनिक नैतिकता को केन्द्रीय मूल्य बनाने पर जोर दिया। लोकसेवा में सुधार हेतु पी.सी. होता समिति का प्रतिवेदन (2004) काफी महत्वपूर्ण है। अपने प्रतिवेदन में समिति ने सिविल सेवा में सुधार हेतु 64 सुझाव दिए हैं। अपने प्रतिवेदन में समिति ने सिविल सेवा को ईमानदार, उत्तरदायी, तटस्थ तथा व्यावसायिक रूप से दक्ष बनाने की वकालत की है। कमिटी ने जोर देकर कहा कि यदि सिविल सेवा में तुरंत सुधार नहीं किया गया तो फौलादी ढांचे को जंग लग जाएगीं। समिति के कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नवत् हैं –

1. सिविल सेवा में बढ़ते भ्रष्टाचार पर चिंता प्रकट करते हुए समिति ने सिफारिश की है कि संविधान के अनुच्छेद 311 में संशोधन करके राष्ट्रपति व राज्य को इस योग्य बनाया जाये कि वे उन लोक सेवकों को सेवामुक्त या हटा सके, जो आय से ज्ञात श्रोतो से अधिक संपति रखते हैं या भ्रष्ट गतिविधियों में संलग्न है।
2. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम 1988 के तहत दोषी पाए गए अधिकारियों के खिलाफ विभागीय कार्यवाही करने से पहले ऐसे अधिकारियों के मामलों की जांच करने के लिए सभी विभागों में केन्द्रीय सतर्कता आयोग के अधीन विशेषज्ञ समितियों की स्थापना की जानी चाहिए।
3. सभी सिविल सेवकों की वार्षिक संपत्ति रिपोर्ट बेवसाइट पर पेश किया जाना चाहिए तथा भ्रष्ट नौकरशाहों द्वारा नाजायज तरीके से एकत्र की गई सपंत्ति को जब्त करने के लिए कठोर नियम बनाए जाने चाहिए। बिहार सरकार ने इस तरह का एक कानून बनाया है।
4. कमिटी ने यह भी सिफारिश की है कि 15 साल की सेवा पूरी करने के बाद अधिकारियों के कार्य निष्पादन का कठोर पुनर्निरीक्षण एवं मूल्यांकन किया जाए और जो लोकसेवक कसौटी पर खड़ा नहीं उतरे उसे सेवामुक्त कर दिया जाए।
5. सिविल सेवक अपनी सेवानिवृत्ति के अथवा त्याग-पत्र के तुरंत बाद किसी राजनीतिक दल का सदस्य बनकर चुनाव नहीं लड़े। इसके लिए कम से कम दो साल का विराम काल होना चाहिए।
6. समिति का कहना है कि निश्चित कार्यकाल के अभाव में लोकनीति को

प्रभावी ढ़ंग से लागू नहीं किया जा सका है। अतः किसी भी पद पर एक निर्धारित कार्यकाल हेतु नियुक्त किया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा इस संबंध में कानून बनाया जा चुका है।

7. ईमानदार, जवाबदेह एवं पारदर्शी कार्यप्रणाली हेतु अप्रासांगिक नियमों के स्थान पर नए तथा सरल नियम बनाने चाहिए तथा ई-गवर्नेंस को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

इसके अलावे निम्नलिखित सुझावों पर अमल करने से नौकरशाही की दक्षता एवं प्रभावशीलता में वृद्धि होगी –

1. अधिकारियों की किसी भी कार्य पर तैनाती करने से पहले उनकी पृष्ठभूमि व रूचियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि वे बेहतर निष्पादन दे सकें।
2. नौकरशाही के राजनीतिकरण को रोकने के लिए जरूरी है कि राजनेताओं को भी प्रशासनिक मामलों का प्रशिक्षण दिया जाए तभी वे प्रशासन की समस्याओं को समझ सकेंगे तथा बेहतर राजनीतिज्ञ-प्रशासक संबंध विकसित होंगे।
3. सुरेन्द्रनाथ समिति ने अखिल भारतीय सेवाओं में वरिष्ठता के साथ निष्पादन मूल्यांकन की एक से लेकर दस तक अंकों वाली ग्रेडिंग प्रणाली की सिफारिश की है। वास्तव में बेहतर निष्पादन मूल्यांकन के बिना आदर्श लोकसेवा को नहीं प्राप्त किया जा सकता।
4. उच्च पदों पर सामान्यज्ञों को नियुक्त किया जाए या विशेषज्ञों को, इस विवाद में उलझे बिना उन विभागों की बागडोर विशेषज्ञों को सौंप देनी चाहिए जिनमें अनुसंधान एवं विज्ञान की आवश्यकता है तथा सामान्यज्ञों के बीच में विशेषज्ञ बनाने के प्रयास हों और विशेषज्ञों को प्रशिक्षण देकर सामान्यज्ञ बनाने के भी प्रयास होने चाहिए ताकि इनके बीच की दूरी घटे।

दुर्भाग्य से प्रशासनिक सुधार हेतु दिए गए अधिकांश सुझाव एवं सिफारिशें राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में धूल फांक रहीं हैं। अतः सरकार को बिना देर किए प्रशासनिक सुधारों के लिए गठित आयोग, समितियों आदि के सुझावों को पूरी ईमानदारी से लागू करना चाहिए ताकि नौकरशाही को वैश्विक मांग एवं परिदृश्य के आलोक में सक्षम एवं प्रभावी बनाया जा सके। आज हमें ऐसे प्रशासक चाहिए जो समाज की जमीनी हकीकत से वाकिफ हो, जनआकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं पर खड़ा उतरने हेतु प्रतिबद्ध हो, सामाजिक दायित्वों के प्रति सचेत हो, जनहित में पारदर्शी निर्णय लेने हेतु कटिबद्ध हो, विकास एवं बदलाव के प्रति समर्पित हो तथा नवोन्मेशी हो तभी हम सुशासन एवं विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। गौरतलब है कि अधिकारी तंत्र ही सुशासन एवं विकास रूपी रथ का मुख्य सारथी है इसलिए सारथी का अपने

कार्यों में निपुण एवं निष्णात होना अनिवार्य है अन्यथा रथ गतिमान ही नहीं हो सकेगा। यह सुखद संयोग है कि वर्तमान केन्द्र सरकार शासन-प्रशासन में नवोन्मेश को बढ़ावा दे रही है, भ्रष्टाचार के प्रति जीरो टालरेंस की नीति पर कठोरता से कायम है। 'न्यूनतम सरकार अधिकतम शासन' सरकार का नारा है जो एक प्रकार से सुशासन की अभिव्यक्ति है। नौकरशाही को सक्षम, प्रभावी एवं जनोन्मुख बनाने हेतु 'रिफार्म, परफार्म एवं ट्रांसफार्म पर जोर दिया जा रहा है। प्रोन्नति को निष्पादन क्षमता (Performance) से जोड़ा जा रहा है ताकि अधिकारियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो। वर्तमान नेतृत्व की कार्यशैली पेशेवर है तथा उसके द्वारा सरकार में नई कार्यसंस्कृति पैदा कर प्रशासन को कार्पोरेट जामा पहनाने का प्रयास किया जा रहा है। मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, डिजिटल इंडिया, क्लींन इंडिया, ट्रांसपेरेंट इंडिया और ट्रांसफामिंग इंडिया जैसे नए-नए शब्द गढ़े जा रहे हैं जो बदलते एवं बढ़ते भारत की कहानी बयान कर रहे हैं और इन सबमें नौकरशाही की केन्द्रीय भूमिका है। स्पष्ट है कि सुशासन एवं विकास को केन्द्र में रखकर भारतीय नौकरशाही भी वैश्विक बदलाव के साथ कदमताल करने का प्रयास कर रही है तथा कार्य संस्कृति में बदलाव के लिए जरूरी कदम उठाए जा रहे हैं। 'आपकी सरकार आपके द्वार' कार्यक्रम के तहत अधिकारियों को ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं एवं चुनौतियों से रू-ब-रू होने तथा उसका समाधान निकालने का अवसर दिया जा रहा है। ऐसे में यह जरूरी हो गया है कि सरकार प्रशासन को कार्यकुशल, जनोन्मुखी एवं परिणामदायक बनाने के लिए बिना देर किए प्रशासनिक सुधारों को लागू करे। देश का सिविल सोसाइटी एवं मीडिया शासन-प्रशासन की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु लगातार प्रशासनिक सुधारों की बात कर रहा हैं लेकिन सुशासन की चाभी अधिकारियों की कार्यसंस्कृति एवं मानसिकता बदलने में निहित है। अन्य तथ्य तो स्वतः ही बदल जाएँगे। भारतीय प्रशासन में ऐसे उदाहरण भरे हैं जहाँ एक ही अधिकारी की कार्यशैली, ईमानदारी एवं सकारात्मक मानसिकता ने तस्वीर बदल कर रख दी। चुनाव आयोग जैसी नखदंत विहीन संस्था को टी. एन. शेषन जैसे एक अधिकारी ने कायापलट कर रख दिया। इस तथ्य की पृष्ठभूमि में यह बात निहित है कि सरकारी कार्मिकों की नकारात्मक मानसिकता सरकार की जटिल कार्य संस्कृति का नतीजा है और इस समस्या का कोई सरल समाधान नजर नहीं आता।

यह मुर्गी और अंडे की कहानी जैसी स्थिति है कि इन दोनों में से किसे पहले बदला जाए मानसिकता को अथवा कार्य संस्कृति को। लेकिन इस सवाल का जवाब यही होगा कि नौकरशाही को खुद ही कार्य संस्कृति में बदलाव का वाहक बनना चाहिए और इसी तरह प्रशासनिक सुधार लाने से पहले उनकी मानसिकता बदलने के प्रयास किए जाने चाहिए तभी सुशासन और नौकरशाही एक-दूसरे के पूरक सिद्ध हो सकेगें। स्पष्ट है कि भारत में व्यवस्था रूपी हिमालय से सुशासन रूपी गंगा

प्रवाहित करने हेतु नौकरशाही को अहिर्निश भागीरथ प्रयास करने की दरकार तो है ही, प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्कृति में भी बदलाव अपेक्षित है तभी नतीजे जल्द हासिल होंगे। संतोष का विषय है कि वर्तमान केन्द्रीय नेतृत्व अपेक्षित सुधार एवं बदलाव हेतु प्रतिबद्ध एवं कृत संकल्पित दिखाई दे रही है तथा सुशासन एवं समावेशी विकास इनके नीति के केन्द्र में है इसलिए अगले कुछ वर्षों में देश की सूरत एवं सीरत में गुणात्मक एवं धनात्मक बदलाव की संभावना बलवती नजर आ रही है। देश एक बार फिर जगतगुरू बनने की राह पर अग्रसर प्रतीत होती है।

संदर्भ सूची

1 शर्मा, एम. पी., लोकप्रशासन–सिद्धांत एवं व्यवहार, 1976, पृ.14.

2 मार्क्स एफ. एम. (संपादित) एलिमेंट्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1969, पृ. 52.

3 बाटा के. डे.: ब्यूरोक्रेसी, डबलपमेंट एंड पब्लिक मैनेजमेंट इन इंडिया, 1978, पृ. 02

4 क्राइजर मार्टिनः बेवर एंड दि रियलिटी, 1992, पृ. 29.

5 तथैव, पृ. 66.

6 तथैव, पृ. 66

7 मनुस्मृति, नवम अध्याय, 324वॉ श्लोक

8 कौटिल्य : अर्थशास्त्र, प्रथम अध्याय 19वॉ श्लोक, पृ. 39.

9 विलसन, वुडरोः दि स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, 1886, पृ. 39.

10 गुडनाउ : पालिटिक्स एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 1990, पृ. 16.

11 मिनोचा ओ. पी. : गुड गवर्नेंस न्यू पब्लिक मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव, आइ जे पी ए, जुलाई–सितम्बर, 1985, पृ. 272.

12 भट्टाचार्य, मोहित : लोक प्रशासन के नए आयाम, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ. 264.

13 जैन, आर. बी., भारतीय समाज, अधिकारी तंत्र और सुशासन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006, पृ. 106.

14 सिंह, वी. पी., भारत में सुशासन की चुनौतियाँ, योजना, जनवरी 2013, पृ.11.

15 गुप्ता एवं सिंह, सुशासन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011, पृ. 155.

16 हिन्दुस्तान टाइम्स, पटना संस्करण (दैनिक), 8 अगस्त, 1993.

17 भाम्बरी सी.पी. : भारत में लोकप्रशासन, पृ. 51.

सुशासन की अवधारणा–एक विश्लेषण

बिन्दा कुमारी

सुशासन एक सर्वकालिक, सार्वभौमिक, आदर्शात्मक और नागरिक केन्द्रीय अवधारणा है, जो मानव सभ्यता के विकास क्रम से ही शासन के विशिष्ट रूपों में लोक कल्याण की अवधारणा के कारण विद्यमान रही है। वर्तमान लोकतंत्र के साथ तो यह अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। इसमें लोकतंत्र के अधिक अर्थवान एवं समृद्ध होने की संभावना रहती है। सुशासन के अर्न्तगत अच्छा बजट, सही प्रबन्धन, कानून का शासन, शासन में पारदर्शिता, उर्जा , भोजन, जल, सुरक्षा, महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों, जनजातीय समूहों, मानसिक एवं शारीरिक रूप से बाधित समूहों के मानवाधिकार आदि विषय आते हैं। इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि प्रशासनिक प्रणाली न सिर्फ संस्थान और इसके कानूनी नियामक यांत्रिकी के अनुकूल हो, बल्कि बाजार नागरिक समाज और लोकहित को समर्पित हों। यह अवधारणा लोकप्रशासन को अधिक सक्षम एवं प्रभावकारी बनाती है। आज विश्व के सभी नागरिक अपने राष्ट्र, राज्य और इसके अंगों से उच्च गुणवत्ता के प्रदर्शन की अपेक्षा रखते हैं।

सुशासन शब्द का जन्म शासन शब्द में 'सु' उपसर्ग लग जाने से होता है। 'सु' उपसर्ग शुभ, अच्छा, मंगलकारी आदि भावों को दर्शाता है। यह अंग्रेजी के 'गुड गवर्नेंस' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण हैं, अर्थात बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था को सुशासन का नाम दिया गया है। मिनोचा के शब्दों में 'सुशासन वह है जहाँ राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता की उपलब्धि, कानूनपालक, नौकरशाही, उत्तरदायित्व, सूचना में पारदर्शिता, प्रभावी एवं कुशल प्रशासन तथा सरकार एवं समाज में सहयोग से है।'[1]

इस अवधारणा की उत्पत्ति मूलतः पश्चिमी देशों में हुई। आज पश्चिमी देशों का राजनीतिक ढांचा, आर्थिक विकास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उनका व्यवहार, मानवाधिकार, उनकी न्यायव्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य ढांचे आदि सुशासन के आदर्श हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी जो सुशासन की कल्पना दी है जैसे लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, स्वास्थ्य, गरीबी-उन्मूलन, बच्चों वृद्ध, महिलाओं के संरक्षण, मानवाधिकार, श्रम के नियम, व्यापार के नियम, न्यायप्रणाली आदि सारे

मॉडल उन्ही देशों द्वारा तैयार किये गये हैं।

सुशासन में जनकल्याण के तत्व हैं। लोकतंत्र के आने से पूर्व जनकल्याण एवं सुशासन के संबंध में चिंतकों, मनीषियों एवं राजनेताओं ने गहन विचार दिये। यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य, राजा, न्यायव्यवस्था आदि का विस्तार से वर्णन किया है। प्लेटो के सुशासन का अर्थ था 'न्याय पर आधारित शासन।' अरस्तु के चिंतन में राज्य, संविधान, कानून, शासन, नागरिक आदि का उस समय के सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन हैं। अरस्तू ने कहा था कि ''राज्य कुलों एवं ग्रामों का ऐसा समुदाय है जिसका उद्देश्य पूर्ण एवं आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति है।'' उन्होंने कहा था कि ''राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है परन्तु उसका अस्तित्व सद्जीवन की सिद्धि के लिए बना रहता है।'' उन्होंने राज्य को एक सकारात्मक अच्छाई बताया तथा कहा कि ''राज्य का कार्य बुरे कामों एवं अपराधों को रोकना ही नहीं, बल्कि मानव को नैतिकता एवं सदगुणों के मार्ग पर आगे बढ़ाना है।''[2] आज के सन्दर्भ में प्लेटो और अरस्तू के विचारों की आलोचना की जाती है, परन्तु सुशासन की दृष्टि से उनके दर्शन की प्रासंगिकता आज भी हैं। इसके बाद हाब्स, लोंक, रूसो, बेंथम, मिल, लास्की एक लम्बी श्रृंखला उन विचारकों की है जिन्होंने तत्काल समय और परिस्थितियों के अनुसार सुशासन की कल्पना की। हाब्स ने व्यक्ति के कल्याण और सुरक्षा पर बल दिया तथा राज्य को निरंकुश अधिकार इस दृष्टि से दिए कि वह समाज में शांति स्थापित रखे, व्यक्तियों का जीवन व सम्पत्ति सुरक्षित रखे। लॉक ने कहा कि राजसत्ता जनसहमति पर हीं आधारित हो सकती है। उन्होंने साम्राज्यवाद और निरंकुश शासन प्रणाली का प्रबल विरोध किया। लॉक के विचार सर्वाजनिक हित तथा व्यक्तिगत कल्याण से जुड़े थे। रूसों के दर्शन में व्यक्तिवाद, समाजवाद और लोकतंत्र के बीज छिपे थे। रूसो स्वतंत्रता, समानता का पुजारी था। मिल के स्वतंत्रता संबंधी विचार, प्रतिनिधि शासन संबंधी विचार तथा महिलाओं के स्वतंत्रता संबंधी विचार सुशासन के ही आधार रहे हैं। 'अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम' एवं 'फ्रांस की राज्यक्रांति' ने भी समानता स्वतंत्रता एवं भातृत्व के नारों के अन्तर्गत मनुष्य के सर्वागींण विकास के नये परिवेश का उद्घाट्न किया।

सुशासन का गहरा एवं विशद् विचार भारतीय मनीषियों के द्वारा दिया गया। हमारे धर्मग्रन्थों में अलग-अलग प्रश्नों के उत्तर में राज्य, राजा, प्रजा, अधिकारी सबके कर्त्तव्यों का जो वर्णन है, वही वस्तुतः सुशासन है। उदाहरण के लिए बाल्मिकी रामायण में चौदह वर्ष वनवास न जाने की सलाह पर श्रीराम कहते है कि–

सत्यमेवानृषंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।

अर्थात हिंसात्मक धर्म ही राजा का सनातन धर्म है। राज्य सत्यात्मक है, सत्य में ही जगत प्रतिष्ठित है। यानि राज्य सत्य के साथ कभी समझौता न करे और सत्य

के परिपालन में हिंसा भी न हो। महाभारत के शांतिपर्व में युद्धिष्ठिर कहते हैं कि 'धर्मानुवर्ती राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह अपना प्रिय परित्याग कर वही करे जिसमें लोकहित हो।[3] आज शासन की निष्पक्षता के लिए इससे बड़ा मापदंड नहीं हो सकता।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तराखण्ड में जिस रामराज्य का वर्णन किया है उसमें सुशासन के सभी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने कहा है किः–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज नहि काहुहि व्यापा।
सब नर करहि परस्पर प्रीति।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना।

हिन्दू संस्कृति में राम द्वारा किया गया आदर्श शासन रामराज्य के रूप में प्रसिद्ध है। वर्त्तमान समय में रामराज्य का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट शासन या आदर्श शासन के रूपक (प्रतीक) के रूप में किया जाता है। रामराज्य को लोकतंत्र का परिमार्जित रूप माना जा सकता है। भारत में अंग्रेजी शासन से मुक्ति के बाद गांधीजी ने ग्राम स्वराज के रूप में रामराज्य की कल्पना की थी। गांधीजी ने स्वराज को वैदिक शब्द और अवधारणा माना । क्योंकि स्वराज शासन का सविस्तार वर्णन ऋग्वेद में पाया जाता है। ऋग्वेद में लिखा है कि–

व्यचिष्टे बहुपाच्ये स्वराज्ये या यतेमहि।[4]

यानि बहुतों द्वारा किया जानेवाला शासन में जनता की भलाई का हम प्रयत्न करते रहेंगे। इसी तरह की राजव्यवस्था का वर्णन अर्थववेद में पाया जाता है। अर्थववेद में कहा गया हैं कि–

विराड़ वा इदम्ग्र आसीत।

यानि ऐसा राज जहां राजा या कोई शासक नहीं हो। जनता स्वयं अपना प्रबन्ध करती हो। उसे उसमें 'वैराज्य' कहा गया। 'वैराज्य' में शासक नहीं बल्कि स्वंय जनता समस्त प्रबंध करती हो की कल्पना की गयी थी, जो सुशासन है। वैदिक स्वराज में सुशासन का अर्थ संकुचित भाव से रहित बहुसम्मत राज्य व्यवस्था संचालित करनेवाले शासन से है। ऋग्वेद में सभा, समिति, गण, बिदथ जैसी जनजातीय संस्थाए वैदिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। उस समय के पंचायतों की असीमित शक्तियों का भी जिक्र मिलता है।[5] वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि प्रत्येक गॉव आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई होता था, राजा का उसमें हस्तक्षेप का अधिकार नही था। अथर्ववेद (8,9,10,12) के

अनुसार जनशक्ति ही उत्क्रमित होकर ग्राम सभा, राष्ट्रसमिति और मंत्रीमंडल में परिणत हुई।

कौटिल्य ने तो राज्य को सर्वोच्च स्थिति प्रदान करने के लिए राजा की निरंकुशता पर ही प्रतिबंध लगाया। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में लिखा–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रिय हितंराज्ञा प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

अर्थात प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है प्रजा के हित में ही उसका हित। जो कुछ राजा को प्रिय हो उसे हीं वह अपना हित न समझे जो प्रजा को प्रिय हो उसे ही वह अपना हित समझे। उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि–

पक्वं पक्व मिवारामात फलं राज्यादवाप्नुयातः।

आमेच्छेद मया दान, वर्णयेत कोप कारकम्।।[6]

अर्थात राजा प्रजा से इस तरह कर संग्रह करे, जैसे माली बगिया से पके फल लेता है। प्रजा जिस कर को देने में असमर्थ हो उसे कच्चे फल की तरह ग्रहण न करे क्योकि अशक्त प्रजा से कर संग्रह उसमें असंतोष तथा विद्रोह पैदा करता है। कौटिल्य के वक्तव्य में लोकहित की भावना भरी है। कौटिल्य ने कहा की राजा या राज्य के अधिकारी जैसे होंगे प्रजा भी वैसी हीं होगी। इसलिए वे राजा की योग्यता से लेकर अधिकारियों की नियुक्ति तक का विस्तृत मापदण्ड पेश करते हैं। भारतीय परम्परा में जिनके हाथों में शासन संचालन का दायित्व है उसकी पात्रता पर विचार करते हुए राजा के चरित्र, प्रजा के लिए प्रतिबद्धता और धर्मशास्त्र में निष्ठा पर अधिक जोर दिया गया है। धर्म को सामान्य हित का आधार बताया गया तथा उसे श्रेष्ठ जीवन पद्धति का द्योतक। जिसे शुद्ध कर्तव्य से जोड़ा गया है। वास्तव में सुशासन का विचार कितना भी विस्तृत हो जब तक वह सक्षम एवं शुद्ध कर्म करने वाले व्यक्तियों के हाथों में नही होगा, कभी भी साकार नही हो सकता। राज्य को न्यायपालक एवं सर्वकल्याणकारी बनाना हीं सुशासन है।

आधुनिक भारतीय नेताओं और विचारको में महात्मा गाँधी को सुशासन संबंधी भारतीय परम्परा का वारिस कहा जा सकता है। उन्होने अपनी पुस्तक 'हरिजन' में कहा है कि ''साररूप में लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिए सभी की आम भलाई के लिए लोगों के सभी वर्गो के समस्त भौतिक, आर्थिक आध्यात्मिक संसाधनों के जुटाव की कला और विज्ञान।'' [7] उनका लक्ष्य 'सर्वोदय' था। उन्होंने सामान्य हित, सम्पूर्ण हित कि बात कही। उन्होंने कहा था की समाज में सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक असमानताएं दूर हों तथा सबका विकास हो। गाँधीजी विख्यात अंग्रेज साहित्यकार रस्किन की अमर रचना 'Unto this last' से प्रभावित होकर अंत्यज्य के चतुर्दिक विकास कि परिकल्पना की। उन्होने कहा कि स्वाधीनता नीचे से शुरू होनी चाहिए।

''सबसे उत्तम, त्वरित और कुशल उपाय नीचे से निमार्ण का है प्रत्येक गांव को एक स्वाबलम्बी गणतन्त्र बनाना होगा। तदानुसार प्रत्येक गांव एक गणतन्त्र या पंचायत होगी। जिसे समस्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। [8] इन सबमें गाँधीजी के सुशासन की मूल भारतीय परिकल्पना सत्य, अहिंसा और नैतिकता का प्रमुख स्थान है। उन्होंने कहा कि हमें स्वराज सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना है, उन्हीं के द्वारा उसका संचालन करना है तथा उन्हीं के द्वारा हमें उसे कायम रखना है। उन्होंने लिखा की जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा, बिल्कुल उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी। अहिंसा का विज्ञान ही हमें शुद्ध लोकतंत्र की ओर ले जा सकता है।[9] इस प्रकार भारत का स्वाधीनता संघर्ष न केवल अंग्रेजों से आजादी का था बल्कि भारत को विश्व के समक्ष एक आदर्श शासन, आदर्श देश के रूप में साकार करने का था। पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार बल्लभभाई पटेल सबके विचारों के मूल में सुशासन की कल्पना एक सी थी।

अतः आजादी के बाद शासन की अवधारणा को निर्णायक रूप में स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले महात्मा गाँधी और संविधान निर्माताओं की आकांक्षा के अनुरूप ही निर्मित किया गया। 15 अगस्त 1947 को भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने प्रसिद्ध संबोधन में जनप्रतिनिधियों एवं सेवियों के समक्ष उनके दायित्वों का उल्लेख करते हुए कहा कि ''गरीबी, अज्ञानता और बीमारियों को खत्म करने के लिए समृद्ध, लोकतांत्रिक और प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थान की रचना आवश्यक है। जो महिलाओं और पुरुषों के जीवन में न्याय और परिपूर्णता सुनिश्चित करे।[10] संविधान निर्माण के प्रारंभ में ही 13 दिसम्बर 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के उद्देश्य प्रस्ताव को रखा उसके द्वारा संकल्प लिया कि ''भारतवर्ष के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक, न्याय, पद, अवसर एवं कानून सार्वजनिक नैतिकता के अधीन प्राप्त होंगे। उन्होंने उदघोषणा की कि अल्पसंख्यक वर्गों, पिछड़ी जातियों व कवाइली जातियों के हितों की समुचित व्यवस्था की जायगी। उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि यह भारतीयों के साथ एक इकरारनामा है और इसलिए यह एक शपथ की तरह है जिसे हम पूरा करना चाहते हैं।[11]

भारत ने 26 जनवरी 1950 को संविधान 'सत्यमेव जयते' शब्द के साथ अंगीकार किया। इसके पीछे की कल्पना थी कि राज्य यानि शासन हमेशा सत्य के अनुपालन और विजय प्राप्ति के लिए काम करती रहेगी। '*सर्वे भवन्तु सुखीनः* तथा *सर्वे सन्तु निरामयाः*' और '*वसुधैव कुटुम्बकम*' संविधान निर्माताओं के आदर्श रहे। अतः संविधान की प्रस्तावना में ही देश के आधारभूत दर्शन, मूल आस्थाएँ तथा नागरिकों की आकांक्षाओं का वर्णन कर दिया गया। प्रस्तावना में सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के आदर्श को स्थापित किया गया। गाँधीजी

ने कहा भी था मै एक ऐसे संविधान के लिए प्रयत्न करूँगा, जो भारत को सब तरह के दासत्व और आश्रय से मुक्त कर दे। संविधान के अध्याय तीन के 'मौलिक अधिकार' एवं अध्याय चार के 'नीति निर्देशक तत्व' में सुशासन एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए विशेष प्रबंध किये गये। मौलिक अधिकार के अर्न्तगत कानून के समक्ष समानता, समाजिक भेदभाव को समाप्त करना, शिक्षा एवं सार्वजनिक नौकरियों में समान अवसर उपलब्ध कराने तथा अस्पृश्यता का अंत करने के प्रयास किये गये। इसके अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार भी प्रदान किये गये हैं जिसके अंतर्गत अभिव्यक्ति की आजादी प्रदान की गई है। अनु. 23 शोषण के विरूद्ध अधिकार जिसमें महिलाओं के क्रय-विक्रय, मनुष्यों के व्यापार, बच्चों के द्वारा कठोर श्रम करने पर रोक एवं बेगार पर प्रतिबंध लगाया गया है। अनु. 25 से 28 में सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता और 29-30 में शिक्षा, संस्कृति, भाषा एवं नीति के संरक्षण का अधिकार दिया गया है। राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धान्त द्वारा भी राज्यों को ऐसा निर्देश दिया गया है जिससे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय की स्थापना की जा सके। संविधान के भाग IV में वर्णित ये प्रावधान अदालतों द्वारा प्रवर्तनीय नही है, लेकिन जिन सिद्धांतों पर वह आधारित है, वे शासन के लिए मौलिक दिशानिर्देश हैं, जिनको राज्य द्वारा कानून तैयार करने और पारित करने में लागू करने की आशा की जाती है। नीतिनिर्देशक सिद्धांत के अनु. 38 के अनुसार आय असमानता से लड़ने और व्यक्तिगत गरिमा को सुनिश्चित करने के लिए राज्य के सकारात्मक कर्त्तव्यों पर जोर दिया गया है। अनु. 44 देश में कानूनों में विसंगतियों को दूर करके सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने, अनु. 45 द्वारा छः से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, अनु. 47 द्वारा व्यक्ति के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, अनु. 48। द्वारा पर्यावरण की रक्षा, अनु. 50 द्वारा न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया है।[12] इसके अलावे संविधान के अध्याय 16 के 13 अनु. में (अनु. 330 से 342 तक) में ऑग्ल भारतीय समुदाय, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण के विशेष प्रावधानों की व्यवस्था की गई है। संविधान में अनु. 350, 350(क), 350(ख) में भाषागत अल्पसंख्यक वर्गो के लिए भी विशेष व्यवस्था है।[13] परन्तु यह भी सच है कि आरक्षण दलित एवं पिछड़े वर्गो के लिए संक्रमणकालीन समाधान हीं हो सकता है स्थायी पाक्षेय नहीं।

राज्य के नीतिनिर्देशक सिद्धान्त के अनु. 40 में कहा गया है कि 'राज्य ग्रामपंचायतों को संगठित करने के लिए आवश्यक कदम उठायेगी और वे सारे अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान करेगी जिससे ग्राम पंचायत स्वशासन की एक इकाई के रूप में कार्य कर सके।' ग्राम पंचायत की स्थापना इस बुनियादी धारणा पर आधारित थी कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता की अधिक से अधिक भागीदारी हो। गाँधीजी के

ग्रामराज के लक्ष्य को आजादी बाद स्थापित किया गया। परन्तु स्वशासन की उस व्यवस्था में स्वशासन की काया तो थी पर आत्मा नही। अतः संविधान का 73वां संशोधन ग्रामों के लिए तथा 74वां संशोधन शहरी निकायों के लिए बहुत युगान्तकारी है जिसके द्वारा स्थानीय स्तर पर ग्रामपंचायत एवं नगर निकायों को संवैधानिक दर्जा मिला जिसमें दलितों एवं महिलाओं की सुनिश्चित भूमिका बढ़ी जो सुशासन के मानकों में से महत्वपूर्ण मानक है।

इसके अलावा अनेकों कार्यक्रम एवं महात्वाकांक्षी योजनाएँ भी लोकहित में जारी किये गये। परन्तु इन मूलभूत अधिकारों एवं योजनाओं का लाभ जनता को तभी मिल सकेगा जब राष्ट्र और राज्य उच्च गुणवत्ता का प्रदर्शन करेंगे।

आधुनिक काल में सुशासन शब्द 1889 के दशक में प्रविष्ट हुआ। विश्व बैंक की रिपोर्ट ''राज्य से बाजार तक'' में सर्वप्रथम सुशासन शब्द का प्रयोग किया गया। विश्व बैक द्वारा एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों को प्रदान किये गये विकास ऋणों को उपयुक्त ढंग से प्रयोग सुनिश्चित करने हेतु सुशासन को एक शर्त के रूप में रखा गया। इस रिपोर्ट में सुशासन हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के उपयुक्त प्रबंधन, नया विधिक ढ़ाचा, उत्तरदायित्व तथा पारदर्शिता व सूचना के अधिकार जैसे सुधारों को अमल में लाने पर बल दिया गया था। विश्व बैंक ने अपनी द्वितीय रिपोर्ट 'विकास और अभिशासन' 1992 में पेश की जिसमें सुशासन के निम्न तत्त्वों का उल्लेख किया-शासन का अधिक लोकतांत्रिक स्वरूप, मानवीय और भौतिक साधनों का उपयुक्त दोहन तथा विकासोन्मुख व दीर्घकालिक नीतिनिर्माण व क्रियान्वन हेतु क्षमताओं का निर्माण आदि।[14]

कालप्रवाह ने समाज, समुदाय, देश की गति भी बदली है। भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण, औद्योगिक विकास, तकनीकी विकास, पूँजीवाद, बाजारवाद के युग में सुशासन एवं नैतिक मूल्यों की सर्वोच्चता बहुत हीं महत्वपूर्ण हो गई है। क्योंकि सुशासन की अनुपस्थिति में विकास के लक्ष्य को कभी प्राप्त नही किया जा सकता, चाहे वह विकास का आर्थिक पहलू हो, सामाजिक अथवा मानवीय हीं क्यों नहीं। अतः सुशासन के द्वारा लोकप्रशासन में कुछ नये तत्त्वों का समावेशन किया गया।

मनीला अभिघोषणा 1999 में सुशासन हेतु अग्रलिखित तत्त्वों की पहचान की गई – सहभागिता, पारदर्शिता, समता, सहनशीलता, सेवान्मुखता, विधि का शासन, सतत् विकास विनियामक अभिशासन आदि।[15] वास्तव में एक सक्षम ओर प्रतिबद्ध शासन के बिना वैश्विक चुनौतियों का सामना नहीं किया जा सकता। कैपिटल इनफ्लो को बढ़ाने के लिए जरूरी है कि देश का धरेलू वातावरण उसके अनुकूल सहज और उदार हो। इस वातारण के निर्माण के लिए बिजनेस इथिक्स, विश्वस्तरीय बुनियादी ढांचा, वस्तु और श्रम बाजार की क्षमता, आधुनिक प्राद्योगिकी की उपस्थिति, शैक्षणिक गुणवत्ता, वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की उपलब्धता, माइक्रोइकोनोमिक वातावरण,

अन्वेषण क्षमता, संस्थानों की गुणवत्ता, भ्रष्टाचार की स्थिति, श्रमिक नियोक्ता का संबंध, कानून और व्यवस्था की स्थिति, बाजार की उदारता, कार्पोरेट जबाबदेही की भी जरूरत है। परन्तु भारत की तस्वीर इस आधार पर बहुत अच्छी नही दिख रही। निजी क्षेत्र के कर्ज देनेवाली विश्वबैंक की शाखा 'इन्टरनेशनल फाइनेन्स कारपोरेशन' द्वारा 2011-12 की 'डुइंग बिजनेस 2012 में जो रिर्पोट दिया गया उस रिर्पोट में भारत 185 देशों की सूची में 132वें पायदान पर है। जबकि व्यावसायिक वातावरण में वह उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने में पीछे नही है।[16]

यद्यपि सुशासन को मजबूत करने के लिए संविधान का 73वां और 74वां संशोधन द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को स्थापित किया गया। शासन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। मनरेगा (महात्मा गाँधी रोजगार गारन्टी योजना) अधिनियम 2005 प्रारम्भ की गई जिससे गरीबों की जिन्दगी जुड़ी है। इसके तहत घर-घर के एक व्यस्क सदस्य को एक वित्त वर्ष में कम से कम 100 दिन का रोजगार दिये जाने की गारन्टी है। प्रशासन के कार्यो में जबावदेही एवं पारदर्शिता लाने हेतु 'सूचना के अधिकार' कानून 2005 लागू किया गया। सुशासन एवं स्वस्थ लोकतंत्र का निर्माण सूचना के अधिकार के बिना अधूरा था। सूचना का अधिकार अधिनियम नागरिकों को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह सरकार से कुछ भी पूछे या कोई भी सूचना मांग सके, किसी सरकारी निर्णय की प्रति ले सके, किसी भी सरकारी दस्तावेज का निरीक्षण कर सके। सूचना का अधिकार भारत के लिए अनन्त संभावनाओं से भरा एक हथियार साबित हो रहा है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 द्वारा भारत सरकार द्वारा लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में 75 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों की 50 प्रतिशत आबादी को रियायती दरों पर खाद्यान उपलब्ध कराने का प्रावधान है। इस व्यवस्था का उद्देश्य खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करना है। सुशासन का उद्देश्य भी सामाजिक अवसरों के साथ गरीबी उन्मूलन है। संविधान के अनु. 45 में छः से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है। 2009 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा विधेयक भारतीय संसद द्वारा पारित होने से बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। 86 वां संशोधन द्वारा 21(क) में प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है जो 1 अप्रैल 2010 से जम्मू-कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू है। शिक्षा का अधिकार व्यक्ति एवं समाज के समग्र विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है।[17]

सुशासन की अवधारणा निविर्वाद रूप से नागरिकों के जीवन के अधिकार, स्वाधीनता एवं उनके जीवन से जुड़ी है। लोकतंत्र में कानून के शासन द्वारा ही यह सब सुनिश्चित किया जा सकता है। कानून के शासन का मतलब कोई भी कानून से ऊपर नही है। इस ढाँचे के अन्तर्गत कानून न सिर्फ अपने नागरिकों को स्वाधीनता

की गारन्टी देता है बल्कि सरकार की निरंकुशता को नियंत्रित करते हुए सरकार को कानून के अन्तर्गत निणर्य लेने को मजबूर करता है। भारत के संविधान द्वारा भी विधि के शासन को सुनिश्चित किया गया है। यह ऐसा स्थापित तथ्य है जिसके समक्ष सभी समान हैं। यह औपचारिक एवं क्रियाविधिक न्यायप्रणाली में खासतौर से सुरक्षित किया गया है, जिसके कारण ही स्वतंत्र न्यायपालिका शासन के लिए महत्वपूर्ण औजार की तरह है। भारत में भी कानून के स्तर पर किसी भी प्रशासनिक कार्य के जाँच का अन्तिम अधिकार न्यायालय को दिया गया है। अगर कोई भी प्रशासनिक एवं कार्यपालक कारर्वाई कानून की कसौटी पर खड़ी नहीं उतरती तो सक्षम न्यायालय में उचित मामला दाखिल करने के साथ हीं उस कार्रवाई पर रोक लगायी जा सकती है। इस प्रक्रिया का आवश्यक उपसिद्धान्त हीं 'न्यायिक सक्रियता' के रूप में जाना जाता है। कार्यपालिका की उपेक्षा के कारण भारत में बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं दायर की जाती है।

इस प्रकार आधुनिक भारत में संविधान के माध्यम से सुशासन की अवधारणा कों वैधता प्रदान करने का प्रयास किया गया हैं और सुशासन में विद्यमान अनेक विशेषताएं, सहभागिता, विधि का शासन, पारदर्शिता, न्यायिक सक्रियता आदि की व्यवस्था की गयी है। परन्तु इसके बाद भी सुशासन के लक्ष्य से हम दूर हैं। आज भारत में सुशासन के बीच सरकार एवं प्रशासन को आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, साम्प्रदायिकता तथा रूढ़िवादिता जैसी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सामाजिक दूरियों के साथ जातिगत एवं धार्मिक उन्माद भी बढ़ा है। क्षेत्रीयतावाद एवं क्षेत्रीय पार्टियों ने भी राजनीतिक वातावरण को दूषित किया है। राजनीति में भी न केवल गिरावट आयी है बल्कि सुशासन में आयी बाधाओं का केन्द्र बन गया है। प्रो. सुभाष कश्यप ने सुशासन में आयी बाधाओं का जिक्र करते हुए राजनीति में मूल्यों की भारी गिरावट, राजनीतिज्ञ नौकरशाह व्यापारिक वर्ग में अपराधिक सांठ-गाठ, संसद में राजनीतिज्ञों के गिरते स्तर, एवं संसदीय प्रणाली की असफलता को कारण माना है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की आत्महत्या भी एक बड़ी समस्या के रूप में उभरी है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, में किसानों के आत्महत्या का सिलसिला रुक नहीं रहा। किसानों के खेतों का खर्च लगातार बढ़ रहा है। छोटे किसान आर्थिक तंगहाली की सूरत में कर्ज लेते हैं। मानसून की विफलता, सूखा, कीमतों में वृद्धि, ऋण का अत्यधिक बोझ, किसानों के लिए एक दुष्चक्र पैदा कर देते हैं, जिस दबाव को वे सह नहीं पाते और आत्महत्या कर लेते हैं। यदि भारत जैसे कृषिप्रधान देश में किसानों की ऐसी अवस्था हो तो विकास, प्रगति सुशासन की बातें बेमानी होगी।

भारत में उच्च स्तर का भ्रष्टाचार शासन की गुणवत्ता को बढ़ाने में सबसे बड़ी

रुकावट है। जाहिर है कि भ्रष्टाचार विश्वव्यापी समस्या है। परन्तु विकसित देशों में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए प्रभावी उपाय किये गए जो सफल रहे। ट्रांसपेरेसी इन्टरनेशनल की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार के मामले में भारत 176 देशों की सूची में 79वें स्थान पर हैं।[19] आमतौर पर यहाँ भ्रष्टाचार के अर्न्तगत सरकारी ठेके देने, तमाम सरकारी सेवाओं के लिए रिश्वत, ट्रासंफर, पोस्टिंग के लिए होने वाली बिक्री, राशनवाली वस्तुओं की कालाबाजारी, चुनावी चन्दे आदि आते हैं।

चितंकों ने चुनाव प्रणाली को भी भ्रष्टाचार की जननी बताया है। मंहगे चुनाव लड़कर सरकार में आनेवाले राजनीतिज्ञों की प्राथमिकता किसी भी तरह से धन अर्जित करके पैसे वसूल करने और आने वाले चुनावों के लिए धनसंग्रह और पार्टी की आर्थिक ताकत बढ़ाने की है। इसमें सन्देह नहीं है कि भारत के निवार्चन आयोग ने निष्पक्ष चुनावों का आयोजन करने में अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की है। अब ऐसे चुनावों को सफल बनाने की जरुरत है जिसमें संसाधनों से वंचित आदमी भी आमचुनाव की प्रक्रिया का हिस्सा बन सके। महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की भी जरुरत है।

1970 के बाद आपराधिक तत्व भी राजनीति में खुले रूप से प्रवेश करने लगे है। अपराध और राजनीति का रिश्ता विकराल रूप धारण कर चुका है, जिसके परिणाम घातक हुए हैं। ऐसे में सुशासन की बात करना व्यर्थ हैं।

प्रो. श्रीराम माहेश्वरी ने राजनीतिक दलों की क्रमबद्ध वृद्धि को भी सुशासन के लिए घातक बताया हैं। लोग व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु दलों का निर्माण करते हैं और स्वार्थ में ही वे समय-समय पर निष्ठा बदलते रहते हैं।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए सूचना एवं संचार प्राद्योगिकी के विस्तार की जरूरत हैं। प्रशासन में संचार प्राद्योगिकी का विस्तार ही ई-प्रशासन हैं। ई-प्रशासन द्वारा नागरिक अधिकारिता को प्रोत्साहित करने, सेवा वितरण में सुधार करने, पारदर्शिता बढ़ाने तथा प्रशासन में सुधार लाने जैसे लक्ष्य हासिल किए जा सकते हैं। भारत में सूचना प्राद्योगिकी अधिनियम 18 अक्टूबर 2000 से देश में लागू कर दिया गया है।

राजनीतिक प्रशासनिक परिवेश को प्रभावित करनेवाले कारकों में नागरिक समाज प्रमुख है। राज्य की शक्ति पर नियंत्रण रखने शासन प्रणाली में व्यापक भ्रष्टाचार को रोकने एवं प्रजातंत्र के संचालन में आई त्रुटियों को दूर करने के लिए नागरिक समाज एक महत्वपूर्ण घटक है। नागरिक समाज के सशक्त होने से स्थानीय शक्ति बढ़ती है, प्रशासनिक व्यवस्था ज्यादा उत्तरदायी बन सकती है और लोकतांत्रिक सहभागिता भी बढ़ती है।

सरकार एवं प्रशासन की क्षमता बढ़ाने एवं लोकतंत्र को सफल बनाने में

मीडिया की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। स्वतंत्र, निष्पक्ष, तटस्थ एवं बहुआयामी मीडिया जनहित में कार्य करते हुए पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चत करके तथा बुराईयों के खिलाफ समर्थन जुटाकर सुशासन की स्थापना में अहम भूमिका निभा सकता है।

2014 के चुनाव के पश्चात भारतीय राजनीति में एक परिवर्तन दिखाई पड़ा है। इस परिवर्तन की मुख्य धारा यह है कि लगभग तीन दशकों पश्चात किसी एक राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हुआ है। इस सरकार ने "Minimum Government and Maximum Governance" का नारा दिया है। सरकार ने प्राद्योगिकी पर बल देते हुए प्रौद्योगिकी से युक्त डिजीटल इंडिया, स्टार्ट अप इंडिया, स्कील इंडिया जैसी योजनाओं की शुरूआत की हैं। इसके अलावे सरकार की जन धन योजना, अटल पेंशन योजना, उज्जवला योजना, उजाला योजना, आदर्श ग्राम योजना, स्वच्छ भारत योजना, आदि भी सुशासन के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

परन्तु कार्यान्वन हीं सुशासन की कुंजी हैं। इन सभी योजनाओं के कार्यान्वन के लिए आवश्यक है कि हमारी सोच, हमारा प्रशिक्षण उसके अनुकूल हो। गुणवत्तापूर्ण जनशक्ति समय की मांग है। सरकार, प्रशासन एवं नागरिक समाज सबको एक साथ जवाबदेही लेने की जरूरत है।

सन्दर्भ

1. आर. सी. शेखर– इथिक्स – आई.जे.पी.ए. 1998, पृ.–355
2. सी.एल.वेपर– पॉलिटिकल थॉट, लन्दन, 1969 पृ. 68–69
3. अवधेश कुमार– योजना – सुशासन की अवधारणा, जनवरी 2013, पृ.–41
4. ऋग्वेद– सूक्त 66 6/4
5. रामशरण शर्मा– प्राचीन भारत में राजनीतिक विचारएवं संस्थायें– राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000 पृ.–340.–42
6. डा. बी. एल. फाड़िया – राजनीतिक विचारक–साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा–2007 पृष्ठ–267
7. गाँधी–हरिजन–4.8.1940 पृ.143
8. वही–पृ.–240
9. वही–पृ.–290
10. बाल्मिकी प्रसाद सिंह–भारत में सुशासन की चुनौतियाँ-योजना-जनवरी 2013 पृ.–07
11. डी.डी.बसु–भारत का संविधान एक परिचय–प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया 1998 पृ. 20–21
12. डा.ए.पी. अवस्थी– भारतीय शासन एवं राजनीति लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2016 पृ. 95–110

13. hi.m.wikipedia.org
14. पूनम कुमारी–सुशासन एवं मीडिया-योजना-जनवरी 2013, पृ.13
15. Sresthnibandh.blogspot.com-सुशासन–26 जनवरी 2015
16. डुइंग बिजनेस रिपोर्ट (आई.एफ.सी.) 2012
17. www.bhartiyasiksha.com, 06/06/2010
18. सुभाष कश्यप-टुवार्डस गुड गर्वनेन्स-आई.जे.पी.ए. पृ.318
19. www.transparancy.org

प्रशासनिक संरचना एवं सुशासन की चुनौतियाँ : कौटिल्य की दृष्टि से

रुचि त्यागी

जिस प्रकार मस्तिष्क विभिन्न इन्द्रियों एवं अंगों के सहयोग से कार्य करता है, उसी प्रकार सपरिषद् राजा (या शासनाध्यक्ष) को कुशल शासन के लिए प्रशासन तन्त्र एवं विभिन्न विभागों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। प्रशासन की कुशलता एवं सक्रियता के लिए आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारी योग्य, अनुभवी, कर्त्तव्य-पारायण और निष्ठावान हो तथा राजकीय आदेशों का समुचित पालन एवं क्रियान्वयन किया जाए। लिखित आदेशों को शासन का पर्याय मानते हुए कौटिल्य का कथन है, *''शासने शासनमित्याचक्षते''* (2.X. 1) अथवा 'Government is writ and writ government'. इसीलिए शासन की कुशलता के उद्देश्य से मंत्रियों, विभागाध्यक्षों एवं अन्य अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता एवं विश्वसनीयता पर तो बल दिया ही गया, साथ ही दुर्ग एवं जनपद की शक्ति, सामर्थ्य एवं आवश्यकतानुसार समर्थ राज-कर्मचारियों की नियुक्ति का परामर्श भी दिया गया। पिरामिड के आकार की विभागों की अधिक्रमिक व्यवस्था (hierarchical system) राज्य की सभी सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक गतिविधियों को नियंत्रित करती थी। इसके शीर्ष पर 'स्वामी' अवस्थित था। इन प्रशासनिक अधिकारियों के सतत् निरीक्षण, परीक्षण के लिए भी विशेष प्रावधान किए गए, जिससे प्रशासन की विभिन्न चुनौतियों, अकर्मण्यता, उदासीनता अथवा भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों से बचाया जा सके तथा राज्य को कुशल एवं सफल प्रशासन की नींव प्रदान की जा सके।

कौटिल्य ने शासन व्यवस्था (राज्य शक्ति) के चार आधार स्वीकार किये और इन्हें ज्ञान की चार शाखाओं के रूप में दर्शाया : आन्वीक्षकी (अर्थात् सांख्य, योग और लोकायत का ज्ञान) (कौटिल्य, 1. II. 13); त्रयी (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद में उल्लिखित धर्म, चारों वर्ण एवं चारों आश्रमों संबंधी विधान) (1. III. 1&15); वार्ता (अर्थात् कृषि, पशुपालन, खनिज एवं वाणिज्य आदि की व्यवस्था) (1. IV. 1&3) तथा दण्डनीति (अर्थात् राज्य की सर्वोच्च सत्ता) (1. IV. 5)। आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता

के ''योगक्षेम'' का साधन राज्य (दण्ड) को घोषित करते हुए कहा गया कि दण्डनीति ही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली (अलब्धलाभार्था), प्राप्त पदार्थों की रक्षा करने वाली (लब्धपरिरक्षिणी), सुरक्षित पदार्थों में वृद्धि करने वाली (रक्षित विवर्धनी), और वृद्धि को प्राप्त हुए पदार्थों को उचित स्थानों में लगाने वाली (वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी) होती है (1. IV. 6)।

प्रशासनिक सुविधा के लिए समूचा साम्राज्य सम्राट (स्वामी) के अधीन केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में था। उसके अंतर्गत सात प्रान्तों का उल्लेख मिलता है। इनमें पांच-उत्तरापथ, अवन्तिराष्ट्र, दक्षिणापथ, कलिंग एवं प्राच्य आज भी लोकप्रिय है(अल्तेकर, पृ. 209-210)। इस संघीय संरचना में प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी। इन प्रान्तों के अन्तर्गत 'जिला' और 'जिला' के अन्तर्गत ग्रामीण एवं नगरीय केंद्र थे। हर स्तर पर राज-अधिकारियों एवं कर्मचारियों का जाल बुना गया था। इन सभी स्तरों पर नीतियों के क्रियान्वयन के लिए विभिन्न विभाग बनाए गए थे। सभी विभागों का लेखा जोखा केन्द्रीय सचिवालय में संजो कर रखा जाता था। समूचे लेखे-जोखे का निरीक्षण एवं परीक्षण किया जाता था।

मंत्री परिषद् अथवा परामर्शदाता मण्डल

राज्य में सुचारू व्यवस्था के संचालन के लिए कौटिल्य ने सभी सात प्रकृतियों (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र) को व्यसन मुक्त रखने का सुझाव देते हुए अन्य सभी प्रकृतियों पर आई विपत्तियों के प्रतिकार और उनकी उन्नति का दायित्व स्वामी (राजा) अथवा शासनाध्यक्ष पर डाला है। (8.I.12-18) प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से अमात्यों के दायित्व निर्वहन एवं कुशलता की कौटिल्य द्वारा की गई व्याख्या अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यहां कौटिल्य का मत था कि राज्य में सभी कार्यों का शुभारम्भ अमात्यों द्वारा ही किया जाना चाहिए। जनपद के दुर्ग तथा कृषि आदि कार्यों की सिद्धि, ''योगक्षेम'' का साधन, आपत्तियों का प्रतिकार, निर्जन प्रदेशों में लोगों को बसाना और वृद्धि करना, अपराधियों को दण्ड देना तथा राजकर का संग्रह करना आदि सभी कार्य अमात्यों के द्वाराही किये जाते थे। (8.I.23-24) इन विस्तृत कार्यों की दृष्टि से कांगले (Kangle, पृ. 133) का मत है कि सप्तांग के दूसरे अंग के रूप में वर्णित 'अमात्य' में सभी पार्षद (Councillors) अथवा विभागाध्यक्ष शामिल प्रतीत होते हैं।

कौटिल्य ने गुप्तचरों की नियुक्ति के सन्दर्भ में राजा के 18 तीर्थ (अष्टादश तीर्थ) का उल्लेख किया (1. XII. 22) तथा वरीयताक्रम में उनके वेतन के अनुसार उन्हें वर्गीकृत किया। 48,000 पण अधिकतम वेतन वर्ग में शामिल थे (5. III. 4)

(i) ऋत्विक (Sacrificial Priest)

(ii) आचार्य (the teacher)

(iii) मंत्री / महामंत्री (the Prime Minister)

(iv) पुरोहित (the high priest or Royal Chaplain)

(v) सेनापति (the Commander of Army)(2.XXXIV, 12-14)

(vi) युवराज (the Heir Apparent)

उपर्युक्त छः राज्याधिकारी अन्तरंग सलाहकारों (Inner-Cabinet) के रूप में कार्य करते थे। कांगले (पृ. 194) का कहना है कि इनमें से मंत्री, पुरोहित, सेनापति एवं युवराज का बार-बार इसी क्रम में उल्लिखित होना (1.XII.8, 5.III.4, 9.III.13) इनके राजकार्योंमें क्रमिक महत्व को दर्शाता है। राजभवन में शान्ति एवं संतोष बनाए रखने के लिए राजमाता और राजमहिषी (पटरानी) को भी इसी वर्ग में शामिल किया गया। इस प्रावधान को स्त्रियों के सम्मानपूर्ण स्थान का द्योतक भी कहा जा सकता है।

24,000 पण के वेतनमान के दूसरे वर्ग में निम्नलिखित का उल्लेख किया गया (5. III. 6) :

(i) दौवारिक (द्वार-रक्षा का मुख्य अधिकारी (Chief of Palace Attendant)

(ii) अन्तर्वंशिक (अन्तःपुर का रक्षक वत Chief of Kings Guards or the Harem)

(iii) प्रशस्त (आयुधाध्यक्ष जायसवाल (291) के अनुसार यह कारागाराध्यक्ष Minister-in-Charge of Prison) के रूप में था।

(iv) समाहर्त्ता (धान्य-कर वसूल करने वाला प्रधान अधिकारी or the Collector General)

(v) सन्निधाता (भण्डागाराध्यक्ष अथवा कोषाध्यक्ष or the Chamberlain)

तीसरे वर्ग में सम्मिलित अधिकारियों को 12000 पण दिए जाते थे (5. III. 8):

(i) कुमार (the Prince)

(ii) कुमार माता (Queens or nurse of Prince)

(iii) नायक (the Chief Constable or the Generalissimo)

(iv) पौर (the Officer Incharge of the town)

(v) व्यावहारिक (Superintendent of Law or Commerce)

(vi) कार्मान्तिक (the Suprintendent Manufactures orMine)

(vii) मंत्रिपरिषद् अध्यक्ष (President of the Councillors of Ministers)

(viii) राष्ट्रपाल (Superintendents of Country parts or Home Defence)

(ix) अन्तपाल (Superintendents of boundaries or frontiers)

उपर्युक्त तीन वर्ग बौद्धवाङ्मय, रामायण एवं शुक्रनीति के अनुरूप तीन प्रकार के मंत्रियों अथवा सलाहकारों (श्रेष्ठ, मध्यम एवं निम्न) को दर्शाते हैं। (जायसवाल/ Jayaswal,पृ. 292)

वेतनमान के वरीयता क्रम के अनुसार उल्लिखित अन्य राज-कर्मचारियों की सूची में शामिल थेः शिल्पियों के निरीक्षक (श्रेणी मुखिया), हाथी, घोड़ों और रथों के निरीक्षक तथा प्रदेष्टा (कण्टक रोधन अधिकारी) (5. III. 10) पत्त्य (पैदल) सेना के अध्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओं के अध्यक्ष, लकड़ी और हाथियों के जंगलों के निरीक्षक (5. III. 12); रथ चलाना सिखाने वाले, गज शिक्षक, चिकित्सक, अश्व-शिक्षक, मुर्गे, सूअर आदि पालने वालों का अध्यक्ष (5. III. 13) हाथ देखकर भूत-भविष्य बताने वाले, शकुन बताने वाले, ज्योतिषी, पुराणों की कथा कहने वाले, सारथी, स्तुति पाठक, पुरोहित के भृत्य, सुरा आदि के अध्यक्ष (5. III. 14) शिल्पकार, पादात (तलवार आदि खेलने में चतुर), हिसाब रखने वाला, लेखक (5. III. 15)। इनके उपरान्त राज्य की सेवारत् अनेक भृत्यों, गुप्तचरों एवं कर्मचारियों की वृहद् सूची दी गई।

स्पैलमैन (Spellman, पृ.87) का मत है कि यह सूची मंत्रियों की सूची प्रतीत नहीं होती। मौर्यकाल में प्रशासन तन्त्र काफी समुन्नत हो चुका था। मैगस्थनीज ने भी कई प्रकार के राज कर्मचारियों का उल्लेख किया है। इनमें कुछ निरीक्षक (Overseers) तथा कुछ पार्षद (Councillors) तथा निर्धारक (Assessors) कहे जा सकते हैं।

अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक अधिकरणों के विश्लेषण के आधार पर भण्डारकर (Bhandarkar, पृ.60) का मत है कि कौटिल्य द्वारा उल्लिखित 'अमात्य' सम्मिलित रूप से प्रशासकों एवं कार्यकारी अधिकारियों (dministrators and executive officials) को दर्शाते हैं। जहां तक मन्त्रिपरिषद् की संरचना का प्रश्न है, कौटिल्य ने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का उल्लेख करते हुए कहा है कि –मनु के द्वारा 12 मंत्रियों की मंत्री-परिषद का सुझाव दिया गया। वृहस्पति ने 16 मंत्रियों का प्रावधान किया। शुक्राचार्य ने 20 अमात्यों की मंत्रि-परिषद् का परामर्श दिया। जबकि कौटिल्य का मत था कि कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए (1. XV. 54-56)।

कौटिल्य ने मंत्रियों से मन्त्रणा के संबंध में यह सलाह दी है कि राजा को अन्य मंत्रियों के संयुक्त परामर्श से कार्य करना चाहिए (1. XV. 37)। क्योंकि एक अकेले मंत्री की सलाह गलत भी हो सकती है; दो मंत्री आपस में मिलकर राजा को वश में कर सकते हैं और अधिक संख्या में मंत्रियों से सलाह लेना कठिनता पैदा करता है,

क्योंकि उनकी सम्मति भिन्न-भिन्न होने पर निर्णय कठिन हो जाता है; उनकी सरकार बड़ी होने पर विषय की गोपनीयता बनाए रखना मुश्किल होता है और उनमें फूट की सम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता (1. XV. 38-46)

आधुनिक काल में मंत्री एवं विभागाध्यक्ष में भिन्नता दिखाई देती है। सामान्यतः सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित एवं विख्यात लोगों के संसद या व्यवस्थापिका में निर्वाचित होने पर मंत्रियों के रूप में नियुक्त किया जाता है। प्राचीन भारत में यह भिन्नता उतनी सटीक नहीं थी। कई बार वरिष्ठ मंत्री पदोन्नत होकर सेनाध्यक्ष या सेनापति (Commander-in-Chief) बन जाता था।

प्रशासनिक संरचना

जिस प्रकार मस्तिष्क विभिन्न इन्द्रियों एवं अंगों के सहयोग से कार्य करता है, उसी प्रकार सपरिषद् राजा (या शासनाध्यक्ष) को कुशल शासन के लिए प्रशासन तन्त्र एवं विभिन्न विभागों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। प्रशासन की कुशलता एवं सक्रियता के लिए आवश्यक है कि प्रशासनिक अधिकारी योग्य, अनुभवी, कर्त्तव्य-पारायण और निष्ठावान हो तथा राजकीय आदेशों का समुचित पालन एवं क्रियान्वयन किया जाए (आल्तेकर / Altekar, p. 188)। लिखित आदेशों को शासन का पर्याय मानते हुए कौटिल्य का कथन है, ''शासने शासनमित्याचक्षते'' (2.X. 1) अथवा 'Government is writ and writ government'. इसीलिए शासन की कुशलता के उद्देश्य से मंत्रियों, विभागाध्यक्षों एवं अन्य अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता एवं विश्वसनीयता पर तो बल दिया ही गया, साथ ही दुर्ग एवं जनपद की शक्ति, सामर्थ्य एवं आवश्यकतानुसार समर्थ राज-कर्मचारियों की नियुक्ति का परामर्श भी दिया गया (5. III. 1)। पिरामिड के आकार की विभागों की अधिक्रमिक व्यवस्था (hierarchical system) राज्य की सभी सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक गतिविधियों को नियंत्रित करती थी। इसके शीर्ष पर 'स्वामी' अवस्थित था(कृष्णराव / Krishna Rao, p. 200)। इन प्रशासनिक अधिकारियों के सतत् निरीक्षण, परीक्षण के लिए भी विशेष प्रावधान किए गए, जिससे प्रशासन की विभिन्न चुनौतियों, अकर्मण्यता, उदासीनता अथवा भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों से बचाया जा सके तथा राज्य को कुशल एवं सफल प्रशासन की नींव प्रदान की जा सके।

अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार नामक द्वितीय अधिकरण में निम्नलिखित विभिन्न प्रशासनिक विभागाध्यक्षों का उल्लेख किया गया है :

(i) *अक्षपटल अध्यक्ष* : आय व्यय का प्रधान निरीक्षक अधिकारी (2.VII. 1);

(ii) *उत्तराध्यक्ष* : (विभिन्न विभागों के अध्यक्षों का निरीक्षण करने वाला (2. IX. 33-34)।

(iii) *कोषाध्यक्ष अथवा सन्निधाता* : भण्डागाराधिपति (भण्डागार और उसमें संग्रहित मणि, मोती, फल्गु, चंदन, कुप्य आदि द्रव्यों पर नियंत्रण करने वाला (2.XI. 1)। इसे कोषगृह (भण्डारघर), पण्यगह (राजकीय विक्रेय वस्तुओं संबंधी) कोष्ठगार (अन्न संबंधी, कुप्य गृह (वन्य उपज संबंधी), आयुधागार (अस्त्र-शस्त्र संबंधी) तथा बंधनागार (कारागृह) संबंधी आगार का प्रधान भी कहा गया।

(iv) *आकराध्यक्ष (खन्यध्यक्ष)* : (खान, खनिज, खदान आदि का अध्यक्ष) (2.XII. 1, 34)।

(v) *लोहाध्यक्ष* : (तांबा, सीसा, त्रपु, वैकृन्तक, आरकूट, वृत्त, कंस, ताल तथा अन्य प्रकार के लोहे का अध्यक्ष (2.XII. 25-26)।

(vi) *लक्षणाध्यक्ष* : (टकसाल का अध्यक्ष-चांदी और तांबे के सिक्कों का निरूपण) (2.XII. 27)।

(vii) *लवणाध्यक्ष* : (लवण या नमक का नियंत्रक) (2.XII. 36-46)।

(viii) *सुवर्णाध्यक्ष* : ('अक्षशाला' में सोने, चांदी आदि के संशोधन का निरीक्षण करने वाला अधिकारी (2.XIII. 1)।

(ix) *कोष्ठागाराध्यक्ष* : अनाज, धान्य, तेल, घी, नमक आदि खाने योग्य पदार्थों के संग्रह तथा उनके रक्षण हेतु बनाए गए कोष्ठागार का अध्यक्ष(2.XV. 1)।

(x) *पण्याध्यक्ष* : बिक्री योग्य राज द्रव्य (पण्य) के संग्रह, व्यापार एवं आयात-निर्यात संबंधी अधिकारी (2.XVI. 1)।

(xi) *कुप्याध्यक्ष* : चंदन, बांस, छाल आदि 'कुप्य' के निरीक्षण, संग्रहण, व्यापार संबंधी अध्यक्ष (2.XVII. 1)।

(xii) *आयुधागाराध्यक्ष* : सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र संबंधी अध्यक्ष (2. XVIII. 1)।

(xiii) *पौतवाध्यक्ष (मानाध्यक्ष)* : नाप-तोल का संशोधन एवं नियंत्रण करने वाला राजकीय अधिकारी (2.XIX. 1)

(xiv) *शुल्काध्यक्ष* :राज्य को दिए जाने वाले शुल्क, कर, चुंगी आदि के कार्य पर नियुक्त किया गया प्रधान राज्याधिकारी (2.XXI. 1)।

(xv) *सूत्राध्यक्ष* : ऊन, कपास आदि तैयार किए गए सूत की कताई, बुनाई संबंधी कार्य के लिए नियुक्त प्रधान राज्याधिकारी (2. XXIII. 1)।

(xvi) *सीताध्यक्ष* : कृषि संबंधी सभी कार्यों के निरीक्षण के लिए नियुक्त अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहा गया। कृषि शास्त्र, कृषि भूमि का निरीक्षण, बीज, वर्षा, आदि सभी का नियंत्रण-परीक्षण सीताध्यक्ष को सौंपा गया (2.XXIV. 1)।

(xvii) *सुराध्यक्ष अथवा मद्याध्यक्ष* : गुड़, मधु एवं पिट्ठी आदि से बनी सभी प्रकार

की 'सुरा' (शराब) के बनवाने एवं व्यापार आदि से संबंधित अध्यक्ष (2.XXV. 1.)।

(xviii) *सूनाध्यक्ष अथवा प्राणिवधाध्यक्ष* : भक्ष्य प्राणियों के वध-स्थान का अध्यक्ष (2.XXVI.1.)।

(xix) *गणिकाध्यक्ष* : अपने रूप सौन्दर्य से जीविका करने वाली स्त्रियों को गणिका कहा गया और उनकी व्यवस्था करने के लिए नियुक्त राजकीय अधिकारी 'गणिकाध्यक्ष' कहलाया (2.XXVII. 1)।

(xx) *नावध्यक्ष* : नौकाओं के 'कर' आदि वसूल करने वाला नावध्यक्ष कहलाया तथा मछली, शंख, मोती आदि सामुद्रिक वस्तुओं के व्यापार का पूरा प्रबंध भी उसे ही सौंपा गया(2.XXVIII. 1)।

(xxi) *पत्तनाध्यक्ष* : तटीय नगर का अध्यक्ष अथवा बन्दरगाह एवं तटीय नगर का व्यवस्थापक (2.XXVIII. 9)।

(xxii) *गौड़ध्यक्ष* : दुधारू पशु जैसे गाय, भैंस आदि के निरीक्षण तथा पालन आदि का प्रबन्ध करने वाला प्रधान राजकर्मचारी गौ-अध्यक्ष कहलाया (2.XXIX. 1)।

(xxiii) *अश्वाध्यक्ष* : सभी राजकीय घोड़ों का निरीक्षण करने वाला प्रधान राजकीय अधिकारी अश्वाध्यक्ष कहलाया (2.XXX. 1)।

(xxiv) *हस्त्यध्यक्ष* : सभी राजकीय हाथियों का प्रबंध करने वाला प्रधान राजकीय अधिकारी हस्त्यध्यक्ष कहा गया (2.XXXI. 1)।

(xxv) *रथाध्यक्ष* : सेना में काम आने वाले रथों का अध्यक्ष (2.XXXIII. 1)।

(xxvi) *पत्यध्यक्ष* : पैदल सेना का प्रधान अधिकारी (2.XXXIII. 1)। :

(xxvii) *मुद्राध्यक्ष* : व्यावहारिक लेखक (सीमा पर आवागमन अथवा आदान-प्रदान) में राजकीय चिन्ह के साथ मुद्रित 'मुद्रा' या पासपोर्ट का प्रबंध, निरीक्षक और नियंत्रण करने वाला राजकीय अधिकारी मुद्राध्यक्ष कहलाया (2.XXXIV.1)।

(xxviii) *विवीताध्यक्ष* : चारागाह अथवा बंजर भूमि (Waste Land) का प्रधान व्यवस्थापक राज-कर्मचारी (2.XXXIV. 6)।

(xxix) *समाहर्ता (Revenue Collector)* : दुर्ग, जनपद, खान, जंगल, व्रज, व्यापारी मार्ग आदि सम्पूर्ण आय-स्थानों से सब तरह की आय को इकट्ठा करने वाले और जनपद का प्रबंध करने वाले प्रधान राजकीय अधिकारी को समाहर्ता कहा गया (2.XXXV.1 तथा 1.X.21)।

(xxx) *नागरिक (अथवा नगराध्यक्ष)* : नगर का प्रबंध करने वाला प्रमुख अधिकारी नागरिक कहा गया (2.XXXVI.1 तथा 1.X.21)।

(xxxi) *धर्मस्थ* : नारगरिक व्यवहार, विवाह, स्त्री धन, पृथकत्व, दाय भाग

(उत्तराधिकार), सम्पत्ति (वास्तु विषय), ऋण, दास, क्रय-विक्रय, दान आदि से संबंधित व्यवहार, (इकरारनामा, शर्त्त आदि) संबंधी कार्यों का प्रबंध एवं निर्णय करने वाले राज्य अधिकारियों को 'धर्मस्थ' कहा गया(3.I. 1-2. तथा 1.X.20)।

(xxxii) *द्यूताध्यक्ष* : नियत स्थान पर द्यूत (जुआ) खेलने का प्रबन्ध करने वाले राज अधिकारी को द्यूताध्यक्ष कहा गया। जानवरों का मुकाबला करवा कर अथवा विद्या एवं शिल्प का मुकाबला करवाकर जुआ-खेल का प्रबन्ध भी इसमें शामिल था (3.XX. 1)।

(xxxii) *प्रदेष्टा (4.I. 1)* : कण्टकशोधन अर्थात् शिल्पियों (4.I.) दैवीय आपत्तियों (4.II) व्यापारियों (4.II) दुष्टों (4.III 51-52) आदि प्रजा–पीड़क व्यक्तियों से प्रजा की रक्षा संबंधी प्रबन्ध के लिए नियुक्त किए गए राज-अधिकारी 'प्रदेष्टा' कहा गया। इनके लिए 'वामात्याः' अर्थात् मंत्रियों या अमात्यों के गुणों से युक्त होना आवश्यक माना गया। प्रजा-पीड़कों की विभिन्न गुप्तचरों द्वारा जांच और पहचान करवाने में परामर्श भी दिया गया। (4.IV.3 तथा 4.V & VI)

द्वितीय अधिकरण के छब्बीसवें अध्याय में समाहर्ता, सन्निधाता आदि को उत्तम अध्यक्ष; पौतवाध्यक्ष आदि को मध्यम; तथा सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष आदि को अधम श्रेणी का अध्यक्ष कहा गया। कांगले (पृ. 202) ने इन सभी अध्यक्षों को चार भागों में वगीकृत किया है : 1. राजा के सभी द्रव्यों को नियंत्रित करने वाले 'सन्निधाता' के सहायक अध्यक्ष; 2. राज्यगत संस्थाओं (establishments) के नियंत्रक अध्यक्ष जैसे अश्वाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष आदि; 3. खनिज, उद्योग, कृषि संबंधी अध्यक्ष, तथा 4. व्यापार संबंधी अध्यक्ष।

अल्तेकर (पृ.188) की दृष्टि में अर्थशास्त्र यह दर्शाता है मौर्यकाल में प्रशासनिक सचिवालय पूर्णतः विकसित एवं संगठित हो चुका था। अध्यक्षों के एक वरिष्ठ सहायक को 'लेखक' (लिखित परमादेश (हुक्मनामा) जारी करने वाला (Superintendent of Writ) कहा जाता था;जो कि लेखे-जोखे की व्यवस्था (system of accounts) के लिए उत्तरदायी था। (वी.पी. वर्मा / V.P.Varma, पृ.63)। ये 'लेखक' केवल मात्र लिपिक (Clerk) नहीं थे, वरन् अमात्यों से अपेक्षित गुणों से युक्त उच्च अधिकारी थे। उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे हर तरह के आचार-विचारों को जान सके, शीघ्रता के साथ सुन्दर वाक्य-योजना कर सकें, सुन्दर अक्षर लिख सकें, सब तरह के लेख लिखने एवं पढ़ने में समर्थ हो। (2.X. 4-5) पहले के दस्तावेज को समझ सके, ताकि इसका नए लेख, आदेश या दस्तावेज से कोई विरोधाभास न हो; (2.X. 61) अर्थात् सब शास्त्रों को अच्छी तरह जान कर और उनके प्रयोगों को समझ कर सटीक, प्रभावपूर्ण एवं विवेकपूर्ण दस्तावेज तैयार करने का सुझाव दिया गया (2.X. 65)।

विभिन्न विभागाध्यक्षों के लिए कौटिल्य ने अमात्य की तरह गुणों का प्रावधान करते हुए कहा (2.IX.1) कि अध्यक्षों को उनकी शक्ति के अनुसार ही विभिनन कार्यों के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। अमात्यों के लिए वर्णित शक्तियों में शामिल है (1.IX.1) : अपने देश में उत्पन्न हुए कुलीन, जो बुराइयों से हटाया जा सके; अथवा जिसके बंधु बांधव भी श्रेष्ठ हों; जो हाथी घोड़े आदि पर चढ़ने, रथ चलाने, युद्ध करने तथा गाने-बजाने की विविध विधाओं में निपुण हो; अर्थशास्त्र को जानने वाला; स्वाभाविक बुद्धि से युक्त, स्मरणशक्ति सम्पन्न, चतुर, मधुर और मुक्त बोलने वाला, दबंग, प्रतीकार और प्रतिवाद करने में समर्थ; उत्साही तथा प्रभावशाली; क्लेशों को सहन करने वाला; पवित्र हृदय; सब के साथ मधुर व्यवहार करने वाला; स्वामी में दृढ़ अनुराग रखने वाला; शील, बल, आरोग्य तथा धैर्यशाली, निरभिमानी तथा स्थिर स्वभाव वाला; सौम्य आकृति, तथा स्त्री, भूमि आदि के निमित्त शत्रुता न करने वाला होना चाहिए। कौटिल्य ने इन गुणों से युक्त अध्यक्षों को नियुक्त करने के उपरान्त इनकी सदा परीक्षा करवाने का परामर्श दिया है। (1.IX. 1)

कौटिल्य केवल राज्य के अधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार से ही चिंतित नहीं थे, वरन सार्वजनिक जीवन से जुड़े सभी व्यसनों को दूर करना चाहते थे। (4.II) इसीलिए निर्माताओं, व्यापारियों, भ्रष्ट अधिकारियों एवं न्याय व्यवस्था में पाए जाने वाले व्यसनों को भी नियंत्रित करना चाहते थे; मेहता/Mehta, पृ. 98)। इसी उद्देश्य से अर्थशास्त्र में निगरानी एवं नियंत्रण रखने के लिए गुप्तचर व्यवस्थातथा अपराध को रोकने लिए व्यवस्थित दण्ड-व्यवस्था का प्रावधान किया गया।

प्रशासन के निरीक्षण–परीक्षण हेतु गुप्तचर व्यवस्था

प्रान्तीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय प्रशासन तंत्र पर निगरानी एवं नियंत्रण रखने का कार्य केंद्रीय सचिवालय/शासन को सौंपा गया। इस कार्य के लिए एक समूची गुप्तचर व्यवस्था का प्रावधान किया गया (1.XI-XII)। इन्हें 'संस्था' (एक स्थान पर रहकर कार्य करने वाले) तथा 'संचार' (घूम–घूम कर कार्य का सम्पादन करने वाले) दो वर्गों में बांटा गया। 'संस्था' में पाँच तरह के गुप्तचर शामिल थे (1.XI) 1. कापटिक (छात्र के वेष में), 2. उदास्थित (सन्यासी वेष में), 3. गृहपतिक (कृषक के रूप में, 4. वैदेहक (व्यापारी के रूप में) तथा 5. तापस (भिक्षु के रूप में)। दूसरे वर्ग 'संचार' में चार प्रकार के गुप्तचरों की व्यवस्था की गई (1.XII) : 1. सत्री (इंद्रजाल में निपुण), 2. तीक्ष्ण (हिंसक प्राणियों से मुकाबला करने वाले), 3. रसद (विष जैसे क्रूर साधनों का प्रयोग करने वाले) तथा 4. भिक्षुकी (खुफिया औरतें)। ये सभी गुप्तचर यदि किसी अन्य राज्य में नियुक्त हों तो उन्हें 'बाह्य' कहा गया, किन्तु जब राज्य में आंतरिक निगरानी एवं नियंत्रण के लिए नियुक्त किए जाएं तो इन्हें 'आभ्यन्तर' की संज्ञा दी गई।

प्रशासन में अपेक्षित व्याधियाँ

जिस प्रकार जीभ पर रखे हुए शहद या जहर के संबंध में कोई यह चाहे कि मैं इसका स्वाद न लूं, यह नहीं हो सकता। जीभ पर रखी हुई चीज़ की इच्छा न होने पर भी स्वाद आ ही जाता है। इसी प्रकार राज्य के 'अर्थ' संबंधी कार्यों पर नियुक्त हुए कर्मचारी उस 'अर्थ' का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह कदापि नहीं हो सकता। वे धन आदि का थोड़ा बहुत अपहरण अवश्य ही करते हैं। (2.IX. 36) कैटिल्य का यह कहना है कि जिस प्रकार पानी में रहती हुई मछलियाँ पानी पीती हुई दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार अर्थ कार्यों पर नियुक्त हुए राज कर्मचारी, 'अर्थ' या धन का अपहरण करते हुए मालूम नहीं होते। (2.IX. 37) एक अन्य दृष्टान्त के माध्यम से राज-अधिकारियों के मन्तव्य की व्याख्या करते हुए कौटिल्य ने कहा कि आकाश में उड़ते हुए पक्षी की गति को जाना जा सकता है, परन्तु गुप्त रूप से कार्य करते हुए अध्यक्षों की गति को पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। (2.IX. 38) इन उद्धरणों का तात्पर्य यह नहीं है कि जल में मछली के पानी पीने के समान तथा आकाश में उड़ते हुए पक्षी की गति के समान अध्यक्षों के द्वारा अपहरण किए गए धन के बारे में जानना दुष्कर है। इस वृतांत के पीछे कौटिल्य यह चेतावनी देते प्रतीत होते हैं कि राज्य के सभी प्रशासनिक कार्य सुचारू रूप से चलते रहें और भ्रष्टाचार और धन अपहरण को दीमक की तरह पलने-बढ़ने न दिया जाए, इसके राज्य सतत् प्रयत्नशील रहे और नियमित जांच पड़ताल करता रहे।

इसलिए अध्यक्षों के संबंध में कौटिल्य ने राजा को यह परामर्श दिया कि वह पहले, धन का अपहरण कर के समृद्ध हुए अध्यक्षों के धन को, उनकी समृद्धि से अथवा गुप्तचरों के द्वारा भली-भाँति जानकर, उनसे छीन लें; और फिर उन अधिकारियों को उच्च पद से पदच्युत करके निम्न कार्यों या पदों पर नियुक्त करे, जिससे वे दुबारा अर्थ का अपहरण न करें तथा अपहरण करते हुए धन को स्वयं ही उगल दें। (2.IX. 39)

इसके विपरीत वे अध्यक्ष जो कभी अर्थ का अपहरण नहीं करते और सदा न्यायपूर्वक उसकी वृद्धि में लगे रहते हैं और राज्य के हित में कार्य करते हैं, उन्हें सदा उनके अधिकार पद पर बनाए रखने (2.IX. 40) और सम्मानित करने का परामर्श दिया गया है। (2.VII. 42)

अमात्य का परीक्षण

योग्य, गुणी एवं सर्वगुणसम्पन्न को ही मंत्री के रूप में नियुक्त करने का परामर्श देते हुए (1.VIII. 33) कौटिल्य ने सलाह दी है कि मंत्रियों एवं सलाहकारों के मन की पवित्रता एवं कुटिल भावों की परीक्षा गुप्त रूप से की जानी चाहिए। (1.X. 1)। 'धर्मोपधा', 'अर्थोपदा', 'कामोपधा' तथा 'भयोपधा' आदि चार प्रकार के गुप्त परीक्षणों

का उल्लेख किया है। *'धर्मोपधा'* के अंतर्गत एक तिरस्कृत पुरोहित के द्वारा अमात्यों को राजा के विरुद्ध भड़काया जाना था। (1.X. 1-6) *'अर्थोपधा'* के अंतर्गत अमात्यों को गुप्त रूप से धन का लालच देकर उनके हृदय की पवित्रता का पता लगाना था। (1.X. 7-9) साधु वेश धारिणी स्त्री के द्वारा अमात्यों को महारानी के साथ समागम का प्रलोभन देना *'कोमोपधा'* में शामिल था। (1.X. 10-12) छात्र के वेश में गुप्तचर के द्वारा अमात्य को राजा की हत्या कर दूसरे राजा को गद्दी पर बैठाने के लिए भड़काया जाना *'भयोपधा'* कहलाया। (1.X. 13-19) इस प्रकार परीक्षा किए हुए इन अमात्यों में से जो 'धर्मोपधा' से परीक्षित हो, उसे 'धर्मस्थ' (अर्थात् विवाह, उत्तराधिकार आदि से संबंधित नागरिक कानून संबंधी विभाग) तथा कण्टकशोधन (दैवी आपत्तियों, दुष्टों आदि से संबंधित विभाग) में नियुक्त किया जाना था। 'अर्थोपधा' शुद्ध अमात्यों को समाहर्ता (कर वसूल करने वाले) और सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) आदि विभाग सौंपे जाने थे। 'कामोपधा' शूद्र अमात्यों को राजकीय क्रीड़ा स्थानों तथा स्त्रियों की रक्षा पर नियुक्त किया जाना था। 'भयोपधा' शुद्ध अमात्यों को राजा अपने समीप ही विभिन्न कार्यों पर नियुक्त कर सकता था (1.X. 21-25)। जो सब तरह की परीक्षाओं में अपवित्र सिद्ध हुए हों, उन्हें खान, लकड़ी, हाथी आदि के ऐसे जंगल में नियुक्त किया जाना था जहां अधिक परीश्रम करना पड़े। कौटिल्य ने यह भी चेतावनी दी कि अमात्यों के परीक्षण में राजा स्वयं अथवा महारानी आदि को न उलझाए। यह कार्य गुप्तचरों के माध्यम से करवाने की सलाह दी गई (1.X. 27-30)। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रधान अमात्य, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचरों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। (1.XIII. 2)

अर्थशास्त्र में यह प्रावधान भी किया गया कि समाहर्त्ता और प्रदेष्टा (कण्टक-शोधन संबंधी) पहले अध्यक्ष और उनके सहकारी कर्मचारियों की नियुक्ति करे; (4.IX. 1) फिर गुप्तचरों के माध्यम से उनके कार्यों और गतिविधियों की सतत् जांच की जाए; (4.IV, V&VI) और तदुपरान्त भ्र टाचार, चोरी, धन अपहरण अथवा दायित्व पूरे न करने की स्थिति में उन्हें यथानुसार दण्ड दिया जाए (4.IX. 2-41)। रक्षक भक्षक न हो, अर्थात् धर्मस्थ, समाहर्ता, अथवा प्रदेष्टा यदि किसी निरपराधी को सुवर्ण दण्ड देने लगे, तो कौटिल्य के मतानुसार उन्हें दुगुना दण्ड दिया जाना चाहिए (4.IX. 42)। इसी प्रकार उचित दण्ड से कम या अधिक दण्ड देने पर अथवा अनावश्यक शारीरिक या आर्थिक दण्ड देने पर इन अधिकारियों (धर्मस्थ, प्रदेष्टा आदि) को दण्ड देने का प्रावधान भी किया गया (4.IX. 43-44)।

कण्टक शोधन प्रदेष्टा को यह भी निर्देश दिया गया कि वह राजा और अमात्यों के मध्य में रहता हुआ, दण्ड देने के समय में पुरुष को, उसके अपराध को, अपराध के कारणों को, आदमी की छोटी-बड़ी हैसियत को, भविष्य में तथा उस समय में होने वाले परिणाम को, देश और काल को अच्छी तरह सोच विचार ले; उसके उपरान्त

ही उत्तम, प्रथम तथा मध्यम साहस आदि दण्डों को नियमानुसार घोषित करे (4.X. 25-26)।

प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा धन का अपहरण

कौटिल्य की मान्यता थी कि अधिकारी निम्नलिखित चालीस प्रकार से राज्य के धन का अपहरण अथवा दुरूपयोग कर सकते हैं। (2. VIII. 19-62) (1). पहली फसल से प्राप्त हुए राजस्व को दूसरी फसल आने पर पुस्तक में चढ़ाना (2.VIII. 20)। (2). दूसरी फसल से प्राप्त होने वाले राजस्व की कुछ प्राप्ति को पहली ही फसल में किताब में लिख लेना (2.VIII. 21)। (3). राजस्व को रिश्वत आदि लेकर छोड़ देना, अर्थात् वसूल न करना (2.VIII. 22)। (4). जिन्हें राज-कर नहीं देना पड़ता, अर्थात् देवालय, विद्वान आदि से छिप कर तथा डरा धमकाकर 'कर' वसूल कर लेना (2.VIII.23)। (5). 'कर' देने वाले पुरुष के 'कर' देने पर भी, इसने नहीं दिया यह कह देना, अथवा रजिस्टर में लिख देना (2.VIII. 24)। (6). 'कर' देने वाले पुरुष के 'कर' न देने पर भी रिश्वत आदि लेकर पुस्तक में यह लिख देना कि इसने 'कर' दे दिया है (2.VIII. 25)। (7). थोड़े प्राप्त हुए धन को भी, रिश्वत आदि लेकर, पूरा प्राप्त हो गया है, यह किताब में लिख देना (2.VIII. 26)। (8) पूरे प्राप्त हुए ध न के लिए भी थोड़ा प्राप्त हुआ है, इस प्रकार पुस्तक में लिख देना (2.VIII. 27)। (9). जो अन्न मिला है, उसकी जगह दूसरा लिख देना (गेहूं मिला है, परन्तु जौ लिख देना) (2.VIII. 28)। (10). एक पुरुष से प्राप्त हुआ है (रिश्वत आदि लेकर) दूसरे के नाम लिख देना (2.VIII. 29)। (11). देय वस्तु को न देना (राजा (सरकार) ने किसी को अनुदान स्वर्ण या रजत देने की आज्ञा दी है, उसे न देना) (2.VIII. 30)। कालांतर में अदेय वस्तु किसी तरह से दे देना (2.VIII.31)। (12). समय पर न देना (राजा (सरकार) ने किसी कार्य के लिए कुछ सहायता/अनुदान या नकद देने की आज्ञा दी है, उसे समय पर न देना) (2.VIII. 32)। (13). रिश्वत आदि लेकर पीछे से देना (2.VIII. 33)। (14). थोड़ा देकर बहुत लिख देना (अर्थात् डेढ़ सौ लिख कर सौ दे देना) (2.VIII. 34)। (15). बहुत देकर थोड़ा लिखना (2.VIII. 35)। (16). कोई द्रव्य देने को कहा गया, उसकी जगह कुछ और दे देना (अर्थात् किसी को सोना दे देने की आज्ञा दी गई है, उसकी जगह चांदी दे देना) (2.VIII. 36)। (17). एक पुरुष को देने के लिए कहे जाने पर, किसी दूसरे को दे देना (2.VIII. 37)। (18). राजस्व वसूल करके एवं अपने अधिकार में करके भी उससे इंकार कर देना अर्थात् उसे खजाने में जमा न करना, (अथवा किसी विशेष आवश्यकता के बहाने से प्रजा से धन वसूल करके भी, उसे कोश में जमा न करना) (2.VIII. 38)। (19). कर न लेकर भी, अर्थात् कोष में धन न जमा किये जाने पर भी, रिश्वत लेकर, जमा हो गया है, इस प्रकार पुस्तक में लिख देना (2.VIII. 39)। (20). वस्त्र आदि 'कुप्य द्रव्य', राजा की आज्ञा से उस समय मूल्य न देकर ही ले लेना, फिर पीछे से उनका थोड़ा-सा

मूल्य कपड़े वाले को दे देना (2.VIII. 40)। (21). बहुत सा मूल्य देकर खरीदा हुआ 'कुप्य द्रव्य', उसका उतना मूल्य किताब में न लिखना (2.VIII. 41)। (22). बहुत से मनु यों से मिल कर इकट्ठा लिया जाने वाला 'कर' पृथक्-पृथक् सबसे बांट-बांट कर लेना (2.VIII. 42)। (23). जो पृथक्-पृथक् लेना है, उसे सबसे इकट्ठा मिल कर लेना (2.VIII.43)। (24). बहुमूल्य वस्तु को अल्प मूल्य की वस्तु के साथ परिवर्तित कर लेना (2.VIII. 44)। (25). अल्प मूल्य की वस्तु को बहू-मूल्य वस्तु के साथ परिवर्तन कर लेना (2.VIII. 45)। (26). बाजार में वस्तुओं का भाव बढ़ा देना (2.VIII. 46)। (27). वस्तुओं का भाव घटा देना (इस तरह पण्याध्यक्ष (राजस्व अध्यक्ष) धन अपहरण कर सकता है) (2.VIII. 47)। (28). वेतन के दिन बढ़ा कर लिख देना (अर्थात् पांच दिन का वेतन देकर सात दिन का वेतन दिया गया है, इस प्रकार लिख देना) (2.VIII. 48)। (29). वेतन के दिन घटा कर देना (अर्थात् दस पिन के वेतन की स्वीक ति होने पर, आठ दिन का ही वेतन देना) (2.VIII. 49)। (30). अधिक मास रहित संवत्सर को अधिक मास वाला बताकर उस मास का लाभ स्वयं ले लेना (2.VIII. 50)। (31). महीने के दिन घटा बढ़ाकर, उसके अधिक लाभ को स्वयं ले लेना (2.VIII. 51)। (32). नौकरों/कर्मचारियों में गड़बड़ करके धन लेना (बहुत से कार्य करने वाले नौकरों/कर्मचारियों में से कुछ के नाम वैसे ही लिखे हुए हों, उनके नाम का वेतन और भत्ता स्वयं ले लेना (2.VIII. 52)। (33). एक आय स्रोत से हुई आमदनी को, दूसरे आय-स्रोत से प्रसिद्ध कर देना (2.VIII. 53)। (34). ब्राह्मण आदि को धर्मार्थ दिए जाने वाले धन में से कुछ उन्हें देकर शेष स्वयं ले लेना (2.VIII. 54)। (35). किसी कार्य के करने में कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल कर लेना (2.VIII. 55)। (36). बहुत से मनुष्यों से इकट्ठा मिलकर लिए जाने वाले 'कर' में, किसी से रिश्वत लेकर छोड़ देना, तथा बाकी मनुष्यों से पूरा धन वसूल कर लेना (2.VIII. 56)। (37). ब्राह्मण आदि वर्णों की विषमता से धन का अपहरण करना (जैसे आज नाव से केवल ब्राह्मण (आधुनिक समय में सांसद) ही पार हुए हैं, उनसे शुल्क नहीं लिया गया, यह कहकर नावध्यक्ष उस दिन की आय का अपहरण कर सकता है) (2.VIII. 57)। (38). छावनियों में मूल्य आदि के व्यवस्थित न रहने से, उसको कुछ बढ़ा कर लाभ उठाना (2.VIII. 58)। (39). तोल आदि में फर्क डालकर फायदा उठाना (2.VIII. 59)। (40). नापने में विषमता से लाभ उठाना (जैसे धृत् से भरे हुए सौ घड़े दे दो, इस प्रकार का आदेश देने पर छोटे-छोटे सौ घड़े देना, और बड़े-बड़े सौ घड़े दिये हैं, यह पुस्तक में लिख देना) (2.VIII. 60)।

राजकोष से धन की धांधली के 40 तरीकों का उल्लेख करते हुए कौटिल्य का सुझाव है कि यदि किसी अध्यक्ष (मंत्री या अधिकारी) के संबंध में राजा को धन-अपहरण का संदेह हो जाए, तो राजा उस अध्यक्ष के प्रधान निरीक्षरक अधिकारी को भण्डागारिक (खजांची) को, लेखक को, लेने वाले को, 'कर' दिलाने वाले राजपुरुष

को, अपराधी के सलाहकार को तथा उस मंत्री के सहायकों को पृथक्-पृथक् बुलाकर यह पूछे कि इस अध्यक्ष ने धन का अपहरण किया है या नहीं। यदि इनमें से कोई झूठ बोले, तो उसे अपराधी के समान ही दण्डित किया जाय (2.VIII. 63-64) तथा सम्पूर्ण जनपद में घोषणा करवाए कि अमुक अध्यक्ष यदि किसी को पीड़ा देकर धन अपहरण करे, तो वे राजा को सूचना दें। अपहरण (राजस्व की चोरी) की सूचना देने पर, उस पुरुष को अध्यक्ष से उतना ही धन दिलवाया जाए। अनेक आरोप होने पर, यदि दोषी सब आरोपों को स्वीकार न करे, तो एक ही आरोप/अभियोग में पूरी गवाही एवं सबूत मिलने पर, उसे सभी आरोपों का अपराधी समझा जाए। यदि अभियुक्त कुछ आरोप स्वीकार करे और कुछ स्वीकार न करें तो उनके लिए अपनी सफाई के गवाह एवं सबूत प्रस्तुत करे।

यदि कोई व्यक्ति, धन का अपहरण करने वाले की सूचना राजा के हित की कामना से देता है, तो अपहृत धन की ठीक पता लग जाने पर, धन का छठा हिस्सा उसे दे दिया जाए। यदि सूचना देने वाला भृत्य हो तो जो धन का बारहवां हिस्सा दे दिया जाए। किन्तु यदि अभियुक्त पर अपराध सिद्ध न हो सके, तो सूचना देने वाले व्यक्ति को शारीरिक दण्ड दिया जाए, अथवा उचित आर्थिक दण्ड दिया जाए। इस प्रकार कौटिल्य ने अपराधी एवं गलत (स्वार्थपूर्ण) सूचना देने वाले पर अनुग्रह न करने की सलाह दी है (2.VIII. 69-74)।

कौटिल्य की मान्यता है कि मनुष्य के चित्त सदा एक से नहीं रहते। देखा जाता है कि आदमियों की भी घोड़ों की तरह मनोवृत्ति होती है। जब तक घोड़ा अपने स्थान पर बंधा रहता है, बड़ा शान्त मालूम होता है, परन्तु जब वह रथ आदि में जोड़ा जाता है, तो बिगड़ जाता है, बड़ी उछल-कूद मचाता है। इसी प्रकार शान्त दीखने वाला पुरुष भी कार्य पर नियुक्त हो जाने पर कभी-कभी विकार को प्राप्त हो जाता है। इसलिए कैटिल्य की सलाह है कि इन अध्यक्षों, एवं उनके अधिनस्थकार्य करने वाले कर्मचारियों के देश, काल, कार्य, वेतन और लाभ आदि के बारे में जानकारी इकट्ठी करनी चाहिए (2.IX. 5)।

प्रशासनिक अधिकारियों की गुटबन्दी के खिलाफ चेतावनी देते हुए कौटिल्य का मत है कि ये अध्यक्ष दूसरे अध्यक्ष के साथ न मिलते हुए और एक दूसरे का विरोध न करते हुए, अपने-अपने कार्य में संलग्न रहने चाहिए। क्योंकि यदि वे आपस में मिल जाएँगे, तो गुटबन्दी करके राजा के धन को खाएँगे और यदि आपस में विरोध करेंगे तो राज्य के कार्यों को नष्ट करेंगे (2.IX. 6-8)। अध्यक्षों द्वारा अपने किसी कार्य में प्रमाद करने पर यदि कौटिल्य ने उनके दैनिक वेतन से दुगना दण्ड देने का सुझाव भी दिया है; (2.IX. 10) तो आदेशानुसार ठीक काम करने पर अथवा स्वविवेक से राजा के लिए हितकारी कार्य करने पर विशेष उन्नति का भी परामर्श दिया है (2.IX. 11)।

दुर्व्यसनों के नियंत्रण हेतु कौटिल्य का सुझाव

बेईमान एवं ईमानदार अध्यक्षों का पता लगाने के लिए कौटिल्य ने गुप्तचरों का उपयोग करने की सलाह दी है और उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए निम्नलिखित उपाय बताए हैं। (2.IX. 15)

- जो अध्यक्ष समुदाय (द्रव्यों का लाभ अथवा नियमित आय) में न्यूनता करता है, अर्थात् राजा को नियमानुसार जितनी आय होनी चाहिए, उसमें कमी कर देता है, तो समझना चाहिए कि राजा के धन में से कुछ-न-कुछ अवश्य खाता है। यदि वह अपने अज्ञान अर्थात् प्रमाद, आलस्य आदि के कारण द्रव्य की आमदनी में कमी करता है, तो वह कम हुआ धन उससे दुगना करके लिया जाए। (2.IX. 15-16)
- जो अध्यक्ष दुगना समुदय इकट्ठा करता है, अर्थात् नीयत आय से दुगना धन वसूल करता है, तो यह इस बात का सूचक है कि वह जनपद को खाता है और प्रजा को पीड़ा पहुँचा कर धन इकट्ठा करता है। यदि वह यह धन राजा के पास पहुँचा देता है, तो प्रजा की पीड़ा पहुँचाने के अपराध में उसे थोड़ा दण्ड दिया जाए जिससे वह आगे कभी प्रजा को पीड़ा पहुँचा कर धन-संग्रह न करे, किन्तु यदि वह धन को राजा के पास न पहुँचा कर स्वयं अपहरण कर लेता है, तो प्रजा-उत्पीड़न और धन अपहरण दोनों अपराधों का उसे उचित दण्ड दिया जाए। (2.IX. 17-19)
- जो अध्यक्ष व्यय के लिए नियत किए हुए धन को व्यय न करके लाभ में शामिल कर देता है, इससे एक तो मजदूरों का पालन नहीं होता, मजदूरी न मिलने से वह कष्ट उठाते हैं, दूसरे वह राजकार्य नहीं होता, जिसके लिए वह बजट पास किया गया; और तीसरा, अपनी नियमित आय से अधिक आय अपने घर रख लेता है। ऐसा करने वाले अध्यक्ष को, उस कार्य की हानि और पुरुषों के वेतन का अपहरण करने संबंधी अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाना चाहिए। (2.IX. 20-21)
- शासन करने वाले अधिकारियों के कार्य की यथार्थता और उनके आय-व्यय का निरीक्षण करने का परामर्श भी दिया गया है। यहां तीन प्रकार के अधिकारियों का वर्णन है :

1. eygj – वे अधिकारी जो अपने पितृ-पितामह परम्परा से प्राप्त हुई सम्पत्ति को अन्यायपूर्वक खाता या उपभोग करता है, उसे 'मूलहर' कहते हैं। कौटिल्य की दृष्टि में ऐसा करने से रोका जाना चाहिए जिससे वे अपनी पुरानी सम्पत्ति को नष्ट न करें। किन्तु यदि निषेध करने पर भी 'मूलहर' न रुके, तो उन्हें अपने बंधु-बांधवों की सम्पत्तिपर दाय-भाग का अधिकार नहीं रहता। अथवा ऐसे पुरुषों को जिनके बंधु-बांधव

(पक्ष) हैं उन्हें आर्थिक दण्ड न देकर केवल पदच्युत कर दिया जाए और यदि बंधु-बांधव नहीं है, तो उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाए (2.IX. 24, 27-28)।

2- rkn&kfRod– जो पुरुष जितना उत्पन्न करता है, उतना उसी समय खा लेता है, अर्थात् व्यय कर देता है, शेष कुछ नहीं बचाता, उसे तादात्विक कहते हैं (2.IX. 25)।

3- dn;| – जो पुरुष अपने भृत्यों और अपने आपको कष्ट देकर धन संग्रह करता है, वह 'कदर्य' (कंजूस) कहलाता है। कैटिल्य ने यह चेतावनी दी है कि राजा गुप्तचरों के माध्यम से पता करवाए कि यह अर्थ-लाभ (संग्रहित धन) घर में गाड़ दिया जाता है, नगर या जनपद निवासी पुरुषों के समीप रक्षा के लिए रखा जाता है अथवा शत्रु देश में जमा करवा दिया जाता है? तीसरी श्रेणी के पुरुषों के खिलाफ सख्त कार्यवाही (मरवाने) का आदेश अर्थशास्त्र में विदित होता है (2.IX. 30-31)।

कौटिल्य का यह भी परामर्श है कि सब अध्यक्षों को 'संख्यायक' (अथवा गणक अर्थात् आय–व्यय का लेखा करने वाला), लेखक, 'रूप दर्शक' (राजकीय मुद्रा तथा अन्य मणि, मोती, स्वर्ण आदि की परखने वाले कर्मचारी), नीवी ग्राहक (आय–व्यय से शेष बचे हुए धन को संभालने वाला अधिकारी) तथा उत्तराध्यक्ष (अध्यक्षों के ऊपर निरीक्षण करने वाला प्रधानाधिकारी) के साथ मिलकर ही राज कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए (2.IX. 32)।

प्रत्येक अधिकरण अर्थात् कार्य-स्थान में अनेक मुख्य पुरुषों को रखने का परामर्श भी दिया गया है, जिससे सभी अधिकारी एक दूसरे का भय रखते हुए राजकार्य को भली भाँति करते रहें। ये नियुक्तियाँ 'नित्य' रूप से करने का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में मिलता है। संभवतः 'नित्य' रूप से नियुक्ति (transfers) का उल्लेख यह दर्शाता है कि ये मुख्य पुरुष चिरस्थायी रूप से नियुक्त नहीं होने चाहिए, अन्यथा वे कर्मचारियों से मित्रता कर अपने दोषों को छिपा सकते हैं और इनके द्वारा अपकार किए जाने के भय से आम प्रजाजन इनके दोषों का प्रकट नहीं करते (2.IX. 35)।

आय-व्यय के प्रधान निरीक्षक अधिकारी के लिए कौटिल्य का निर्देश है कि वह सम्पूर्ण जनपद के कार्यालयों की व्यवस्था का ज्ञान गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करता रहे। इसके अभाव में धनों की उत्पत्ति में रूकावट उत्पन्न हो सकती है। कर्मचारियों में इस तरह के दोष उत्पन्न हो सकते हैं जिससे आमदनी में रुकावट आ सकती है (2.VII. 10)।

कौटिल्य के अनुसार अर्थोत्पत्ति में बाधा डालने वाले अग्रलिखित आठ दोष हो सकते हैं (2.VII. 11) :

1. अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, काम, क्रोध, दप्र और लोभ के कारण;
2. परिश्रम के दुःख को सहन न करने के कारण, आलस्य के द्वारा;
3. गाना बजाना और स्त्रियों में आसक्ति के कारण प्रमाद के द्वारा;

4. निन्दा, अधर्म तथा अनर्थ के कारण भय से;
5. किसी कार्यार्थी पर अनुग्रह करने के कारण काम के द्वारा;
6. किसी पर क्रूरता करने के कारण क्रोध के द्वारा;
7. विद्या, धन तथा राजा आदि का प्रिय होने के कारण दर्प से; तथा
8. हिसाब में गड़बड़ कर छल के कारण लोभ के द्वारा कर्मचारी गण आमदनी में रुकावट डाल सकते हैं।

कौटिल्य का कथन है कि ऐसे पुरुषों को दण्ड देना चाहिए जो किसी भी प्रकार से राजकीय धन का नाशया दुरूपयोग करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को दण्ड देने का विधान करते हुए कौटिल्य ने अन्य आचार्यों का उल्लेख किया है। मनु का उल्लेख करते हुए कहा है कि जो कर्मचारी जितना अपराध या धन अपहरण करें, उसे इन दोषों के क्रम के अनुसार एक-एक गुना अधिक दण्ड दिया जाए, अर्थात् अज्ञान के कारण होने पर हानि से दुगना, प्रमाद के कारण होने पर तिगुना इस क्रम में दण्ड दिया जाना चाहिए। (2.VII. 12) पराशर की दृष्टि में सभी अपराधों में समानता होने के कारण, सबको आठ गुना दण्ड दिया जाना चाहिए। वृहस्पति की दृष्टि में सबको दस गुना दण्ड दिया जाना चाहिए। शुक्राचार्य के अनुसार सबको बीस गुना दण्ड मिलना आवश्यक है। (2.VII. 13-15) किन्तु कौटिल्य की दृष्टि में जो जितना अपराध करे, उसे अपराध के अनुसार ही दण्ड दिया जाना चाहिए। (2.VII. 16-29) कौटिल्य ने यह भी सुझाव दिया है कि कोष धन के साथ-साथ रजिस्टर आदि लाने वाले अध्यक्ष को निम्नलिखित आठ बातों से परखा जाना चाहिए : 1. यह देखा जाए कि वह वस्तुतः धर्मात्मा है, 2. दम्भी है, 3. उसके व्यवहार को देखा जाए, 4. आचार-विचार को परखा जाए, 5. उसकी पहली स्थिति को देखा जाए, 6. उसके हिसाब को परखा जाए, 7. किए हुए कार्यों को देखा जाए, तथा 8. गुप्तचरों के द्वारा उसका परीक्षण किया जाए। (2.VII. 30)

कौटिल्य ने आय-व्यय का लेखा–जोखा संकलित करने और संग्रहित करने का विस्तार से वर्णन किया है (2.VII. 31-34)। उसमें उलट–पलट कर या कम–ज्यादा लिखने पर दण्ड दिये जाने का प्रावधान किया है (2.VII. 35-41)। और साथ ही एक व्यावहारिक प्रशासन-विद् की तरह यह परामर्श भी दिया है कि अध्यक्ष के थोड़े से अपराध को सहन किया जाए और आमदनी में वृद्धि होने पर सत्कार किया जाना चाहिए। (2.VII. 42)

कोष में वृद्धि के उपाय एवं क्षय के कारण

कोष वृद्धि के उपायों का उल्लेख करते हुए कौटिल्य का मत है कि जनपद की सम्पत्ति को बढ़ाना चाहिए, जनपद के पुराने आचार-व्यवहार का ध्यान रखना चाहिए, चोरों का निग्रह करना चाहिए, अध्यक्षों को धनापहरण करने से रोकना चाहिए, अर्थात्

प्रजा से रिश्वत आदि लेकर प्रजा को कष्ट पहुँचाने वाले अध्यक्षों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, छोटे-बड़े सब तरह के अन्नों की उपज करवानी चाहिए; जल-स्थल में उत्पन्न होने वाली विक्रय वस्तुओं को बढ़ाना चाहिए, अग्नि आदि के उपद्रवों से स्वयं एवं जनपद को बचाना चाहिए, 'कर' आदि की उचित समय पर और सभी से वसूली करनी चाहिए; हिरण्य आदि की भेंट लेनी चाहिए। (2.VIII. 3)

कोष के क्षय के विभिन्न आठ कारणों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है : (2.VIII. 4-18)

1. प्रतिबन्ध ⅌ 1. राजग्राह्य (प्रतिबंधित) कर का संग्रह करना, 2. संग्रह करके उसे अधिकार में न करना, तथा 3. अधिकार में करके भी उसे खजाने तक न पहुँचाना।
2. प्रयोग : कोष द्रव्य (धन) से अपने आप ही लेन-देन करने लग जाना, राज धन को सूद पर देकर उसका ब्याज अपने पास रख लेना।
3. व्यवहार : कोष द्रव्यों का व्यापार करना
4. अवस्तार : राजग्राह्य धन का प्रजा से ग्रहण करने का जो समय नियत है, उसे टाल देना और रिश्वत की इच्छा से, दूसरे समय में प्रजा को तंग करके धन को एकत्रित करना।
5. परिहापण : अध्यक्ष द्वारा अपने कुप्रबंध के कारण नियत आय को कम कर देना और व्यय को बढ़ा देना।
6. उपभोग : रत्न, सार, फल्यु, कुप्य आदि राज द्रव्यों का अपने आप भोग करना और अपने इष्ट मित्रों से इन वस्तुओं का भोग कराना।
7. परिवर्तन : राज द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों में बदल देना, अर्थात् बेहतर द्रव्य को अपने पास रख लेना और उसकी जगह घटिया द्रव्य रख देना।
8. अपहार : प्राप्त हुई आय को पुस्तक में नहीं लिखना, नियमित व्यय को पुस्तक में लिख कर भी व्यय नहीं करना तथा आय अपने हाथ में होने पर भी, अपने पास होने को स्वीकार न करना।

इस सभी प्रकार के आय में क्षय के लिए कौटिल्य ने अलग-अलग दण्ड का विधान किया है। (2.VIII. 4-18)

मैक्स वैबर की भाँति, कौटिल्य भी प्रशासनिक कर्मठता कुशलता एवं विवेकशीलता के लिए उत्सुक थे। इसी उद्देश्य से अर्थशास्त्र में प्रशासनिक वरीयता-क्रम, पदानुसार अपेक्षित योग्यता, योग्यता पर आधारित नियुक्ति, वरीयता क्रम में पदोन्नति, उपयुक्त वेतनमान, प्रशिक्षण एवं अनुशासन आदि का प्रावधान किया गया। 'स्वच्छ', कर्त्तव्यपारायण एवं निष्ठापूर्ण प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए सतत् नियंत्रण, निरीक्षण एवं परीक्षण

का प्रावधान किया गया और इस सबको व्यवहृत करने के लिए समूची गुप्तचर व्यवस्था को मूर्त रूप दिया गया। प्रशासनिक अधिकारी 40 प्रकार के प्रशासनिक व्यसनों का उल्लेख यह दर्शाता है कि कौटिल्य इन व्यसनों पर नियंत्रण चाहते थे और इसी उद्देश्य से उन्होंने प्रशासन में सख्ती एवं नियंत्रण बनाए रखने पर बल दिया और आनुपातिक दण्ड दिए जाने का प्रावधान किया, जिससे दुर्व्यसन युक्त व्यवहार एवं भ्रष्टाचार आदि को रोका जा सके। इस सब के लिए एक ऐसी समग्र न्यायिक व्यवस्था का प्रावधान किया गया जिसके तुलना 21वीं सदी के न्यायिक प्रशासन से की जा सकती है। (सिहाग / Sihag, पृ.1)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य ने अमात्यों साहित सभी अधिकारियों की योग्यता एवं भर्ती के लिए कड़े मापदण्डों एवं परीक्षणों का प्रावधान किया। राजकीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों को भ्रष्टाचार आदि व्यसनों से दूर रखने के लिए व्यापक कदम उठाए साल्तोरे (Saltore, पृ.360) की मान्यता है कि राजकीय कर्मचारियों के व्यवहार आदि के परीक्षण संबंधी जो व्यापक प्रावधान किए गए हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य कालीन राज्य में व्यसनपूर्ण व्यवहार की सम्भावना बनी रहती थी और उनसे निपटने के लिए सतत् निरीक्षण-परीक्षण के नियम एवं मापदण्ड अपनाए जाते थे। साल्तोरे की दृष्टि से अर्थशास्त्र का वर्णन वास्तविक व्यवहार का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। परीक्षण एवं दण्ड के कड़े नियमों की तुलना स्वयं कौटिल्य ने आग पर चलने के समान मानी है और स्वीकार किया है कि अग्नि तो शरीर के एक हिस्से को या पूरे शरीर को जला सकती है, किन्तु राजा, अपने अधीनस्थ अधिकारियों के पुत्रसहित सम्पूर्ण परिवार को नष्ट कर सकता है और अनुकूल होने पर उन्नति भी कर सकता है। (5.IV. 22-23) अतः अर्थशास्त्र में वर्णित सतत् निरीक्षण एवं कड़े दण्ड का प्रावधान एक ओर अधिकारियों एवं राजकर्मचारियों के प्रति राजा की अविश्वसनीयता दर्शाते हैं और दूसरी ओर इन अधिकारियों आदि का जीवन आग पर चलने के समान बना देते हैं। साथ ही निश्चित वेतनमान उन्हें कार्य एवं पद के स्थायित्व का आभास भी देते हैं। अतः निश्चित एवं स्थायी वेतनमानों को राज कर्मचारियों की सुरक्षा का सूचक मानते हुए प्रशासन की कुशलता एवं कर्मचारियों की कर्मठता एवं सद्व्यवहार कौटिलीय प्रशासन का आधार कहे जा सकते हैं।

यदि हम कौटिल्य के प्रशासनिक संरचना का गहन परिक्षण करें तो आज के सुशासन की अवधारणा में उसका बहुमूल्य योगदान है। क्योंकि आज सुशासन के लिए जो आवश्यक तत्व बनाये जाते हैं उनका बृहत् वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि सुशासन के संदर्भ में आज भी कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक संदर्भ ग्रंथ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Altekar. A.S (1958) *State and Government in Ancient India*,. Motilal Banarsidas, Delhi.
- Bandyopadhyaya, N.C., (1982) *Kautilya : An Exposition of His Social Ideals and Political Theory*, Indological Book House, Varanasi:
- Beni Prasad, (1968) *Theory of Government in Ancient India*, General Book Depot, Allahabad.
- Bhandarkar,D.R., (1925), *Some Aspects of Hindu Polity*, The Manindra Chandra Nandy Lecture Series, 1925, Banaras Hindu University, Varanasi.
- Choudhary, Radhakrishna (1971), *Kautilya's Political Ideas and Institutions*, Chawkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
- Dhar, Som Nath, *Kautilya and the Arthashastra*, Marwah Publications, New Delhi.
- Dikshitar, V.R (1953), *The Mauryan Polity*, University of Madras, Madras.
- Ghoshal, U.N (1966), *A History of Indian Political Ideas*,Oxford University Press, Madras.
- Heesterman, J.C. (1985), *The Inner-Conflict of Tradition: Essay in Indian Ritual, Kingship & Society*, University of Chicago Press, Chicago.
- Jayaswal, K.P., (1967), *Hindu Polity: A Constitutional History of India* in Hindu Times, The Bangalore Printing and Publishing Co., Bangalore.
- Kangle, R.P., (2006), *Kautilya Arthashastra*, Part III;. Motilal Banarsidas, Delhi.
- Krishna Rao, M.V (1958), *Studies in Kautilya*, Munshi Ram Manoharlal, Delhi.
- Kosambi, D.D., (1956)*An Introduction to The Study of Indian History*, Popular Book Depot, Bombay.
- Law, N.N., (1921) *Studies in Ancient Indian Polity*, Oxford University Press, London.
- Mehta, V.R., (1996) Fundamentals *of Indian Political Thought*, Manohar Publishers, New Delhi.
- Mookerji, Radhakumud, (1943) *Chandragupta Maurya And his Times*, University of Madras, Madras.
- Parmar, Aradhna, (1987) *Techniques of Statecraft in Kautilya's* Arthashastra, Atma Ram & Sons, Delhi.
- Ramaswamy, T.N., (1962).,*Essentials of Indian Statecraft*, Asia Publishing House, Bombay.
- Saltore, B.A., (1963.), *Ancient Indian Political Thought and Institutions*, Asia Publishing House, Bombay.
- Sharma, R.S.,(2005), *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India*, Motilal Banarsidass, Delhi.
- Singh, U. B., (1998) *Administrative System in India: Vedic Age to 1947*, APH Publishing, New Delhi.
- Sinha, H.N., (1969), *The Development of Indian Polity*, Asia Publishing House, Bombay.

- Spellman, John W. (1964), *Political Theory of Ancient India: A Study of Kingship from the earliest times to circa A.D. 300*, Clarendon Press, Oxford.
- Thapar, Romila (2002), *Early India: From the Origins to AD 1300*, Berkley & Los Angeles, University of California Press,
- Trautmann, T.R., (1971) *Kautilya and Arthashastra: A Statistical Investigation of the Authorship and evolution of the Text,* E.J. Bril,. Leiden.
- Varma, V.P., (1993) *Ancient and Medieval Indian Political Thought***,**Lakshmi Narai Agarwal, Agra.

Articles:

- Sankhdher, M.M (1987), "Kautilya-Philosopher of Modern Welfare State", *Organiser*, Vol. XXXVIII, No. 36, January 18,
- Franklin Edgerton (1928) "The Latest Work on the Kautilîya Arthaúâstra" Journal of the *American Oriental Society*, Vol. 48, pp. 289-322 Published by: American Oriental Society.
- Roger Boesche (2003) "Kautilya's Arthaúâstra on War and Diplomacy in Ancient India", *The Journal of Military History*, Vol. 67, No. 1 (Jan.,), pp. 9-37 Published by: Society for Military History.

Web Articles:

- (2012) "Evolution of Indian Administration: Kautilya's Arthashastra; Mughal administration; Legacy of British rule in politics and administration - Indianization of public services, revenue administration, district administration, local self-government."Tuesday, September 4, available at

  http://publicadministrationtheone.blogspot.in/2012/09/evolution-of-indian-administration.html

- Sihag, Balbir S. (2007) "Kautilya on Administration of Justice During The Fourth Century B.C.", *Journal of the History of Economic Thought*, Volume 29, Issue 3, September, Available at

  https://www.cambridge.org/core/journals/journal-of-the-history-of-economic-thought/article/kautilya-on-administration-of-justice-during-the-fourth-century-bc/5681B71A0AA8F842FBC5947D6B7D5976

सुशासन एवं विकास

सुधांशु त्रिपाठी

प्रस्तुत लेख में सुशासन शब्द की पश्चिम एवं भारतीय परम्परा में व्याख्या करते हुए इसके अवधारणात्मक विकास का वर्णन किया गया है। जहाँ पश्चिम की अवधारणा में इसमें शाश्वत मूल्यों की तुलनात्मक कमी को दर्शाया गया गया है वहाँ भारतीय परम्परा में इसकी संकल्पनात्मक समृद्धि को उजागर करते हुए तृतीय विश्व के देशों में इसकी आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। दुर्भाग्यवश 'सुशासन' शब्द, जैसा आज तीसरी दुनिया के देशों में प्रयोग किया जा रहा है वह पश्चिम के देशों की नकल प्रतीत होता है। अपनी लोकप्रियता और वृहत चलन के बावजूद इस अवधारणा में अस्पष्टता है और वैचारिक रूप से इसके अर्थों में विविधता भी है। तथापि तीसरी दुनिया के देशों में शिक्षित वर्ग का बहुमत यह सोचता है कि 'सुशासन' का अर्थ ऐसा शासन है जो प्रभावी, कुशल, लोकप्रिय और वैध है तथा आम जनता का मित्र है क्योंकि इसमें सभी भामिल हैं। साथ ही यह लालफीताशाही, प्रक्रियात्मक रूढ़िवादिता तथा संवेदन शून्यता जैसे पश्चिम के आधुनिक प्रशासकीय दुर्गुणों से भी मुक्त है। समग्रतः सुशासन की विकासशील संकल्पना के अंतर्गत भारतीय परम्परा में विद्यमान सर्व-हित रूपी लोककल्याण का भाव 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' *पश्चिम की बहुजन की संकल्पना से कहीं आगे और श्रेष्ठ है।*

पिछले कुछ दशकों से तीसरी दुनिया या अविकसित, अल्पविकसित और विकासशील देशों के साथ ही साथ पश्चिम के देशों में भी अधिकांश राजनेता, नीति निर्माता, शासक, प्रशासक, शिक्षाविद् और सार्वजनिक कार्यकर्ता आदि अपने-अपने समाजों पर कुशल एवं प्रभावी प्रशासन की स्थापना के अधुनातन उपायों की खोज कर रहे हैं। जहाँ पश्चिम के देश अपने समाज के उत्तरोत्तर विकास के लिए नये-नये प्रतिमानों का निर्माण का रहें हैं वहीं तीसरी दुनिया के देश विकास के पायदान पर अभी भी बहुत पीछे हैं तथा राष्ट्रीय मुद्दों पर सहमति बनाने की प्रक्रिया में अनेक संघर्षों से जूझते हुए भी प्रयत्नशील हैं। इसलिए उन्होंने नागरिकों के हितों का राज्य के हितों के साथ तालमेल बैठाने के लिए प्रशासन की अलग-अलग राजनीतिक प्रणालियों और पद्धतियों की वकालत की है। इस वैचारिक मंथन में प्रशासनिक संस्कृति के पुराने प्रतिमानों को बदल कर अधुनातन संस्कृति और विकासोन्मुख

शासकीय वातावरण बनाने के नए विचार शामिल हैं। इस परिचर्चा ने एक बार फिर 'शासन में अच्छाई या 'सुशासन' के मूल तत्वों को सबके सामने प्रकट कर दिया है। परंतु यह एक चिंता का विषय है कि सुशासन या सरकार में अच्छाई की अवधारणा तृतीय विश्व के देशों में भी वही अर्थ लेती प्रतीत हो रही हैं जिसके बारे में बेंथम ने 18 वीं शताब्दी में कहा था– 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख', अर्थात लोकतंत्र के नाम पर 'सर्वहित' की तुलना में 'बहुमत' पर ज्यादा ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

प्रस्तुत निबंध में सुशासन शब्द की पश्चिम एवं भारतीय परम्परा में व्याख्या करते हुए इसके अवधारणात्मक विकास का वर्णन किया गया है। जहाँ पश्चिम की अवधारणा में इसकी संकल्पनात्मक न्यूनता को प्रकाशित किया गया है वहाँ भारतीय परम्परा में इसकी दार्शनिक एवं सैद्धांतिक समृद्धि की विवेचना करते हुए वर्तमान समय में तृतीय विश्व के देशों के लिए इसकी महती आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। इस अवधारणात्मक भ्रम के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में बहुसंख्यक शिक्षित वर्ग यह सोचता है कि 'सुशासन' का अर्थ ऐसा शासन है जो प्रभावी, कुशल, लोकप्रिय और वैध है तथा आम जनता के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है। इसमें सभी की भागीदारी भी रहती है जैसा प्राचीन यूनानी विचारक क्लिओन ने कहा था कि 'शासन जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए' होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह पश्चिमी देशों की आधुनिक तटस्थ नौकरशाही के प्रशासनिक दुर्गुणों जैसे लालफीताशाही, कानूनी प्रक्रिया संबधी रूढ़िवादिता तथा संवेदन शून्य प्रकृति के कारण सर्वजन के हितों की रक्षा के प्रति उदासीनता की समस्याओं से मुक्त है। समग्रतः सुशासन की विकासशील अवधारणा के अंतर्गत भारत की शाश्वत मूल्यों के पालन पर आधारित परम्परा में सर्वजनहित रूपी लोककल्याण का भाव *'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'* पश्चिम की लोकतंत्र पर आधारित 'बहुजन' के हित साधन की संकल्पना से बहुत आगे और अत्यंत श्रेष्ठ है।

सुशासन या अच्छा शासन

आजकल सभी राज्यों में – विकसित और विकासशील – सुशासन की अवधारणा काफी लोकप्रिय हो चुकी है। अतः सुशासन का मुद्दा राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन संबधी विचार-विमर्श का प्रमुख विषय बन गया है। विद्वान लेखकद्वय होशियार सिंह एवं प्रदीप सचदेवा के अनुसार सुशासन या 'अच्छे शासन की अवधारणा कोई नई अवधारणा नहीं है अपितु यह एक विकासवान विषय है। गतिशील तथा जनहित से जुड़ी होने के कारण इस अवधारणा ने इधर कुछ वर्षों में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली है।' इससे प्रशासन में व्यवहारजनित अच्छाई और उसमें निरंतर होने वाले विकास का स्तर सुनिश्चित किया जा सकता है। साधारणतः अच्छे शासन या सुशासन का अर्थ होता 'संपूर्ण समाज की भलाई या उनके कल्याण की

देखभाल करना'। कन्साइज़ ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार 'अच्छे शासन' का आशय' शासकीय कार्य संपादित करने के बेहतर तरीकों तथा इसी रूप में राज्य, प्रान्त या स्थानीय रूप से सरकार से जुड़े पदों एवं उनके कार्यों से संबधित है। साथ ही अच्छे प्रशासन का अर्थ एक सार्वजनिक संगठन द्वारा स्वयं को जनहित में चलाने से तथा उन संरचनाओं और प्रक्रियाओं से भी है जिनके माध्यम से प्रशासन अपना निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करता है।' इसी प्रकार एण्ड्रिय लेफ्टविच ने अच्छे प्रशासन के तीन परिभाषीय लक्षण बतायें हैंः *प्रथम,* खुली बाजार व्यवस्था के अनुकूल प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था; *दूसरा,* प्रजातंत्रीकरण; और *तीसरा,* मानवाधिकारों की स्थिति में होने वाला निरन्तर सुधार। एक अन्य विद्वान ऐस्मेराय के अनुसार, 'सुशासन प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कुशल एवं प्रभावी प्रशासन से जुड़ा है।' शासन के प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वयन पर जॉन हीले एवं मार्क रॉबिन्सन ने भी बल दिया है। उन्होंने अच्छे प्रशासन की परिभाषा नीति निर्धारण और नीतियों के वास्तविक अनुसरण करने के संगठनात्मक प्रभावीपन के रिश्ते के रूप में किया है। इसे विशेष रूप से आर्थिक नीतियों के अनुसार काम करने तथा तज्जन्य विकास, स्थिरता और लोक कल्याण के रूप में देखा जा सकता है। इस धारणा में राष्ट्र संबधी संकल्पना को जोड़ कर एक प्रमुख विद्वान पाई पानिंदीकर सुशासन की परिकल्पना उस राष्ट्र-राज्य के संदर्भ में करता है जो लोगों को शान्त, व्यवस्थित, उचित, संपन्न और भागीदारीपूर्ण जीवन जीने में सहायक होती है। इस प्रकार सुशासन या अच्छे शासन में अंतर्निहित होते हैंः द्रुतक्रियाशीलता, जवाबदेही, संवेदनशीलता, पारदर्शिता, भागीदारी, खुलापन और विधिसम्मत तथा न्यायप्रिय शासन। ऐसा समझा जा रहा है कि वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप आए सुधार तथा तदोत्पन्न लाभ तब तक सफलतापूर्वक हासिल नहीं हो सकते जब तक कि उससे पूर्व उत्तम स्तर का साफ-सुथरा शासन-प्रशासन सुनिश्चित नहीं किया जाता। 'वास्तविकता यह है कि विभिन्न देशों के ऋण स्वीकृत करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ने सुशासन को भी एक महत्वपूर्ण मानक माना है। परंतु सुशासन क्या है तथा इसका क्या मापदंड होना चाहिए, प्रमुख विद्वानों डेविड ओसबोर्न तथा टेड गैबलर ने स्पष्ट करते हुए इसे उद्यमी तथा शीघ्रनिर्णय लेने वाले द्रुतगामी शासन का पर्यायवाची माना है तथा ऐसे शासन की संकल्पना के अंतर्गत अधोलिखित विशेषताओं की उपस्थिति को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया हैः (1). उत्प्रेरक सरकार; (2). समुदाय पर आधारित सरकार; (3). प्रतिस्पर्धी सरकार; (4). सेवा प्रायोजित सरकार; (5). परिणामोन्मुखी सरकार; (6). ग्राहकोन्मुखी सरकार; (7). उद्यमी सरकार; (8). पूर्वानुमान लगाने वाली सरकार; (9). विकेंद्रित सरकार; (10). बाजारोन्मुखी सरकार; तथा (11). लक्ष्य प्राप्ति की ओर निरंतर उन्मुख सरकार।' संदर्भः होशियार सिंह एवं प्रदीप सचदेवा।

निसंदेह 'शासन में अच्छाई' की धारणा वह विषय है जिसका तीसरी दुनिया के देशों में राजनीतिक तथा सामाजिक विचारकों एवं दार्शनिकों ने अपने लेखों में गहन

मंथन किया है परंतु जब सुशासन या अच्छे शासन की अवधारणा को इस पृष्ठभूमि में देखते हैं तो यह विषय ऐसा प्रतीत होता हैकि जिसे तीसरी दुनिया के देशों की सरकारें और वहां की जनतापूर्णरूपेण जानती और समझती ही नहीं थी। सुशासन के संदर्भ में शासन शब्द पर विचार करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस शब्द के दीर्घकालिक अस्तित्व में होने के बाद भी आज ऐसी क्या कमी रह गई है जिसके कारण इस शब्द के बदले सुशासन शब्द की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ एवं चिंतक तथा पदम भूषण सुभाष कश्यप के अनुसार' वास्तव में शासन शब्द में सत्ता या नियंत्रण का भाव परिलक्षित होता है जबकि सुशासन कहने से जनहित का भाव प्रकट होता है जिसमें सेवा और समर्पण की भावना अनन्य रूप से विद्यमान है।' फिर भी सुशासन शब्द, जैसा तीसरी दुनिया के देशों में प्रयोग किया जा रहा है वह पश्चिम के देशों की नकल प्रतीत होता है और यह न केवल अभी हाल के वर्षों में पैदा हुआ है, बल्कि यह इन देशों में विद्यमान ही नहीं था। अपनी लोकप्रियता और वृहत चलन के बावजूद इस अवधारणा में अस्पष्टता है और वैचारिक रूप से इसके अर्थों में भ्रामक विविधता भी है। इस अवधारणात्मक भ्रम के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में शिक्षित वर्ग का बहुमत यह सोचता है कि सुशासन का अर्थ ऐसा शासन है जो प्रभावी, कुशल, लोकप्रिय और वैध है तथा आम जनता के साथ मित्रवत है।' इसमें सभी की सहभागिता भी है जैसा प्राचीन यूनानी विचारक क्लिओन ने कहा था कि 'शासन जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए' होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह प्रशासकीय दुर्गुणों यथा लालफीताशाही, प्रक्रिया संबधी रूढ़िवादिता तथा संवेदनशून्य प्रकृति के कारण सुचारू रूप से क्रियाशील न हो पाने की समस्याओं से भी मुक्त है। अच्छे प्रशासन के इस सार्वजनिक दृष्टिकोण में औचित्य, अति-औचित्य एवं अनौचित्य समाहित है। चूंकि यह एक चिंता का विषय था कि तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में नेताओं तथा उनके चापलूस गुर्गों ने सत्ता का खूब दुरूपयोग किया और उन्होंने बड़ी होशियारी एवं चालाकीपूर्ण तरीके से धोखाधड़ी, चालबाजी की और सार्वजनिक धन की खूब लूटपाट की। अतः इस कुप्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाना आवश्यक था। परंतु हाल के वर्षों में तीसरी दुनिया के कई देशों में सरकार का प्रजातांत्रिक स्वरूप वहाँ के निर्वाचित नेताओं, नौकरशाहों और दूसरे जन-सेवकों द्वारा शासकीय शक्ति या पद का निजी स्वार्थ के दुरूपयोग तथा सार्वजनिक धन को निजी लाभ के लिए चोरी करने से रोकने में सफल नही हो पाया। सुशासन की अवधारणा उन सब बुराइयों, जिनसे राजनीति एवं शासन-प्रशासन ग्रस्त है, के एक निवारक उपाय के रूप में दिनों दिन आकर्षक तथा लोकप्रिय होती जा रही है। वर्ष 2002 की मानव विकास रिपोर्ट ने अच्छे शासन या सुशासन की स्थापना हेतु कुछ महत्वपूर्ण कारकों की पहचान की है किंतु ये मुख्य रूप से अच्छे प्रशासन के लक्षणों का वर्णन करते हैं। मानव विकास के परिपेक्ष्य में सुशासन प्रजातांत्रिक शासन से मिलता जुलता है। एक

प्रजातांत्रिक शासन में अधोलिखित लक्षण अपेक्षित हैं:

1. मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का सम्मान,
2. कानून का शासन एवं स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्याय व्यवस्था,
3. निर्णय की जवाबदेही एवं सवेंदनशीलता,
4. जीवन के निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों हेतु प्रभावी निर्णय की क्षमता क्योंकि वर्तमान नीतियों में भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं की झलक होती है,
5. आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का गरीबी हटाने तथा चतुर्दिक विकास हेतु क्रियान्वयन,
6. जीवन में अपनाने योग्य ऐसे चयन या पसंद को बढ़ाना है जिन्हें लोग अपने जीवन में अपना सकें,
7. द्रुत कार्यसंपादन प्रणाली, एवं
8. शासन में पारदर्शिता आदि।

यद्यपि प्रजातंत्र में सभी के हितों का संरक्षण करना परमावश्यक है तथापि इसके माध्यम से सुशासन की स्थापना का लक्ष्य सर्वथा समीचीन है जिस पर गंभीरता पूर्वक ध्यान देते हुए विश्व बैंक ने *गुड गवर्नेंस* या अच्छा शासन अर्थात सुशासन की आवश्यकता को उचित ठहराया।

विश्व बैंक एवं सुशासन

विश्व बैंक के पहली बार 1989 में सुशासन की अवधारणा पर बल दिया जिसके अनुसार सुशासन से तात्पर्य अच्छे सार्वजनिक प्रबंधन से था और इस संदर्भ में इसने चार आयामों की पहचान की: 1. सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध, 2. जवाबदेही, 3. विकास के लिए कानूनी संरचना और 4. सूचना और पारदर्शिता। इस बैंक की 1992 की रिपोर्ट ' प्रशासन और विकास' ने सुशासन कि नई अवधारणा का प्रतिपादन किया, जिसके बारे में लगभग सभी देशों में गंभीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। इसमें कहा गया है कि 'सुशासन ऐसा परिवेश बनाने और बनाए रखने के केंद्र में है, जो मजबूत और समान विकास का पोषण करता है' और यह ठोस आर्थिक नीतियों की स्थापना के लिए चल रही एक अत्यावश्यक संघर्ष है। विश्व बैंक ने 1989 में अपने सब-सहारा अफ्रीकी राज्यों से संबधित दस्तावेजों में 'सुशासन' का उल्लेख' ठोस विकास प्रबंध' के परिपेक्ष्य में किया है। इस संबध में उन्होंने निम्नलिखित चार प्रमुख बिंदुओं को रेखांकित किया है: सार्वजनिक क्षेत्र का प्रबंध; जवाबदेही; विकास के लिए वैधानिक ढांचा और पारदर्शिता एवं सूचना। इस बैंक के मानकों के अनुसार सुशासन में शामिल लोकतंत्र, पारदर्शिता, संवेदनशीलता और जवाबदेही के अलावा ऐसा माना जा सकता है कि उत्तम अभिशासन का सम्रग आशय एक ऐसी सहभागितापूर्ण

प्रणाली से है जिसमें जिन लोगों को जनता की ओर से शासन के लिए चुना जाता है वे ऐसे हों जो उन्हें अपना सर्वोत्तम देने, लोगों की सेवा और भलाई करने, उनकी समस्याओं को हल करने और उनका जीवन सुखी ढंग से जीने योग्य, संतोषपूर्ण, सुरक्षायुक्त तथा उल्लासमय बनाने की भावना से अनुप्राणित हों। विश्व बैंक के उक्त मानकों के अनुसार सुशासन के अंतर्गत लोकतंत्र को जनभागीदारी पर आधारित, पारदर्शी, संवेदनशील तथा उत्तरदायी होना चाहिए जिसमें आम आदमी को पूर्ण सहभागिता मिल सके तथा शासक तथा शासित के बीच फैली खाई को पाटा जा सके। इसलिए शासन करने के लिए जनता के ऐसे प्रतिनिधि आगे आयें जो निस्वार्थ भाव से, त्याग एवं सेवा की भावना से प्रेरित होकर जनता के हितों की रक्षा के लिए कटिबद्ध होते हुए जनता की सेवा के लिए शासन के विभिन्न पदों को सुशोभित करें। एक अन्य विद्वान मिनोचा ने विश्व बैंक के निर्देशों का उल्लेख किया है और अधिक व्यावहारिक रूप में इसके मापदंडों को परिभाषित किया है। ये हैं राजनीतिक जवाबदेही, स्वतंत्रता की उपलब्धता, कानून का पालन करती जिम्मेदार और जवाबदेह नौकरशाही, पारदर्शी रूप में सूचना की उपलब्धता तथा सरकार और समाज के बीच प्रभावी और कुशल सहयोग आदि। वस्तुतः सुशासन की परिभाषा कभी तो लक्ष्यों के संदर्भ में की गई और कभी साधनों के रूप में और कभी इसे एक लोक कल्याणकारी व्यवस्था की स्थापना की प्रक्रिया के संदर्भ में या पूरी तरह लक्ष्यों और पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के खुले चयन के रूप में माना गया है। इस अर्थ में समाज के आधारभूत सिद्धांतों या मूल्यों का महत्व काफी बढ़ जाता है जिसे ध्यान में रखते हुए विवेक चोपड़ा ने सुशासन की परिभाषा समाज के मौलिक मूल्यों की स्पष्ट पहचान करने और उन्हें अक्षुण्य बनाए रखने के प्रयास के रूप में किया है। एक प्रसिद्व अतंर्राष्ट्रीय प्रबंधनगुरू पीटर ड्रकर इस अवधारणा में एक नया आयाम जोड़ते हैं जिसके अनुसार यह धारणा 'प्रशासन करने के स्थान पर दूसरों द्वारा इसे आसान बनाने से सम्बन्धित है'। संदर्भः होशियार सिंह एवं प्रदीप सचदेवा।

सरल शब्दों में सुशासन का अर्थ उत्कृष्ट शासन और इस ढंग से शासन के संचालन की प्रक्रिया है जिसके द्वारा वे क्रियान्वित किए जाते हैं। इस उद्देश्य के अंर्तगत चूंकि प्रशासन जनहित में निर्णय करने और उसे क्रियान्वित करने की प्रकियाएँ हैं अतः प्रशासन का विश्लेषण करने में निर्णय लेने या नीति निर्माण करने वाले और उन्हें क्रियान्वित करने वाले कर्ताओं तथा उन औपचारिक तथा अनौपचारिक सरंचनाओं का महत्व नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जिनके द्वारा शासन की नीति के अंतर्गत घोषित लक्ष्यों को पूरा किया जाता है।

पश्चिम की परम्परा में सुशासन

यद्यपि पश्चिम की परम्परा में भी सुशासन का सीधा संबंध लोकहित से है परंतु वहाँ इसका अर्थ है 'बहुमत' का हित अर्थात' अधिक से अधिक लोगों का अधिक से

अधिक हित' और यह प्रजातंत्र के बहुमत के सिद्धांत के अधिक निकट है। चूंकि पश्चिम में व्यक्ति की एक स्वतंत्र तथा संप्रभु इकाई के रूप में अवधारणा उनके व्यक्तिवाद तथा उदारवाद रूपी आदर्श के समरूप है अतः वे सबके भले या सर्वजन हिताय पर बहुत बल देना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि जब व्यक्ति या व्यक्तियों का भला होगा तब समाज का भला अपने आप हो जाएगा। इसके विपरीत सबके भले की हिन्दू अवधारणा कहीं अधिक व्यापक तथा न्यायोचित है क्योंकि यह 'बहु' की अपेक्षा 'सर्व' अर्थात सभी के हित संरक्षण पर ध्यान देती है। इसलिए जब 'अच्छे' शब्द को भारतीय परिपेक्ष्य में स्पष्ट किया जाता है तब इसका अर्थ 'शुभ' के संदर्भ में अर्थात ऐसा कार्य होता है जो मात्र एक व्यक्ति या बहुत से लोगों का हित न होकर सभी का हित होता है अर्थात जिसमें सभी के कल्याण भावना निहित होती है। अतः सुशासन या अच्छे शासन का अर्थ हुआ उन लोगों के द्वारा अच्छे निर्णय का कार्य जो सबकी भलाई को लक्ष्य बनाकर शासन प्रक्रिया में लगे हों। एक अच्छी सरकार उन अन्दर से जुड़ी स्थितियों की हो सकती है जो शासितों, खराब परिस्थितियों के अवांछनीय नमूनों से बचती हुई अच्छे परिणामों का आश्वासन देती है और यह ऐसा लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप फैसलों में, अपेक्षित अधिकार देने में और किए गए कार्यों के सत्यापन में दर्शाती है। यद्यपि राजनीति वह साधन प्रदान करती है जिससे प्रशासन की प्रक्रिया चलती है परंतु प्रशासन की उत्तरोत्तर सफलता से राजनीति निरंतर पुष्ट होती जाती है। उदाहरण के लिए आम नागरिक राजनीतिक क्रियाओं द्वारा अपेक्षाऐं तय कर सकते हैं, राजनीतिक कार्यों द्वारा वे शासन करने के अधिकार प्रदान कर सकते हैं, और वे शासकों के कार्यों का मूल्यांकन उनके राजनैतिक आचरण और सामान्य व्यवहार से कर सकते हैं।

सुशासन की भारतीय अवधारणा

वास्तव में सुशासन की अवधारणा हमारे देश में कोई नई अवधारणा नहीं है। महाभारत, रामचरित मानस, कौटिल्य के अर्थशस्त्र तथा अनेक प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों तथा लौकिक साहित्य में भी सुशासन के विषय में विस्तार से वर्णन मिलता है। सुभाष कश्यप ने स्पष्ट किया है कि 'राजतंत्र के बावजूद, भारतीय चिन्तन में, शासकों के दैवी अधिकारों अथवा स्वेच्छाचारी शासन को कोई मान्यता प्राप्त नहीं थी। राजधर्म पालन की व्यवस्था आज के विधि के शासन के अनुरूप थी। जातक कथाएँ, महाभारत का शान्ति पर्व, अनुशासन पर्व, शुक्राचार्य का नीतिसार, पाणिनि की अष्टाध्यायी, ऐतरेय ब्राह्मण, बाल्मीकि रामायण, अत्रि सहिंता और पराशर स्मृति आदि सभी ग्रंथ सुशासन अथवा उत्तम शासन की संकल्पना और उसकी विशेषताओं के विस्तृत वर्णन से युक्त हैं। कौटिल्य के अनुसार राजा की प्रसन्नता उसकी प्रजा की प्रसन्नता में है और उसकी भलाई प्रजा की भलाई में हैं। वह किसी ऐसी चीज को अच्छी नहीं समझता जो उसे खुश करती है बल्कि उसे लाभदायक मानेगा जिसे

उसकी प्रजा सुखवर्धक मानती है। अत्रि संहिता में शासकों के निस्वार्थ पाँच कर्तव्य बताए गए हैंः दुष्टों को दण्ड देना, सज्जनों को सम्मान देना, उचित कर प्रणाली स्थापित करना, राजकोष की निरंतर वृद्धि करना, भेदभावहीन न्याय व्यवस्था स्थापित करना तथा राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था को सदैव सुदृढ बनाए रखना आदि।'

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य त्व संप्रवभद्विः।

अपक्षपातोडर्भिषु राष्ट्ररक्षा पंचैव य़द्यैव कथिता नृपाणाम ।।

इसी प्रकार महाभारत के शान्तिपर्व में भी कहा गया हैः

धर्माय राजा भवति न कामकरणायतु।

अर्थात शासक को राजनीतिक शक्ति का प्रयोग केवल विधि सम्मत तरीके से अर्थात धर्म के अनुसार ही राज्य हित के कार्यों के लिए ही करना चाहिए न कि निजी इच्छाओं की पूर्ति या सुख-सुविधाओं के भोग आदि के लिए। शुक्राचार्य का नीतिसार, जो 10वीं शताब्दी में रचा गया था, में कहा गया है कि शासक को जन भावनाओं के अनुसार आचरण करना होता था तथा कुशासन के विरोध में जनता को विद्रोह का अधिकार भी था। कौटिल्य ने शासन कला पर व्यापक विचार विमर्श किया। उत्तम अभिशासन से जुड़े विषयों और जनता के सर्वाधिक हित में उसे कैसे प्रभावी किया जाए, इस बारे में विस्तार से वर्णन उसके द्वारा रचित प्रसिद्व ग्रंथ अर्थशास्त्र में मिलता है।' कौटिल्य के अनुसार शासक का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य है जनता की सुरक्षा सुनिश्चित करना तथा अव्यवस्था और कानून के उल्लघंन को आवश्यक कठोरता के साथ रोकना तथा न्याय की स्थापना करना क्योंकि यही सभ्य समाज का आधारभूत सिद्धांत है। एक श्रेष्ठ शासक वही है जो सुशासन के लिए निरंतर समर्पित रहे तथा सभी की भलाई का प्रयास निरन्तर करता रहे और यही मात्र उसका अभीष्ठ हो। शासक अपने कर्त्तव्य के निर्वाह में सदैव तत्पर रहने की अपनी प्रतिबद्धता ने बंधा होता है।' इस संबध में सुशासन के सिद्धान्तों की स्पष्ट घोषणा करते हुए कौटिल्य कहते हैंः

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितं।

नात्म प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितं।।

अर्थात जनता की खुशी में ही उसकी खुशी है, जनता का हित ही उसका हित है जो जनता को अच्छा लगता है उसे ही वह उत्तम मानेगा। कौटिल्य सुशासन के द्वारा कल्याणकारी राज्य के पक्ष में हैं जिसमें लोगों का कल्याण और योगक्षेम सर्वोपरि लक्ष्य है। इस उद्देश्य हेतु कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के भी 40 तरीकों का वर्णन किया है जिनसे भ्रष्ट अधिकारी अपने निहित तथा स्वार्थपरक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए जनता और सरकार को धोखा दे सकते हैं। संदर्भः सुभाष कश्यप।

महात्मा गांधी की रामराज्य की अवधारणा भी इसी आशय को स्पष्ट करती है जो

'सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय' रूपी सुशासन के लक्ष्य को प्रकट करता है। सुभाष कश्यप के अनुसार इसी भावना को प्रकट करते हुए स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री 'स्व. जवाहर लाल नेहरू ने प्राचीन भारत में राजपद का कार्य 'जना' अर्थात जनता की सेवा करना बताया था। यदि शासक सुशासन न दे पाये तो जनता उसे अपदस्थ कर किसी दूसरे योग्य व्यक्ति को शासक के रूप में चुन सकती है।' पिछली शती में सत्तर के दशक के प्रारंभिक वर्षों में शुरू हुआ लोकनायक जय प्रकाश नारायण का संपूर्ण क्रांति आंदोलन भी राजनीतिक अन्याय, अपराध तथा संगठित भ्रष्टाचार के विरूद्ध तथा सुशासन की स्थापना करने के लिए ही था। कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवाद की अवधारणा में भी एक ऐसी शोषण विहीन तथा अन्याय मुक्त सामाजिक-आर्थिक शासन व्यवस्था का वर्णन मिलता है जिसमें सभी सुखी एवं प्रसन्न होंगे क्योंकि सभी अपनी योग्यता के अनुसार काम करेंगें तथापि अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त भी करेंगे। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी' सबका साथ सबका विकास', 'शासन कम अभिशासन अधिक' तथा' स्वच्छ भारत' जैसे लोकप्रिय नारों के माध्यम से शासन-प्रशासन का नियंत्रण कम से कम करने तथा सुशासन की स्थापना के उद्देश्य से ही करते हैं। जब स्वतंत्र भारत का संविधान बना तब सुशासन की संकल्पना प्रचलन में नहीं आई थी किंतु संविधान के चतुर्थ अध्याय में उल्लेखित' राज्य के नीति-निर्देशक तत्व' में कुछ ऐसे प्रावधानों का वर्णन किया गया था जो देश में सुशासन की स्थापना के संदर्भ में मूलभूत होंगें और जिनका विधि-निर्माण में पालन करना राज्य का दायित्व होगा। वस्तुतः ये सभी राज्य के नीति-निर्देशक तत्व जनहित में सुशासन की स्थापना करना ही चाहते हैं।

निष्कर्ष

मानव सभ्यता के विकास के साथ साथ 'अच्छा शासन' या 'सुशासन' की अवधारणा भी निरन्तर विकसित होती जा रही है और इसमें नित नूतन समाजोपयोगी तथा लोक कल्याण कारी आयाम जुड़ते चले जा रहे हैं। पिछली शताब्दियों में वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण और कंपनियों और पूंजीपतियों की बढ़ती शक्ति तथा प्रभाव के सदंर्भ में इस शब्दावली ने नया और व्यापक अर्थ ले लिया है। अच्छा प्रशासन और अच्छी सरकार भी बड़ा और व्यापक विचार है जिसमें मूलतः सन्तुलित प्रशासन के साथ ही साथ प्रजातांत्रिक रूप से निर्वाचित, कानून से नियंत्रित, उत्तरदायी, संवेदनशील तथा पारदर्शी एवं खुली शासन व्यवस्था या सरकार का विचार आता है जिसमें सार्वजनिक और निजी, दोनों ही क्षेत्र एक दूसरे से लाभान्वित हो कर विकास कर सकते हैं। चूंकि सुशासन के दायरे को सीमित करना संभव नहीं है अतः इसकी चुनौती निश्चय ही यह माँग करती है कि सरकार को जनकल्याण हेतु पुनः सक्रिय किया जाए अर्थात उसका पुनः अविष्कार हो तथा नौकरशाही को एक बार फिर परिवर्तन के एजेंट या अभिकर्ता के रूप में स्वीकार करते हुए उनका उपयोग किया

जाए। गैर-सरकारी संगठन तथा सभ्य समाज के योगदान को स्वीकार करते हुए उन्हें सुशासन हेतु कार्य करते रहने के लिए निरंतर प्रोत्साहित किया जाये तथा ऐसे गैर-सरकारी संगठन व्यापार क्षेत्र और सार्वजनिक एवं सामाजिक हित के उद्देश्य से पुनः सृजित या सक्रिय किये जाएं। समग्रतः सुशासन की विकासशील सकंल्पना के अंतर्गत भारतीय परम्परा में सर्व हित रूपी लोककल्याणकारी का भाव 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' पश्चिम की बहुजन की संकल्पना से कहीं आगे और श्रेष्ठ है।

संदर्भ

कश्यप सुभाष, 2015, क्षेत्रीय केंद्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, द्वारा सुशासन पर आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार, आई. वी. आर. आई. सभागार, बरेली, उ.प्र., 15 सितम्बर।

ओसबोर्न डेविड एवं टेड गैबलर, 1992, *रिइन्वेंटिंग गवर्नमेंट, लंदन*।

चक्रवर्ती बिद्युत, 2007, *रिइन्वेंटिंग पब्लिक एडमिनिस्टशनः द इंडियन एक्सपिरियंस,* ओरियंट लॉगमैन, नई दिल्ली, पृ.157।

भट्टाचार्य मोहित, 2006, *लोक प्रशासन के नये आयाम,* जवाहर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.1।

यू0 एन0 डी0 पी0 2002, *मानव विकास रिपोर्ट,* संयुक्त राश्ट्र संघ, न्यूयॉर्क, अमेरिका।

मिश्रा संगीता, 2014, *भारत में लोक प्रशासन की बदलती प्रकृति,* समकालीन भारतः एक परिचय, मनोज सिन्हा संपा., आरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ. 347–48।

विश्व बैंक रिपोर्ट, 1992 '*प्रशासन और विकास*', विश्व बैंक मुख्यालय, वाशिंगटन डी. सी., अमेरिका।

सिंह होशियार एवं प्रदीप सचदेवा, 2011, 'अच्छा प्रशासन', *लोक प्रशासनः* सिद्धांत एवं व्यवहार, पियर्सन, दिल्ली, पृ. 277–79।

सरकारी तंत्र का जवाबदेही मूल्यांकन से संभव है सुशासन

श्याम सुन्दर प्रसाद

सरकार की बढ़ती कार्यो की फ़ेहरिस्त ने अधिकारियों व नौकरशाही पर कार्यों का बोझ बढ़ा दिया है। लेकिन इसका वांछित फायदा आम जनता को मिले, इसके लिए सरकारी तंत्र की जवाबदेही और बढ़ जाती है। क्योंकि सरकार के नीति एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की मशीनरी सरकारी तंत्र ही है। इस परिपेक्ष्य में सरकारी तंत्र के जवाबदेही का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ।

ljdkjh r= d ifji{; e tokcngh% विगत् वर्षों में देश ने लगभग सभी क्षेत्रों में प्रगति की है तथा शासन व प्रशासन प्रणाली में समसामयिक परिवर्तन व सुधारों का प्रयास भी किया गया है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर आधारित इस देश में ऐसा लगता है कि सुशासन संविधान का उद्देश्य ही नहीं बल्कि लक्ष्य बन चुका है । आर्थिक विकास की आशातीत रूप से तीव्र वृद्धि के साथ देश विकासशीलता की ओर उतरोत्तर बढ़ता जा रहा है। एक समतामूलक चहुँमुखी समाज का विकास करना अब एक उत्तरदायी शासन व्यवस्था की अपेक्षा बन गई है। इन उपरोक्त संदर्भ में सरकारी तंत्र की अहमियतता और उतरदायित्व और बढ़ जाता है, क्योंकि सरकारी तंत्र की सक्षम व उचित जवाबदेही से सरकार के योजनाओं एवं कार्यक्रमों के वांछित परिणाम को पाया जा सकता है। इसके लिए प्रशासन में शुचिता, न्याय, निष्पक्षता तथा ईमानदारी के साथ-साथ उच्च पदों पर पदासीन लोगों में निःस्वार्थता एवं लोककल्याणकारी मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता होनी अति आवश्यक है। भ्रष्ट आचरण करने वाले कर्मचारी में निःसंदेह अपने जवाबदेही के प्रति उदासीनता दिखती है। किसी के जवाबदेही को सही ढंग से न निभाने और सुशासन का माहौल बनाने से रोकने का बहुत प्रभावशाली कारक भ्रष्टाचार है।

l¡'kklu d lanHkZ e tokcngh % सुशासन एक बहुआयामी, गतिशील एवं संस्कृति सापेक्ष अवधारणा है, जो एक बेहतर समाज के लिए विभिन्न आदर्शों को समाहित करती है । इसमें शासन करने व नियंत्रण करने के लिए नीति-निर्माण और

उसके परिणाम को सम्मलित किया जा सकता है। सरकारी तंत्र न केवल नीतियों के क्रियान्वयन में अपनी जवाबदेही तय करती है बल्कि इनकी भूमिका नीतियों के निर्माण और उसके मूल्यांकन में भी कम नहीं है। सुशासन की पहली कड़ी जनता के लिए बेहतर सेवा उपलब्ध कराना है। सुशासन लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान करता है और जनता के जीवन के अधिकार, स्वतंत्रता और सामाजिक समानता और अवसर को बढ़ावा देता है। इसलिए सरकारी तंत्र की उत्तरदायित्व उसके किये गए कार्यों की जवाबदेही से तय होनी चाहिए। वैश्वीकरण के लाभ को सुनिश्चित करने तथा देश के विकास प्रक्रिया को तेजी से आगे लेकर जाने की पूर्व शर्त सुशासन ही है। इस संदर्भ में, सरकारी तंत्र का ज्यादा सक्षम लोक प्रबंधन, कुशल सेवा प्रदायक तथा सहभागी शासन व्यवस्था को स्थापित करने हेतु कृत संकल्प सुशासन ला सकता है। अतः सुशासन और सरकारी तंत्र की निष्पक्ष जवाबदेही एक दूसरे के लिए पूर्व शर्त है। अगर कहीं वास्तविक रूप से सुशासन है तो वहां सरकारी तंत्र ने अपनी जवाबदेहीपूर्ण कार्य किया होगा। दूसरी तरफ, सरकारी तंत्र जवाबदेह है तो सुशासन स्थापित होने में देरी नहीं होंगी। चाहे सुशासन को लाने के दूसरा अन्य पक्ष कितना भी निकृष्ट क्यों नहीं हो। आज सरकारी तंत्र / नौकरशाही की भूमिका को देख कर कहा जा सकता है कि 'पुलिस राज्य' की अवधारणा बलवती होती दिख रही है। 21 अप्रैल, 2016 को 'सिविल सर्विसेज़ डे' पर माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी का कहना कि जनप्रतिनिधि पूर्णतया नौकरशाही पर निर्भर न हो, कहीं-न-कहीं अधिकारियों के वर्चस्व को बताता है। दूसरे अर्थ में देखा जाए तो अधिकारियों की बढ़ती महत्ता को इंगित करता है और साथ ही जवाबदेही की आवश्यकता महसूस कराती है। भारत जैसे विकासशील देश में अधिकारियों व नौकरशाही के कार्य और दायित्व देश की जनता के प्रति और विकास में ज्यादा होती है। इनकी भूमिका नीति के निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन इन तीनों स्तरों में अत्यधिक होता है। जनप्रतिनिधियों के बिना शासन चल सकता है। लेकिन सरकारी तंत्र के बिना एक दिन प्रशासन चलाना मुश्किल हो सकता है। सरकारी तंत्र में काम करने वाले उच्च अधिकारी ईमानदारी, निष्ठा, भयमुक्त एवं तत्परता के साथ अपने कार्यों को अमलीजामा पहनाने के प्रति संकल्पित हो जायें तो लगभग 50 प्रतिशत सामयिक मुद्दे धीरे-धीरे खत्म हो जायेंगे। इनके प्रयास से अधिकांश भ्रष्टाचार और मुकदमों की संख्या कम हो सकती है। लेकिन विडम्बना यह है कि यहां संस्थानिक नौकरशाही अत्यंत गहराई से राजनीतिक प्रणाली के अंदर घुस चुकी है। अपने में सुधार के प्रस्तावों पर चर्चा और प्रस्तावों को आगे बढ़ाने का कार्य प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा किए जाते है। तो यह समझा जा सकता है कि वे अपने को नागरिक के प्रति कितना जवाबदेह बना सकते हैं? वर्चस्ववादी नौकरशाही की प्रकृति सुशासन स्थापित करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के बजाय यथास्थिति बनाने पर ध्यान देती है । एक जवाबदेह कर्मचारी व्यवस्था में

प्रभावशीलता, मितव्ययिता, पारदर्शिता और कुशलता ला सकती है। जो अंततः सुशासन की ओर बढ़ते कदम साबित हो सकता है ।

ljdkjh r= dh tokcngh - n'kk vkj fn'kk % सरकारी तंत्रों और संस्थाओं में भ्रष्टाचार और स्वार्थपरता का निहित होना प्रशासनिक व्यवस्था को जन मानस के आगे इनके नकारात्मक छवि को रखता है। सरकारी कर्मचारियों के जवाबदेही को कम करने का मुख्य कारण उनका भ्रष्टाचार में संलिप्तता है। सरकारी कर्मचारी और भ्रष्टाचार एक दूसरे के पूरक प्रतीत हो रहे हैं। वर्तमान में भ्रष्टाचार ने विकास की गति को एक सीमा तक कम करने का प्रयास किया है। यह एक ऐसा शब्द बन चुका है जिससे सभी लोग किसी न किसी रूप में वाकिफ हैं और जूझ भी रहे हैं। ऐसा कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भ्रष्टाचार लोगों की दिनचर्या और नियति बन गई है। इससे जुड़े कार्यों को करने में कोई अतिरंजना नहीं होता ।

भ्रष्टाचार के प्रादुर्भावों को रोकने तथा इसके विरूद्ध अंकुश रखने के लिए सरकार ने अनेक प्रक्रियात्मक एवं संस्थागत प्रयास किये हैं। उन प्रयासों में 11 फरवरी, 1964 को एक सरकारी प्रस्ताव के द्वारा केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) का गठन करना भी है। जो राजपत्रित अधिकारियों और उसके समान स्तर के कार्मिकों के भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों की जांच करती है। सीवीसी को 1998 में संवैधानिक दर्जा मिला और जिससे इसे कार्यों में अधिक स्वायत्ता मिल पायी। सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005, लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013, व्हिसलब्लोअर प्रोटेक्शन एक्ट, 2011 तथा सीबीआई जैसे प्रावधानों ने इसे सशक्त किया है। अगर सीवीसी की रिपोर्ट- 2015 को देखें तो सीवीसी ने भ्रष्टाचार के 32,149 शिकायतों को लिया है तथा 30,789 शिकायतों पर कार्यवाही भी की है। इस आंकड़े को एक वर्ष में शिकायतों के मामूली संख्या नहीं कहा जा सकता है। सीबीआई के रिपोर्ट–2014 के अनुसार, वर्ष 2014 में 1,174 मामलें रजिस्टर्ड किये गए है। जिसमें ज्यादातर मामलें लोक सेवकों द्वारा कार्यालयी पक्षपात करने के लिए घूस लेने का है। सीबीआई के पास अब छोटे-बड़े अधिकांश मामलें प्रत्येक वर्ष बढ़ते जा रहे हैं। सीबीआई राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप का शिकार बनती जा रही है। सीवीसी में वित्तीय मामलों के प्रशिक्षित और अपराध के विशेषज्ञ वकीलों की कमी है। अगर भ्रष्टाचार के बढ़ते आकड़ों के विश्लेषण किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि इन संगठनात्मक व्यवस्था से भ्रष्टाचार पर काबू नहीं पाया जा सकता है। अगर भ्रष्टाचार पर अंकुश रखना है तो इसके विरूद्ध जन या सामाजिक आन्दोलन लाना होगा। जनता में सतर्कता और जागरूकता लानी होगी। तभी श्रेष्ठ और भ्रष्टाचार मुक्त भारत का निर्माण होगा। इस दिशा में सीवीसी का प्रयास सराहनीय है। सीवीसी ने विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/संस्थाओं/कॉलेजों को एक सर्कुलर जारी कर 31 अक्टूबर, 2016 से 5 नवम्बर, 2016 तक *'सतर्कता जागरूकता सप्ताह'* मनाने का

दिशा-निर्देश दिया था। जिसका थीम – *"पब्लिक पार्टिसिपेशन इन प्रोमोटिंग इंटीग्रिटी एंड इराडीकेटिंग करप्शन"* रखा था। इसके अमल में विभिन्न गतिविधियों को आयोजन किये गए। इन गतिविधियों के केंद्र में भ्रष्टाचार निवारण के संदर्भ में लोगों में जागरूकता लाना था। इनके थीम के अंतर्गत दो महत्वपूर्ण और कठिनाईपूर्ण शब्द छुपे है – *पहला, भ्रष्टाचार* और *दूसरा, जनता की सहभागिता*। भ्रष्टाचार पर रोक सच्चारित्रता को जन्म देंगा जिससे गांधीवादी, समाजवादी व असली लोकतंत्र कायम हो सकता है। लेकिन अगर गौर करें तो भ्रष्टाचार न केवल अधिकारियों/ कर्मचारियों की नियति बनी हुई है बल्कि नागरिकों के दिनचर्या में शामिल हो गया है। इसलिए सबसे बड़ा सवाल यह है कि इस भौतिकवादिता, अवसरवादिता, अभावग्रस्ता एवं कम मेहनत में तेजी से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति क्या विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार की असाधारण वृद्धि को रोक सकती है ? सरकारी कर्मचारी हो या साधारण लोग दोनों को सरकार की नई-नई योजनाएं व कार्यक्रम तथा नए-नए नियम या कानून इन्हें भ्रष्टता की ओर प्रोत्साहित कर रहे हैं। लोगों को स्वार्थपूर्ति के अवसर के उपयोग में थोड़ी सी भी हिचकिचाहट नहीं होती है। शहरवासियों में भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति ग्रामीणवासियों की तुलना में ज्यादा है, क्योंकि शहर में आर्थिक-सामाजिक आधारभूत आधारित वितीय कार्य ज्यादा होते है। दूसरी ओर, जन सहभागिता को बढ़ाने में भी कई मुश्किलें है । इसमें अन्य कारणों के आलावा सबसे बड़ा मुद्दा बढ़ती हुई विकराल महंगाई है जो लोगों को पारिवारिक आवश्यकता के पूर्ति से फुरसत नहीं होने देती है तथा अधिकारियों के लालफीताशाही व गोपनीय रवैया इन्हें भागीदार बनने नहीं देता है। अगर ध्यान दें तो सम्पूर्ण व्यवस्था एक गैर-जिम्मेदाराना ढंग से कार्य कर रहा है ।

l¡'kklu LFkkfir dju e ljdkjh r= dh Hkfedk % विकासशील देशों में सरकारी तंत्र का सुशासन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। हालांकि सुशासन को लाने में सरकार, जनता और सरकारी तंत्र की सम्पूर्ण और समर्पित समन्वयकारी प्रयास जरूरी है। लेकिन भारत जैसे देश में कुशासन के कारण यह पूरी तरह प्रभावी नहीं है। क्योंकि यहां राजनेताओं, प्रशासकों और माफिया समूहों के वृहत् गठजोड़ के द्वारा जन-कोष का प्रयोग निजी हितों के लिए किया जाने लगा है। देश में सरकारी तंत्र का फैला शिक्षित, विवेकी, प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारियों के जाल काफी हद तक सुशासन लाने में सक्षम है ।

सरकारी तंत्र में पारदर्शिता, उतरदायित्व और नैतिकता विकसित करने के लिए आए दिनों कई संस्थाओं में शपथ कार्यक्रम का आयोजन हो रहे हैं। जो लोगों में नैतिक चेतना को जागृत करती है। लेकिन यह बताने की जरूरत नहीं है कि हमारे देश में 'शपथ' लोगों को गलत पर पर्दा डालने का अस्त्र देती है और इसे सुरक्षा कवच के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कॉलेजों द्वारा अनेक गतिविधियां जैसे -

वाद-विवाद, पोस्टर एवं नुक्कड़-नाटक का आयोजन हो रहे हैं। यह भी देखा जा रहा है कि कई संस्थाएं या कॉलेज प्रशासन केवल बैनर के तले अपने औपचारिकता को निभाने एवं दिखावा में लगी हुई है। कार्यालयों और विभागों द्वारा सतर्कता और जागरूकता सप्ताह से सुशासन स्थापित करने के प्रयोग बहुतेरे किए जा रहे हैं। सतर्कता और जागरूकता के मायने को "सरकारी तंत्र में सतर्कता और जनता में जागरूकता" के रूप में परिणत करने में कमी है। इस थीम पर रोड मैप तैयार कर अमल में लाया जाएं तो काफी हद तक भ्रष्टाचार के मुद्दे कम हो सकते हैं।

अगर सरकारी कर्मचारियों में कुशल प्रबंधन क्षमता और कार्यों को जवाबदेहीपूर्ण निभाने की कर्तव्यनिष्ठा हो तो वे ज्यादा से ज्यादा लोगों की सहभागिता सुनिश्चित कर सकते हैं। लेकिन देखा गया है कि जन सम्पर्क अधिकारी भी स्थानीय लोगों के सम्पर्क में ही बहुत कम रहते हैं। ऐसा नहीं है कि भारत के शिक्षित जनता जागरूक व सक्रिय नहीं है। उसकी जागरूकता अपने लिए ही गुंडों द्वारा मौत और सरकारी अधिकारियों द्वारा परेशानी का सबब बन जाती है। कार्यालयों में तीव्र और पारदर्शी प्रक्रिया तो दूर की बात है सम्बंधित कार्यालयों के बीच आवेदन पर टीका-टिप्पणी एवं स्पष्टीकरण में बहुत समय लगा देते हैं। आवेदकों के पूछे जाने पर गोपनीयता और आरटीआई कर जवाब लेने की बात करते हैं। वर्तमान में पूर्व सैनिक राम किशन की सुसाइड पर वित मंत्री अरुण जेटली ने कहा कि इन्हें पेंशन का न मिलना बैंक और विभागों की प्रक्रियात्मक देरी थी। अधिकारियों की शिकायत हमेशा रहती है कि हमारे ऊपर तबादले की तलवार गर्दन पर हमेशा लटकती रहती है। इससे दबाव में आकर ज्यादातर निर्णय संतोषप्रद ही ले पाते हैं। लेकिन जब देश के सारे अधिकारी किसी भी जगह नियुक्त होने पर अपने कार्यों को करने का ईमानदारी के साथ प्रण ले तो तबादले का किसी अधिकारी पर असर नहीं पड़ेगा। अनामिता और तटस्थता के सिद्धांत पर कार्य करने वाले नौकरशाही पर राजनीतिक दलों का विश्वास नहीं होता है। इसलिए सत्ता के बदलने पर अधिकारियों का तबादला होना शुरू हो जाता है। अधिकारी भी सत्ता में आने के लिए या तो अपने सेवाकाल के अंतिम समय में किसी राजनीतिक दलों की विचारधारा से जुड़ जाते है या पद से इस्तीफ़ा देकर राजनीति को अपना कैरियर बना लेते है। अधिकांश अधिकारियों के सेवानिवृत्त के बाद लिखे गए प्रकाशित पत्रों, लेखों और पुस्तकों में उस समय के सरकार एवं व्यवस्था के वास्तविक पोल खुलते हुए देखा जा सकता हैं। यह स्पष्ट करते कि कर्मचारियों की जवाबदेही कही-न-कही प्रभावित हो रही है । इसके पीछे कोई भी कारण हो लेकिन इसका परिणाम जनहित और देशहित में नहीं है। अतः देश की तरक्की के लिए मंत्री-सचिव के सम्बंध बेहतर होनी चाहिए ।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में सुदृढ़ सरकारी तंत्र एक विकल्प बन सकता है। 500 और 1000 रूपये के नोट बंद करने के पीछे भ्रष्टाचार पर काबू पाना था। लेकिन

भ्रष्ट कर्मचारियों की मिलीभगत से 80 प्रतिशत ब्लैक मनी कमीशन के माध्यम से बदल दी गयी। ऐसा लगता है कि आज पूरी तरह कोई ईमानदार नहीं है बल्कि हम कह सकते हैं कि प्रत्येक आदमी के लिए ईमानदारी का प्रतिशत तय किया जा सकता है। यह बात सरकारी कर्मचारियों पर ज्यादा फिट बैठती है। अगर सूक्ष्म रूप से आकलन करें तो देखेंगे कि पुलिस प्रशासन के गलत केस बनाने तथा जांच पड़ताल करने वाले अधिकारी (आई. ओ.) के गलत प्रकिया के कारण न्यायालय में केस की संख्या बढ़ी है। इतना ही नहीं, समय और परिस्थिति वश केस के आई.ओ. भी अपने ही जांच रिपोर्ट से न्यायालय में मुकर जाता है। पुलिस की जवाबदेही कानून व्यवस्था बनाने और शांति का माहौल बनाने में है। लेकिन गुंडे और चोर पुलिस से नहीं डर रहे है बल्कि लोगों को प्रशासन से डर लगता है। दूसरी चर्चा का विषय आए दिनों देश में हो रहे घोटालों और सरकारी खजानों की लूट-खसोट के उदाहरण है। इस तरह के ज्यादातर केस में राजनेता और कुछेक में सरकारी अधिकारी का नाम आता है। लेकिन यह सच है कि इन तरह के वारदातों या प्रक्रियाओं में सम्बंधित कर्मचारी या तंत्र का हाथ होने से इंकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सरकारी कागजात बिना कर्मचारी के संज्ञान में आए आगे नहीं चल सकती है। यह गौर करने लायक है कि इन घोटालों में संलिप्त नेताओं का पुनः जांच सरकारी तंत्र के द्वारा होता है। और सत्ता परिवर्तन होने या नेताओं के स्थिति कमजोर होने पर वही तंत्र आरोप तय करती है या उसे गलत ठहराती है। इसका मतलब है कि सरकारी तंत्र की जवाबदेही जनहित में न होकर स्वहित या दबाव में हो रही है। कोई कर्मचारी तभी तक ईमानदार है जबतक उसे लूटने का मौका नहीं मिल जाता। एक सामान्य व्यक्ति को चोर और गलत काम करने वाले को पता होता है, तो सरकारी तंत्र में काम करने वाले अधिकारी को नहीं होंगा ? क्यों तंत्र अपने कार्यों को सही दिशा नहीं देता है या मुद्दे के प्रकाश में आने पर कार्यवाही करने के लिए चेतता नहीं है? यह संशयास्पद लगता है। इसलिए सरकार को भ्रष्टाचार के मुद्दे को उठाने के पूर्व जनता का प्रशासन पर विश्वास के संकट को दूर करने की उपाय करनी चाहिए ।

ljdkjh r= d tokcngh eY;kdu % एक तरफ विनौकरशाहीकरण और सरकार विरोधी युग में सरकारी तंत्र को उत्तरदायित्वविहीन और जवाबदेहीन कह कर आलोचना की जाती है। तो दूसरी तरफ जागरूक जनता की अपेक्षा दिन प्रतिदिन सरकारी कर्मचारियों से बढ़ती जा रही है साथ-ही-साथ वैश्वीकरण के कारण कई चुनौतियां भी तंत्र के पास आई है। द्वितीय प्रशासनिक आयोग, 2005 की प्रकाशित 15 रिपोर्टों में मुख्य फोकस विलम्ब और भ्रष्टाचार था। इन परिस्थितियों में सरकारी तंत्र के स्वरूप में बदलाव तथा कार्यशील कर्मचारियों के कार्य करने के परम्परागत तरीके को हटाने की जरूरत है। सरकारी तंत्र को निष्पादन आधारित

और परिणामन्मुख बनाना पड़ेगा। इसके लिए तंत्र के प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों के कार्य और उतरदायित्व सुनिश्चित हो और उसका तिमाही चक्र में स्पष्ट जवाबदेही मूल्यांकन हो। जवाबदेही मूल्यांकन का आधार उनके द्वारा निभाए गए कर्तव्यों का जनता या नागरिकों पर पहुंचे फायदे-नुकसान से देखा जाना चाहिए ।

सरकारी तंत्र/कर्मचारियों के लिए कुछ मापदंड निम्न है जो सुशासन को लाने में मददगार साबित हो सकते है –

- नागरिक घोषणा-पत्र (Citizen's Charter) को प्रत्येक कार्यालय/संस्था में स्पष्टतः लागू किया जाए ।
- सूचना के अधिकार को और सरल किया जाए तथा प्रासंगिक सूचना स्वमेव प्रकाशित हो ।
- सामाजिक उतरदायित्व अंकेक्षण (Social Accountability Audit) को अनिवार्य करनी की व्यवस्था हो ।
- लोक खर्च की देख-रेख व निष्पादन पर संबंधित उच्च अधिकारियों से निष्पक्ष खर्च का शपथ-पत्र लिया जाए।
- प्रत्येक विभाग और कर्मचारी की स्पष्ट भूमिका निर्धारण और उसका प्रकाशन हो ।
- लोकतांत्रिक ढाँचे में कुशल एवं प्रभावी प्रशासक का निर्माण हो ।
- शासकीय नीतियों, कार्यों एवं प्रक्रियाओं में पारदर्शिता के साथ जन आकांक्षाओं की पूर्ति करने का कर्मचारियों का रुख या ध्येय हो ।
- कर्मचारी किसी भी विचारधारा की प्रतिबद्धता से मुक्त हो ।
- कर्मचारियों पर आंतरिक नियंत्रण विभाग/जनप्रतिनिधि द्वारा और बाह्य नियंत्रण जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हो।
- प्रशासनिक सुधारों की संस्तुति पर अमल हो तथा उसके क्रियान्वयन के मुद्दे पर ज्यादा ध्यान दिया जाए ।
- विभाग/कार्यालय/संस्था/कर्मचारी के प्रति उच्च अधिकारी के देख-रेख में प्रश्नावली के द्वारा समय-समय पर खुला-पत्र आमंत्रित किया जाए और उसे मूल्यांकित किया जाए और दोषी को सजा तथा व्यवस्था को जनता उन्मुखी बनाने के तत्कालिक प्रयास हो ।

सरकारी तंत्र को दुरुस्त करने के लिए सरकार को इनका जवाबदेही मूल्यांकन करने की ठोस व्यवस्था के दिशा में सोचना होगा। प्रशासक को प्रबंधक व सेवक की भूमिका निभाने के लिए तैयार करना चाहिए। प्रशासनिक अधिकारियों की कार्यशैली

का मूल्यांकन होने के साथ-साथ संस्थानों में पारदर्शिता और जवाबदेही में सुधार पर भी जोर दिया जाए। सुशासन को स्थापित करने में भ्रष्टाचार पहली बाधा है। लेकिन भ्रष्टाचार किसी न किसी रूप में हमेशा समाज में रहा है और पूरी तरह खत्म होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। यह क्रमिक सुधार से ही धीरे-धीरे संभव है। अतः शैक्षणिक संस्थाओं में नैतिकता निर्माण पर बल एवं मीडिया द्वारा जन जागरूकता लाने का सफल प्रयास तथा सरकारी तंत्र में उच्च अधिकारियों द्वारा आदर्श पेश करने से ही छोटे स्तर के कर्मचारियों में जवाबदेही लाई सकती है और तभी अंततः सुशासन आएगा ।

संदर्भ

Bhambhri, C.P, 1984, "Social context of Accountability" in T.N. Chaturvedi (Ed.), *Administrative Accountability*, IIPA, New Delhi

Bhattacharya, Mohit, 2003, "Nexus between Accountability and Good Governance: Conceptual and Practical Issues" in Pradeep Sahni and Uma Medury (Eds.) Governance for Development: Issues and Strategies, Prentice Hall India, New Delhi

http://arc.gov.in. Report&11. "Promoting e-governance: The smart way Forward" and Report-12. "Citizen centric Administration"

www.cvc.nic.in/

www.firstpost.com, 15 June. 2017

प्रसाद, एस.एस, 2016, "सूचना के अधिकार का एक दशक : एक अवलोकन", आई. आई.पी.ए., नई दिल्ली, जुलाई-दिसंबर, पेज-211-219

जनसत्ता, हिदुस्तान, टाइम ऑफ इंडिया

महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन

पंकज कुमार

21 वीं सदी के सबसे चर्चित शब्दों में 'महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन' को शुमार किया जा सकता है। ये वे शब्द हैं जो बदलते वैश्विक परिवेश में अपनी सार्थकता तलाश रहें हैं। सशक्तिकरण एक बहुआयामी धारणा है जिसका सम्बन्ध लोगों की सामाजिक उपलब्धियों, आर्थिक और राजनीतिक सहभागिता से जुड़ा होता है। सशक्तिकरण एक सतत् प्रक्रिया भी है, जिसकी कोई अंतिम सीमा नहीं है। जहाँ तक महिला सशक्तिकरण का सवाल है, इस संदर्भ में सशक्तिकरण को परिभाषित करना और उसको मापना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महिलाओं के साथ प्राचीन काल से ही भेदभाव होता आया है, जिसके परिणामस्वरूप समाज में असमानता की खाई इतनी गहरी हो गई है जिसे पाटना बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। आधी आबादी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों में उचित भागीदारी प्रदान किए बगैर महिला सशक्तिकरण की परिकल्पना को साकार रूप नहीं दिया जा सकता। यह लैंगिक विभेद ही है जो समरस समाज की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा है, जिसे दूर किए बगैर 'सुशासन' की अवधारणा को मूर्तरूप नहीं दिया जा सकता। सुशासन एक गतिशील अवधारणा है जिसके अनेक पहलू हैं। हालांकि पिछले कुछ दशकों से राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं के सशक्त हस्तक्षेप बढ़े हैं लेकिन इनकी संख्या इतनी कम है कि इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता की आम महिलाओं की समस्या और स्थिति में सुधार हो जाएगा। निःसन्देह अगर महिलाओं का सशक्तिकरण नहीं होगा तो सुशासन का सपना साकार होनेवाला नहीं है।

सशक्तिकरण, सुशासन, लक्ष्य, विकास, महिला

दुनिया की आधी आबादी महिलाओं की है, इसलिए यह उनका अधिकार है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान उन्हें विकास के समुचित अवसर उपलब्ध हों। स्वामी विवेकानन्द की यह उक्ति, 'जब तक महिलाओं की स्थिति नहीं सुधरती तक विश्व के कल्याण की कोई संभावना नहीं है। एक पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना

संभव नहीं है', महिलाओं की क्षमता की सुंदरता से व्याख्या करती है। यही कारण है कि 'महिला सशक्तिकरण को आठवें सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों में प्रमुख लक्ष्य के रूप में शामिल किया गया है। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए महिलाओं के सशक्तिकरण से अधिक प्रभावी तरीका कुछ भी नहीं है। महिला सशक्तिकरण की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। इसलिए इसके सामान्य अर्थ एवं विशिष्ट अर्थ में अंतर करना आवश्यक है। इसका सामान्य अर्थ है– महिलाओं को शक्ति संपन्न बनाना। परन्तु व्यापकता में इसका अभिप्राय सत्ता-प्रतिष्ठानों एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की साझेदारी से है।[1] सशक्तिकरण के कई मानक है जिनमें निर्णय लेने की क्षमता एक बड़ा मानक कहा जा सकता है। महिलाओं का सशक्तिकरण मापने का वैचारिक पैमाना पारिवारिक स्तर की तुलना में वृहद् स्तर पर कम विकसित है। सामान्य स्वीकार्य पैमाने हैं– लिंग आधारित विकास सूचकांक (जीडीआई) अर्थात महिला आधारित विकास सूचकांक, महिलाओं के विकास से पृथक किया हुआ मानव विकास सूचकांक और एएनडीपी द्वारा महिला सशक्तिकरण के उपायें।[2] प्राचीन काल से ही घुटन सहती, बेड़ियों में जकड़ी महिलाओं की एक बड़ी आबादी अपना वजूद तलाशती आज भी नजर आ रही है। महिलाओं के विकास के लिहाज से दुनिया भर में प्रगति हुई है, परन्तु यह उपलब्धि सभी देशों में एक समान नहीं है। भारत में महिलाओं के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इस लिहाज से यह देखना दिलचस्प होगा कि क्या 21वीं सदी महिलाओं के लिए उड़ान की सदी साबित होगी?

प्रस्तुत आलेख में महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन के बीच के अन्तःसंबंधों को दर्शाने का प्रयास किया गया है। इस लिहाज से सुशासन को परिभाषित करना एवं इसकी अवधारणा पर प्रकाश डालना आवश्यक है। सुशासन शब्द अंग्रेजी के 'Good Governance' शब्द के हिन्दी रूपांतरण के रूप में प्रयुक्त होता है। सुशासन से तात्पर्य किसी सामाजिक-राजनीतिक इकाई को इस प्रकार चलाना है कि वह वांछित परिणाम दे। इसके अंतर्गत बहुत सी चीजें आती हैं जिनमें अच्छा बजट, सही प्रबन्धन, कानून का शासन, सदाचार आदि शामिल है।[3] सुशासन के संदर्भ में दो तरह की अवधारणाएँ और विचार प्रचलित हैं। एक है पश्चिमी विकसित देशों के विद्वानों द्वारा समर्पित मान्यताएँ एवं दूसरी भारतीय मनीषियों द्वारा सुशासन के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये गहरे और विशद् विचार। प्लेटो, अरस्तू से लेकर हॉब्स, लॉक, रूसो, बेंथम, मिल आदि एक लंबी श्रृंखला उन विचारकों की है जिन्होंने अपनी दृष्टि से और तत्कालीन स्थान, समय और परिस्थिति के अनुसार सुशासन की कल्पना की है। आज पूरी दुनिया के लिए पश्चिमी विचारकों द्वारा सुशासन के लिए प्रयुक्त मॉडल सर्वस्वीकृत हैं और ज्यादातर देश उन्हीं का अनुसरण भी कर रहे हैं।[4] लेकिन इस संदर्भ में जितना गहरा और विशद् विचार भारतीय मनीषियों ने किया उतना दुनिया में कहीं नहीं हुआ। अलग-अलग प्रश्नों के उत्तर में राज्य, राजा, प्रजा, अधिकारी के

कर्त्तव्यों को जो वर्णन है वही वस्तुतः सुशासन है।[5] इस प्रकार पश्चिमी विचारकों एवं भारतीय मनीषियों के विचारों का सार यह है कि सुशासन एक परिवर्तनकारी व युग प्रवर्तक विचार है, इसमें किसी भी लोकतंत्र के अधिक अर्थवान व समृद्ध होने की प्रबल संभावना होती है। आवश्यकता इस बात की है इसके लिए हर वह कदम उठाये जाये, जो सरकार व प्रशासन की क्षमताएँ बढ़ाकर सुशासन की स्थापना करने में सहायक हों।[6]

mís';k सभ्यता की उन्नति में समान योगदान देने के बावजूद महिलाओं की उपेक्षा अनवरत जारी है। आश्चर्य की बात तो यह है कि 21वीं सदी में भी महिला सशक्तिकरण की बातें की जा रही हैं, जबकि इस बात को तो कल का अप्रासंगिक हो जाना चाहिए था। तात्पर्य यह है कि मानव ने भले ही अंतरिक्ष के रहस्यों को जान लेने में कामयाबी प्राप्त कर ली है लेकिन अपने अंदर की अंतरात्मा में वह अभी तक झाँक नहीं पाया है। अगर ऐसा होता तो आज आधी आबादी को अपना वजूद तलाशने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता। महिला सशक्तिकरण के अभाव का न केवल महिलाओं पर बुरा प्रभाव पड़ा है बल्कि इसक असर समाज पर भी पड़ा है। प्रस्तुत आलेख में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में मदद करनेवाले एवं उसमें बाधक विभिन्न कारकों की पहचान करने का प्रयास किया गया है। साथ ही सुशासन की अवधारणा को स्पष्ट करने हुए महिला सशक्तिकरण की दिशा में सुशासन की भूमिका की विवेचना की गई है।

vo/kkj.kkRed foopu चूंकि भारतीय महिलाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में पिछड़ रही हैं, अतः उनके पिछड़ेपन के कारणों की समीक्षा कर अब तक की उपलब्धियों, समस्याओं एवं कमियों का विश्लेषण करते हुए सार्थक एवं उपयोगी सुझावों को अपनाना आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण एवं सुशासन के अंतःसम्बन्धों की पड़ताल पर महिला सशक्तिकरण के उपयोगी कारक के रूप में सुशासन की भूमिका का विश्लेषण आवश्यक है।

efgyk l'kfDrdj.k d ekx e ie[k leL;k, भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज है। समाज में पुरुषों का वर्चस्व आदि काल से ही कायम है। सामाजिक असमानता मानो यहाँ की संस्कृति में ही रस-बच गई है। ये शब्द कठोर अवश्य हैं किन्तु बिल्कुल सच भी हैं। ये शब्द उतने ही सच हैं जितना यह कहना है कि विकास के लिए महिलाओं के सशक्तिकरण से अधिक प्रभावी तरीका कुछ भी नहीं है। भारत में 'विकास' का जो मॉडल अपनाया गया है उसमें अनेन त्रुटियाँ हैं। आजादी के 70 वर्षों बाद भी हम विकासशील देशों की श्रेणी में ही शामिल हैं। हम विकसित राष्ट्रों की जमात में अभी तक शामिल नहीं हो पाये है। हों भी कैसे? जिस देश की आबादी 50 प्रतिशत यानि महिलाएँ सम्मान, आजादी और खुशहाली से वंचित हो, वह देश तरक्की के शिखर पर पहुँचे भी तो कैसे? हमें इस बात की गम्भीर

पड़ताल करनी होगी कि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को मूर्तरूप कैसे दिया जाये? इसके लिए हमें महिलाओं की शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों पर दृष्टिपात करना होगा।

efgykvk dh 'kf{kd fLFkfr% शैक्षिक भिन्नता, वैश्विक समस्या है। शिक्षा से वंचित वर्गों में पूरे विश्व में सबसे बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। वैश्विक स्तर पर पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में शिक्षा का स्तर आधे से भी कम है। भारत में भी स्थिति संतोषप्रद नहीं है। स्वतंत्रता के समय से लेकर अब तक महिला-पुरुष साक्षरता दर में बड़ा अंतर था जो वर्तमान समय में भी कायम है। तालिका संख्या-1 से इस बात की पुष्टि हो जाती है।[7]

उपरोक्त आँकड़े इस बात को प्रमाणित करते हैं कि निम्न साक्षरता दर महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है क्योंकि शिक्षा ही वह कुंजी है जो

rkfydk-1

Hkkjr esa lk{kjrk nj 1951&2011

tux.kuk o"k	0;fDr	i#"k	efgyk,¡	lk{kjrk ny esa i#"k-efgyk vUrj
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1961	28.3	40.4	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.98
1981	43.57	36.38	29.76	26.62
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.83	75.26	53.67	25.59
2011	74.04	82.14	65.46	16.68

व्यक्ति को उसके अधिकारों से अवगत कराती है। निम्न साक्षरता दर महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है क्योंकि शिक्षा की वह कुंजी है जो व्यक्ति को उसके अधिकारों से अवगत कराती है।

lkekftd fLFkfr% भारत में महिलाओं की स्थिति अत्यंत विरोधाभासी रही है। भारतीय समाज को जो ढाँचा है, वह इस संदर्भ में दोहरा चरित्र प्रदर्शित करता है। एक तरफ भारतीय समाज में महिलाओं को हर रूप में आदर से देखा जाता है– चाहे वह माँ हो, बहन हो या बेटी। उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है तो दूसरी तरफ अपराध और हिंसा का शिकार भी उन्हें सबसे ज्यादा होना पड़ता है। 'यत्र नार्यस्तु पूजन्यते रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करने वाला भारतीय समाज महिलाओं के प्रति कितना कठोर है यह नेशनल क्राइम रिकॉड्स ब्यूरो के वर्ष 2014

के आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। आंकड़े कहते हैं कि पिछले दस वर्षों में महिलाओं के खिलाफ अपराध दोगुने हुए हैं।[8] पिछले एक दशक में महिलाओं के खिलाफ 22. 40 लाख अपराध दर्ज हुए हैं।[9] इन आंकड़ों से अलग तस्वीर दूसरी भी है। ऐसे लाखों मामले को दबा दिया जाता है अर्थात् जिनकी शिकायत दर्ज नहीं करायी जाती है। महिला पुरुष लिंगानुपात भारतीय समाज में महिलाओं की हैसियत दर्शाने के लिए पर्याप्त है। जनगणना वर्ष 1901 से लेकर 2011 तक के आंकडों पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रति हजार पुरुष पर महिलाओं की संख्या संतोषजनक नहीं है। तालिका संख्या-02 से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

भारतीय समाज भी अनेक कुरीतियों से ग्रसित है। सदियों से चली आ रही रूढ़िवादी सोच, दहेज प्रथा, डायन प्रथा, यौन अपराध, ऑनर किलिंग, घरेलू हिंसा,

rkfydk l[;k-2

fyxkuqikr

जनगणना वर्ष	लिंगानुपात (महिलाएँ प्रति हजार)
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927
2001	933
2011	943

वैवाहिक सम्बन्ध में बलात्कार, तस्करी आदि अनेक आपराधिक वारदातों का शिकार महिलाओं को होना पड़ता है। यह भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सबसे कमजोर कड़ी है, जो महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है।

jktuhfr fLFkfr% राजनीतिक सशक्तिकरण के अभाव में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को मूर्तरूप देना असंभव है। राजनीति जीवन जीने का कौशल सिखाती है। इसलिए जो समुदाय राजनीतिक दृष्टिकोण के असक्त है अर्थात जिस

समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व देश की राजनीतिक व्यवस्था में नहीं है, उस समुदाय के सशक्तिकरण की बात करना भी बेमानी है। दुर्भाग्यवश, भारत में महिलाओं को राजनीति में उचित प्रतिनिधित्व अभी तक प्राप्त नहीं हो पायी है। संसद एवं राज्य विधानमंडलों में प्रस्तावित महिला आरक्षण विधेयक का वर्षों से लंबित होना भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में नहीं है, उस समुदाय के सशक्तिकरण की बात करना भी बेमानी है। दुर्भाग्यवश, भारत में महिलाओं को राजनीति में उचित प्रतिनिधित्व अभी तक प्राप्त नहीं हो पायी है। संसद एवं राज्य विधानमंडलों में प्रस्तावित महिला आरक्षण विधेयक का वर्षों से लंबित होना भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पुरुषों के वर्चस्व को दर्शाने के लिए पर्याप्त है। प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्ष 2014 के आम चुनाव (लोकसभा) तक संसद में महिलाओं को प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य है। वर्ष 1952 के प्रथम आम चुनाव में महिलाओं की संख्या मात्र 22 थी, वही 2014 के 16 वें लोकसभा चुनाव में जीतकर आई महिला सांसदों की संख्या 66 हो गई। इस प्रकार प्रतिशत की दृष्टि से देखें तो कुल लोकसभा सदस्यों की संख्या का 12.1 प्रतिशत।[11] यह है भारतीय राजनीति में महिलाओं की वास्तविक हैसियत। राज्य विधानमंडलों में तो स्थिति और भी खराब है। 70 वर्षों के इतिहास में मात्र एक महिला को प्रधानमंत्री बनाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी प्रकार प्रतिभा देवी सिंह पाटिल एकमात्र ऐसी महिला हैं जिन्होंने राष्ट्रपति के पद को सुशोभित किया है। अभी तक मात्र दो महिलाएँ लोकसभा–अध्यक्ष पद को प्राप्त कर सकी हैं। इस प्रकार विभिन्न राजनीतिक दलों में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व संतोषप्रद नहीं रहा है। अब इन परिस्थितियों में महिला सशक्तिकरण की राह को आसान कैसे बनाया जाये यह एक बड़ा प्रश्न है जिसका उचित जवाब ढूँढ़ना एक बड़ी चुनौती है। वर्तमान एवं आनेवाली पीढ़ी को इसका जवाब ढूँढ़ना ही पड़ेगा तभी हमारा देश तरक्की की राह में उच्चतम मुकाम हासिल कर सकेगा।

vkfFkd fLFkfr% महिला समानता की बात तो लम्बे समय से की जा रही है लेकिन केवल बौद्धिक विमर्शों से हल निकलने वाला नहीं है, बल्कि जमीनी स्तर पर ठोस कदम भी उठाने होंगे। दुनिया की सारी क्रियाएँ अर्थ से संचालित होती है। आर्थिक समृद्धि के अभाव में महिला सशक्तिकरण की कल्पना करना भी बेकार है। भारत में कामकाजी महिलाओं की संख्या काफी है किन्तु उनकी क्रियाओं को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में शामिल नहीं किया जाता है। आँकड़े बताते हैं कि भारत की कुल महिलाओं की जनसंख्या का केवल 13.99 प्रतिशत महिलाएँ ही आर्थिक उत्पादक क्रियाओं में वर्ष भर संलग्न रह पाती है। 5.77 प्रतिशत आंशिक रूप से तथा 80.23 प्रतिशत महिलाएँ बिल्कुल नॉनवर्कर्स की श्रेणी में आती हैं अर्थात कुल श्रम शक्ति का केवल 20.22 प्रतिशत भाग ही प्रमुख कार्यकर्ताओं के रूप में महिलाएँ है।[12] महिलाओं की दयनीय आर्थिक स्थिति के लिए काम में उनकी अल्प भागीदारी काफी हद तक

जिम्मेदार है। पिछले पचास वर्षों के आँकड़ों पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाताहै कि महिलाओं की काम में भागीदारी पुरुषों की अपेक्षा काफी कम रही है। इसके कई कारक हैं। गरीबी, अशिक्षा, पुरुषवादी वर्चस्व, सामाजिक रूढ़िवादिता, पितृसत्तात्मक, सामाजिक व्यवस्था आदि अनेक कारण महिलाओं की कमजोर आर्थिक स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। महिलाओं की काम में अल्प भागीदारी दर को तालिका संख्या-3 में दर्शाया गया है[13] –

यहाँ एक और बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था खासकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मेरूदंड है जिसमें महिलाओं का अहम योगदान है।

rkfydk l--3

Hkkjr e lk{kjrk nj 1951&2011

o"k	dy ifr'kr	i:"k ¼ifr'kr½	efgyk ¼ifr'kr½
1971	34.17	52.75	14.22
1981	36.70	52.62	19.67
1991	37.50	51.61	22.27
2001	39.10	51.68	25.63
2011	39.08	53.03	25.5

इसके बावजूद महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

बदलते वैश्विक परिवेश में अपनी श्रेष्ठता साबित करने के लिए महिलाओं को दूसरे पर निर्भरता की सोच को त्यागना पड़ेगा, खुद अपनी मंजिल तय करनी होगी एवं रास्ते भी खुद बनाने होंगे। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 में देश के प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार दिया गया है। यह महिला पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू होता है। इस प्रकार संवैधानिक प्रावधानों द्वारा महिलाओं के अधिकारों की गारंटी प्रदान की गई है। समय-समय पर अनेक अधिनियम पारित कर महिलाओं के साथ लैंगिक आधार पर किए जा रहे भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया गया है जिसमें प्रमुख हैं–

(i) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948

(ii) विशेष विवाह अधिनियम, 1954

(iii) अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956

(iv) दहेज निषेध अधिनियम, 1961

(v) मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961

(vi) पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1948

(vii) स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम, 1986

(viii) सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, 1987

(ix) राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990

(x) महिला कर्मकार अधिनियम, 1993

(xi) घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005

भारतीय समाज में महिलाओं को उपर्युक्त संरक्षण विभिन्न अधिनियम के अंतर्गत प्रदान तो कर दिया गया है परन्तु फिर भी महिलाओं की स्थिति में खास परिवर्तन नहीं हो सका है।

efgykvk d fgrk d j{kkFk l>ko% महिलाओं के हितों के रक्षार्थ कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं उन पर यदि अमल किया जाये तो महिला सशक्तिकरण की राह को आसान बनाया जा सकता है। सुझाव निम्न हैं–

(i) पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं को खुद अपनी सोच बदलनी होगी। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक आदि विभिन्न क्षेत्रों मे महिलाओं का योगदान अहम रहा है।

(ii) विवाह का अनिवार्य पंजीयन किया जाए।

(iii) महिलाओं के संपूर्ण एवं वास्तविक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि पंचायतों का भी सशक्तिकरण हो।

(iv) महिलाओं के संपूर्ण एवं वास्तविक सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है पंचायतों का सशक्तिकरण हो।

(v) प्रस्तावित महिला आरक्षण विधेयक को संसद द्वारा यथाशीघ्र पारित किया जाना चाहिए।

(vi) महिलाओं की समृद्धि के लिए योजनाओं के संचालन की जिम्मदारी महिला संगठनों को दी जानी चाहिए।

(vii) राष्ट्रीय महिला आयोग को और भी प्रभावशाली बनाया जाना चाहिए।

(viii) आपराधिक मामलों की सुनवाई स्पीडी ट्रायल के द्वारा की जानी चाहिए।

(ix) यौन उत्पीड़न एवं घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं को यथाशीघ्र न्याय मिलना चाहिए एवं अपराधियों के लिए कठोर सजा की व्यवस्था का प्रावधान होना चाहिए।

(x) स्त्री-पुरुष समानता एवं सहस्राब्दिक विकास कार्यक्रम पर अमल किया जाना चाहिए।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में सुशासन की भूमिका का परीक्षण

जैसा कि पहले ही इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि सुशासन एक गतिशील अवधारणा है। इसके लिए अनेक मूल्यों की आवश्यकता होती है जिनमें मिलजुल कर निर्णय लेना, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, राजनीतिक प्रणाली में दक्ष और उत्तरदायी संरचना, कानून का शासन और निष्पक्षता शामिल है। कोई भी सभ्य समाज जो सुशासन के आदर्शों को अपनाना चाहता है उसे इन्हीं मूल्यों पर कार्य करना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश के विकास में लोगों को उनका वाजिब हक मिल रहा है? जब भारत एवं भारतीय समाज की चर्चा होती है तो यह प्रश्न अनायास ही उठने लगता है कि क्या भारतीय समाज इन मूल्यों को अंगीकार कर पाया है? अक्सर यह देखा गया है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया से समाज का एक बड़ा वर्ग दूर रहता है जिससे प्रशासन गैर-जिम्मेदार हो जाता है और शोषणकारी प्रणाली को जन्म देता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी कमी यह है कि यहाँ पारदर्शिता का अभाव पाया जाता है जिसे प्रत्येक क्षेत्र में आसानी दे देखा जा सकता है। भारत में गाँधीवादी मॉडल अपनाया गया है जिसमें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसमें ग्राम पंचायतों और राजनीतिक व्यवस्था में सबसे निचले स्तर के लोगों को अधिकार संपन्न बनाया जाये। पंचायती राज संस्थाएँ ग्राम स्तर पर प्रत्यक्ष और सहभागी प्रशासन का एक अनिवार्य अंग बन चुकी हैं। इन संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है जिससे महिला सशक्तिकरण की राह को आसान बनाने में बड़ी कामयाबी हासिल हो पायी है। फिर भी पुरुष प्रधान समाज का एकाधिकार और महिलाओं के साथ सामाजिक और राजनीतिक भेदभाव को समाप्त नहीं किया जा सका है। फिर यह सवाल उठना लाजिमी है कि क्या भारत में सुशासन की अवधारणा को मूर्तरूप दिया जा सका है? यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सुशासन की अवधारणा गतिशील है और यह अनेक चरणों से होकर गुजरी है। भारतीय दृष्टिकोण से देखें तो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रयोगों का एक सिलसिला सा चल पड़ा है जो अनवरत जारी है। इसलिए भारत में सुशासन की अवधारणा को पूर्णतः अमलीजामा पहनाया नहीं गया है। हाँ, अनेक प्रयास अवश्य किये गये है जिनके मिले जुले परिणाम प्राप्त हुए हैं। इसे महिलाओं के दृष्टिकोण से देखें तो इसके निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

(i) राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में महिलाओं के हस्तक्षेप बढ़े हैं।

(ii) महिलाएँ राजनीतिक के शिखर तक पहुँचने में कामयाब हुई हैं।

(iii) राजनीतिक दलों के स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से महिलाओं की भागीदारी दिखाई पड़ रही है।

(iv) संस्थागत स्तर पर राष्ट्रीय महिला आयोग के गठन से महिला अधिकारों की

माँग को इस संगठन के माध्यम से रखने का मार्ग प्रशस्त हो गया है।

(v) राजनीतिक निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने में महिलाओं को अंशतः सफलता अवश्य प्राप्त हुई है।

इन सबके बावजूद वर्तमान भारतीय सामाजिक परिदृश्य इस बात को दर्शाता है कि अब भी महिलाएँ समाज के हाशिये पर हैं और इनमें जागरूकता का अभाव स्पष्ट रूप से दिख रहा है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण वैश्विक स्तर पर एक ज्वलंत मुद्दा है। विश्व का कोई भी ऐसा राष्ट्र नहीं है जो महिला-पुरुष समानता और महिला सशक्तिकरण के विकास के साथ ही परिवारों, समुदायों और राष्ट्रों के कल्याण के लिए अनिवार्य नहीं मानता हो। फिर भी विश्व स्तर पर महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। भारत में भी महिला सशक्तिकरण की बात लम्बे समय से की जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लैंगिक समानता के सिद्धान्त को भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्त्तव्यों एवं नीति निदेशक सिद्धान्तों में समाहित किया गया है। बावजूद इसके महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को मूर्त रूप नहीं दिया जा सका है। आज भी महिलाएँ भेदभाव का शिकार हो रही हैं। सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था, जिसमें पुरुषों को महिलाओं से श्रेष्ठ समझा जाता है, आज भी कायम है। समय रहते पुरुष एवं महिला के बीच की असमानता को खत्म करना होगा अन्यथा हम दुनिया के विकसित राष्ट्रों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में कामयाब नहीं हो सकेंगे। महिला सशक्तिकरण के बगैर राष्ट्र का सबलीकरण संभव नहीं है।

सुशासन महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक शर्तों में सबसे प्रमुख शर्त है। महिला सशक्तिकरण के बगैर सुशासन की अवधारणा सिर्फ कागज के पन्नों तक सिमट कर रह जायेगी। अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि जब तक महिलाओं का सशक्तिकरण नहीं होगा तक तक सुशासन की अवधारणा मूर्त रूप नहीं ले सकेगी।

संदर्भ

1. मीणा लाल मन्ना, सशक्तिकरण की मौन क्रांति, योजना, जून-2012, पृ. 31
2. चट्टोपाध्याय अरुंधती, भारतीय राज्यों में स्त्री सशक्तिकरण, योजना, जून-2012, पृ.19
3. https.//hi.m.widipedia.org.
4. कुमार अवधेश, सुशासन की अवधारणा, योजना, जनवरी, मासिक अंक, जनवरी 2013, पृ. 41
5. उपरोक्त

6. कुमारी पूनम, सुशासन और मीडिया की भूमिका, योजना, जनवरी-2013, पृ.48
7. भारत 2015, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
8. नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो, 2014 के विभिन्न रिपोर्ट
9. वही
10. भारत 2015, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
11. प्रभात खबर, दैनिक समाचार पत्र, दिनांक 14 नवम्बर, 2014
12. सविता डॉ. 21वीं सदी की भारतीय महिलाएँ, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सरोकार, नीरज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 127
13. ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल के आँकड़ों के अनुसार

सुशासन और विकास में ई-शासन की भूमिका

सीमा दास एवं प्रीति कुमारी

सुशासन की अवधारणा को फलीभूत करने के लिए विगत् कुछ दशकों से सम्पूर्ण विश्व में प्रयास किये जा रहे हैं। इसके मूल तत्वों में उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, उपयुक्त कानूनी परिवेश तथा लोकक्षेत्र प्रबंधन को मुख्य-स्थान विश्व बैंक की अवधारणा द्वारा दिया गया है। आज सुशासन की विभिन्न आवश्यकताएँ हैं, जिनसे हम सुशासन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। उसमें सर्वप्रमुख स्थान सूचना के अधिकार और ई-शासन का है। यही वह माध्यम है जिसके द्वारा ऊपर वर्णित चारों तत्वों को सुनिश्चित करके प्रशासन को दक्ष और पारदर्शी बनाते हुए समाज में सुशासन की स्थापना करने का प्रयास किया जा रहा है।[1]

समाज का विकास किए बिना सुशासन के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। विकास के द्वारा ही सुशासन को गति प्रदान की जा सकती है और सूचना प्रौद्योगिक तकनीकी विकास का ही एक महत्वपूर्ण परिणाम है। जिसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि 'ई-शासन' है। सुशासन के मूल्य हैं, मितव्ययिता, दक्षता और प्रभावशीलता। इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए ही सरकार द्वारा अपने विकासात्मक कार्यों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग ई-शासन के एक उपकरण के रूप में किया जा रहा है। इस प्रकार ई-शासन सरकार और नागरिक को एक साथ जोड़ते हुए सुशासन के लिए निर्णायक भूमिका निभा रही है।[2]

सुशासन एक विशेषणयुक्त शब्द है तथा वह अपने आप में कुछ मूल्यों को समेटे हुए है। जबकि शासन एक प्रक्रिया है जो निरपेक्ष व्यवस्था की ओर इंगित करती है। सुशासन को प्रजातांत्रिक साँचे में दक्ष और प्रभावी प्रशासन से जोड़ा जाता है। यह उद्देश्यपरक तथा विकासोन्मुख प्रशासन के समान है जो कि जनसामान्य के जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी हेतु कटिबद्ध है। यह राजनीतिक और प्रशासनिक शक्ति के केन्द्र की सक्षमता को जोड़ते हुए उसे समाज में उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करती है। यह व्यवस्था की साख, उसकी वैधानिक तथा

उच्चतम दक्षता को स्थापित करने हेतु शासन के नवीन मूल्यों को आत्मसात करती है।[3] इसलिए अमर्त्य सेन के शब्दों में कहा जा सकता है कि सुशासन का यह स्वीकार्य स्वरूप इस शताब्दी की सबसे विशिष्ट उपलब्धि है।[4]

आम जनता द्वारा सामान्यतः सुशासन का तात्पर्य बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, बेहतर बिजली, पानी और रोटी की समस्याओं का समाधान करने का विकल्प है। एक ऐसा शासन जिससे उसकी सुविधाऐं बढ़ सकें, उसके जीवन में सुधार हो सके, उसे विकास व आगे बढ़ने के समान अवसर तथा उचित परिवेश प्राप्त हो सके। एक भयमुक्त, भेदभाव रहित, उच्च-मानवीय मूल्यों से समाज की रचना हो सके, वही सुशासन है। इस संदर्भ में विचारक ओ. पी. मिनोचा के अनुसार, सुशासन का सम्बन्ध शासन के नवीन मूल्यों को आत्मसात करने से है, जिससे अधिक दक्षता, वैधानिकता और व्यवस्था की साख स्थापित की जा सके अर्थात् सुशासन को नागरिकों का मित्र, नागरिकों की देखभाल करने वाला तथा संवेदनशील प्रशासन कहा जा सकता है।[5]

इस प्रकार सुशासन युक्त प्रशासन अर्थात् पारदर्शी, सरल और सुलभ प्रशासन किसी भी समाज, प्रदेश या राष्ट्र के बुनियादी विकास को नए स्तर पर ले जा सकता है। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में यदि प्रशासन की पहुंच हर नागरिक तक समान रूप से हो जाए और अंतिम छोर पर मौजूद व्यक्ति भी सामाजिक सुविधाओं का लाभ सुगमता के साथ उठा सके तो सामाजिक बदलाव की एक सकारात्मक तस्वीर सामने आ सकती है।[6]

आज सूचना प्रौद्योगिकी इतनी समर्थ है कि यह नागरिकों को घर बैठे ही तमाम-सेवाएं, सुविधाएं व सूचनाएँ उपलब्ध करा सकती है और उन्हें उनका अधिकार दिला सकती है। यही कारण है कि आज केन्द्र सरकार से लेकर स्थानीय सरकार के द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाते हुए ई-शासन का उपयोग से समाज के जीवन स्तर को उन्नत व राष्ट्र को सशक्त बनाने की शुरूआत की जा चुकी।[7]

ई-शासन न सिर्फ प्रशासनिक संगठनों के कार्यों को बेहतर करने का सम्पूर्ण समाधान है। अपितु यह सरकार की विकासात्मक नीतियों एवं प्रशासनिक सुधार के लक्ष्यों को प्राप्त करने का भी एक सशक्त साधन है। इस प्रकार ई-शासन परिर्वतन के लिये उत्प्रेरक का कार्य करता है।[8] ई-शासन एक व्यापक अवधारणा है जो समाज व प्रशासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसमें सरकार के सभी कामकाज, उसके प्रारूप, आदान-प्रदान, आंतरिक-व्यवस्था, कार्यविधियों के लिए इलेक्ट्रॉनिक व उच्च तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है ताकि जनता को त्वरित बेहतर सेवा प्रदान की जा सके। आज जिस प्रकार इंटरनेट पर संस्थाओं, संगठनों, सूचनाओं का जाल है। उसी प्रकार सरकार के विभिन्न विभाग इंटरनेट के जरिए अपना कार्य कर रहे हैं। ई-शासन एक प्रकार की सुविधा है, जिसके माध्यम से व्यक्ति घर बैठे संबंधित अधिकारियों से अपने कार्य के या सेवाओं के बारे में सूचना

हासिल कर सकते हैं। साथ ही साथ प्रशासन के वे कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से पहले कागजों एवं फाइलों के बीच दिखते थे वह अब ई-प्रशासन के माध्यम से कम्प्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल पर उपलब्ध हो रहे हैं। यही ई-शासन है जो प्रशासन में सुशासन स्थापित कर राष्ट्र-विकास की संकल्पना को सिद्ध करने का प्रयास कर रही है।[9]

भारत में ई-शासन का प्रयोग कर सरकार तथा समाज, संगठनों, संस्थाओं, आदि के बीच भागीदारी बढ़ाने का काम किया जा रहा है। इसके माध्यम से सरकार और दूसरी राजनीतिक पार्टियाँ अपने सिद्धान्त, कार्यक्रम व मंत्रालयों से संबंधित जनोपयोगी समाचार और सूचनाएं प्रेशित कर रही है। साथ ही साथ ई-प्रशासन के विकास हेतु विभिन्न परियोजनाएँ चलायी जा रही हैं। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अपने कामकाज में ई-प्रशासन का प्रयोग कर पारदर्शिता, दक्षता और नागरिकों के साथ निकटता व उनकी सेवाओं को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है।[10]

केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा ई-शासन के बेहतर प्रयोग के लिए विभिन्न परियोजनाएं चलायी गयी है, जिसके उदाहरण अग्रलिखित हैं :–

vkdk'k xxk & यह परियोजना गुजरात के डेयरी सहकारी समिति चला रही है। इस परियोजना में 'डेयरी सूचना सेवा में कियोस्क' (डिस्क) के उपयोग के जरिये दूध की खरीद से लेकर हिसाब-किताब रखने तक का कार्य किया जाता है।[11]

b&pkikly & इसकी स्थापना जून 2000 में ICT के कृषि व्यवसाय प्रभाग ने की थी। यह किसानों को कृषि यंत्र, मौसम, फसल तथा कृषि से संबंधित विभिन्न विषयों की सूचनाएं प्रदान करता है साथ ही किसानों को विभिन्न भाषाओं में बाजार की नई जानकारी उपलब्ध करता है। यह बहुमूल्य सुझावों और परामर्श प्राप्त कर दो तरफा संप्रेषण की सुविधा भी प्रदान करवाता है।[12]

VkVk fdlku lalkj ¼Vh-d-,l½ & टाटा किसान संसार यह कृषि क्षेत्र महाराष्ट्र के किसानों की सभी समस्याओं का समाधान करती है – किसानों को कब कौन सी फसल लगाने से लेकर उचित मूल्य पर कैसे बेचा जाए, पौधों का संरक्षण कैसे किया जाए व कौन सा रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाए। साथ ही मिट्टी की क्षमता, भूजल व मौसम की जानकारी भी उपलब्ध करवायी जाती है।[13]

rfeyukMq efgyk fodkl fuxe ¼Vh-,u-lh-Vh- MCy½ & यह परियोजना तमिलनाडु की महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के उद्देश्य से बनाई गई है। परियोजना में महिलाओं से संबंधित विषयों और राज्य पर अनुसंधान के लिए स्वयंसेवी संगठनों और महिलाओं को प्रोत्साहित किया जाता है। यह आय वृद्धि, व्यावसायिक प्रशिक्षण, विचार-विमर्श आदि से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु नागरिकों को प्रोत्साहित कर उनको अपने साथ जोड़ता है।[14]

nf"V & यह ई-शासन, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने वाली ग्रामीण नेटवर्किंग और विपणन सेवाओं के लिए राजस्व अर्जित करने वाले मंच के रूप में कार्य करती हैं। यह अपने ई-कॉमर्स और कृषि-व्यापार के माध्यम से नागरिकों को ऑनलाइन क्रय-विक्रय की सुविधा प्रदान करती है। साथ ही यह लोगों को राशन कार्ड भी जारी करवाती है तथा उससे संबंधित सभी बुनियादी सूचनाएं भी रखती है।[15]

Kkunr & ज्ञानदूत की शुरूआत जनवरी 2000 में मध्य प्रदेश के धार जिले में की गयी। यह सरकार द्वारा नागरिकों को दी जाने वाली सेवा (जी2सी) इन्ट्रानेट आधारित पोर्टल है। इसका उद्देश्य ICT के ग्रामीण लोगों तक पहुंचाने के लिए एक किफायती, सरल, समझ योग्य व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना है। ज्ञानदूत नागरिकों के वित्तीय विवरण भी रखता है और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की सूची उपलब्ध कराने जैसी सेवाएं भी प्रदान करता है।[16]

Tkkxfr b-lok & जागृति का शुभारंभ मार्च 2003 में हुआ। यह ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, वित्तीय, यात्रा और ई-प्रशासन से लेकर संचार सेवा तक प्रदान करती है। इस परियोजना के अन्तर्गत पंजाब के गांवों व क्षेत्रों में ग्रामीण सूचना गुमटियां स्थापित की गयी हैं, जिन्हें जागृति ई-सेवा केन्द्र कहा जाता है।[17]

Ykkdfe= & हिमाचल प्रदेश में लोगों को सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की जानकारी हेतु इसका विकास राष्ट्रीय सूचना केन्द्र ने किया है। इसका एक उद्देश्य यह भी है कि विभिन्न सरकारी अधिकारियों से संवाद स्थापित करने और प्रशासनिक प्रक्रिया में उनके सक्रिय और प्रत्यक्ष योगदान के संबंध में लोगों से संवाद करने हेतु एक मिलन-बिंदू (meet point) स्थापित करना है।[18]

cynj & यह भारत का पहला आईसीटी जनित ग्राम पंचायत ई-प्रशासन पर आधारित है। बेक्टूर बैंगलुरू से करीब 80 किलोमीटर दूर स्थित है। इससे राज्य के सभी जिला एवं ताल्लुका कार्यालय और ग्राम-पंचायतें जुड़ी हुई हैं। यह लोगों की सम्पत्ति, कर संग्रह, जीवन-मृत्यु प्रमाण पत्र और अन्य वित्तीय विवरणों को संजोकर रखती है।[19]

tufe= & जनमित्र की शुरूआत मार्च 2002 में की गयी। यह एक समेकित ई-प्लेटफार्म है जिसको राजस्थान के झालावाड़ जिले में क्रियान्वित किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए लोगों को एकल खिड़की की सुविधा प्रदान करना है। कम्प्यूटरीकरण के जरिये विभिन्न सरकारी कार्यप्रणालियों को सरल, पारदर्शी, उत्तरदायी और संवेदनशील सुनिश्चित करना, प्रशासन और लोगों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करना और सूचना के अधिकार को एक प्रभावी साधन के रूप में जनता तक पहुंचाना है। यह लोगों को ई-प्रशासन, ई-शिक्षा, ई-स्वास्थ्य और ई-वाणिज्य सेवाएं प्रदान करता है।[20]

b'mÙkjk[k.M& इस परियोजना का उद्देश्य उत्तराखण्ड राज्य के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना। जिससे वे संस्कृति, परम्परा, समाचार और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही पूर्वजों के विचारों के बारे में अपनी राय का आदान-प्रदान कर सके। इस वेबसाइट पर बड़े शहरों के साथ-साथ छोटे गाँवों की जानकारियाँ भी आयोजित की जाती है।[21]

Vyh efMfl u & अपोलो अस्पताल इस परियोजना के माध्यम से ग्रामीण भारत के लाखों लोगों को उच्चस्तरीय विशेषज्ञता वाली स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करता है। टेली मेडिसिन अर्थात् डॉक्टरों से दूर रहने वाले मरीजों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए आईसीटी का उपयोग करना है।[22]

ykdok.kh & लोकवाणी की परिकल्पना सितम्बर 2014 में सीतापुर के जिला कलेक्टर ने की थी। यह सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी में शुरू किया गया। यह लोगों की शिकायतों और याचिकाओं, भू-अभिलेखों, निविदा सेवा, रोजगार सेवाओं और सरकारी योजनाओं से सम्बन्धित सूचनाओं के बारे में सेवा प्रदान करती है।[23]

fMftVy bfM;k & केन्द्र सरकार ने सूचना औद्योगीकरण की ताकत से समाज के जीवन स्तर को उन्नत और राष्ट्र को सशक्त बनाने हेतु डिजिटल इण्डिया की शुरूआत की गयी। इनके तहत निम्न योजना है:[24]

1- **igy &** इस योजना के अन्तर्गत गैस सब्सिडी मांगों के अनुदान को सीधे ही उपभोक्ता के बैंक खाते तक पहुंचाना है।

2- **vk/kkj l[;k&** इसमें उपभोक्ताओं की पहचान सुनिश्चित होती है और यह डिजिटल इंडिया की संकल्पना को आगे बढ़ाने में सुविधाजनक बना रही है।

3- **ç/kkuea=h tu/ku ;kstuk &** इससे भारत के नागरिकों को बैंक खाता और डेबिट कार्ड उपलब्ध कराया जाता है। जिससे सभी नागरिक बैंक का लाभ प्राप्त कर सकें।

4- **b'eMh &** ई-मंडी एक इलेक्ट्रॉनिक मार्केट प्लेटफार्म है, जो पूरी विपणन प्रणाली में पारदर्शिता बनाएं रखने का सुविधाजनक तरीका उपलब्ध कराते हुए, खुदरा और थोक विक्रेता दोनों के लिए सब्जियों को अच्छे दामों पर ऑनलाइन बेचने का अवसर उपलब्ध कराता है। ई-मंडी परियोजना से देशभर की सभी मंडी एक दूसरे के करीब आ रही हैं।[25]

jk"Vªifr Hkou ¼jk"Vªifr fotu½ & भारत के 13वें राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा राष्ट्रपति भवन को लोकतंत्र की एक वैभवशाली संस्था के रूप में ही महत्त्व नही दिया। बल्कि उन्होंने राष्ट्रपति भवन तक पहुँच को भी लोकतांत्रिक बनाने

के साथ-साथ सूचना तक आसान और उचित पहुंच को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न ई-शासन पहलों को स्वीकार किया। जिसमें भारत के राष्ट्रपति की प्रभावशाली वेबसाइट बनाना, ऑनलाइन ई-कांफ्रेंस प्रबंधन प्रणाली, ई-प्रबंधन, सुरक्षा के लिए स्मार्ट कार्ड टेक्नोलॉजी, वाई-फाई सेवा और कई अन्य ई-प्रशासन सेवाएं शामिल हैं।[26]

ekcby lfol fMfyojh xVo & मोबाइल शासन, जिसे एम-गर्वनेंस भी कहा जाता है। इसका लक्ष्य सभी नागरिकों को सार्वजनिक सेवाएं और सूचना प्रदान करने के लिए वायरलेस और नई मीडिया तकनीकी मंचों, मोबाइल उपकरणों व अनुप्रयोगों को प्रभावी बनाना है। सुदूर क्षेत्र तक मोबाइल की पहुंच इंटरनेट से अधिक है, इसलिए इंटरनेट की पहुंच सुनिश्चित कर सार्वजनिक सेवाओं की पहुंच को आसान बनाना है।[27]

इस प्रकार ई-शासन के माध्यम से सरकार व आम जनता के बीच सीधे सम्पर्क को सुगम बनाया गया है। ई-शासन की सहायता से रेल टिकटों के आरक्षण, कर विवरणिका दाखिल करना, कर वापसी की रकम प्राप्त करना, जन्म-मृत्यु प्रमाण पत्र तथा भूमि अभिलेख लेने व पंजीकरण आदि जैसे अनेक कामों में पारदर्शिता आयी है और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा है। इसीलिए 12वीं पंचवर्षीय योजना में सुशासन और सेवा प्रदाताओं की क्षमता में सुधार हेतु ई-प्रशासन के व्यापक इस्तेमाल को बढ़ावा दिया गया।[28] अतः सूचना तकनीकी क्रांति ने सुशासन के प्रयासों में और अधिक गति प्रदान की है। सूचना तकनीकी के कारण सुशासन की पहुंच निचले स्तर तक तथा निचले स्तर की पहुँच शीर्ष तक सम्भव हो पा रही है। निःसंदेह सुशासन के हाथ में ई-शासन एक उन्नत हथियार है जो लगातार परिष्कृत हो रहा है और प्रशासन से कुशासन को दूर कर रहा है।

समाज के विकास के लिए ई-शासन का प्रयोग इस प्रकार किया जा रहा है। जिससे सरकारी कामकाज में स्वचालन आया है और स्वविवेक के अवसर सीमित हुए हैं। दक्षता और उत्तरदायित्व में वृद्धि हुई है। कार्यालय पर्यवेक्षण में नवीन प्रगति आयी हैं, पर्यवेक्षकों की शक्ति बढ़ी है तथा सूचना तकनीकी के प्रयोग ने तकनीकी स्तरों पर पर्यवेक्षण को लगभग त्रुटि रहित बना दिया है। सूचना तकनीकि के प्रयोग ने प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ाने के अवसर प्रदान किये हैं। इसमें मानव-संसाधन का वैश्विक आदान-प्रदान व कार्यक्रम और भी अधिक सुलभ हो गया है। सूचना तकनीक ने विकास के समस्त संसाधनों, पूँजी, ज्ञान, मानव संसाधन सभी को एक साथ जोड़कर एक वैश्विक प्रणाली विकसित की है। फलस्वरूप विकास हेतु एक देश की अच्छाईयाँ दूसरे देश को लाभ पहुंचा रही है। साथ ही प्रशासन में भी सुधार के नवीन विकल्प सामने आ रहे हैं। निष्पादन मूल्यांकन को निष्पक्षता व त्रुटि रहित तरीके से प्राप्त किया जा रहा है और उसे विकास, सूक्ष्मता व कुशलता के द्वारा बेहतर रूप से जोड़ा जा रहा है। अतः स्पष्ट है कि सूचना तकनीकि प्रशासनिक

गतिविधि में नवीनता लाने के साथ ही प्रशासन द्वारा सेवाओं की प्रदायगी विधि में विचार से आयाम को जोड़ा जा रहा है।[29]

इसी के साथ विकास प्रशासन में भी सूचना तकनीकी बेहतर विकल्प के रूप में साबित हुई है। इसके माध्यम से ही शोध और प्रशासन के परम्परागत तरीकों एवं आपदा-प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है। आज अर्थव्यवस्था के तीनों क्षेत्रों अर्थात् कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र में इसके माध्यम से बदलाव आया है। रोजगार के अवसर, नियोजन प्रक्रिया, नीति निर्माण प्रक्रिया इत्यादि में ई-शासन की उपयोगिता आज बढ़ती जा रही है। इसके बेहतर प्रयोग से आज राष्ट्रीय के साथ अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का भी निर्वाह किया जा रहा है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को भी जनमत के आधार पर कार्य करने के लिए जागरूक किया जा रहा है। विकास की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व में निस्संदेह वृद्धि हुई है।[30] वस्तुतः ऐसा नहीं है कि ई-शासन केवल सुशासन के लिए वरदान सिद्ध हो रही है बल्कि ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ यह सुशासन के लिए नई तरह की समस्या को भी जन्म दे रही हैं या फिर सूचना तकनीकी को सुशासन के पक्ष में प्रयोग करने में समस्याएं आ रही हैं। ऐसी विभिन्न समस्याएं प्रशासनिक गतिविधि में हैं जो ई-प्रशासन के माध्यम से उत्पन्न हो रहे हैं। जो अग्रलिखित हैं :–

प्रशासनिक गतिविधि में ई-प्रशासन के प्रयोग के कारण विशेषज्ञों की भागीदारी में बढ़ोत्तरी हुई है, जिसका परिणाम यह है कि जो कार्मिक विशेषज्ञ नहीं होते उन्हें प्रशासनिक गतिविधि में सामान्य सदस्य के रूप में देखा जाता है। इसलिए आज सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते उपयोग से प्रशासन में विशेषज्ञों की भागीदारी तथा उनके बढ़ते वर्चस्व ने मूल्यों व तथ्यों के सम्बन्ध में नई बहस को जन्म दे दिया है। अतः आवश्यक है कि सामान्य बनाम् विशेषज्ञ की बढ़ती खाई को भरा जाए ताकि प्रशासनिक प्रक्रिया में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो।

विकास-प्रशासन सुशासन के माध्यम से आम नागरिक को सशक्त बनाना चाहती है, जबकि सूचना तकनीक अभी तक शिक्षित लोगों तक ही अपनी पहुँच सुनिश्चित कर सकी है। इसीलिए आवश्यक है कि सरकार द्वारा समाज के पूर्ण विकास हेतु प्राथमिक स्तर से सूचना प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्रारम्भ की जाय। साथ ही एक जैसी शिक्षा व्यवस्था को अखिल भारतीय स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। ताकि सम्पूर्ण भारत में कोई व्यक्ति जब एक छोर से दूसरे छोर पर जाए तो समान प्रक्रिया का आभास हो। अतः विकास प्रशासन और प्रशासन के विकास हेतु सम्पूर्ण देश में समान रूप से सूचना प्रौद्योगिकी की शिक्षा लागू की जानी चाहिए। तभी भविष्य में बेहतर विकसित समाज की कल्पना की जा सकेगी।

सूचना तकनीकी के प्रयोग ने लगभग सभी देशों में डिजिटल डिवाइस को बढ़ावा दिया है अर्थात् कहा जा सकता है कि एक दुनिया ऐसे भी है जहाँ

इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस का अभाव है तो दूसरी दुनिया में डिजिटल डिवाइस अत्यंत उन्नत स्तर पर है। इसी प्रकार भारत के विभिन्न राज्यों के प्रशासनिक विभागों में इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस की उपलब्धता में भिन्नता है। जैसे कई विभागों में इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस के बेहतर उपलब्धता से त्वरित कार्यों का सम्पादन किया जाता है तो वहीं कई विभागों में इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस के अभाव में आज भी कागजी पद्धति आधारित कार्यों को किया जा रहा है। जिसका परिणाम यह है कि एक ही कार्य किसी कार्यालय में कम समय में हो रहा है तो वहीं दूसरे कार्यालय में विलम्ब से। अतः आवश्यक है कि इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन को बढ़ावा देने के लिए सभी कार्यालयों में डिजिटल-डिवाइस की कमी को दूर किया जाए।

सूचना तकनीकी के विकास ने विभिन्न ई-अपराध को भी जन्म दिया है। जिससे प्रशासनिक गतिविधि में बाधाएं उत्पन्न होती रहती है। जैसे– ''लॉकी'' वाइरस जिसने महाराष्ट्र मंत्रालय के तकरीबन 150 कम्प्यूटर को लॉक कर दिया। यानि उन कम्प्यूटरों में दर्ज फाइलों को खोला या पढ़ा नहीं जा सकता था।[31] इसी प्रकार ''समवेयर'' वायरस का अटैक आंध्र प्रदेश पुलिस के कम्प्यूटरों पर हुआ।[32] जिसका परिणाम यह हुआ की प्रशासनिक कार्यों में बाधा हुई और कार्य पद्धति में जटिलता उत्पन्न हुई। अतः आवश्यक है कि इलेक्ट्रॉनिक पद्धति को सुरक्षित बनाया जाए ताकि किसी प्रकार के ई-अपराध का प्रभाव प्रशासनिक गतिविधियों पर न पड़े।

इस प्रकार ई-शासन के माध्यम से सूचना तकनीकी का प्रशासन में प्रयोग करने के साथ स्थानीय स्तर तक इसकी पहुँच सुनिश्चित कर समाज में सुशासन को स्थापित किया जाना है। वास्तव में ई-शासन का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा प्रशासनिक गतिविधि में किया जाना चाहिए, जिससे लाभार्थियों व कार्मिकों दोनों के सेवा ग्रहण करने व सेवा प्रदान करने की पद्धति में बदलाव हो सके और इसका लाभ समाज के विकास में सुनिश्चित हो सके।

अन्ततः कहा जा सकता है कि ई-शासन को लगातार विकसित करके प्रशासनिक गतिविधि को सरल, बेहतर, स्पष्ट बनाते हुए सुशासन और विकास को प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। जिसका परिणाम है कि प्रशासन में खुलापन, ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा बढ़ी है और भ्रष्टाचार व अनियमितता में कमी हुई है। इसलिए आज सरकार द्वारा भी सभी स्तरों पर ई-प्रयोग का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा है। इसी संदर्भ में भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आजाद ने कहा है कि ''ज्ञान की सदी आ चुकी है, हमें उसके लिए हर प्रकार से तैयार होना होगा और ज्ञान ही सुशासन का आधार बनेगा।[33]सुशासन इस दृढ़ विश्वास पर आधारित है कि मनुष्य के पास नैतिक और बौद्धिक क्षमता है और साथ ही तर्क और न्याय के साथ स्वयं को नियंत्रित करने के योग्य अधिकार हैं।[34] ई-शासन इसी परिष्कृत ज्ञान को परिलक्षित करता है। जिस पर भविष्य का सुशासन

व विकास निर्भर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुशासन; सुनील गुप्त और कमल कुमार सिन्हा; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (2014), पृ.189.
2. अशोक कुमार दुबे, 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008, पृ. 105.
3 मिनाचो ओ. पी., गुड गवर्नेंस न्यू पब्लिक मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव, आइजेपीए, जुलाई-सितम्बर, 1998, पृ. 272.
4. Bhttacharya,Mohit., Conceptualising good Governance ,Indian Journal of Public Administration ,Vol. XLIV No.3 july-Sep.1998, P-289.
5. मिनाचो ओ. पी., गुड गवर्नेंस, मैनेजमेंट इन गवर्नमेंट, वाल्यूम 29,नं.3, 1997, पृ. 116.
6. आशीष खण्डेलवाल, डिजिटल क्रांति से बदलता सामाजिक परिवेश योजना, अंक 2015 अगस्त, पृ.17,
7. वही,
8. Bhatnagar, Subhash, E-Government from vision to implementation, Sage Publication, New Delhi, 2004, p. 14. 7-
9. कश्यप सुभाष, क्राइम, करप्शन एण्ड गुड गवर्नेंस, 1997, पृ.113 (सम्पादित)
10. तिवारी, आर. एस., गुड गवर्नेंस, पॉपुलिस्ट डिमॉक्रेसी टू क्वालिटी डेमोक्रेसी, आइजेपीए, अक्टूबर-दिसम्बर, 2004,
11. www.akashganga.in
12. www.echoupal.com
13. www.tatakk.com
14. www.tamilnaduwomen.org
15. www.drishtee.com
16. www.gyandoot.nic.in
17. www.jagriti.com
18. www.himachal.nic.in/lokmitra.htm
19. योजना, नवम्बर 2010, पृ. 33, जी. रजिता, ई-प्रशासन से बदलता ग्रामीण रहन-सहन
20. www.rajasthan.gov.in
21. www.euttaranchal.com
22. www.telemedconsult.com
23. www.sitapur.nic.in/lokvani
24. योजना, अगस्त 2015, डिजिटल क्रांति से बदलता सामाजिक परिवेश, आशीष खण्डेवाल,

पृ.17-18

25. योजना, अगस्त 2015, वाटिका चंद्रा, (उप–सम्पादक, योजना अंग्रेजी), पृ.62.
26. सुरेश यादव, राष्ट्रपति भवन : एक स्मार्ट धरोहर टाउनशिप योजना (सितम्बर 2015), पृ. 24-29.
27. आर चंद्रशेखर, स्मार्ट शहरों में डिजिटल गवर्नेंस, योजना (सितम्बर 2015), पृ. 29.
28. कैलाश चन्द्र 'सपने', प्रशासनिक सुधारों की कुंजी, ई-प्रशासन योजना (मार्च-2014), पृ.39.
29. गुप्त, एम. पी. प्रॉमिस ऑफ ई-गवर्नेंस : ऑपरेशन चैलेंजेज, 2004, टाटा एम सीग्रा हिल पब्लिसिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ.58-59.
30. सुनील गुप्ता, कमल कुमार सिंह, सु-शासन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, (2014), पृ. 219.
31. NDTV India, Reported by Sunil Kumar Singh, (27 May 2016) Time 11:50PM.
32. NDTV India, Reported by Sandeep Kumar, (13 May 2017), Time 7: 34PM.
33. सुशासन, सुनील गुप्ता, कमल कुमार सिंह, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, 2014, पृ. 281.
34. Devasahayan M G "Groth Institutions need for a focused role", The Tribune, 23 April 1997, Page 8.

आपदा प्रबंधन में सुशासन की चुनौतियाँ

राजेंद्र कुमार पांडेय

भारत जैसे देशों में जहाँ प्राकृतिक तथा मानव निर्मित आपदाएं लोगों के जीवन में वर्षानुवर्ष तबाही के नए कीर्तिमान स्थापित करती जाती हैं, वहां आपदा प्रबंधन का एक विस्तृत, सटीक तथा प्रभावी ढांचा होना अपरिहार्य प्रतीत होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् हालांकि अनेक वर्षों तक आपदा प्रबंधन सरकार की प्राथमिकता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सका था, पिछले लगभग बीस वर्षों के दौरान आतंरिक तथा बाह्य कारकों के चलते केंद्रीय सरकार को आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में अनेकों महत्वपूर्ण कदम उठाने को बाध्य होना पड़ा। वर्तमान समय में देश का आपदा प्रबंधन तंत्र अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप तथा उच्च कोटि का माना जा सकता है। परन्तु जब हम देश के आपदा प्रबंधन तंत्र को सुशासन की कसौटी पर कसते हैं तो हमें अनेकों ऐसे तथ्यों से रूबरू होना पड़ता है जो देश में आपदा प्रबंधन के असली चेहरे को उजागर करते हैं।

भारत विश्व के सर्वाधिक आपदाग्रस्त देशों में एक प्रमुख देश माना जाता है। अतः आपदा प्रबंधन के विविध उपाय सरकारों द्वारा अपने-अपने समय की परिस्थितियों और चिंतन एक अनुसार किये जाते रहे हैं। उदहारण के लिए, चूँकि स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन जन भलाई के कार्यों से सर्वथा विमुख था इसलिए उस समय आपदा प्रबंधन केवल आपदा पीड़ितों को फौरी और सांकेतिक सहायता उपलब्ध कराने तक ही सीमित था। हालाँकि स्वतन्त्रता के पश्चात्, सरकार की दृष्टि जनाभिमुख हुई, फिर भी देश में व्याप्त भीषण गरीबी, अशिक्षा, और अन्य आधारभूत सुविधाओं के आभाव के कारण शासन की प्राथमिकताओं में आपदा प्रबंधन कोई महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण ना कर सका। आपदा प्रबंधन सम्बन्धी ब्रिटिशकालीन नीतियों के जारी रहने के कारण वर्षानुवर्ष आपदाओं का प्रकोप होता रहा और निरीह जनता प्रकृति के कोप का भोजन बनती रही। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में जहाँ एक ओर काफी संख्या में लोगों की जान जाती रही वहीं देश के आर्थिक ढांचागत निर्माणों को भी अपूरणीय क्षति पंहुचती रही। इससे ना केवल विकास की प्रक्रिया बाधित होती रही बल्कि पूर्व में किये गए विकास की चिरजीविता भी नष्ट होती रही। इस प्रकार अस्सी के दशक तक भारत में आपदा प्रबंधन का स्वरूप स्वतंत्रता पूर्व की दृष्टि और

प्रक्रियाओं से बहुत अधिक भिन्न नहीं था। परन्तु इस दिशा में महती प्रयास संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा तब हुआ जब उसने नब्बे के दशक को अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक के रूप में मनाने का निर्णय लिया। संयुक्त राष्ट्र के आदर्शों और क्रियाकलापों का अनन्य समर्थक होने के कारण भारत सरकार ने भी 90 के दशक को देश में आपदा प्रबंधन के उद्देश्यों और प्रक्रियाओं को नए दृष्टिकोण से पुनर्गठित करने का निर्णय लिया। इस प्रकार भारत में आपदा प्रबंधन के एक नए स्वरूप और ढांचे के निर्माण का प्रयास संयुक्त राष्ट्र के आग्रहों और संकेतों को ध्यान में रखकर आरम्भ हुआ। वर्तमान में देश में आपदा प्रबंधन का जो स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित होता है उसका उद्भव अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण के दौरान किये गए प्रयासों को ही माना जा सकता है।

भारत में आपदा प्रबंधन के ढांचे का समसामयिक स्वरूप वैश्विक परिमापों के अनुरूप माना जा सकता है। पर्याप्त सोच विचार व व्यापक विमर्श के पश्चात् देश में आपदा प्रबंधन के प्रक्रिया को नया रूप देने के लिए सन् 2005 में संसद द्वारा आपदा प्रबंधन अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम को देश में आपदा प्रबंधन का अधारभूत विधान मानना गलत ना होगा। इस अधिनियम में आपदा प्रबंधन के लगभग सभी प्रमुख पहलुओं को सांकेतिक रूप में निरूपित किया गया है। अतएव इस अधिनियम के अनुरूप राष्ट्रीय, राज्य और जिले स्तर पर विविध प्रशासनिक इकाईयों का गठन किया गया और पूरी मशीनरी को एक नयी ऊर्जा और दृष्टि के साथ आपदा प्रबंधन में संलग्न होने का अवसर प्रदान किया गया है। आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा स्थापित मशीनरी का दिशा-भ्रम ना हो जाये, इसके लिए 2009 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति को स्वीकार किया गया और अभी हाल ही में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना को भी अंगीकार किया गया। इस प्रकार भारत का आपदा प्रबंधन तंत्र अब अपने समग्र रूप में अस्तित्ववान है और ऐसा माना जाना चाहिए कि अब आपदाओं के कारण होने वाले जान माल के नुकसान को न्यूनतम किया जा सकता है। परन्तु जब हम देश में आपदा प्रबंधन को सुशासन की कसौटी पर कसते है तो हमें यह प्रतीत होता है कि भारत के आपदा प्रबंधन में सुशासन की चुनौतियाँ व्यापक रूप में मौजूद हैं। अवधारणात्मक रूप से, सुशासन किसी भी व्यवस्था में निष्पक्षता, सहभागिता, बहुलवाद, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा विधि के शासन जैसे आधारभूत मूल्यों की सक्रिय उपस्थिति से सम्बन्ध रखता है। इस दृष्टि से सुशासन को सबसे बड़ा खतरा उन बुराइयों तथा समस्याओं से है जो सुशासन के आधारभूत मूल्यों पर प्रहार करती नज़र आती हैं। उदहारण के लिए, भ्रष्टाचार, हिंसा, गरीबी, अपारदर्शिता, असुरक्षा, लिंगभेद, भाई-भतीजावाद, विकट सामाजिक और आर्थिक असमानता, अलोकतांत्रिक मूल्यों तथा प्रक्रियाओं का दबदबा इत्यादि ऐसी अनेक सामाजिक बीमारियाँ हैं जो सुशासन पर सतत् प्रतिघात करती रहती हैं। इसलिए सुशासन की संकल्पना में ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था का प्रारूप निहित है जो हर तरह

की बुराईयों तथा समस्याओं से मुक्त होकर लोगों को एक सक्षम, ईमानदार, न्यायोचित, जवाबदेह, समग्र, मितव्ययी तथा सहभागी प्रशासन सुनिश्चित कर सके यही कारण है कि कालांतर में सुशासन का सम्बन्ध ना केवल ऊपरवर्णित बिन्दुओं तक सीमित रह जाता है बल्कि इसका प्रसार शुचितापूर्ण राजनीति, समतामूलक आर्थिक प्रबंधन तथा जनसहभागी प्रशासन तक निर्बाधरूप से हो जाता है अतः प्रस्तुत लेख में भारत में आपदा प्रबंधन की संरचना और क्रियाकलापों में सुशासन की चुनौतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

नीतिगत चुनौतियाँ

एक विशिष्ट लोक नीति के रूप में भारत में आपदा प्रबंधन की नीति हमेशा भारतीय लोक प्रशासन की एक कमजोर कड़ी रही है। देश की स्वतंत्रता से पूर्व भारत का राष्ट्रवादी नेतृत्व ब्रिटिश आपदा प्रबंधन की नीति की कटु आलोचना इस आधार पर करता रहा था की यह नीति वस्तुतः 'राहत नीति' तक ही सीमित रह गयी है। परन्तु देश की आज़ादी के पश्चात् जब शासन की बागडोर भारतीय राजनेताओं के हाथ में आयी तो उन्होंने भी आपदा प्रबंधन की ब्रिटिश नीति को ही जारी रखना उचित समझा वास्तव में काफी लम्बे अरसे तक देश में आपदा प्रबंधन सरकार की प्राथमिकता रही ही नहीं। पांच वर्षीय योजनाओं के आरम्भिक दौर में इसे कृषि से जोड़कर देखा गया और उसी अनुसार नीतियां भी बनाई गयीं। जबकि आपदा प्रबंधन स्वयं में एक समग्र अवधारणा है जो जितनी कृषि से, उतनी ही औद्योगिक और अन्य आर्थिक गतिविधियों से गहराई से जुड़ी हुई हैं। आपदा प्रबंधन वस्तुतः व्यक्ति के जीवन का एक शास्वत सत्य है जिसको नकार कर व्यक्ति का जीवन सुरक्षित, संपन्न और चिरजीवी नहीं हो सकता है। अतः देश में एक सुस्पष्ट आपदा प्रबंधन की नीति की आवश्यकता काफी लम्बे समय से महसूस की जा रही थी। परन्तु राजनीतिक उपेक्षा और इच्छाशक्ति की कमी के कारण इस विषय पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा था। भारत में आपदा प्रबंधन की सुस्पष्ट नीति के निर्धारण की दिशा में गंभीर चिंतन अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण दशक के दौरान मिलने वाले अंतर्राष्ट्रीय प्रोत्साहनों तथा जिम्मेदारियों के निर्वहन स्वरूप प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार आपदा प्रबंधन पर प्रथम समग्र दस्तावेज संसद द्वारा पारित आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 था।

आपदा प्रबंधन नीति के सम्बन्ध में कई प्रमाणिक संकेत आपदा प्रबंधन अधिनियम में प्राप्त होते हैं। उदहारण के लिए, इस अधिनियम में दी गयी आपदा की परिभाषा देश में काफी समय से फैले इस विभ्रम तो तोड़ सकी जिसमें आपदा को केवल प्राकृतिक आपदा तक ही सीमित कर दिया गया था। इस अधिनियम के अनुच्छेद- २ (घ) में स्पष्ट किया गया है की "आपदा" से किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवकृत कारणों से या दुर्घटना या उपेक्षा से उद्भव ऐसी कोई महाविपत्ति, अनिष्ट, विपत्ति या घोर

घटना अभिप्रेत है जिसका परिणाम जीवन की सारवान हानि या मानवीय पीड़ाएँ, या संपत्ति का नुकसान और विनाश या पर्यावरण का नुकसान या अवक्रमण है और ऐसी प्रकृति या परिणाम का है जो प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की सामना करने की क्षमता से परे है"।[1] इस प्रकार हालाँकि आपदा प्रबंधन अधिनियम में आपदा की संकल्पना सहित अनेक मुद्दों पर व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, फिर भी इसका नीतिगत योगदान नगण्य ही माना जा सकता है। इसके द्वारा आवश्यक रूप से आपदा प्रबंधन के जिस पक्ष पर ज्यादा बल दिया गया है वह है आपदा प्रबंधन के ढांचागत स्वरूप के निर्धारण का। हालाँकि उस ढांचे की भी अनेकों कमियां समय-समय पर उजागर होती रहती हैं।

आपदा प्रबंधन अधिनियम के पारित होने के बावजूद जब सरकारी योजनाकारों तथा प्रशासकों को यह महसूस हुआ कि भारत में आपदा प्रबंधन अभी भी दिशाहीन, अप्रभावी तथा जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है तब सरकार का ध्यान आपदा प्रबंधन की एक राष्ट्रीय नीति के निर्माण की तरफ गया। तत्पश्चात, विभिन्न सम्बंधित पक्षों तथा देश की आवश्यकताओं को दृष्टिगोचर करते हुए 2009 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति को कैबिनेट द्वारा स्वीकृत मिली। इस नीति के द्वारा वास्तव में आपदा प्रबंधन अधिनियम 2009 की नीतिगत कमियों को मिटाने का प्रयास किया गया था।[2] इस नीति का मूल मंत्र हैः भारत में एक ऐसे समाज का निर्माण करना जो तकनीक तथा अन्य अन्वेषणों के सहारे लोगों में प्राकृतिक आपदाओं से न्यूनतम जान माल की हानि से साथ निबटने की क्षमता का निर्माण कर सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस नीति पत्र में अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं, प्रक्रियाओं, तथा रचनात्मक गतिविधियों का उल्लेख किया गया है। परन्तु अपने देश में हम लोग पिछली पांच वर्षीय योजनाओं तथा अन्य नीतिगत सरकारी प्रयासों से भली भांति परिचित हैं। ये सारे प्रयास कागज़ों पर बड़े ही सटीक तथा आकर्षक लगते है। लेकिन जब बात इनके क्रियान्वयन की आती है तो वही ढाक के तीन पात ही नज़र आते हैं। इसलिए आपदा प्रबंधन की नीति की तार्किक सिद्धता तथा ढांचागत व्यवस्थितता के बावजूद इस बात की आशंका हमेशा मौजूद रही कि कहीं इस नीति का भी हश्र आपदा प्रबंधन के लिए किये गए पूर्व के प्रयासों जैसा ही ना हो जाये। आश्चर्यजनक रूप से, जिस बात की आशंका व्यक्त की जा रही थी उस बात की सत्यता आगे के लगभग पांच-छह वर्षों में कमोबेश सिद्ध ही हो गयी। इस दौरान देश में अनेक प्राकृतिक तथा मानव निर्मित आपदाएं आईं। किन्तु इस नीति के घोषित लक्ष्यों के अनुरूप जान माल के न्यूनतम नुकसान की गारंटी नहीं दी जा सकी।

कालांतर में इस सच्चाई को सरकार द्वारा स्वीकार ही किया गया कि आपदा प्रबंधन की नीति अपने आप में देश को आपदा मुक्त करने के महती लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रही है। फलस्वरूप देश के नीति निर्धारकों ने एक ऐसी योजना की

कल्पना की ओर दृष्टिपात किया जिसमे आपदा प्रबंधन की नीति को मूर्तरूप देने की लिए एक नयी योजना की रचना की जाये। इस प्रकार आपदा प्रबंधन की नीति को अमली जामा पहनाने की लिए 2017 में सरकार द्वारा एक आपदा प्रबंधन योजना को स्वीकृति दी गयी। यह योजना वास्तव में देश में आपदा प्रबंधन की नीति को मोदी सरकार की 'न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन' की नीति के अनुरूप समायोजित करने की लिए बनाई गयी प्रतीत होती है। इससे भी अधिक, इस योजना को आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा स्थापित वृहत ढांचे को ठीक प्रकार से अपने कर्तव्यों के निर्वहन में तज्ञ करने हेतु एक रोडमैप प्रदान करने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है।

इस योजना का केंद्रीय बिन्दु यह है कि किस प्रकार देश के आपदा प्रबंधन तंत्र को ऐसा लक्ष्योन्मुख बनाया जाये कि वर्ष प्रति वर्ष आने वाली भीषण प्राकृतिक आपदाओं की विभीषिका से आम लोगों को बचाया जा सके। साथ ही जोर इस बात पर भी दिया गया है कि देश का आपदा प्रबंधन तंत्र विश्व स्तरीय मानदंडों और उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में ठोस कदम उठा सके। इस प्रकार आपदा प्रबंधन योजना देश में आपदा प्रबंधन नीति को मूर्तरूप देने का नवीनतम प्रयास माना जा सकता है। आपदा प्रबंधन अधिनियम द्वारा भारत में आपदा प्रबंधन का जो क्रम 2005 में आरम्भ किया गया था, 2017 की आपदा प्रबंधन योजना उसी प्रकिया को तार्किक परिणति तक ले जाने का प्रयास माना जा सकता है। इस योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् यह अपेक्षा की जा रही है कि देश में आपदाओं से होने वाले भारी जान माल के नुकसान को न्यूनतम किया जा सकेगा। देश में आपदा प्रबंधन के नीतिगत पहलु के बारे में एक बात तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि अब देश में आपदा प्रबंधन की नीति का एक सुस्पष्ट तथा व्यापक खाका खींचा जा चुका है। आपदा प्रबंधन अधिनियम से लेकर आपदा प्रबंधन नीति और आपदा प्रबंधन योजना के द्वारा आपदा प्रबंधन तंत्र और प्रक्रिया को इस प्रकार साधने का प्रयास हुआ है कि अब आपदा प्रबंधन का लक्ष्य महज औपचारिकता बन कर ना रह जाये।

परन्तु जब हम आपदा प्रबंधन की नीति को सुशासन की कसौटी पर कसते है तो हमें कई प्रकार की न्यूनताएँ और कमियां नज़र आती हैं। उदाहरण के लिए सुशासन की एक पूर्व शर्त यह होती है कि किसी भी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था और प्रक्रिया मूलतः जनसहभागिता पर आधारित होनी चाहिए। किन्तु जब हम देश में आपदा प्रबंधन के ढांचे और नीति पर दृष्टि डालते हैं तो हमें पता चलता है कि यह सब कुछ अत्यधिक सरकारोन्मुख है। हालाँकि आपदा प्रबंधन दस्तावेजों में कई स्थानों पर इस बात पर बल दिया गया है कि आपदा प्रबंधन की संपूर्ण प्रक्रिया को जनसहभागितापूर्ण बनाया जायेगा, किन्तु इस महती उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कोई ठोस प्रयास और कार्ययोजना या विधि विधान किया गया नहीं लगता है[5] इस

प्रकार भारत के आपदा प्रबंधन में सुशासन की एक विशेष चुनौती आपदा प्रबंधन के कार्य में जनसहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु किन्ही ठोस और स्थाई प्रावधानों की आवश्यकता है जिसके अभाव में देश का आपदा प्रबंधन तंत्र अतिशय सरकारीपन की व्याधि से ग्रसित ही रहेगा।

संगठनात्मक चुनौतियाँ

वर्तमान समय में देश में आपदा प्रबंधन का एक वृहत तथा बहुस्तरीय संगठनात्मक ढांचा मौजूद है। इस ढांचे के स्वरूप का निरूपण 2005 के आपदा प्रबंधन अधिनियम में विस्तार से किया गया है। राजनैतिक स्तर पर यह ढांचा भारतीय संघीय व्यवस्था के अनुरूप निरूपित किया गया है। इस दृष्टि से देश में आपदा प्रबन्धन का सामान्य जिम्मा केंद्रीय गृह मंत्रालय का बनता है। इस मंत्रालय में केंद्रीय गृह मंत्री के अधीन एक राज्य मंत्री आपदा प्रबंधन विषय का प्रभारी होता है और राजनीतिक स्तर पर दिन प्रतिदिन के आधार पर देश में आपदा प्रबंधन के मुद्दों पर सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। परन्तु प्रशासनिक स्तर पर देश में आपदा प्रबंधन का पूरा का पूरा दारोमदार राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का है। इस प्राधिकरण का गठन आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के प्रावधानों के अंतर्गत किया गया है और इसका मुख्यालय दिल्ली में है। यह एक स्वायत्त निकाय है जिसके जिम्मे देश में आपदा प्रबंधन से सम्बंधित नीतियों के निर्माण से लेकर विविध प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं के प्रबंधन से सम्बंधित दिशा-निर्देश जारी करने के अलावा उनके व्यवस्थित क्रियान्वयन तथा आपदा प्रबंधन के ढांचे का हमेशा क्रियाशील रखने का भी महत्वपूर्ण कार्य करना है। इस सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण बात राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के गठन की है। यह एक विशेषीकृत बल है जिसे आपदाओं के दौरान फंसे लोगों को जीवित बचाने और उनके जान माल की त्वरित रक्षा करने का महती दायित्व सौंपा गया है। वास्तव में देश में आपदा प्रबंधन की सम्पूर्ण मशीनरी और प्रक्रिया में यदि किसी इकाई ने सार्वभौमिक प्रशंसा हासिल की है तो वह राष्ट्रीय आपदा मोचन बल ही है।

केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की तर्ज पर ही शासन के अन्य स्तरों पर भी आपदा प्रबंधन प्राधिकरणों का गठन किया गया है। इस दृष्टि से वर्तमान मे प्रत्येक राज्य में राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना की गयी है। इस दिशा में कई राज्यों ने अपने अपने आपदा प्रबंधन अधिनियम पारित किये है जबकि कुछ राज्य ने केंद्रीय या किन्ही अन्य राज्य के ही अधिनियम को अंगीकार करके अपने यहाँ राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना किया है। इन प्राधिकरणों को वे सभी अधिकार और कार्य प्रदान किये गए हैं जो कि राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण को सौंपे गए हैं। अपने राज्य की भौगोलिक सीमाओं के अंदर ये प्राधिकरण आपदा प्रबंधन के तमाम कार्यों और उत्तरदायित्वों के प्रभावी निर्वहन के

लिए सक्षम प्राधिकरण माने गए हैं। राज्य के भीतर आपदा प्रबंधन से सम्बंधित लगभग हर निर्णय और नीतिगत अन्वेषणों का जिम्मा इन्हीं प्राधिकरणों पर है। देश में आपदा प्रबंधन के पद-सोपानात्मक ढांचे की अंतिम कड़ी के रूप में देश के प्रत्येक जिले में जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन किया गया है। यह व्यवस्था वास्तव में देश की उस उपनिवेशवादी प्रशासनिक व्यवस्था के अनुरूप है जिसमें जिला प्रशासन को प्रत्येक महत्वपूर्ण गतिविधि का केन्द्रबिन्दु माना जाता रहा है। इस प्रकार देश में एक समेकित सांगठनिक ढांचे के द्वारा आपदा प्रबंधन के कार्य को संपन्न करने का विशिष्ट प्रावधान आपदा प्रबंधन अधिनियम में किया गया है जिसे अब लगभग देश के प्रत्येक राज्य और जिलों में मूर्तरूप दिया जा चुका है।

अपनी स्थापना के समय से लेकर पिछले साल तक देश की प्रशासनिक तंत्र में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का कद काफी उद्दात था और इसका अध्यक्ष प्रधान मंत्री के होने के साथ-साथ इसके उपाध्यक्ष को केंद्र सरकार के कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त था। परन्तु मोदी सरकार के सत्ता में आने के पश्चात आपदा प्रबंधन की इस शीर्ष इकाई का कद उत्तरोत्तर कमतर होता चला गया और वर्तमान में इसके उपाध्यक्ष का पद भारत सरकार के राज्य मंत्री के बराबर ही रह गया है। इस प्रकार वर्तमान समय में आपदा प्रबंधन के कार्य और संस्थाओं को सामान्यतः कम महत्वपूर्ण माना जा रहा प्रतीत होता है। सुशासन की दृष्टि से देखें तो देश में आपदा प्रबंधन के संपूर्ण तंत्र पर केंद्र सरकार का दबदबा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जबकि सुशासन का तकाज़ा यह है कि भारत जैसे भौगोलिक रूप से वैविध्यपूर्ण देश में आपदा प्रबंधन का तंत्र पूरी तरह से विकेन्द्रीकृत तथा समुदाय आधारित होना चाहिए। यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि भारत में आपदाओं के प्रकोप का दायरा इतना विविध होता है कि जब देश के एक हिस्से में बाढ़ आती है तो दूसरा हिस्सा सूखे की चपेट में रहता है। अतः पूरे देश के लिए आपदा प्रबंधन का एक ही ढांचा तथा कार्ययोजना कारगर नहीं हो सकती है। इसके साथ ही आपदा प्रबंधन का जो पद सोपानत्मक ढांचा केंद्रीय, राज्य, और जिलों के स्तर पर गठित किया गया है वह काफी जड़वत तथा जिम्मेदारी से भागने वाला प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए यदि ओडिशा जैसे राज्य में चक्रवाती तूफान आता है और किन्हीं कारणों से कोई जिला प्रशासन अपनी जिम्मेदारी निभाने में विफल रहता है तो, अन्य बातों के अलावा उसके पास एक बहाना यह भी हो सकता है कि राज्य तथा राष्ट्रीय प्राधिकरणों से उन्हें विरोधाभासी आदेश प्राप्त हुए जिसके कारण जिला प्रशासन अपने नियत कार्य को करने में असमर्थ था। अतएव यह कहना अनुचित ना होगा कि देश में आपदा प्रबंधन के संगठन के समक्ष सुशासन की अनेकों चुनौतियाँ हैं। ये चुनौतियाँ वास्तव में दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक दोनों है। दीर्घकाल में देश में आपदा प्रबंधन की जो नीति रही है, जिस प्रकार के संगठन को आपदा प्रबंधन के

कार्य को अंजाम देने के लिए बनाया गया है तथा जिस प्रकार के लोगों को देश में आपदा प्रबंधन का कार्य सौंपा गया है, उन सब में कुछ ना कुछ ऐसी दुरूहताएँ हैं जो उन्हें अपने कार्य को ठीक प्रकार से अंजाम देने में बाधक बनती हैं।

क्रियान्वयन की चुनौतियाँ

वर्तमान काल में आपदा प्रबंधन में सुशासन की सबसे बड़ी चुनौती आपदा प्रबंधन की नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में उपस्थित होती है। आपदा प्रबंधन अधिनियम के साथ इस विषय से सम्बंधित विभिन्न दस्तावेजों तथा नीतिगत क़दमों के फलस्वरूप आपदा प्रबंधन की नीतियों तथा मशीनरी का एक वृहत स्वरूप तो तैयार हो गया लेकिन इन दतावेज़ों तथा अधिनियमों में प्रस्तुत आदर्शवादी लक्ष्यों को किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है, इस विषय पर संशय अभी भी बरकरार है। चूँकि देश में आपदा प्रबंधन के कार्य को समग्र रूप से अंजाम देने का चुनौतीपूर्ण कार्य राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण को सौंपा गया है, इसलिए इस विषय पर कुछ भी अच्छा बुरा होने पर सब लोग इसी संस्था की ओर देखते हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण का इसकी स्थापना से अब तक का ट्रैक रिकॉर्ड आशावादी तथा उत्साहवर्धक नहीं प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए, अपनी सामान्य गतिविधि के रूप में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं से निबटने के लिए अनेक तरह के दिशानिर्देश जारी किये हैं। परन्तु इन दिशा-निर्देशों के क्रियान्वयन के दौरान कई बार यह प्रतीत हुआ है कि ये दिशा-निर्देश काफी जटिल तथा कठोर है और इनके अनुरूप काम करने पर आपदाओं के दौरान लोगों की सहायता की बजाय उनका अहित हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि देश में आपदाओं का स्वरूप काफी वैविध्यपूर्ण है और इनसे निबटने के लिए जिला प्रशासन को काफी हद तक क्रियान्वयन की स्वतंत्र होनी चाहिए जिससे कि वे जैसा चाहें उस प्रकार लोगों के जान माल के भारी नुक्सान का न्यूनीकरण कर सकें। परन्तु जब केंद्रीय दिशा-निर्देशों द्वारा उनके हाथ बांधकर उन्हें एक विशेष प्रकार से कार्य करने के लिए कहा जाता है तो स्थानीय परिस्थित के अनुसार उनके निर्णय लेने की क्षमता कुंद हो जाती है और आपदा प्रबंधन के नाम पर केवल औपचारिकता निभाने का ही क्रम बना रहता है।

इन दुरूहताओं तथा कठिनाइयों के बावजूद आपदा प्रबंधन के जिस पक्ष ने देश के आपदा प्रबंधन तंत्र तो अपना चेहरा दिखाने लायक छोड़ा हुआ है वह है राष्ट्रीय आपदा मोचन बल का गठन और उसके क्रियाकलापों की गौरवशाली परंपरा। वास्तव में राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के गठन का प्रावधान राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम में ही किया गया था और इस बल को राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण

के समग्र दिशानिर्देश में कार्य करने के लिए संस्तुति प्रदान की गयी है। अपने गठन के समय से ही इस बल ने देश के विभिन्न्न हिस्सों में आने वाले विविध प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं में पीड़ित लोगों के जान और माल को बचाने और राहत कार्यों में देश को गौरवान्वित किया है। इस प्रकार राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के उत्कृष्ट कार्यों को छोड़ दिया जाये तो देश के आपदा प्रबंधन तंत्र के समक्ष नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बंधित सुशासन की अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं। यही कारण है कि 2009 में केंद्र सरकार ने आपदा प्रबंधन अधिनियम के विविध प्रावधानों तथा उनके समुचित क्रियान्वयन के विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में हालांकि देश के आपदा प्रबंधन के सामान्य तंत्र को तो पर्याप्त माना किन्तु आपदा प्रबंधन की नीतियों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन की अनेक चुनौतियों को उजागर किया।

सुशासन की अन्य चुनैतियाँ

आपदा प्रबंधन में सुशासन की आधारभूत चुनौतियों जैसे नीतिगत, संरचनात्मक तथा क्रियान्वयन के साथ-साथ अनेकों ऐसी भी चुनौतियाँ हैं जो देश में आपदा प्रबंधन के तंत्र को सजीव तथा प्रभावी होने में बाधक बनती प्रतीत होती हैं। आपदा प्रबंधन से सम्बंधित दस्तावेजों में प्रस्तुत आदर्शवादी लक्ष्यों के मध्य ये चुनौतियाँ या तो नज़रअंदाज़ कर दी जाती हैं या फिर इन्हे बड़े ही गौड़ रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन चुनौतियों में, अन्य चुनौतियों के साथ साथ, समुचित वित्तीय संसाधनों की चुनौती, आपदा प्रबंधन की वृहत तथा बहुस्तरीय मशीनरी में समन्वय की चुनौती तथा आपदा प्रबंधन के क्रियाकलापों में भ्रष्टाचार की चुनौती आदि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

विभिन्न राज्यों के प्रतिवेदनों तथा अन्य अध्ययनों में देश के आपदा प्रबंधन की सबसे बड़ी चुनौती समुचित वित्तीय साधनों के अभाव को रेखांकित किया गया है। वस्तुतः, आपदा प्रबंधन के सम्बन्ध में वित्त के लगभग सारे संसाधन केंद्र सरकार के हाथों में रहते है और विभिन्न प्रकार के संगठनों की संस्तुति पर आपदा के समय इन निधियों से प्रभावित राज्य को केंद्रीय सहायता का प्रावधान है। परन्तु भारत जैसे अति राजनीतिकृत केंद्र-राज्य संबंधों के संदर्भों में केंद्रीय सहायता का स्वरूप क्या हो सकता है, इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। वित्तीय संसाधनों के अभाव का परिणाम यह होता है कि आपदाओं के दौरान राज्य सरकारें किंकर्तव्यविमूढ़ बनी रहती हैं और निरीह जनता इस विभीषिकाओं से स्वयं ही जूझती रहती हैं।

सुशासन के नुक्तेनज़र से आपदा प्रबंधन के विविध पद सोपानों पर स्थित प्राधिकरणों में आपसी समन्वय की कमी को भी कमतर करके नहीं आँका जा सकता है। केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के दिशा-निर्देशों को राज्य तथा

जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण उसी शब्द तथा भाव के साथ लें जैसे की राष्ट्रीय प्राधिकरण ने अग्रसारित किया है, इसके लिए आवश्यक है कि इन प्रधिकरणों के मध्य एक सजीव तथा शास्वत समन्वय का अंश मौजूद रहे। किन्तु दुर्भाग्य से अपने देश में इस प्रकार की क्रियात्मक सजीवता काफी कम नज़र आती है और इस तथ्य का उद्घाटन आपदा प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ज्यादा ही नज़र आता है।

भारत में आपदा प्रबंधन के समक्ष सुशासन की एक और चुनौती आपदा प्रबंधन के विविध कार्यों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। वास्तव में आपदा प्रबंधन का कार्य एक लम्बे समय तक चलने वाला कार्य है और इसके लगभग हर चरण में वित्तीय संसाधनों का भारी भरकम उपयोग होता है। इस क्रम में कई ऐसे अवसर आते हैं जहाँ यह पाया जाता है कि आपदा प्रबंधन के कार्य में लगे लोग और संस्थाएं अनेक प्रकार के वित्तीय अनियमितताओं में संलग्न पाये जाते हैं। इसलिए जब तक देश में आपदा प्रबंधन के कार्यों में शुचिता और ईमानदारी के तत्त्व बलवती नहीं होंगे, तब तक आपदा प्रबंधन के समक्ष सुशासन की चुनौतियाँ मुंह खोले खड़ी रहेंगी।

निष्कर्ष

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में आपदा प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों एक प्रमुख कार्य बनकर उभरा है। एक तरफ तो देश के विभिन्न हिस्सों में विविध प्रकार के प्राकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं ने हर वर्ष जान और माल की भारी तबाही मचाई हुई है, वहीं दूसरी तरफ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेकों ऐसे कदम उठाये गए हैं जिनसे की आपदा प्रबंधन हर देश की प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाये। इन्हीं आंतरिक तथा बाह्य कारकों के चलते भारत सरकार ने भी देश में आपदा प्रबंधन की नीति, प्रक्रिया, संस्थाओं आदि में आमूलचूल परिवर्तन किया। आपदा प्रबंधन अधिनियम के पारित होने के साथ ही यह स्पष्ट हो गया था कि अब देश में आपदा प्रबंधन को तदर्थ रूप में जारी नहीं रखा जा सकता है। कालांतर में अनेक प्रशासनिक संस्थाओं का गठन किया गया, आपदा प्रबंधन की नीति को अंतिम रूप दिया गया और अभी कुछ दिन पहले ही राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन कार्ययोजना को भी स्वीकार किया गया। इस प्रकार आपदा प्रबंधन के विविध पक्षों में सुधार के बाद जब इस मशीनरी को आपदा प्रबंधन की नीतियों को क्रियान्वित करने का जिम्मा सौंपा गया तो परिणाम अपेक्षा के अनुरूप नहीं रहा। विशेषकर जब देश में आपदा प्रबंधन के विविध पक्षों और कार्यों को सुशासन की कसौटी पर कसा जाने लगा तब अनेकों ऐसे तथ्य सामने आये जिन्होंने आपदा प्रबंधन में सुशासन की अनेकों चुनौतियों को उजागर किया। अतएव यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि भारत में आपदा प्रबंधन का प्रकल्प सुशासन की अनेकों चुनौतियों से घिरा हुआ है और जब तक यह इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर पाता, ये अपने निर्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने में शायद ही सफल हो पायेगा।

सन्दर्भ

1. आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005
2. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन नीति, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, नयी दिल्ली, 2009
3. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन कार्ययोजना, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, नयी दिल्ली, 2017
4. भारत सरकार, गृह मंत्रालय, आपदा प्रबंधन अधिनियम की कार्यप्रणाली पर कार्यबल की रिपोर्ट. नयी दिल्ली, 2013

पंचायती राज : सुशासन एवं विकास

ममता मणि त्रिपाठी

वर्तमान युग लोकतंत्र का युग है। सत्ता और जनता के बीच घनिष्ठ एवं आत्यन्तिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र सभी देशों में एक अनिवार्य, अपरिहार्य एवं नितांत वांछित आवश्यकता के रूप में है।[1] लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे व गरीब हो या अमीर उसे सत्ता में भागीदारी का अवसर प्राप्त हो क्योंकि जनता ही लोकतंत्र द्वारा सत्ता प्राप्त करने का कारक है और वही इस व्यवस्था से प्रभावित भी होती है। इसलिए जनता की भागीदारी एवं सर्वोच्चता दोनों ही लोकतांत्रिक राजनीति व्यवस्था का आवश्यक तत्व हैं। यही कारण है कि भारत के संविधान निर्माताओं ने संविधान की प्रस्तावना में "हम भारत के लोग"[2] शब्द का प्रयोग किया है। विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त सत्ता द्वारा अपनाये जाने से ही लोकतंत्र अपने उद्देश्य में सफल हो सकेगा।

स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र की मेरूदण्ड है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में साझेदारी जो किसी व्यक्ति के अपने परिवेश और दैनिक जीवन से गहराई से जुड़ी होती है, प्रजातांत्रिक स्थूल सत्य है। किसी पंचायत का मूल अर्थ पंचों की एक ऐसी संस्था है जिसके सदस्य गांवों के लोगों द्वारा निर्वाचित होते हैं, और जिन्हें उस गांव की सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों के निर्देशकों और ग्रामीण समुदाय से संबंधित विवादों पर निर्णय देने वाले न्यायकर्ताओं के रूप में स्वीकार किया जाता है। पंचायत एक ऐसी संस्था है जो गांवों में रहने वाले समुदाय के जीवन को एक निश्चित स्वरूप देती है।[3] इन्हीं कारणों से भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना को स्थान दिया गया है।

संविधान निर्माता इस तथ्य से भली-भाँति अवगत थे कि देश की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है।[4] भारतीय संविधान के भाग-4 के 40 वें अनुच्छेद में कहा गया है कि "राज्य ग्राम कि पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा तथा उनको इतनी शक्तियाँ तथा सत्ता सौपेंगा जो कि उनको स्वायत्त सरकार की इकाईयों के रूप में कार्य करने के योग्य बना सके।[5] पं. नेहरू का कहना था

कि–"गाँवों के लोगों को अधिकार सौंपना चाहिए। उनको काम करने दो चाहे वे हजारों गलतियाँ करें। इससे घबराने की जरूरत नही, पंचायतों को अधिकार दो।[6] पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक रूप है जिसमें लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करके पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जाते हैं। बलवंत राय मेहता समिति के सुझाव तथा समय-समय पर गठित की गई समितियों के प्रभाव पर पंचायती राज व्यवस्था को 73 वें संवैधानिक संशोधन[7] 1992 द्वारा 24 अप्रैल 1993 से संपूर्ण देश में लागू किया गया। संविधान के भाग-9 में अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243 (क) से (ण) जोड़ी गयी।[8] पंचायत प्रणाली में तीन स्तर के प्रतिनिधि शासन की व्यवस्था की गयी–

(1) ग्राम पंचायत – ग्राम स्तर पर

(2) क्षेत्र पंचायत – ग्राम व जिला के मध्यवर्ती स्तर पर

(3) जिला पंचायत – जिला स्तर पर

11 वीं अनुसूची के अन्तर्गत पंचायतों को 29 विषयों से संबधित कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

जिस तरह ग्रामीण भारत में 73 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा स्थानीय शासन की संवैधानिक रूपरेखा तैयार हुई उसी प्रकार 74 वें संशोधन द्वारा भाग-9 (क) स्थापित करके नगरीय भारत के लिए स्थानीय स्वायत्त शासन द्वारा त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था स्थापित की गयी।[9] (1) नगर पंचायत (2) नगर परिषद् (3) नगर निगम

73 वाँ संवैधानिक संशोधन हमारे देश की पंचायती राज व्यवस्था के क्षेत्र में क्राँतिकारी परिवर्तन लाया है। जिसने अधिक से अधिक लोगों को प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्रदान करके लोकतंत्र की पाठशाला के रूप में कार्य किया है। पंचायती संस्थाओं की क्रियाशीलता ने जीवन को सुखी व समृद्ध बनाया है तथा नागरिकों में कर्तव्य भावना भरकर नागरिक गुणों को विकसित किया है। केन्द्रीय व प्रांतीय सरकार के कार्य भार में कमी करके मितव्ययिता के साथ कार्यो को शीघ्रता प्रदान की है और भ्रष्टाचार में कमी कर सुशासन स्थापित किया है। यही नहीं 25 दिसम्बर 2014 को भारत सरकार ने पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी के 90 वें जन्मदिन को 'सुशासन दिवस' के रूप में मनाया और अधिकारिक रूप से हर वर्ष 25 दिसम्बर को सुशासन दिवस के रूप में मनाने के घोषणा की।

सुशासन का उद्देश्य समावेशी विकास को अपनाना तथा अपने सभी नागरिकों को बुनियादी सुविधाएं प्रदान करना है समाज के वंचित वर्गों को सशक्त बनाने और उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए सामाजिक कल्याण की योजनाएं संचालित करने के साथ-साथ समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास करना है। इसके अलावा इसके द्वारा ऐसा वातावरण मुहैया करवाया जाना चाहिए। जिसमें लोगों की रचनात्मक क्षमता को साकार रूप दिया जा सके और कला-कौशल, वैज्ञानिक प्रवृत्ति और उद्यमशीलता की भावना को फलने-फूलने का अवसर मिल सके। इससे

मानव संसाधन का निर्माण होगा और वे एक महान राष्ट्र के निर्माण में योगदान दे सकेंगे। वी.ए. पाई पानन्दीकर ने कहा है–"सुशासन का आश्रय उस राष्ट्र राज्य से है जो जनता को शांतिपूर्ण व्यवस्थित, समृद्ध, उचित, सहभागितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए निर्देशित करता है।[10] मिनोचा ने कहा है–"सुशासन वह है जहाँ राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता की उपलब्धि, कानून पालक, नौकरशाही उत्तरदायित्व, सूचना में पारदर्शिता जो प्रभावी एवं कुशल और सरकार तथा समाज में सहयोग दे।"[11]

सुशासन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण बहुत आवश्यक है क्योंकि यह शासन का भागीदारी पूर्ण पहलू है जिससे समाज के सभी वर्ग सशक्त हो। पंचायती राज व्यवस्था लागू होने से लोकतंत्र जमीनी स्तर पर पहुँच चुका है फलस्वरूप अब गाँवों और नगर परिषदों में लाखों निर्वाचित प्रतिनिधि सुशासन स्थापित कर विकास को नया आयाम दे रहे हैं। पंचायतों के द्वारा सुशासन स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं जो निम्नलिखित है– सूचना का अधिकार कानून का प्रावधान इस दिशा में प्रमुख है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग 2005-09 ने सूचना के अधिकार को सुशासन की मास्टर चाभी की संज्ञा दी है। इस कानून में यह प्रावधान है कि यदि कोई अधिकारी किसी व्यक्ति को सूचना देने से मना करता है या देर से अथवा गलत सूचनाएं देता है तो वह अधिकारी निजी तौर पर दण्ड का भागीदार होगा। यह कानून पंचायती स्तर पर पारदर्शिता तथा जबाबदेही सुनिश्चित करता है।

भारत गाँवों का देश कहा जाता है। भारत का विकास तभी सम्भव है जब गाँवों का विकास हों। गाँवों के विकास के लिए सरकार समय-समय पर अनेक योजनाएं चलाती रहती है। पंचायती राज के माध्यम से सरकार द्वारा चलायी गयी योजनाओं का भारत के गाँवों पर सकारात्मक असर पड़ा है तथा ग्रामीण समाज की आर्थिक व सामाजिक स्थिति में व्यापक स्तर पर बदलाव हुआ है। इन योजनाओं में प्रमुख हैं–

- महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोज़गार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा)
- राष्ट्रीय आजीविका मिशन (एन. आर एल एम)
- इन्दिरा आवास योजना (आई. ए. वाई)
- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पी एम जी एस वाई)
- राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एन एस ए पी)
- समेकित वाटर शेड प्रबंधन कार्यक्रम (आई डब्ल्यू एम पी)
- कौशल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत-आजीविका कौशल राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन आर एल एम)
- इन्दिरा आवास योजना

उपर्युक्त योजनाओं से भारतीय गाँव कृषि, सड़क, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, आजीविका, आर्थिक स्तर की दृष्टि से विकास की ओर अग्रसर हुआ है। एन. एस. ए. पी कार्यक्रम के अर्न्तगत इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय विकलांगता पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, अन्नपूर्णा योजना, मात सहायता योजना ने निश्चित रूप से उन परिवारों को खुशियाँ प्रदान की है जिनके आय का कोई साधन नही था। पंचायती राज में महिलाओं की बढ़ती भागीदार ने उन्हें सशक्त किया हैं जिनसे लैंगिक असमानता की खाई पाटी है तो महिलाओं का कद उठा है और उन्हें बाहर की दुनिया में स्वतंत्र जीवन जीने का स्तर प्राप्त हुआ है। दहेज उत्पीड़न तथा घरेलू हिंसा जैसी कुरीतियों से आज की महिला लड़ने में सशक्त हुई है। आज देश में ढाई लाख पंचायतों मे लगभग 32 लाख प्रतिनिधि चुनकर आ रहे हैं जिनमें 13 से 14 लाख महिलायें चुनकर आ रही हैं।[12]

नव संचार के साधन तथा 'डिजिटल क्रांति' ने ग्रामीण समाज को बदला है। 'डिजिटल इंडिया' के माध्यम से गाँवों के लोगों मे संचार क्रांति, वित्तिय समावेश, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र मे बदलाव हुआ है। भ्रष्टाचार मे कमी आयी है तो शासन में पारदर्शिता आयी है। डिज़िटल इंडिया कार्यक्रम के द्वारा वायरलेस इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क का विस्तार हुआ है तो नागरिकों की विशिष्ट पहचान (आधार कार्ड) पत्र प्रदान किया है। डिज़िटल मनी ने कैशले व्यवस्था स्थापित कर संचालित विकसित समाजों के समकक्ष भारतीय समाज लाने का प्रयत्न किया है। 17 अक्टूबर 2000 को सरकार ने सुचना प्रौद्योगिकी अधिनियम को लागू किया। जिससे 'ई-कॉमर्स' और 'ई-गवर्नेन्स' की शुरूआत हुई इसके माध्यम से सूचनाएं इलेक्ट्रॉनिक विधि से उपलब्ध करायी जाती है। इससे ग्रामीण कार्यक्रमों एवं योजनाओं के माध्यम से चलायी जाने वाली लोककल्याणकारी योजनाओं के बारे मे जानकारी सुलभ तरीके से प्राप्त की जा सकती है। सभी ऑकड़ें जान सकते हैं, ग्रामीण विकास की सहभागिता एवं आवश्यकता का पता लगाया जा सकता है। इससे विकास में पिछड़ी जनता में जागरूकता आयी है। 'ई-गवर्नेन्स' से दूर दराज के गाँवो मे रह रहे लोगों को ऑनलाइन सुविधाएँ मिल रही हैं तथा ग्रामीण जनता देश-विदेश में हो रही नई-नई खोजों एवं अनुसंधानों की जानकारी प्राप्त कर रही है।

भारत सरकार ने पंचायती व्यवस्था के माध्यम से गाँव के लिए 14 जरूरी अनिवार्य शर्तें तय की है। इनमें कौशल विकास प्रशिक्षण केन्द्र, खाद्य प्रसंस्करण, कृशि सेवा भण्डारण सुविधा, डिजिटल साक्षरता, स्वच्छता, नल-जल आपूर्ति, ठोस व तरल कूड़ा प्रबंधन, ग्रामीण सड़क व नालियों का निर्माण, स्ट्रीट लाइट, मोबाइल हेल्थ ईकाई, उच्च शिक्षा की सुविधा, सड़क, ई-सेवाएं, सार्वजनिक परिवहन, रसोई गैस कनेक्शन।[13] इसने निश्चित रूप से समाज को विकास की दिशा प्रदान की है। 'स्मार्ट सिटी' की तरह 'स्मार्ट गाँव' बनाने के लिए सरकार पंचायतों को मदद कर रही है।

गरीबों के उत्थान के लिए सरकार द्वारा चलाई जाने वाली अनेक योजनाओं-प्रधानमंत्री जनधन योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, सुरक्षा बीमा योजना, अटल पेंशन योजना, उज्जवला योजना ने गरीबों को सशक्त किया है।

शिक्षित मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव ज्यादा विवेकपूर्ण ढंग से कर सकने में सक्षम होते हैं। इस लिहाज से शिक्षा के प्रसार से देश में लोकतंत्र को मजबूती मिली है। पंचायती राज कानून ने ग्रामीणों को अपने फैसले खुद करने का अवसर मुहैया कराया है। खास तौर से ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा के विकास से पंचायती राज संस्था को बल मिला है। इससे पंचायतें अपने फैसले ज्यादा विवेकपूर्ण ढंग से करने में सक्षम बनी हैं। यही नहीं पंचायतों में बड़े पैमाने पर अपनी भागीदारी से राजनीति में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है।

देश में सामाजिक न्याय के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिल रहा है। महिलायें हो या अनुसूचित जाति व जनजाति सभी की आर्थिक, शैक्षिक व सामाजिक स्थिति में एक साकारात्मक बदलाव आया है। समाज के सभी क्षेत्रों में उनका प्रभाव और योगदान बढ़ा है। महिलाओं को समाज में पुरूषों के समान दर्जा देने लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने *'बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओं'* का नारा दिया है। सुशासन के लक्ष्य प्राप्ति हेतु ग्रामीण भारत के लिए सरकार ने कानून और न्याय मंत्रालय तथा इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के माध्यम से देश भर में फैले पंचायत स्तर पर अपने आम केन्द्रों (सी एच सी) के माध्यम से ग्रामीण नागरिकों को कानूनी सहायता सुलभ कराने के लिए 'टेली-लॉ' योजना शुरू की है।[14]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत जैसे क्षेत्रीय विविधता और जातीय बहुलता वाले लोकतांत्रिक राज्य में पंचायती राज ही वह माध्यम है जिसने शासन को सामान्य जन के दरवाजे तक लाकर सुशासन स्थापित किया है, और यही ग्राम स्वराज के सपने को साकार कर रहा है। ग्राम स्वराज में गाँव के लोगों द्वारा नीतियों का निर्माण तथा उनका क्रियान्वयन हो इसके लिए पंचायतों को और अधिक अधिकार तथा शक्तियाँ प्रदान करने की आवश्यकता है। सुशासन के लिए जो मापदण्ड स्थापित किये गये हैं उनके सापेक्ष भारत में सुशासन की स्थिति सन्तोषप्रद तो है लेकिन अभी भी इसमें सुधार की आवश्यकता है। विधि का शासन, स्वतंत्र न्याय पालिका, सूचना का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि क्षेत्रों में तो काफी प्रगति हुई परन्तु अनेकता मे एकता की पहचान लिये भारत मे आज सुशासन के सम्मुख आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, सम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता, विभिन्न अवसरों पर मीडिया की अप्रभावी भूमिका, शिक्षा व जागरूकता के स्तर में कमी, नागरिकों के मानवाधिकारों का हनन जैसी अनेक चुनौतियाँ एवं बाधाएं हैं। सामाजिक दूरियों के साथ जातिगत और धार्मिक उन्माद भी बढ़ा है। सुशासन के आधार को मजबूत करने के लिये संविधान के 73 वें एवं 74वें संशोधन के माध्यम में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

को पंचायती राज के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास किया गया। उनमें समयानुकूल कुछ सुधार की आवश्यकता है। साथ ही सामाजिक न्याय, राजनीतिक व प्रशासनिक जबावदेही तथा प्रशासन के प्रभावशीलता के क्षेत्र मे ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही पंचायती राज व्यवस्था द्वारा सुशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति कर विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, भारतीय लोकतंत्र का बहुआयामीकरण, अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2017, पृ.–11
2. सुभाष कश्यपः भारतीय संविधान की प्रस्तावना, पृष्ठ–82
3. प्रो. मोहित भट्टाचार्य, लोक प्रशासन (द्वितीय संस्करण), जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1996 पृष्ठ–359
4. अशोक शर्माः भारत में स्थानीय प्रशासन, आर.बी.एस. पब्लिशर्स जयपुर, 2004, पृष्ठ–24
5. भारतीय संविधान, वेयर एक्ट, अनुच्छेद–40, पृष्ठ–28
6. बी.एल. फाडियाः भारत में लोकप्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 1998, पृष्ठ–52
7. ब्रज किशोर शर्माः भारत का संविधान, एक परिचय, द्वितीय संस्करण, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा. लि. नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–263
8. डी.डी. बसुः भारत का संविधान, एक परिचय, पांचवा संस्करण, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ–265
9. ब्रज किशोर शर्माः भारत का संविधान, एक परिचय, द्वितीय संस्करण, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा. लि. नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ–266
10. R.C. Sekhar, Ethics: The other name of Good Governance, IJPA, 1998, पृष्ठ–355
11. R.C. Sekhar, Ethics: The other name of Good Governance, IJPA, 1998, पृष्ठ–355
12. कुरूक्षेत्रः दिसम्बर 2015, पृष्ठ–11
13. कुरूक्षेत्रः दिसम्बर 2015, पृष्ठ–37
14. योजनाः जुलाई 2017, पृष्ठ–17

सुशासन, चुनावी भ्रष्टाचार और भारत में आदर्श आचार संहिता

जय गुप्ता

स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव भारत जैसे किसी भी अच्छे लोकतंत्र का अनिवार्य अंग है, परन्तु चुनावी भ्रष्टाचार भारत में लगातार विवादित विषय बना हुआ है। इससे निपटने के लिए भारतीय निर्वाचन आयोग चुनाव से पहले एक आदर्श आचार संहिता जारी करता है, जिसने आयोग की शक्तियों को बढ़ाने तथा चुनावी भ्रष्टाचार को सीमित सीमा तक रोकने में सकारात्मक योगदान दिया है। आज निर्वाचन आयोग की भूमिका में परिवर्तन को सभी मान्यता देते हुए इसकी सक्रियता को भारतीय लोकतंत्र के सकारात्मक रूप में देख रहे हैं, यह सभी कुछ मूलतः आदर्श आचार संहिता के कारण ही हैं। आज आयोग आदर्श आचार संहिता को चुनावी भ्रष्टाचार के विरूद्ध एक 'टूल ऑफ़ एक्शन' के रूप में प्रयोग कर रहा है। इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह शोध-पत्र इसका पक्ष लेगा कि आदर्श आचार संहिता चुनावों में हो रहे विविध प्रकार के नैतिक व कानूनी भ्रष्टाचार से निपटने की दिशा में पहला सकारात्मक कदम है, जिससे आगे बढ़ने की आवश्यकता है, न कि इस क़दम पर ही प्रश्न चिन्ह लगाने की। इस शोध पत्र में भारतीय लोकतंत्र के लिए समस्या बने हुए चुनावी भ्रष्टाचार को रोकने में आदर्श आचार संहिता के प्रयास एवं इसके योगदान को जांचा जायेगा।

वर्तमान समय नागरिक-केन्द्रित लोक प्रशासन का है, जिसमें सुशासन पर बहुत जोर दिया जाता है। सुशासन के बहुत सारे तत्त्व हैं जिनमें कानून का शासन, जवाबदेही, भागीदारी, समावेश आदि प्रमुख हैं परन्तु इन सबके अलावा पारदर्शिता एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो सुशासन का प्रतिनिधित्व करता है। चाहे ई-शासन का विषय हो, या सूचना का अधिकार हो, प्रशासन को अधिक खुला बनाने का विषय (सिटीजन चार्टर) हो। सारे मुद्दे पारदर्शिता के रूप में सुशासन से सम्बंधित हैं। इसी प्रकार भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतांत्रिक रूप से स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव करवाना भी पारदर्शिता के रूप में सुशासन का मुद्दा है। चुनाव आयोग का संवैधानिक

उद्भव ही इसी आधार पर हुआ कि पारदर्शी रूप से चुनाव करवाये जाएँ। ऐसा करवाने के लिए हर संभव प्रयास करने की जिम्मेदारी संविधान चुनाव आयोग को देता है।

चुनाव विश्व में सहभागिता तथा जवाबदेही के सर्वाधिक सांस्थानिक कार्यविधि बने हुए है[1] क्योंकि लोकतंत्र के एक प्रमुख रूप प्रतिनिधित्व लोकतंत्र में चुनाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है चुनाव ही आज लोकतांत्रिकीकरण का एक प्रमुख माध्यम है दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक शासन होने के नाते चुनाव भारत की राजनीतिक-सामाजिक क्रियाओं में रचे बसे हुए है। भारतीय संविधान-निर्माता भी चुनावों के महत्त्व को समझते थे, इसलिए भारतीय संविधान में सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के आधार पर राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद व विधानसभाओं, के चुनाव स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से करवाने हेतु भारतीय संविधान के भाग 15 के अनुच्छेद 324[2] (The Constitution of India, Article 324) के अंतर्गत एक निर्वाचन आयोग स्थापित किया गया।

निर्वाचन आयोग को संवैधानिक स्थिति प्राप्त होने के साथ इसकी निष्पक्षता व स्वतंत्रता हेतु इसे अराजनीतिक बनाये रखने का भरसक प्रयास किया गया। संविधान निर्माताओं को यह ज्ञात था कि राजनीतिक चुनावों में हर प्रकार के अनुचित पद्धतियों का भी चुनावी अभ्यार्थी और राजनीतिक दल (विशेषकर सत्ताधारी दल) प्रयोग कर सकते है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि चुनाव निष्पक्ष हो इसलिए अनुच्छेद- 324 में संसद व प्रत्येक राज्य के विधानमंडल के लिए कराएँ जाने वाले सभी निर्वाचनों (राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति) के पदों के लिए निर्वाचनों, निर्वाचक-नामावली तैयार कराने और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का कार्य और शक्ति निर्वाचन आयोग को ही सौंपा गया है। इस संवैधानिक जिम्मेदारी को निभाने के लिए ही आयोग ने आदर्श आचार संहिता के विचार को एक पक्ष के रूप में जन्म दिया और उसे गंभीरता से लिया। साथ ही, इसे राजनीतिक दलों के पालन करने के लिए औपचारिक रूप से बाध्य कर दिया। इसलिए *रूडोल्फ एवं रूडोल्फ* (2001) आदर्श आचार संहिता को लागू करवाने को ही निर्वाचन आयोग कि सर्वाधिक स्पष्ट विजय के रूप में देखते है। वहीं उज्जवल कुमार सिंह (2004) इसे निर्वाचन आयोग की नियामककारी भूमिका को निभाने के माध्यम के रूप में देखते है।

अतः इस स्थिति में कुछ रूचिपूर्ण प्रश्न आदर्श आचार संहिता के सन्दर्भ में उठने लगते है परन्तु उन सभी प्रश्नों से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वर्त्तमान में चुनाव में हो रहे विविध भ्रष्टाचार - नैतिक और कानूनी, से निपटने में निर्वाचन आयोग ने जिस सक्रियता से भूमिका का निर्वाह किया है, उसमे आदर्श आचार संहिता का कितना योगदान है? इस शोध पत्र में इन्ही दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित किया जायेगा।

आदर्श आचार संहिता

सामान्यतः आदर्श आचार संहिता को चुनाव के सम्बन्ध मे अधिकारिक परामर्शो, निर्देशों का समुच्चय माना जाता है, जो चुनाव में भाग ले रहे अभ्यार्थी व राजनीतिक दलों को मानना होता है। जिससे चुनाव स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से करवाया जा सके। भारतीय निर्वाचन आयोग आदर्श आचार संहिता को इस रूप में परिभाषित करता हैः–

परामर्श रूप में आदर्श आचार संहिता राजनीतिक दलों व चुनावी अभ्यर्थियों के लिए नियमों का समुच्चय है जो राजनीतिक दलों की सर्वसम्मति के साथ विकसित किए जाते हैं, राजनीतिक दल इन सहमतिपूर्ण नियमों की संहिता को मानने हेतु इसका सम्मान करने तथा इन्हें अपनाने हेतु बाध्य होते हैं।[3]

आदर्श आचार संहिता सभी राजनीतिक दलों पर समान रूप से लागू होती है, जिससे सम्पूर्ण चुनावी प्रक्रिया खासकर चुनाव प्रचार सुस्वस्थ, भयमुक्त व शांतिमय रहें। साथ ही इसके माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि संघर्ष व विवाद चुनावी व्यवस्था से दूर रहे।

इस संहिता का मुख्य उद्देश्य यह है कि सत्ताधारी दल (केंद्र या राज्य सरकार) कहीं भी, अपनी औपचारिक सत्ता का दुरुपयोग न कर सके और चुनाव में अपने पक्ष में अनुचित लाभ न प्राप्त कर सके।[4] हालांकि आदर्श आचार संहिता का कोई कानूनी आधार व स्थिति नहीं है अर्थात् इसका कोई सांविधिक आधार न होकर सिर्फ प्रत्ययी प्रभाव होता है। यद्यपि सांविधिक आधारहीनता निर्वाचन आयोग को इसे लागू करने से नहीं रोक पाती क्योंकि उसे अनुच्छेद 324 में इसे लागू करवाने की शक्ति अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त है और यदि कोई इस आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन करता है तो उस पर उचित साधनों द्वारा कार्यवाही का अधिकार निर्वाचन आयोग को है।

अब प्रश्न यह हैं कि इस आदर्श आचार संहिता में किस प्रकार का आचरण शामिल है और किन कार्यों को करने की निर्वाचन आयोग मनाही करता है? निर्वाचन आयोग द्वारा समय समय पर प्रकाशित "राजनीतिक दलों और अभ्यार्थियों के मार्गदर्शन के लिए आदर्श आचरण संहिता" इस प्रश्न का उत्तर देती है। जैसेः – 2007 में प्रकाशित व 2009 और 2014 के लोकसभा चुनावों में भी लागू आदर्श आचार संहिता को मूलतः सात भागों में बाँटा गया – साधारण आचरण, सभाएँ, जुलूस, मतदान दिवस, मतदान केंद्र, प्रेक्षक तथा सत्ताधारी दल। हर भाग में कुछ निर्देश दिए गए हैं। उदाहरणस्वरूप साधारण आचरण में वोट बैंक के लिए जाति, धर्म, भाषा द्वारा घृणा की भावना न भड़काना, विपक्षियों की आलोचना के समय नीतियों, कार्यक्रम की आलोचना करना व व्यक्तिगत पहलुओं की आलोचना न करना। भ्रष्ट आचरण, रिश्वत, मतदाताओं को डराना-धमकाना व लुभाना अपराध है। सभाओं के संदर्भ में

सभा का स्थान, समय दिनांक पहले ही सूचना दी जाएँ, लाउडस्पीकर के प्रयोग हेतु आज्ञा ली जाए आदि। मतदान दिवस पर सभी दल शांति बनाकर रखे, मतदाताओं को परेशान न करें बल्कि उन्हे स्वतंत्र छोड़े, शराब या अन्य लुभावनकारी वस्तु चुनाव से 48 घंटे पहले वितरित व पेश न करें, प्रचार सामग्री उस दिन प्रदर्शित न की जाएँ। सत्ताधारी दल चुनाव में अपने चुनावी प्रचार हेतु सरकारी पद व मशीनरी का दुरुपयोग न करें, कोई वित्तीय मंजूरी या वादे की घोषणा आदि न हो, इत्यादि।

यह सभी निर्देश व परामर्श अपने आप में आदर्श- उच्च नैतिकता से भरे हुए है। इसलिए इसे 'चुनावी नैतिकता के नियम' अथवा नैतिक आचार संहिता भी कहा जाता है। यदि इन सभी बिन्दुओं को मद्देनज़र रखते हुए चुनाव में राजनीतिक दल व इच्छुक उम्मीदवार आचरण करें तो चुनाव लगभग पवित्र होने की स्थिति की ओर बढ़ते जायेंगे। परंतु व्यावहारिकता में ऐसा हो नहीं रहा है, लगभग हर चुनाव में आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन होता दिखना सामान्य सी घटना है।

यदि 1990 के वर्ष को आधार वर्ष माने और इससे पूर्व और पश्चात् के चुनावी भ्रष्टाचार का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि 1970-80 के आते-आते अत्यधिक मात्रा में चुनावी भ्रष्टाचार बढ़ता गया। धन, बल की भूमिका चुनाव में बढ़ती जा रही थी, आदर्श आचार संहिता को राजनीतिक दल, उम्मीदवार गंभीरता से नहीं ले रहे थे। इस परिस्थिति से निपटने के लिए वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली सरकार ने चुनाव सुधारों पर दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता वाली एक समिति का गठन किया। इसने आदर्श आचार संहिता की कमजोरी को मानते हुए सुझाव दिया कि संहिता को संविधिक संरक्षण प्रदान किया जाए, उसे कानूनी रूप प्रदान किया जाएँ, जो अभी तक उसे नहीं था। परंतु जैसे ही यह कार्य हो पाता वी.पी. सिंह की सरकार गिर गयी और इसको कानूनी आधार नहीं मिल पाया। वहीँ 1990 से पहले की स्थिति की तुलना में वर्तमान में स्थिति इस संदर्भ में काफी सुधरी हैं, निर्वाचन आयोग ने सख्ती से लागू करवाने का पूरा प्रयास किया हैं। यदि इस संहिता को कानूनी या संवैधानिक रूप दे दिया जाए तो निर्वाचन आयोग काफी सक्रिय व प्रभावी रूप से इसको क्रियान्वित कर पायेगा।

चुनावी भ्रष्टाचार, निर्वाचन आयोग की सक्रियता में आदर्श आचार संहिता का योगदान

वर्तमान में निर्वाचन आयोग की भूमिका भारतीय राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण व सक्रिय हो गयी है। अपनी संवैधानिक भूमिका को प्राथमिक रूप से सदैव चुनाव आयोग ने निभाया है। परंतु बहु-दलीय गठबंधनीय राजनीति के काल में तथा एक दलीय प्रभुत्व के काल के खात्मे होने तक जैसा कि ए.के. रॉय कहते है कि

आयोग को चुनाव की औपचारिकताओं को पूरा करने वाले प्रशासन-तंत्र के रूप

में देखा जाता था। सामान्यतः किसी को भी चुनाव आयोग के आयुक्तों का नाम नहीं पता होता था, न ही कोई इस संस्थान को महत्व व इसकी गतिविधियों पर ध्यान भी नहीं देता था। टी. एन. शेषन के निर्वाचन आयोग का मुख्य आयुक्त बनने से परिस्थितियों में काफी परिवर्तन आया।[6]

शेषन ने अपने काल में वह सभी कार्य किये, जो उससे पूर्व के चुनाव आयुक्तों ने करने का साहस कभी नहीं किया। शेषन के व्यक्तित्व ने तत्कालीन परिस्थितियों में 'सोने पर सुहागे' का कार्य किया। वह समय एक दलीय प्रभुत्व के अंत, न्यायिक सक्रियता की शुरुआत, राष्ट्रपतीय सक्रियता की शुरुआत, क्षेत्रीय दलों के उभर, सामाजिक जागरूकता की शुरुआत तथा अस्मिता की राजनीति के उदय का काल था, वही दूसरी ओर प्रधानमंत्री व उसके मंत्रिमंडल की शक्तियाँ क्षीण हो रही थीं। उसी समय शेषन ने अपनी शक्तियों का अभूतपूर्व रूप से प्रयोग करना शुरू किया। कई वर्षो से जमी राजनीतिक गंदगी को साफ़ करने की उन्होंने कोशिश की, हालांकि वह उस उद्देश्य को पूरी तरह नहीं प्राप्त नहीं कर पाये परंतु उनके प्रयासों से ही कुछेक महत्वपूर्ण पहलू, सार्वजानिक बहसों का केंद्र बन गये। राजनीति का अपराधीकरण तथा राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र ऐसे ही मुद्दे थे। शेषन के समय में निर्वाचन आयोग ने अपनी अधिकतम स्वायत्तता का प्रयोग किया, जो उसे सीधे संविधान से मिल रहीं थीं।

स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव करवाना संविधान की मूल संरचना का भाग है, जैसाकि न्यायपालिका ने समय-समय पर व्याख्ति किया है। चुनावों को स्वतंत्र व निष्पक्ष करने हेतु भारतीय निर्वाचन आयोग एक आदर्श आचार संहिता सभी दलों व अभ्यार्थियों के सामने रखता है, जो इनके चुनावी व्यवहार को निर्देशित करती है।

यह आदर्श आचार संहिता निर्वाचन आयोग की स्वविवेकीय शक्ति है, गठबंधनीय सरकारों के युग से इस आदर्श आचार संहिता को निर्वाचन आयोग एक "टूल ऑफ़ एक्शन" के रूप में प्रयोग कर रहा है। यहीं वह तत्त्व है, जो निर्वाचन आयोग के सक्रिय व सशक्त होने की तलवार व ढाल दोनों बन गया है। 1970 से राष्ट्रीय स्तर पर अस्तित्वमान संहिता 1991 के बाद विभिन्न मुख्य चुनाव आयुक्तों व अन्य चुनाव आयुक्तों द्वारा गंभीरता व सख्ती से लागू करवाई गई हैं। इसके उल्लंघन होने की स्थिति में राजनीतिक दलों व चुनावी अभ्यार्थियों पर उचित कार्यवाहियाँ भी कई मामलों में हुई हैं। वहीं विवाद होने की परिस्थिति में अपने कार्यों व क्रियाओ को न्यायसंगत ठहराने हेतु भी आदर्श आचार संहिता का ही प्रयोग किया गया है, जिससे ही संस्थान को सुरक्षित किया गया है। इसे स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव की 'लक्ष्मण रेखा' के रूप में प्रयोग किया जाता रहा हैं जो अनुल्लंघनीय है और इसका उल्लंघनकर्ता दंड का पात्र होता है। राजनीतिक दल भी इसे नैतिक रूप से मानने से बंधे रहते हैं क्योंकि उन्ही के सहमति से आदर्श आचार संहिता का निर्माण व क्रियान्वयन

निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है।

डा. रेखा सक्सेना इस पर अपनी राय इस रूप में रखती हैं कि:

- *शेषन निर्वाचन आयोग के पहले पदधारी थे, जिन्होंने उन संवैधानिक शक्तियों व स्वायत्तता का प्रयोग करने का प्रयास किया, जो आयोग को संविधान से मिल रही थीं। वह सिर्फ यंत्रवत नहीं थे, जो सिर्फ सरकार व राजनीतिक दलों के साथ मिलकर चुनावी संहिता को विकसित करने हेतु संयुक्त सभाएँ करें बल्कि उन्होंने केंद्रीय कार्यपालिका तथा राज्य सरकारों द्वारा चुनाव का समय निर्धारित होने से सम्बंधित निर्णयों से अलग स्वतंत्रता को प्रदर्शित किया। उनका स्वयं मानना था कि चुनावों का उचित समयानुसार निर्धारण संविधान द्वारा तय है। शेषन राजनीतिक दलों के संविधान भी पढ़ते थे तथा यह जोर देते थे कि उन दलों को स्वयं आंतरिक चुनावों (अर्थात् राजनीतिक दलों का आंतरिक लोकतंत्र) को करवाना चाहिए।*[6]

सभी इस पर सहमत है कि शेषन के आगमन के पश्चात् निर्वाचन आयोग की कार्यप्रणाली में आधारभूत परिवर्तन आएं है। इसकी भूमिका में सकारात्मक व सक्रिय परिवर्तन हुए है। संघवादी गठ्बंधनीय सरकारों के युग में यह ज्यादा दृढ़ हो गया है। रेखा सक्सेना की तरह ही मंजरी काटजू (2006) का कहना है कि निर्वाचन आयोग भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का चौथी महत्वपूर्ण संस्था बन रही है तथा भारत में लोकतान्त्रिक उदय के मनोभाव को समझ रहा है, वर्तमान में इन उभर रहीं लोकतान्त्रिक आशाओं (नए क्षेत्रीय राजनीतिक दल) को नियमानुसार तरीके से कार्य करवाना, भविष्य के लोकतान्त्रिक नियमों के संस्थानीकरण तथा लोकतंत्र की कार्यप्रणाली के लिए महत्वपूर्ण है।[7] *रूडोल्फ एवं रूडोल्फ* (2001, 2002) भी कमोबेश इसी तरह कहते है कि भारतीय राज्य के नये नियामककारी केन्द्रवादिता के हृदय में निर्वाचन आयोग की केंद्रीय भूमिका है।

शेषन ने आदर्श आचार संहिता का प्रयोग एक विजेता के रूप में किया। शेषन ने आचारसंहिता को तोड़ने पर दंड देने हेतु निर्वाचन आयोग की महत्वपूर्ण चुनाव का कार्यक्रम तय करने की शक्ति का प्रयोग किया। इसी शक्ति के द्वारा चुनाव रद्द करने की शक्ति भी निर्वाचन आयोग ने प्राप्त की। चुनाव आयोग की यह शक्ति नई शक्ति नहीं थी परंतु शेषन ने इसे अपारम्परिक व सक्रिय रूप से इसे प्रयोग किया।[8] शेषन ने अजनाला (पंजाब) उप-चुनावों को आदर्श आचार संहिता के हनन के कारण रद्द कर दिया। ऐसा ही हरियाणा के कालका क्षेत्र में 1993 में कांग्रेस द्वारा आदर्श आचार संहिता के हनन पर चुनाव स्थगित घोषित कर दिया गया। 1994 में प्रधानमंत्री को दो मंत्रियों को हटाने का सुझाव पत्र दिया। केंद्रीय कल्याण मंत्री सीता राम केसरी ने अल्पसंख्यकों को आरक्षण देने के बारे में और कर्नाटक व आँध्रप्रदेश के लिए चीनी का मासिक कोटा बढ़ाये जाने पर खाद्य राज्यमंत्री कल्पनाथ राय की खिंचाई भी की।

उनका चुनाव-प्रचार भी रोक दिया गया। चुनावी गतिविधियों पर दृष्टि बनाये रखने के लिए पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए। जैसाकि मंजरी काटजू (2006) तर्क देती हैं कि

निर्वाचन आयोग इस स्थिति में आ गया है जिसमें उसे सिर्फ चुनाव प्रकिया के निरीक्षण पर ही ध्यान नहीं देना बल्कि उसे भारतीय संसदीय लोकतंत्र की कार्यप्रणाली को बचाने हेतु अनेक अन्य कार्य करने पड़ते है, जिन्हें यदि नज़रअंदाज किया गया तो वह लोकतान्त्रिक कार्यप्रणाली को नुकसान पंहुचा सकते हैं। [9]

शेषन ने लोकतान्त्रिक कार्यप्रणाली के महत्वपूर्ण अंग चुनावो को स्वतंत्र व निष्पक्ष ढंग से करवाने हेतु अनेक कार्यों को भी किया। चुनावी कुप्रचलन का प्रयोग करने वाले नेताओं पर आदर्श आचार संहिता के माध्यम से उन्हें रोकने की कोशिश की। इसका प्रभाव भी हुआ क्योंकि आचारसंहिता से राजनीतिज्ञों के समूह भयभीत होने लगें। शेषन ने आदर्श आचारसंहिता को सार्वजानिक क्षेत्र में खूब प्रचारित किया। आम जन की भाषा में यह पद प्रचलित हो गया तथा राजनीतिक दलों पर इसका प्रभाव दिखने लगा, वह इसे आंतरिक रूप में अपनाने भी लगे और जो इसका उल्लंघन करता था, उसे सार्वजानिक आलोचना व सजा का पात्र भी अब बनना पड़ता था। शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे भी उनमे से ही एक थे, जिन्हें चुनाव आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत अधिसूचना जारी कर ठाकरे को 11 दिसम्बर 1995 से छह वर्ष अर्थात 10 दिसम्बर 2001 तक राजनीतिक रूप से अयोग्य घोषित कर दिया। इस कार्यवाही से वह चुनाव में उम्मीदवार तो क्या किसी भी चुनाव में अपने मताधिकार का भी प्रयोग करने से भी वंचित हो गए।

उपरोक्त उदाहरण से सभी राजनीतिक दलों की आँखें खुली रह गयीं तथा वह समझ गए कि अब भड़काऊ भाषण देकर भावनाएँ भड़काने, आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन से स्वयं वह खतरे में पड़ जायेंगे। इस उदाहरण की तरह ही भारतीय जनता पार्टी पर हिंदुत्व तथा राममंदिर मुद्दे पर भी निर्वाचन आयोग द्वारा धार्मिक भावनाएँ भड़काने के कारण आदर्श आचारसंहिता के उल्लंघन का आरोप भी शेषन ने लगाया।

यह शेषन का साहस ही था कि वह आदर्श आचारसंहिता के माध्यम से चुनावी भाषणों को नियंत्रित तथा साफ़-सुथरा बनाने की कोशिश कर रहे थे। हालांकि लालकृष्ण आडवानी ने यह स्पष्ट कर दिया कि राममंदिर मुद्दे को आदर्श आचारसंहिता का उल्लंघन नहीं माना जा सकता क्योंकि यह किसी धार्मिक विश्वासों या समुदाय के सीधे खिलाफ़ नहीं है। परन्तु फिर भी आदर्श आचारसंहिता को लेकर परिस्थितियाँ तेजी से परिवर्तित होती जा रहीं थीं। चुनाव की घोषणा से लागू होने वाली आदर्श आचार संहिता के समय एक नए रूप में व्यावहारिक अनुशासनात्मकता को आगे बढ़ा रहा था। भले ही यह आंतरिक रूप से थोपे गए थे अथवा बाहरी नियमों द्वारा, परंतु

यहीं आदर्श आचारसंहिता का मूल तत्व था।[10]

निर्वाचन आयोग द्वारा आदर्श आचारसंहिता को सक्रियता से लागू करवाने को लेकर विभिन्न सरकारों ने प्रतिरोध भी दर्ज कराया। जैसे पंजाब सरकार ने 1997 में निर्वाचन आयोग द्वारा आदर्श संहिता व अन्य निर्देशों के खिलाफ़ तर्क दिया कि निर्वाचन आयोग को ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि वह राज्य सरकार द्वारा चुनावी प्रकिया से पहले शुरू की गई कार्यक्रमों व नीतियों में हस्तक्षेप करे। परंतु उच्च न्यायालय ने अस्तित्वमान सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति *एन. पी. पुन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग ऑफिसर वाद, 1952* तथा *घासीराम बनाम डालसिंह वाद, 1968* के निर्णयों को ही सामने रखा, जिसमें यह स्पष्टतः कहा गया था कि निर्वाचन आयोग हकदार हैं कि वह स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव करवाने हेतु चुनाव के दिन की घोषणा से जरुरी कार्यों पर निर्देश दें।[11]

निर्वाचन आयोग ने आदर्श आचार संहिता को लागू कराने हेतु अपनी उस स्वविवेकीय शक्ति का हरसंभव प्रयोग किया, जिसमें आयोग को चुनाव चिन्ह आबंटित व आरक्षित करने का आदेश देने की शक्ति है। इसमें वह किसी भी पंजीकृत राजनीतिक दल को आदर्श आचार संहिता या आयोग द्वारा जारी कानूनी निर्देशों को न मानने पर मान्यता छीनने या मान्यता प्रतिबंधित करने की शक्ति है। शेषन के उत्तराधिकारियों ने भी इस शक्ति का कई बार प्रयोग किया। जैसे 1996 में निर्वाचन आयोग ने नागालैंड विधानसभा चुनाव में नागालैंड पीपल्स काउंसिल को चुनाव के बहि कार करने के कारण दण्डित किया गया क्योंकि आयोग के अनुसार इससे इसका कारण मतदाताओं को राजनीतिक विकल्प की अनुपलब्धता होगी जो लोकतंत्र के लिए सही नहीं है। इस दल को आयोग ने अमान्य घोषित किया गया जो, काफी बड़ी सजा थी। ऐसा ही कुछ निर्वाचन आयोग ने तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को भी फटकारा था क्योंकि उन्होंने एम.डी.एम.के. दल पर आतंकवाद निरोधक कानून (पोटा) के तहत प्रतिबंध लगाने की घोषणा की थी क्योंकि वह लिट्टे (प्रतिबंधित संगठन) का समर्थन कर रहे थे।[12]

शेषन के पश्चात् निर्वाचन आयुक्त बने व्यक्तियों ने भी शेषन की ही परंपरा को आगे बढ़ाया। मोहिंदर सिंह गिल ने भी कई साहसी निर्णय लिये। लिंग्दोह ने भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। आदर्श आचार संहिता का प्रयोग निर्वाचन आयोग के कार्यों के लिए तलवार व ढाल- दोनों के रूप में आगे भी किया गया। जब कोई ऐसा दल जो निष्पक्ष व स्वतंत्र चुनाव में बाधा उत्पन्न कर रहा हो तब उसे दंडित करने हेतु तलवार के रूप में तथा स्वयं के कार्यों पर विवाद की स्थिति में आदर्श आचार संहिता को ढाल के रूप में सभी के सामने रख दिया जाता और स्वयं के कार्य को इसी के आधार पर न्यायसंगत ठहराया जाता।

राजनीतिक दल भी इस संहिता को नैतिक रूप से मानने से बंधे रहते हैं क्योंकि

उन्हीं के सहमति से आदर्श आचार संहिता का निर्माण व क्रियान्वयन निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। हालांकि वही व्यावहारिक राजनीति में उसका उल्लंघन भी करते हैं। परंतु अधिकतर दल उसे औपचारिक मंचों व पद्धति से पालन करने की कोशिश करते हैं। इसलिए वह एक दूसरे दलों व अभ्यार्थियों की चुनावी गतिविधियों पर नज़र रखते हैं और उसकी आदर्श आचार संहिता के हनन की प्रत्येक सूचना निर्वाचन आयोग को पहुँचाते हैं जिससे आयोग उन पर उचित कार्रवाई करे।

निर्वाचन आयोग के पास प्रशासनिक स्टॉफ की कमी के कारण सभी पर निगरानी रखना संभव नहीं हो पाता इसीलिए आदर्श आचार संहिता का लगभग सभी दलों द्वारा पालन किया जाता है। फिर भी निर्वाचन आयोग इस दिशा में अपने प्रयास करता रहता है जैसे 1996 के आम चुनावों की आचार संहिता के कारण दिल्ली किराया कानून लागू नहीं किया जा सका। 1998 में इसी कारण टाटा एयरलाइन्स को विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड की अनुमति रुक गयी। जनवरी 2000 में निर्वाचन आयोग ने बिहार सरकार को यह कहते हुए बजट पेश न करने के निर्देश दिए कि बजट पेश करना आदर्श आचारसंहिता का उल्लंघन है। आयोग के निर्देशानुसार ही राष्ट्रीय जनता दल सरकार राज्यपाल के सत्रीय अभिभाषण में प्रमुख कल्याणकारी लोकलुभावनकारी घोषणाएँ नहीं करने पर सहमत हुई। 13वीं लोकसभा चुनाव (1999) में निर्वाचन आयोग की भूमिका के संदर्भ में इंडिया टुडे ने लिखा कि "इस आयोग ने अपने रोज रोज के निर्देशों और आदेशों से 13वीं लोकसभा के बेजान लोकसभा चुनावों में जान डाल दी। नई दूरसंचार नीति के खिलाफ़ आदेश देने से लेकर, इलेक्ट्रोनिक मीडिया पर विज्ञापन देने से रोक लगाना हो या कारगिल पर चुनावी बहस को लेकर नाक भोहं सिकोड़ना या फिर चुनाव प्रचार के समय पर प्रतिबंध लगाना, निर्वाचन आयोग निष्पक्ष चुनाव कराने के अपने अभियान में नए नए प्रतिमान खड़ा करने के लिए एकदम मुस्तैद है।[13]

निर्वाचन आयोग की बदलती भूमिंका पर मोहिन्दर सिंह गिल ने कहा कि "निर्वाचन आयोग को सख्त होना ही पड़ेगा क्योंकि क्षेत्रीय, धार्मिक और जातिगत मुद्दे ज्यादा कठिन और शक्तिशाली हो गए है, इसीलिए इन्हें रोकना जरुरी है।" यह कार्य (ऐसे मुद्दों से निपटकर स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव कराने का कार्य) चुनाव आयोग ने आदर्श आचार संहिता के नाम पर ही किए। इसके उदाहरण भी है जैसे – 2002 गुजरात दंगों में बाद विश्व हिन्दू परिषद् यात्रा को निर्वाचन आयोग ने रोक दिया और इसके पीछे आदर्श आचार संहिता का उल्लंघन हो जाने को ही कारण बताया गया।

2006 में चेन्नई पुलिस कमिश्नर को चुनाव आयोग के आदेश से स्थानांतरित कर दिया गया क्योंकि वह आचार संहिता लागू होने की स्थिति में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री को फायदा पंहुचा रहे थे।[14] अन्य पिछड़े वर्ग के आरक्षण हेतु घोषणा भी मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह को आचारसंहिता के हनन का नोटिस दिया गया।

2008 के बिहार चुनाव में के.जे. राव ने कड़ी निगरानी की। जनता दल (यूनाइटिड) के नेता शरद यादव व नीतीश कुमार के खिलाफ आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन पर प्राथमिकी दर्ज की।

आयोग ने आदर्श आचार संहिता के क्रियान्वयन हेतु अत्याधुनिक तकनीकों का भी प्रयोग किया है। आदर्श आचार संहिता की निगरानी हेतु अब कई माध्यमों का प्रयोग किया जाता है, वीडियो कैमरा, सभी सभाओं की वीडियोग्राफी आदि जैसे कार्य भी किये जाने लगे है। निर्वाचन आयोग की संपूर्ण शक्ति मूलतः आदर्श आचार संहिता में निहित है, जिसे वह लगातार न्यायपालिका के सहयोग से भी लगातार मज़बूत कर रहा है। इससे वह स्वयं की स्थिति मज़बूत करता है, चुनावी भ्रष्टाचार से निपट सकें और अपने सवैधानिक दायित्वों को पूरा कर सकें।

आदर्श आचार संहिता और निर्वाचन आयोग की अपनी भूमिका का ही यह परिणाम है कि 2007 में हुए उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में पहली बार ऐसा हुआ, जब हिंसा और बूथकैप्चरिंग के आधार पर कोई पुनर्मतदान नहीं करना पड़ा। बिहार में हुए और उत्तर प्रदेश में हुए 2012 के चुनाव भी इसी का क्रमबद्ध विस्तार है। जहाँ छिटपुट घटनाओं के इतर चुनाव स्वतंत्र रूप से हुए। 2009 में वरुण गाँधी 2010 व भारतीय जनता पार्टी द्वारा धार्मिक भावनाएँ भड़काने के आरोप को निर्वाचन आयोग ने अत्यंत गंभीरता से लिया। 2007 के गुजरात विधानसभा में नरेन्द्र मोदी व सोनिया गाँधी को आदर्श आचारसंहिता के हनन का जिम्मेदार माना तथा जवाब तलब किया। 2013-14 में नरेन्द्र मोदी द्वारा कांग्रेस के चुनाव चिन्ह को 'खूनी पंजा' कहा जाने के बाद भी ऐसी ही स्थिति सामने आयी। 2013 में दिल्ली समेत पाँच राज्यों के चुनावों, 2014 के लोकसभा, दिल्ली विधानसभा, बिहार विधानसभा चुनावों में भी आदर्श आचार संहिता के क्रियान्वयन से निर्वाचन आयोग ने अच्छा कार्य किया और इसके कोई बड़े उल्लंघन की आवाज नहीं सुनाई दी।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि निर्वाचन आयोग ने आदर्श आचार संहिता के कारण "वैचारिक लोकपाल" का स्थान ले लिया है, जिसमे सभी राजनीतिक दल व चुनाव में भाग लेने वाले अभ्यार्थी को उसके विचार से ही कार्य करना पड़ता है। अतः निर्वाचन आयोग की भूमिका को सशक्त करने और चुनावी भ्रष्टाचार को कम करने में आदर्श आचार संहिता ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हमें निर्वाचन आयोग की भूमिका में जो परिवर्तन देखने को मिलता है वह आदर्श आचार संहिता के कारण ही हुआ है, इसे अच्छे तरह से प्रयोग से ही निर्वाचन आयोग ने स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव करवाने के कार्य को निभा पाया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णित स्थिति से यह स्पष्ट है कि निर्वाचन आयोग ने आदर्श आचार

संहिता का निष्पक्ष व स्वतंत्र चुनाव करवाने हेतु व्यापक प्रयोग किया है। निर्वाचन आयोग का कार्य पहले की अपेक्षा काफी कठिन हो गया है। अतः अपने अद्वितीय हथियार का चुनाव आयोग ने प्रयोग भी किया है तो वहीं स्थिति बिगड़ने पर उसे अपनी ढाल के रूप में भी इस्तेमाल किया है। चुनावी भ्रष्टाचार की व्यापकता के बीच में आज निर्वाचन आयोग की भूमिका चुनावी प्रतियोगिता के काल में निर्णायककर्त्ता जैसी हो गयीं है, जो राजनीतिक विवादों तथा राजनीतिक-चुनावी अधिकारों की रक्षा के बीच में मध्यस्थ की भूमिका निभाते है। इस भूमिका को निभाते हुए वह सभी को लक्ष्मण रेखा में रखने हेतु आदर्श आचार संहिता को एक सशक्त व अनिवार्य टूल के रूप में प्रयोग करता है। 1995 के बाद से लगभग 95 प्रतिशत तक आदर्श संहिता का पालन सभी राजनीतिक दलों ने किया है, जैसाकि पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त नवीन चावला ने भी कहा है।[15]

फिर भी सच्चाई को देखा जाए तो आदर्श आचार संहिता के संदर्भ में सकारात्मक परिवर्तन आया है परंतु सांविधिक आधार की कमी के कारण यह उस तरह का हथियार नहीं बन पाया है जिससे सभी डरे और भयभीत होकर उसका पालन करें क्योंकि नैतिक सम्मान के कारण को अलग रखकर ही तो वह कई बार इसका उल्लंघन करते दिखाई देते हैं। लोकतंत्र के लोकतांत्रीकरण हेतु निर्वाचन आयोग को यह शक्ति प्रदान करना अत्यंत आवश्यक हैं। अनुच्छेद 324 में संशोधन करके आदर्श आचार संहिता को यदि संवैधानिक बना दिया जाए तो गन्दी राजनीतिक हवा साफ़ होने में ज्यादा मदद मिलेगी। अन्यथा चुनाव उसी राजनीतिक गंदगी को समाये रहेगे, जिसे आदर्श आचार संहिता खत्म करना चाहती है। प्रदूषित राजनीतिक हवा को साफ़ व स्वच्छ करने का एक ही तरीका है कि आदर्श आचार संहिता के पालन कर प्रत्येक दल उसे साफ़ करे तथा निर्वाचन आयोग उन्हें इस कार्य में निरीक्षित करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Bath, Nani (2006) *Role of the Election Commission of India in Strengthening Democracy in India*, paper presented at XX IPSA World Congress of Political Science, Fukuoka. Available at: http/paperroom.ipsa.org/papers/paper_5194.pdf.
2. Dasgupta, Swapan (1996) Theme Songs of 1996, *The Hindu*, 20 April 1996.
3. Dhawan, Rajeev (1996) Whither Indian Democracy? *The Hindu*, 26 April 1996.
4. Election Commission of India (2007), *Model Code of Conduct for the Guidance of Political Parties and Candidates*, Nirvachan Sadan, New Delhi, p.7
5. Gilmartin, David (2009) Óne Day's Sultan'': T.N. Seshan and the Reform of the Election Commission in the 1990's, Available at: http/Indian democracy08, Berkeley. Edu/docs/gilmartin_One Days Sultan.pdf.
6. I.D. Systems (India) Pvt. Ltd. vs. Chief Election Commissioner AIR 2006 Ker. 229

7. Katju, Manjari (2006) The Election Commission and Functioning of Democracy, *Economic and Political Weekly*, April 29, pp.1635-1640.
8. Katju, Manjari (2009) Election Commission and Changing Contours of Politics, *Economic and Political Weekly*, April 18, vol. xliv no. 16, pp.8-12.
9. Roy, A.K. (1999), Role of Election Commission in Ensuring Fair Polls, *Economic and Political Weekly*, September 11, 2633-34.
10. Rudolph, Lloyd I. and Susanne H. Rudolph (1987), *In Pursuit Of Lakshmi: The Political Economy of the Indian State*, Chicago University Press, Chicago.
11. Rudolph, Lloyd I. and Susanne H. Rudolph(2001), Redoing The Constitutional Design: From an Interventionist to a Regulatory State in Atil Kohli (ed.) *The Success of India's Democracy*, Cambridge University Press, Cambridge.
12. Rudolph, Lloyd I. and Susanne H. Rudolph (2002), New Dimension of Indian Democracy, *Journal of Democracy*, 13(1), pp. 52-66.
13. Saxena, Rekha (2012) The Election Commission and Indian Federalism, *Think India Quarterly*.
14. Singh, Ujjwal Kumar (2004) Institutions and Democratic Governance: A Study of The Election Commission and Electoral Governance in India, *NMML Monograph 9*, Nehru Memorial Museum and Library, pp. 3-4.
15. The Constitution of India.
16. इंडिया टुडे, सितम्बर 8,1999, पृ. 26-27

Television news/interviews

1. Naveen Chawla Views on Elections on IBN7, February 27, 2014, 08:20 PM.

सन्दर्भ

[1] Rekha Saxena, The Election Commission and Indian Federalism, in Think India Quarterly.

The Constitution of India. *Article 324*.

[3] Election Commission of India (2007), Model Code of Conduct for the Guidance of Political Parties and Candidates, Nirvachan Sadan, New Delhi, p.7

[4] Dr. Nani Bath, Role of the Election Commission of India in Strengthening Democracy in India. Retrieved from http/paperroom.ipsa.org/papers/paper_5194.pdf. Accessed on 13 February, 2013

[5] A.K. Roy, Role of Election Commission in Ensuring Fair Polls, Economic and Political Weekly, September 11, 1999, 2633-34.

[6] Rekha Saxena, Op.Cit., pp. 204

[7]Manjari Katju, The Election Commission and Functioning of Democracy, Economic and Political Weekly, April 29, 2006., p.1635-1640.

[8] David Gilmartin, Óne Day's Sultan'': T.N. Seshan and the Reform of the Election Commission in the 1990's, Available at: http/Indian democracy08, Berkeley. Edu/docs/gilmartin_One Days Sultan.pdf.p.7.

[9]Manjari Katju, Op.Cit.

[10] David Gilmartin, Op.Cit., pp. 17

[11]Ujjwal Kumar Singh, Institutions and Democratic Governance: A Study of The Election Commission and Electoral Governance in India, NMML Monograph 9, Nehru Memorial Museum and Library, 2004, pp. 3-4.

[12] Ibid.

[13] इंडिया टुडे, सितम्बर 8,1999, पृ. 26-27

[14] Dr. Nani Bath, Op. Cit. pp.12.

[15] Naveen Chawla Views on Elections on IBN7, 26/02/2014, 08:20 PM.

सुशासन : भागीदारी मॉडल के विशेष संदर्भ में

पंकज कुमार झा एवं प्रवीण कुमार झा

यह लेख शासन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए हाल के दशक में विकसित एक मॉडल के रूप में भागीदारी को विस्तार से विश्लेषित करने की कोशिश करता है। साथ-साथ इसके होने वाले सामाजिक-प्रशासनिक परिवर्तन को वैश्विक रूप से भागीदारी संबंधी मॉडलों के रूप में उल्लेखित करता है। बहरहाल शहरी गर्वनेंस की संकल्पना को समझने के लिये सर्वप्रथम गर्वनेंस व गुड गर्वनेंस की संकल्पना को समझना होगा।

गर्वनेंस की संकल्पना

गर्वनेंस की संकल्पना समाज में शासन, सत्ता व व्यवस्था के बदलते संदर्भ की ओर इंगित करता है। इसके अंतर्गत राज्य, सिविल सोसाइटी और बाज़ार एक साथ मिलकर नागरिकों को सुविधा मुहैया कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं। गर्वनेंस की संकल्पना को परिभाषित करते हुए कुइमन जैसे विद्वान का मानना है कि – 'अनेक देशों में हाल के वर्षों में यह प्रवृत्ति देखने को मिल रही है कि सरकार और समाज के बीच एक संबंध संतुलन को सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभाव से मुक्त करके निज़ी क्षेत्र के प्रभाव में ढाला जा रहा है। आंशिक रूप से इसने निजीकरण तथा यदा-कदा विनियमन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। इसके साथ-ही-साथ सहभागिता, समाज कल्याण, पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा व भौतिक नियोजन जैसे क्षेत्रों में नई संभावनाओं को मूर्तरूप देने के लिये वैकल्पिक तरीका तलाशी जा रहा है'। बहरहाल इतना तो तय है कि उदारीकरण के बाद की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में गर्वमेंट के स्थान पर शासन की संकल्पना मजबूती से विकसित हुई है। आज सरकार का आशय ऐसी स्वायत्तशासी नेटवर्क से है जो जनता के प्रति जवाबदेह, प्रतिबद्ध हो व जनता की समूल भागीदारी सरकारी कार्यों में देखने को मिले। यही कारण है कि रोड्स जैसे विचारकों ने सरकार के अभाव में भी शासन (*गर्वनेंस विदाउट गर्वमेंट*) की बात की है।

बहरहाल जब भी शासन की बात होती है राष्ट्रीय सरकार का मुख्य उद्देश्य व गंतव्य स्थान सुशासन ही होता है। आज हिन्दुस्तान जैसे देश में सुशासन को एक मॉडल के रूप में काफी वरीयता दी जा रही है।

गुड गवर्नेंस या सुशासन

शासन व्यवस्था में जब भी सुचिता लाने, उसे व्यवस्थित व कार्यकुशल करने की मंशा होती है वैसी स्थिति में गर्वनेंस का आशय गुड गर्वनेंस यानि सुशासन से ही होता है। गौरतलब है कि सर्वप्रथम सुशासन की अवधारणा को वैश्विक पटल पर 1989 में उप-सहारा अफ्रीका के मामले में लाया गया। इसके अंतर्गत सुशासन को ठोस विकासात्मक प्रबंधन के रूप में परिभाषित करते हुए यह बताया गया कि इसके अंर्तगत शक्ति का प्रयोग देश की सामाजिक-आर्थिक संसाधनों के विकास के प्रबंधन के रूप में किया गया है (विश्व बैंक, 1992 : 2)। इस दस्तावेज़ में सुशासन की निम्न विशेषताओं का वर्णन किया गया हैः

(क) सार्वजनिक क्षेत्र प्रबंधन

(ख) जवाबदेही

(ग) विकास संबंधी कानूनी ढांचा

(घ) सूचना और पारदर्शिता

गौरतलब है कि कलांतर में इस संकल्पना में सहभागी विकास, मानव अधिकार और लोकतंत्रीकरण को भी जोड़ा गया।

हालांकि विश्व बैंक ने गर्वनेंस की संकल्पना को किसी राष्ट्र को दी जाने वाली ऋण प्रदान करने संबंधी कसौटी के रूप में भी देखा। इसे निम्न सारणी के द्वारा समझा जा सकता है।

lkj.kh 1-1

oxÊdj.k	'kklu dh fy;s mi;qDrk rRoksa dk vuqikr
1. कानूनी ढांचा	6%
2. भागीदारी	30%
3. राज्य का निजी उद्यम संबंधी सुधार	33%
4. आर्थिक प्रबंधन	49%
5. सक्षमता निर्माण	68%
6 लोकतंत्रीकरण	68%

स्रोत - विश्व बैंक (1994)xv

स्पष्ट है कि विश्व बैंक के उपरोक्त सारणी में भागीदारी एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में रही है तथा यह निर्देशित किया गया है कि अगर कोई देश भागीदारी अर्थात् सार्वजनिक- निजी भागीदारी को तब्बज़ो देता है तो उसे ऋण के मामले में विशेष तब्बज़ो दिया जायेगा।

शहरी शासन भागीदारी मॉडल के विशेष संदर्भ में

वैश्विक स्तर पर जनसंख्या में हो रही लगातार बढ़ोतरी के कारण ग्रामीण जनसंख्या आज शहरों की तरफ शिफ्ट हो रही है। 2007 में विश्व की कुल शहरी जनसंख्या करीब 3.3 बिलियन थी और ऐसा अनुमान है कि 2050 तक यह करीब 6. 4 बिलियन हो जायेगी (UNDESA 2008: 3)। जहाँ तक भारत का सवाल है यहाँ भी अगले 25 वर्षों में करीब 67 प्रतिशत जनसंख्या शहरी क्षेत्र में निवास करने लगेगी। अनुमान यह भी है कि 2001 में जहाँ शहरी जनसंख्या करीब 286 मिलियन थी वह 2026 में 534 मिलियन हो जायेगी अर्थात् इसमें करीब 38 प्रतिशत की बढ़ोतरी होगी।

lkj.kh 1-2
vkdfyr 'kgjh o Hkkjr dh dy tul[;k

o"k	2001	2011	2021	2026
शहरी जनसंख्या (मिलियन)	286.12	357.94	432.61	534.80
शहरी (%)	27.82	30.02	32.29	38.21

स्रोत- पोपुलेशन प्रोजेक्शन फॉर इंडिया, 2001-26, रेजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, 2006.

lkj.kh 1-3
2026 rd exk fl Vh

exk fl Vh	2001	2026
मुंबई	16.36	26.38
अहमदाबाद	4.51	7.73
पूणे	3.75	6.79
चेन्नई	6.42	10.12
बैंगलुरू	5.68	9.71
हैदराबाद	5.53	9.09
दिल्ली	12.79	22.49
कानपुर	2.69	4.60
जयपुर	2.32	4.29
कोलकाता	13.21	20.25
dy	**76-07**	**127-49**

स्रोतः सेंसस ऑफ इंडिया, ए वर्ल्ड सिटिज़, यूएन, हैबिट, 2008-09
मेगा सिटी - उन सिटी को मेगा सिटी कहा गया है जिसकी जनसंख्या चार मिलियन से अधिक है

मेगा सिटी से संबंधित उपरोक्त सारणीगत आंकड़ों से भी स्पष्ट है कि जिस रफ्तार से महानगरों की तरफ जनसंख्या का पलायन हो रहा है उससे आने वाले दिनों में आधारभूत संरचना के सामने और विकट समस्या आने वाली है। ऐसे में 74 वां संविधान संशोधन के उपरांत प्राप्त संवैधानिक दर्ज़ा प्राप्त शहरी प्रशासन भी शहरी गर्वनेंस में तब्दील हो चुका है। इस शहरी गर्वनेंस की अवधारणा में भागीदारी मॉडल का विशेष महत्व है। ऐसे में क्या यह मॉडल महत्वपूर्ण है जिससे महानगरीय जनसंख्या को उसके मूलभूत सुविधा मुहैया करायी जा सके? क्या इस दिशा में भागीदारी मॉडल को एक प्रयोग के रुप में जाँचा परखा जा सकता है?

भागीदारी मॉडल– एक प्रयोग

समकालीन समय में शहरी गर्नवेंस की चुनौतियों से निपटने के लिये भागीदारी मॉडल एक कारगर प्रयास के रूप में सामने आया है। दूसरे शब्दों में इसे सार्वजनिक-निजी भागीदारी यानि पब्लिक-प्राइवेट पार्टनशिप के रूप में भी जाना जाता है। इसमें एक तरफ जहाँ सरकारी निकाय होती है वहीं दूसरी तरफ *रेंसिडेंस वेलफेयर एसोसिएशन* जैसे सहभागी संस्था। इन दोनों के साझा प्रयास से बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे बुनियादी जरूरतों को ठोस तरीके से पूरा किया जाता है। गौरतलब है कि भागीदारी जैसे प्रयास परंपरागत स्थानीय स्वशासन संबंधी किये गये प्रयासों से थोड़ा भिन्न है। पहले यह धारणा थी कि सरकार जनता की सभी समस्याओं का समाधान करेगी या समाधान करने में सक्षम है। यह अपने आप में गर्वमेंट की अवधारणा को फलीभूत करता हुआ प्रतीत होता था। परंतु भागीदारी मॉडल ने गर्वनेंस की अवधारणा को बढ़ाते हुये सरकारी निर्भरता के स्थान पर जनता की सहभागिता को मजबूत किया है। भागीदारी मॉडल ने आम जनता को सक्रिय नागरिक यानि एक्टिव सिटिज़न के रूप में तब्दील कर दिया है। वह नागरिक जो अपने अधिकारों के प्रति आज बहुत जागरूक है, वह सभी क्रियाकलापों में अपनी समूल सहभागिता चाहता है, और सभी कार्यों में सरकार के साथ कदम दर कदम मिलाकर अपनी जवाबदेही भी तय करता है।

बहरहाल भागीदारी मॉडल के आने के बाद जहाँ एक तरफ नागरिकों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में बदलाव आया है वहीं दूसरी तरफ पूरा प्रशासनिक चाक-चौबंद भी बदला है। सारणी 1.4 में दिये गये भागीदारी संबंधी दस प्रमुख प्रयोग को देखने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि पूर्व तक बेवरवादी मानसिकता में जकड़ा हुआ नौकरशाही व अफसरशाही आज कितनी दिलचस्पी से शहरी आम लोगों को बेहतर सुविधा उपलब्ध कराने संबंधी प्रयास में लगा हुआ है। आज वह नियामक यानि रेगुलेटर से समन्वयक यानि फेसिलेटर की भूमिका में आ चुका है। दिल्ली सरकार द्वारा प्रारंम्भ की गई भागीदारी योजना का प्रभाव तो साफ देखा जा सकता है। प्रत्येक सरकारी योजनाओं में आर.डब्लू ए की सहभागिता, चाहे पार्क के

सौंदर्यकरण का मामला हो या पानी की सुलभता का सभी में आमूलचूल परिवर्तन आया। यही कारण है कि दिल्ली के भागीदारी कार्यक्रम को 2005 का यू.एन पब्लिक सर्विस पुरस्कार से भी नवाज़ा गया। दिल्ली में दिलशाद कॉलोनी आवासीय कल्याण संस्था ने जिस तरह से स्थानीय लोगों से पैसा इकट्ठा करके सीवर सिस्टम की परेशानी से जूझ रहे लोगों के लिये स्वयं सीवर बिछाने का काम किया वह अनोखा था। दिल्ली की भागीदारी योजना संस्थागत परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रुप में सामने दिखाई पड़ता है। इसी तरह अजेंटीना के रेफिला शहर में व्यापक सहभागिता व सभी नागरिक व सामाजिक कार्यकर्ताओं के बीच सहमति से पर्यावरण के प्रति सरोकार देखा जा सका। रेफिला में रहने वाले 80,000 से अधिक निवासी के लिये पर्यावरण प्रदूषण एक समस्या के रुप में थी। 135 से अधिक संस्थाओं के प्रयास से सबने पर्यावरणीय समस्या के प्रति ठोस कार्यवाही की। इससे जहाँ एक तरफ विकास के अवसरों को बल मिला वहीं साथ ही साथ ग्रीन पब्लिक स्पेस की भी व्यवस्था हुई। बढ़ते शहरीकरण ने नदी को प्रदूषित किया है, अस्पतालों व नगरपालिका स्कूलों की स्थिति दिनों दिन बिगड़ी है, ट्रैफिक के नियम कानून प्रभावित हुए हैं। इसी स्थिति से निजात पाने के लिये अहमदाबाद में शुरु किये की गई नवीन शहरी साझेदारी के प्रयास काफी चर्चित रहे। भागीदारी संबंधी प्रयास ने आम नागरिक को काफी सशक्त व विशिष्ट नागरिक में तब्दील कर दिया है। इसी संदर्भ में मुंबई स्थित प्रजा फाउंडेशन द्वारा लाया गया *सिटिजन चार्टर* का दस्तावेज़ काफी महत्वपूर्ण है। सिटिजन चार्टर एक सूचनाबद्ध उपकरण है जिसके माध्यम से लोक सेवाओं संबंधी प्रमाणिक सूचना प्राप्त की जा सकती है। ऐसे प्रयासों ने शहरी गर्वनेंस के आयामों को और विस्तृत करने का कार्य किया है।

शहरीकरण व भागीदारी जैसे प्रयासों ने एक तरफ तो मॉल कल्चर को बढ़ाने का कार्य किया है वहीं दूसरी तरफ झुग्गी झोंपड़ी के इलाकों में भी सफाई व सुधार संबंधी प्राथमिकता भी इसके अंतर्गत निहित है। इसका महत्वपूर्ण उदाहरण ढाका स्थित मेट्रोपोलिटन सिटी संबंधी स्लम सुधार प्रोजेक्ट है। गौरतलब है कि यहाँ की झुग्गी झोंपड़ी में करीब 12 प्रतिशत लोग रहते हैं। इसलिये यहाँ के लोगों के शुद्ध पेयजल, स्वच्छता व नाली इत्यादि की समस्या मौजूद थी। यह कार्यक्रम 1985 में शुरु की गई। इस स्लम सुधार प्रोजेक्ट के अंतर्गत सहभागी उपागम, लोकल अथोरिटी इन पार्टनरशिप विद अरबन कम्युनिटिस, लोक व निजी संस्थाओं आदि ने आधारभूत सामाजिक व आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की। सभी स्लम कार्यक्रमों ने बड़े पैमाने पर माईक्रो-क्रेडिट कार्यक्रम को प्रोन्नत किया। केन्या के नकुरु स्थित सुशासन संबंधी प्रयास को भी काफी सफल प्रयोग के रूप में देखा गया है। इसने जहाँ एक तरफ जहाँ कृषकीय प्रोसेसिंग उद्योग, रीजनल सर्विस व पर्यटन की व्यवस्था है। इसके अंतर्गत शहर में क्षमता निर्माण संबंधी प्रयास, क्रियाएँ, लक्षित मानव संसाधन विकास, संस्थागत मजबूती उपकरणों को बहाल करने पर जोर दिया गया। भागीदारी

lkj.kh 1-4

Hkkxhnkjh d nl çe[k e,My

Øe	e,My	LFkku	o"k	miyfC/k;k
1.	भागीदारी	दिल्ली (भारत)	2000	वर्षा हारवेस्टिंग, स्त्री शक्ति कैंप, यू.एन पब्लिक सर्विस अवार्ड, 2005
2.	म्यूनिसिपल पर्यावरण शहरी प्रबंधन	रेफिला (अर्जेंटीना)	1996	135 संस्थाओं के सहयोग से पर्यावरणीय समस्याओं व शिक्षा का क्रियान्वयन
3.	नवीन शहरी साझेदारी योजना	अहमदाबाद (भारत)	1995	आधारभूत संरचना को मजबूत बनाया, प्रशासन, नगरपालिका वित्त, जल व गंदगी, शहरी वनीकरण पर फोकस, रिवर फ्रंट डेवलपमंट प्लांट पर बल
4.	प्रजा फाउंडेशन	मुंबई	1998	सिटिजन चार्टर, माइक्रोफाइनांस पर बल
5.	स्लम सुधार परियोजना	ढाका (बंग्लादेश)	1985	सफाई, शुद्धपेयजल, स्वास्थ्य, निकासी पर विशेष
6.	धारणीय शहरीकरण	नुकुरु (केन्या)	1995	उद्योग, क्षेत्रीय सेवा, पर्यटन, मानव संसाधन, टाउन प्लानिंग यूनिट
7.	सहभागी बजटिंग	पोर्टो एलग्रो (ब्राजिल)	1989	लालफीताशाही से मुक्ति, नागरिकतावाद में बढ़ोतरी
8.	विकेन्द्रित शहरी आधारभूत संरचना	बाली (इंडोनेशिया)	1997	स्थानीय शहरी आधारभूत संरचना पर बल, बाली अरबन इंप्रुवमेंट प्रोग्राम का क्रियान्वयन
9.	नाईवरहुड भागीदारी कार्यक्रम	सरको (पेरु)	1996	अपशिष्ट जल ट्रीटमेंट प्लांट, 90% महिला सहभागिता
10.	सहभागी शहरी एक्शन प्लॉन	सोमालू (नाइजीरिया)	1998	जल सप्लाई, कूड़ा प्रबंधन, सड़क व नाला पुनर्निमाण

स्रोत– स्वविश्लेषण के आधार पर

व बदलते गर्वनेंस के संबंध में पोर्टो एलग्रो, ब्राजिल में हो रहे सहभागी बजटिंग के प्रयास को एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में देखा जाना चाहिये। यह प्रयोग 1989 में शुरु हुई व नागरिक समाज की भागीदारी को संस्थागत रूप प्रदान करता है। सहभागी बजटिंग की इस प्रणाली के द्वारा जहाँ एक तरफ भ्रष्टाचार व संसाधनों की पारदर्शी प्रबंधन नीति का अनुपालन करके भ्रष्टाचार व लोक संसाधनों का कुप्रबंधन को रोका जा सका वहीं दूसरी ओर इससे नागरिकतावाद की भावना को भी बल मिला। भागीदारी की अवधारणा के अंतर्गत केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण पर अधिक बल दिया जा रहा है। इसी संदर्भ में बाली (इंडोनेशिया) में शहरी आधारभूत संरचना की दिशा में किया जा रहा प्रयास प्रशंसनीय है। बाली अरबन इन्फ्रास्ट्रचर प्रोग्राम द्वारा अपनाई गई विकेन्द्रीकरण की नीति ने सामुदायिक भागादारी को काफी प्रोत्साहित किया। इसी श्रृखंला में पेरू में हो रहे नावरहुड सहभागिता कार्यक्रम व सोमालू (नाइजीरिया) में हो रहे सहभागी शहरी एक्शन प्लान को भी लिया जा सकता है।

समग्र रूप से देखा जा सकता है कि सुशासन व गर्वनेंस के नारों व जुमलों पर आधारित भागीदारी संकल्पना ने निश्चित तौर पर शहरी प्रशासन की बुनियादी आयामों में परिवर्तन करते हुए इसे शहरी गर्वनेंस में तब्दील किया है। निश्चित तौर पर भागीदारी के सामने समस्याएँ और चुनौतियाँ असीम है परंतु यह इतना अधिक समावेशी मॉडल है कि इसमें असंख्य संभावनाएँ भी छिपी हुई है।

सुशासन एवं लोक प्रशासन के बदलते आयाम

अंजना कुमारी

अध्येताओं के बीच सरकार की जगह शासन पदावली का प्रयोग बढ़ गया है और सरकार से इसे पृथक कर राजनीतिक रेजिम की सफलता के आकलन हेतु मानक के रूप में उपयोग किया जाने लगा है। यू.एन.डी.पी; 1997 के अनुसार ''किसी देश के मामलों के प्रबंध के लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक संस्थाओं एवं शक्तियों के उपयोग'' को ही शासन कहा जाता है। इसी के साथ अच्छे शासन या सुशासन पदावली को भी प्रयोग में लाया जाने लगा है। 21वीं सदी के प्रारंभ से ही "सु''-शासन सरकारों के एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में उभरा है। परन्तु काल, परिस्थिति तथा आवश्यकताओं के अनुरूप 'अच्छे' या 'सु' शासन को विभिन्न तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया गया। कुछ लोगों ने इसे ई-गवर्नेंस के रूप में, तो कुछ लोगों ने कानून व्यवस्था को कायम करने को, तो कुछ ने लक्ष्योन्मुख एवं मितव्ययिता तथा कुछ लोगों ने भ्रष्टाचार-मुक्त शासन की आवश्यकता पर बल दिया। परन्तु विश्व बैंक की रिपोर्ट 2002 के द्वारा कतिपय मानकों का प्रतिपादन किया गया जो विश्व में लगभग सभी व्यवस्थाओं में स्वीकार किया गया, खासकर विकासशील देशों में। इसके तहत सुशासन के आठ मानकों को चिन्हित किया गया है – उत्तरदायी, संवेदनशील, पारदर्शी, प्रभावकारी, समावेशी, सर्वमान्य, विधि का शासन तथा लोकसहभागी। यद्यपि ये मानक सभी व्यवस्थाओं के लिए समान रूप से पर्याप्त नहीं हैं फिर भी इनको अपनाने से अच्छे शासन की उम्मीद की जाती है। यह एक स्वाभाविक तथ्य है कि सुशासन के इन मानकों को धारण करने के लिए लोक प्रशासन के स्वरूप में भी बदलाव लाना आवश्यक होगा। लोक प्रशासन के विकास के इतिहास पर नजर डालने से ज्ञात होता है कि जब जब प्रशासनिक मूल्यों में बदलाव आया है तब तब लोक प्रशासन के स्वरूप और कार्य पद्धति में परिवर्तन आया है। प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य सुशासन के अवधारणात्मक पक्षों एवं लोक

प्रशासन में आए परिवर्तनों को लोक प्रशासन खास कर भारतीय लोक प्रशासन के आलोक में चिन्हित करना है।

सुशासन के अवधारणात्मक आयाम

आलोचकों का मत है कि सुशासन के आठ मानक पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि इनमें आम जन के सुख की चर्चा नहीं है। यह केवल शासनतंत्र को सुदृढ़ एवं प्रभावकारी बनाने के लक्ष्य को पूरा करता है। प्राचीन काल से ही भारत के शासकों ने सर्वजन सुखाय की बात की है। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र मे लिखा है – ''प्रजा सुखे सुखम् राज्ञ'। अतः इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सुशासन "*सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय*" से जुड़ा है। सुशासन का लक्ष्य लोगों के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन में लोकतंत्र के ढांचे के अंतर्गत परिवर्तन लाना या विकास करना है। राज्य, सरकार एवं प्रशासन का अस्तित्व ही पर्याप्त नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि लोकसंस्थाएं किस तरह लोकगतिविधियों को संचालित करते हैं तथा लोक संसाधनों का प्रबंधन करते हैं। जहां शासन राजनीतिक व्यवस्था को संबोधित करता है, सुशासन उन व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं को संबोधित करता है जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। प्राचीन काल में सुशासन को आदर्शराज्य, रामराज्य के अर्थ में परिभाषित किया गया। आधुनिक समय में सुशासन लोकतांत्रिक ढांचे में कुशल एवं प्रभावकारी प्रशासन या शासन से जुड़ा है। शासन निर्णय निर्माण की प्रक्रिया एवं उन निर्णयों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया है।

सुशासन की धारणा का प्रयोग प्रायः अप्रभावकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं की प्रभावकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के साथ तुलना के संदर्भ में एक मॉडल के रूप में की जाती है। पश्चिम के उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य में शासन व प्रशासन सफलतापूर्वक विकास में योगदान देते रहे हैं। अतः इन्हें सुशासन के मानक के रूप में स्वीकार कर विकासशील राज्यों की संस्थाओं की इनसे तुलना की जाती है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संगठन एवं विकसित देश सुशासन का अर्थ कुछ पूर्वनिर्धारित लक्षणों से लगाते हैं।

सुशासन की एक निश्चित परिभाषा नहीं है। फुकुयामा के अनुसार शासन को सुशासन या कुशासन मानने के दो आधार हो सकते हैंः– *प्रथम,* राज्य की क्षमता एवं नौकरशाही की स्वायत्तता, *द्वितीय,* सुशासन परिणाम के आधार पर भी निर्धारित किया जा सकता है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ विशेष सुविधाएं आवश्यक होती हैं जो राज्य द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इन विशेष सुविधाओं या सार्वजनिक वस्तुओं जैसे – सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, उचित मजदूरी, मतदान का अधिकार, पर्यावरण संरक्षण, संपत्ति की रक्षा, जल आदि का वितरण सरकार किस प्रकार करती है इससे भी सुशासन या कुशासन का पता लगाया जा सकता है। सार्वजनिक

वस्तुओं का वितरण या आपूर्ति की नीति कुछ निश्चित सिद्धांतों जैसे – मानव अधिकार, लोकतंत्रीकरण और लोकतंत्र, पारदर्शिता, सहभागिता, शक्ति का विकेंद्रीकरण, स्वस्थ लोक प्रशासन, उत्तरदायित्व, विधि का शासन, प्रभावकारिता आदि से निर्देशित होती है।

अतः सुशासन विकासोन्मुख प्रशासन का ही समानार्थी है जो लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रतिबद्ध है। Ford Foundation ने विकासशील देशों की सरकार की अक्षमता के परिणामस्वरूप सुशासन की ओर ध्यान आकर्षित किया। यह इस बात का समर्थन करती है कि सरकार पर सक्रिय व संगठित नागरिकों का नियंत्रण होना चाहिए। इसके पीछे मुख्य धारणा यह है कि सरकारी गतिविधियों की गुणवत्ता में वृद्धि तब होती है, जब नागरिकों में सहमति होती है तथा जनता में स्वैच्छिक रूप से आज्ञापालन की इच्छा होती है और जब मानक गुणों पर बल दिया जाता है। इसी अर्थ में सुशासन शब्द का प्रयोग किया गया है।

विद्वानों ने सुशासन को तीन तरह से समझने का प्रयास किया है :

1) यह लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में प्रसार का प्रयास है।
2) यह विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को दी जानेवाले सहायता की पूर्व शर्त है।
3) यह वास्तव में एक लोकतांत्रिक धारणा है जिसका उद्देश्य लोक प्रशासन को और अधिक खुला, पारदर्शी एवं उत्तरदायी बनाना है।

सुशासन से संबंधित उपरोक्त दूसरी धारणा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी जानेवाली सशर्त सहायता से संबंधित है। सुशासन की धारणा की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए Leftwitch ने कहा है कि समकालीन पश्चिमी सहायता एवं विकास नीतियों के तीन लक्षण रहे हैं – *प्रथम,* इस सहायता द्वारा बाजार उन्मुख अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना है। यह नीति 1980 के Structural Adjustment की पूर्वनिर्धारित शर्त पर आधारित है। 1990 में इस Structural Adjustment में दो अन्य तत्व जोड़े गए – *लोकतंत्रीकरण एवं मानव अधिकारों में सुधार तथा सुशासन पर बल।* इस तरह शीतयुद्धोत्तर काल में तृतीय विश्व के देशों को मिलने वाली विकास सहायता सुशासन की राजनीति का शिकार रही है। 1989 में विश्व बैंक ने Sub-Saharan Africa के संदर्भ में सुशासन की धारणा को सर्वप्रथम रेखांकित किया। तत्कालीन समय में सुशासन का अर्थ स्वस्थ विकासप्रबंध से लिया गया। इसके चार लक्षणों की पहचान की गईः (क) सार्वजनिक क्षेत्रों का प्रबंधन, (ख) जवाबदेयता, (ग) विकास का कानूनी ढांचा (घ) सूचना एवं पारदर्शिता।

उदार लोकतांत्रिक शासन प्रणाली वाल देशों में शासन के अस्तित्व का आधार "सार्वजनिकहित" की अभिवृद्धि के लिए माना जाता है। पिछली शताब्दी में राज्य और लोकप्रशासन का अस्तित्व प्रायः सभी देशों में था लेकिन वहां शासन का कोई

अस्तित्व नहीं था। नौकरशाही द्वारा संचालित प्रशासनिक व्यवस्था में लालफीताशाही, औपचारिकता, नियमों एवं विनियमों पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा जिससे शासन का विकास नहीं हो पाया। कार्यशील सरकार की जगह निष्क्रिय सरकार ने ले लिया। अतः पुनः 1992 में विश्व बैंक ने "सुशासन" की अवधारणा का प्रतिपादन किया। 1992 में विश्व बैंक ने Governance and Development नामक दस्तावेज में शासन को परिभाषित करते हुए कहा कि शासन विकास के लिए देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के प्रबंध की प्रक्रिया है। विश्व बैंक ने शासन के तीन विशिष्ट पहलुओं को रेखांकित किया है (क) राजनीतिक सत्ता का प्रकार (ख) विकास के लिए देश के आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के प्रबंधन हेतु सत्ता के प्रयोग की प्रक्रिया (ग) नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन के लिए कार्यक्रमों की संरचना हेतु सरकार की क्षमता।

यू.एन.डी.पी – (United Nations Development Programme) ने 'Governance for Sustainable Human Development' 1994 में सुशासन के निम्न लक्षणों की पहचान की – प्रभावी एवं कुशल प्रशासन, सहभागिता, जवाबदेयता, पारदर्शिता, विधि का शासन, संस्थाओं की वैधता, भविष्यवाणी, निष्पक्षता, सहमति।

OECD देशों ने सुशासन के संबंध में निम्न बिंदुओं को रेखांकित किया है – (1) सरकार की वैधता (2) सरकार के राजनीतिक एवं नौकरशाही तत्वों की जवाबदेयता (3) नीति निर्माण एवं सेवा वितरण में सरकार की दक्षता तथा (4) मानव अधिकार एवं विधि के शासन का सम्मान।

लोक प्रशासन के बदलते आयामः ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

अब यह देखना समीचीन प्रतीत होता है कि शासन के इन बदलते मूल्यों के आलोक में लोकप्रशासन की प्रकृति में कैसा बदलाव आता है? इसके लिए हमें लोक प्रशासन के उद्भव एवं विकास के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी होगी साथ ही सुशासन के परिपेक्ष्य में वर्तमान समय में लोकप्रशासन के स्वरूप में क्या परिवर्तन आया है? लोक प्रशासन एक प्रक्रिया के रूप में लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं जो सरकार की आकांक्षाओं एवं उद्देश्यों को प्रभावित करती हैं। यह संगठन एवं प्रबंध के माध्यम से कार्य करती है। अतः यह एक प्रक्रिया के साथ-साथ व्यवस्थित अध्ययन का अनुभाग है। प्राचीन समय से ही लोक प्रशासन सरकार की संरचना या राजनीतिक व्यवस्था के तत्व के रूप में संस्थापित रहा है। प्रारंभिक अमेरिकी संविधान निर्माताओं एवं नेताओं विद्वानों जैसे Jefferson आदि ने लोक प्रशासन के समस्याओं की पहचान की एवं उसके विकास के मार्ग सुझाये तथापि लोक प्रशासन के इतिहास में Woodrow Wilson के निबंध The Study of PublicAdministration (1887) के साथ ही महत्वपूर्ण परिवर्तन आया जो कि लोक

प्रशासन के उद्भव का प्रतीक माना गया। यह निबंध तब आया जब जनहित में संस्थाओं के पुनर्गठन की आवश्यकता थी ताकि इस भ्रष्टाचार को दूर कर सरकार की कुशलता में वृद्धि की जा सके। लोक प्रशासन के बदलते आयाम को निम्न कालखंडों में देखा जा सकता है।

राजनीति– प्रशासन का विभाजन (1887-1926)

लोक प्रशासन का प्रथम में चरण लोक प्रशासन के उद्देश्यों को राजनीतिक शास्त्र के उद्देश्य से पृथक मानते हुए इसके विकास पर बल दिया गया। Wilson ने लोक प्रशासन को, एक पृथक विषय बनाने पर बल दिया। 1920 के शुरू में लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान के महत्वपूर्ण प्रभाग के रूप में स्वीकार किया गया। लोक प्रशासन को अध्ययन विषय के रूप में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में मान्यता मिल गई। इस काल में L. D. White की "An Introduction To The Study Of Public Administration" (1926) का मुख्य प्रभाव रहा जिसमें एक जटिल एवं स्वतंत्र समाज में प्रशासन के महत्व एवं उसकी कुशलता तथा वैज्ञानिक समझ पर बल दिया गया।

प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धांतों पर जोर (1927-1937)

लोक प्रशासन के उद्भव के द्वितीय चरण का मुख्य सार 'प्रशासन के सिद्धांत' था। 1927 में Willoughby ने लोक प्रशासन को कुशल एवं प्रभावकारी बनाने के लिए प्रशासन के कुछ निश्चित वैज्ञानिक सिद्धांतों पर बल दिया। Taylor ने The Principles of Scientific Management में 'इस बात पर बल दिया कि वैज्ञानिक विश्लेषण से उन तथ्यों का पता लगाया जा सकता है जिसके द्वारा प्रशासनिक कार्य कुशलता एवं मितव्ययिता से संपादित किए जा सकते हैं। Tayler के तकनीक को विभिन्न निजी उद्योगों तथा आगे चलकर सरकारी संगठनों में भी लागू किया गया। इस काल में लोकप्रशासन में वैज्ञानिक प्रबंध एवं कर्मचारियों के वैज्ञानिक प्रशिक्षण की शुरुआत हुई। इस दौरान गुलिक और उरविक का पोस्डकॉर्ब, फेयोल, मुने एवं रीले आदि का प्रबंधन सिद्धांत महत्वपूर्ण रहा।

प्रशासनिक व्यवहार का अध्ययन (1938-1947)

द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंसकारी प्रभाव के कारण लोक प्रशासन के परंपरागत सिद्धांतों पर प्रहार हुए। युद्ध की परिस्थितियों में शीघ्र निर्णय, नम्यता एवं निर्णय निर्माण में स्वविवेक की आवश्यकता हुई। लोक प्रशासन की मुख्यधारा का विरोध 1940 के दशक में और भी तीव्र हो गया। 1947 में Herbert Simon ने प्रबंधन के सिद्धांतों पर प्रश्न उठाया था तथा यह दावा किया कि प्रशासन के सिद्धांत नाम की कोई चीज नहीं है यह सिर्फ शब्दों का जाल मात्र है। लोक प्रशासन का मुख्य झुकाव

नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक मूल्यों की ओर हो गया जिसने प्रबंधकीय मूल्यों को चुनौती दी। लोक प्रशासन के प्रारंभिक अध्ययन को चुनौती देने में मानवीय संबध उपागम महत्वपूर्ण रहा। Robert Dahl ने 1947 में लोक प्रशासन के विज्ञान होने के दावे को चुनौती दी। Dahl ने कहा कि लोक प्रशासन में वैज्ञानिक वैद्यता एवं सार्वजनिक प्रासंगिकता का अभाव है। लोक प्रशासन को व्यापक बनाने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को आवश्यक माना गया। उसने लोक प्रशासन में व्यावहारवादी तत्वों को शामिल किया। जब समाजिक विज्ञानों में व्यावहारवादी क्रांति हो रही थी और ज्ञान के व्यावहारिक पहलू पर जोर दिया जा रहा था तो लोक प्रशासन में भी व्यक्ति के व्यवहार को अध्ययन का केंद्र बनाया जाने लगा। जिससे तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को नयी दिशा मिली।

पहचान का संकट (1948-55)

Waldo us Administrative State (1948) में लोक प्रशासन में नीतिगत मुद्दे एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया को शामिल किया। इस काल में लोक प्रशासन पर राजनीति विज्ञान का प्रभुत्व चर्चा में रहा।

उपनिवेशवाद के कारण विभिन्न राष्ट्रों का जन्म हुआ जिसने लोक प्रशासन के अध्ययन को नवीन आयाम दिए। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वानों ने नवोदित राज्यों में प्रशासनिक विकास के प्रश्नों पर प्रकाश डाला ताकि वहां सामाजिक – आर्थिक परिवर्तन लाया जा सके। इससे विकास प्रशासन के उपक्षेत्र के निर्माण में सहायता मिली। Trends In Comparative Study Of Public Administration (1962) में Riggs ने राजनीतिक प्रशासनिक संस्थाओं का अध्ययन उसके सामाजिक परिवेश में किए जाने पर बल दिया। इस तरह तुलनात्मक लोक प्रशासन पर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय अध्ययन हो गया। इसमें Dwight Waldo, Riggs, Heady का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

नवीन लोक प्रशासन के रूप में (1956 -1970)

मिनोब्रुक सम्मेलन प्रस्तावों के प्रभाव में 1968 के बाद लोक प्रशासन के द्वारा सामाजिक न्याय एवं सामाजिक परिवर्तन, ग्राहक केंद्रित व्यवस्था, प्रभावशीलता एवं प्रासंगिकता, मूल्य व तथ्य संबद्धता, राजनीति प्रशासन में एकीकरण पर जोर दिया जाने लगा है। लोक प्रशासन में आए इन परिवर्तनों को ही नवीन लोक प्रशासन कहा जाता है। नवीन लोक प्रशासन ग्राहक केंद्रित प्रशासन पर बल देता है। यह व्यक्ति को मात्र एक आर्थिक जीवन नहीं मानता, बल्कि इसका दृष्टिकोण मानवीय है। इसकी मान्यता है कि मूल्यों एवं तथ्यों के बीच समन्वय आवश्यक है। इसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक न्याय को लोक प्रशासन के लक्ष्य माना गया।

द्वितीय मिनोब्रुक सम्मेलन का आयोजन ऐसे समय में हो रहा था जबकि वैश्विक आर्थिक व्यवस्था काफी परिवर्तित एवं उदारीकृत हो रही थी। यही कारण था कि इस सम्मेलन में कल्याणकारी राज्य के सिमटते स्वरूप एवं उसके विकल्पों पर उनके विचार उभरकर सामने आए। लोक प्रशासन के बदलते हुए आयाम की चर्चा में मिनोब्रुक -III महत्वपूर्ण है। जिसका आयोजन 2008 में किया गया। यह सम्मेलन दो चरणों में आयोजित किया गया। लोक प्रशासन का भविष्य, लोक प्रबंध एवं लोक सेवा इसके मुख्य विषय थे। इस सम्मेलन में लोक प्रशासन के ज्ञान को अधिक प्रासंगिक बनाने, सहयोगी शासन, जनतांत्रिक प्रबंधन, वित्तीय प्रबंधन, तुलनात्मक वैश्विक परिपेक्ष्य, सूचना तकनीकी एवं प्रबंध, कानून, राजनीति एवं लोक प्रशासन, नेतृत्व आदि पर चर्चा की गई। लोक प्रशासन के अध्ययन को वैश्विक परिपेक्ष्य के साथ एकीकृत करने का प्रस्ताव रखा गया। लोक प्रशासन के अंतर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों के मध्य बढ़ते हुए संबंधों का विश्लेषण किया गया। इन प्रयासों से लोक प्रशासन के वैश्विक परिपेक्ष्य की समझ विकसित हुई है। आज शासन अधिक वैश्विक हो गया है अतः लोक प्रशासन के भावी सम्मेलन (Minnowbrook IV) के समक्ष कई चुनौतियां होगी।

नवीन लोक प्रबंधन परिपेक्ष्य –NPM

राज्य और नौकरशाही की भूमिका में विश्व स्तर पर 1980 के बाद अनेक परिवर्तन आये। 1980 के दशक के आखिरी वर्षों में लोक प्रशासन में नवीन प्रबंधकीय दृष्टिकोण अस्तित्व में आया। इसका उदय लोक प्रशासन और अधिकारी तंत्र के परंपरागत प्रतिमान की अपर्याप्तताओं के कारण हुआ। इस नवीन लोक प्रबंधन का मुख्य जोर कुशलता, मितव्ययता, एवं प्रभावशीलता को प्राप्त करना है। नवीन लोक प्रबंधन बाजारउन्मुखी प्रतिमान है जो निजीकरण, विनियमितीकरण, मितव्ययिता, मूल्य नियंत्रण को बढ़ावा देता है। नवीन लोक प्रबंधन द्वारा प्रशासन का विकेंद्रीकरण, नौकरशाही में पारदर्शिता एवं जवाबदेता निश्चित की गई।

1992 में 'Reinventing Government' में ओसबर्न एवं गैबलर ने सरकार के कार्यों का पुनर्निर्माण किया तथा उसने यह तर्क दिया कि सरकार अब उधमी सरकार के रूप में परिणत हो गई है। एक उधमी सरकार नौकरशाही से नियंत्रण शक्ति को कम करके नागरिकों को सशक्त करती है। यह विशेषता निजी क्षेत्र के मॉडल से उधार लिया गया है। NPM में लोगों को एक आर्थिक इकाई के रूप में, ना की लोकतांत्रिक सहभागी के रूप में, मान लिया गया है। 1990 में Janet एवं Robert Denhart ने NPM के प्रतिउत्तर में 'एक नवीन लोक सेवा' माडल प्रस्तुत किया है। NPM का उत्तराधिकारी ई-शासन (डिज़िटल गवर्नमेंट) है।

सुशासन व लोक प्रशासन (1990 - आगे)

1990 के दशक से सरकार की अपेक्षा शासन अधिक महत्वपूर्ण हो गया है या कहें कि सरकार का शासन में परिवर्तन हो गया है। 1990 के दशक में विकासशील देशों को विकास का मार्ग दिखाने के लिए एक नई संकल्पना ' सुशासन' विश्व बैंक के द्वारा प्रस्तुत की गई है। प्रशासनिक संदर्भ में सुशासन का अर्थ कुशल, स्वतंत्र , उत्तरदायी तथा खुला लोकसेवा है। UNESCO for Asia And Pacific ने सुशासन के आठ लक्षणों की पहचान की है – सहभागिता, सहमति, उत्तरदायी, पारदर्शी, प्रभावकारी एवं कुशल, संवेदनशील, विधि का शासन, निष्पक्ष एवं अंतर्वेशी। इसका अर्थ यह है कि आज का लोक प्रशासन मितव्ययी, प्रभावकारी, समावेशी, पारदर्शी जो लोगों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने वाली शासन व्यवस्था की ओर उन्मुख है। यह भ्रष्टाचार के उन्मूलन या कम से कम करने के प्रति कृतसंकल्प है। अल्पसंख्यकों के विचारों एवं समाज के वंचित वर्गों की आवाज को भी निर्णय निर्माण में महत्त्व देता है।

इस तरह लोक प्रशासन अपने उद्भव से लेकर आज तक कई आयामों से गुजरा है। समकालीन समय में वैश्वीकरण एक ऐसी परिघटना है जो लोक प्रशासन को चुनौती दे रहा है। कठोर परंपरागत संरचना की जगह अधिक लचीला एवं गैर सोपनिया व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वैश्वीकरण में लोक प्रशासन के कार्यों में उग्र परिवर्तन ला दिए हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के पार तुलनात्मक लोक प्रबंध एवं निर्माण क्षेत्र में अनुसंधान में वृद्धि हुई है तथा शासन में अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका में वृद्धि हुई है। अतः वैश्वीकरण के युग में लोक प्रशासन की भूमिका और भी अधिक संवेदनशील हो गई है। आज लोक प्रबंधक नागरिको को उच्च स्तर की सेवा प्रदान करने को प्रतिबद्ध है। यह सेवा-उन्मुखी सरकार एवं बाजार-उन्मुखी सरकार की दिशा में अग्रसर है। सुशासन के लक्ष्य से अपने आप को जोड़ना ही आज लोक प्रशासन का लक्ष्य हो गया है।

टिप्पणी एवं संदर्भ

Arce, A. and Norman Long, "Dynamics of Knowledge" in Long and Long(eds), Battlefield of Knowledge: Interlocking of Theory and Practice,Routledge, London, 1992

Appleby, P. H, *Morality and administration in democratic government* (Louisiana State University Press 1952)

Bhattacharya M, *Public administration structure process and behavior* (World Press Private Ltd 1981)

Cornwall, A. Henry Lucas and Kath Pasteur, Introduction: Accountability through Participation, Developing Workable Partnership Models, IDS Bulletin, Vol. 31 No. 1, 2000 Verma, R K and N. Sinha, "Good Governance and Rural

Development: A Study in Context of People's Participation", Bihar Journal of Public Administration, Jan-June, 2006

Chakrabarty, Vidyut, and Mohit Bhattacharya. Public Administration: A Reader. New Delhi: Oxford University Press, 2006.

D. Bandyopadhyay. Administration, Decentralization and Good Governance. Economic and Political Weekly.1996, Vol.31, No.48 (Nov)

Dey, Bata J., "e-Governance in India: Problems, Challenges and Opportunities", India Journal of Public Administration, special number on e-governance, 2001

Heeks, Richard, Information and Communication Technologies, Poverty and Development, IDPM Manchester, 1998

International Fund for Agricultural Development, Good Governance: An Overview,Rome, 8-9 September 1999

Subrata K.Mitra. The Puzzle of India's Governance-Culture, context and comparative theory. Routledge, 2006

Sarah Joseph. Democratic Good Governance: New Agenda for Change. Economic and Political Weekly. 2001, Vol.36, No.12 (March 24-30)

"The Study of Public Administration: Origins, Development, Nature" Mastering Public Administration: From Max Weber to Dwight Waldo 445

What is Good Governance in (retrieved on 15.08.2010) http://www.unescap.org/pdd/prs/ProjectActivities/Ongoing/gg/governance.asp

Waldo D, The Study of administration (Random House 1968)

World Bank. 1992. Governance and development. Washington, DC: The World Bank. http://documents.worldbank.org/curated/en/604951468739447676/Governance-and-development

बिहार में सुशासन का उत्कर्ष, अपकर्ष एवं पुनरूत्थान

(पटना जिला के मनेर प्रखण्ड की एक केस स्टडी)

सुरेन्द्र कुमार

2005-10 के बीच बिहार तीव्र गति से प्रगति करने वाले राज्यों में शुमार हो गया जिसने विकास के विभिन्न सूचकांकों पर बेहतरीन प्रदर्शन किया। किन्तु इसका स्तर अभी भी कम है। बिहार का विकास अभी शुरू ही हुआ है। अभी कई वर्षों के अच्छे प्रदर्शन की आवश्यकता है ताकि दशकों से पिछड़े राज्य को विकास की गति दी जा सके। तब जाकर कुछ भरपाई हो पायेगी तथा बिहार उन्नत एवं विकसित राज्यों की श्रेणी में शामिल हो जायेगा। अतः हाल के दिनों के विकास से नीति-निर्माताओं एवं क्रियान्वयवनकर्ताओं को संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। लम्बे वर्षों के पिछड़ेपन को कुछ समय में दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिए सतत् प्रयास की आवश्यकता है। अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

I

बिहार भारत के अत्यंत पिछड़े प्रदेशों में से एक है। किन्तु बिहार का इतिहास अत्यंत गौरवशाली रहा है। इसके पतन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियाँ बिहार के विकास को बाधित कर गईं। यथा, लार्ड कॉर्नवालिस ने 1793 में जमींदारी प्रथा की शुरूआत की जो अत्यंत शोषणकारी थी। 1948 की भाड़ा सामान्यीकरण नीति[1] बिहार के पिछड़ेपन का कारण बनी। इस नीति के तहत खनिज पदार्थ यथा लौह-अयस्क, कोयला इत्यादि एक ही मूल्य पर सम्पूर्ण भारत में मिलने लगे। इससे बिहार का अहित हुआ। बिहार में उद्योग धंधे न लगाकर अन्य प्रदेशों में लगने लगे। 1990 से 2005 के बीच भी विकास प्राथमिकता की सूची में नदारद था। मुख्य फोकस केवल पिछड़ों का सशक्तिकरण ही रहा। सत्ताधारी राजद का मुख्य नारा था – *''विकास नहीं सम्मान चाहिए*[2]' इस कारण, इन वर्षों के बीच बिहार लगातार पिछड़ता गया। केन्द्र सरकार का बिहार के प्रति सौतेला

व्यवहार भी बिहार को पिछड़ा बनाता गया। राजस्व का बँटवारा विभेदकारी रहा। फलतः, बिहार और पिछड़ता गया एवं क्षेत्रीय विषमता की खाई और गहरी होती चली गई। बिहार में भूमि सुधार भी नहीं हुआ। भूमि का बँटवारा असमान रहा। अगड़ी जातियों के पास भूमि का स्वामित्व रहा। समाज के अन्य तबके के लोगों के पास या तो थोड़ी भूमि थी या भूमिहीन थे। फलतः, समाज का बड़ा हिस्सा पिछड़ता चला गया। वर्ष 2000 में बिहार के विभाजन के फलस्वरूप खनिज पदार्थ, उद्योग-धंधे झारखण्ड में चले गए। इससे बिहार को आर्थिक तौर पर बड़ी क्षति हुई। राज्य के राजस्व में भारी कमी हो गई। राज्य का विकास प्रभावित हुआ।

II

एक-दलीय शासनकाल (1937-39, 1946-59/61) में डॉ. श्री कृष्ण सिंह और डॉ. अनुग्रहनारायण सिंह के कुशल, सक्षम और उत्तरदायी नेतृत्व में बिहार को चतुर्दिक विकास का अवसर मिला। उद्योग, कृषि, बिजली, परिवहन, सिंचाई, कारा, संचार के माध्यम, स्वास्थ्य, शिक्षा, पशुपालन और सामाजिक विकास के क्षेत्रों में प्रगति के स्पष्ट प्रमाण दृष्टिगोचर हुए। जन्म और गोत्रीय संबंधों में जमींदार परिवार के सदस्य होने के बाजवूद इस काल में प्रगतिशील विचारों का कार्यान्वयन हुआ। जमींदारी उन्मूलन, भूमि सुधार, भूमि हदबंधी आदि कानूनों का नियमन हुआ। औद्योगीकरण के लिए मूलभूत उद्योगों और तकनीकी शिक्षा को उच्च प्राथमिकता दी गयी। पंचायत तथा स्वायत्तशासी निकायों को फलने-फूलने का अवसर मिला। दलितों पर बल दिया गया, उन्हें हिन्दू मंदिर में प्रवेश करवाया गया। इसके साथ ही उनकी शिक्षा तथा बुनियादी शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया। 1938 में एक बुनियादी शिक्षा बोर्ड का गठन किया गया और अप्रैल 1939 तक 14,259 वयस्क शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गयी[3]।

विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ इस काल में बिहार को हासिल हैं। चीनी उद्योगों के विकास को सुनिश्चित करने के लिए 'चीनी कारखाना कन्ट्रोल एक्ट' लागू किया गया। गरीब मजदूरों को सम्मानजनक स्थान दिलाने के प्रयास भी किये गए। प्रथम दोनों पंचवर्षीय योजनाओं में बड़े-बड़े कल-कारखाने स्थापित किये गए (बरौनी फर्टिलाईज़र, पतरातू, मैथन, सिंदरी खाद का कारखाना, दामोदरघाटी, बोकारो, आदि)। कृषि के आधुनिकतम शोध के लिए बतौर कृषि कॉलेज की स्थापना की गयी। राँची ''कृषि वेटनरि महाविद्यालय'' तथा ''ढोली कृषि महाविद्यालय'' स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त बिहार के आर्थिक विकास की आधारशिला को मजबूती प्रदान करने के लिए प्रत्येक जिला केन्द्र को पक्की सड़क से जुड़वाया गया। मोकामा में गंगा पुल बनवाया गया। कुटीर तथा लघु उद्योगों का विकास किया गया। प्रखण्ड और गाँव के स्तर पर कृषि विकास हेतु योजना तैयार हुई। प्रखण्ड निर्मित हुए और कृषि पदाधिकारियों की व्यवस्था की गयी। बाढ़-सुरक्षा के

लिए कोसी, बूढ़ी गंडक, कमला, बागमती और सरयू नदियों पर बाँध निर्मित करवाए गए। अतः, प्रथम पंचवर्षीय योजना के मूल्यांकन में बिहार को प्रथम पाँच राज्यों में स्थान मिला और अमेरिकन विशेषज्ञ, एपलबी ने बिहार को ''सुशासित'' राज्यों में से एक माना।

बिहार में 1967 से लेकर 1990 तक राजनीतिक अस्थिरता और सरकारी अप्रभावशीलता इस कदर रही कि विभिन्न मंत्रिपरिषद का औसत कार्यकाल 1.03 वर्ष रहा और मुख्यमंत्री अपने को सत्तासीन बनाए रखने में ही सारी शक्ति लगाते रहे। बिहार परिणामतः तृतीय विश्व का हिस्सा ही नहीं बल्कि चतुर्थ विश्व का हिस्सा बन गया। वैसे कार्यक्रम एवं प्रोजेक्ट जो दूसरी जगहों पर सफल हो रहे थे, बिहार में अप्रभावी हो जाते थे।

विकास की कमी ने हिंसा के वातावरण को पैदा किया। 1980 से 1986 के बीच पंजाब की तुलना में बिहार में अधिक हत्याएँ हुईं[4]। जातीय सेनाएँ यथा ब्रह्मर्षि सेना, लौरिक सेना, लाल सेना सक्रिय होकर एक-दूसरे के विरूद्ध कार्य कर रही थीं और ग्रामीण विकास को अवरूद्ध कर रही थीं। इस परिस्थिति में 1969 से 1984 तक कृषि का उत्पादन 0.5 प्रतिशत वार्षिक कंपाउण्ड दर से हुआ। जनसंख्या दो प्रतिशत के दर से बढ़ रही थी और ग्रामीण आय घट रही थी। 1980 के दशक में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 1000/- रूपये थीं[5]। कृषि का लाभ मध्य जाति के किसानों के द्वारा उठा लिया जाता था और छोटे किसान वंचित रह जाते थे।

1977 के काल को कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में पिछड़ी जातियों के द्वारा अगड़ी जातियों की शक्ति को चुनौती के रूप में देखना भी अनुचित होगा। 1980 के आम चुनाव में पिछड़ी जातियों की संख्या 50 प्रतिशत थी। किन्तु, कर्पूरी ठाकुर को 16 प्रतिशत मत ही आये[6]। कर्पूरी ठाकुर पहले नेता थे जिन्होंने बिहार में सरकारी नौकरियों एवं शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण लागू किया। हालॉकि, इससे हिंसा भी फैली।

जगन्नाथ मिश्र और बिन्देश्वरी दूबे का कॉंग्रेस शासन नीतिविहीन और प्रभावहीन था। दूबे ने अपने कार्यकाल के प्रथम 15 महीनों में 300 भारतीय प्रशासनिक पदाधिकारियों का स्थानान्तरण[7] किया। बिहार जैसे कुशासित राज्य के लिए यह अभूतपूर्व था। अराजक संघर्ष के अनेक उदाहरण इस काल में मिलते हैं। सबसे अधिक जातीय हत्याएँ पटना जिले में हुईं जो हमारे अध्ययन का क्षेत्र भी है। संभवतः इसका एक कारण यह हो सकता है कि इस जिले में अनुसूचित जाति की संख्या बिहार में सबसे अधिक है और मध्य जातियाँ एवं अगड़ी जातियाँ दोनों ही उनसे संघर्षात्मक स्थिति में रहती हैं। हालॉकि पटना जिले में भूमिहीन मजदूरों की संख्या बीचोबीच है। यह इस तथ्य को सूचित करता है कि पटना जिले में ऊँचे स्तर की कृषि सम्बन्धी सक्रियता है। यहाँ ट्यूबवेल्स अधिक हैं तथा कृषि का व्यापारीकरण भी कृषि की

उत्पादकता को बढ़ाता है। किन्तु, यहाँ का श्रमिक बलात् श्रम का प्रतिनिधित्व करता है और जाति के आधार पर शोषित है। पटना जिले के पश्चिमी भाग में अगड़ी जाति के लोगों का वर्चस्व है जबकि पूर्वी भाग में पिछड़ी जातियों विशेषकर कुर्मियों एवं धनी किसानों का वर्चस्व है। अतुल कोहली ने ठीक ही लिखा है, "The State has become so ineffective that even in its own backyard its grip is relatively weak"[8].

बिहार में वर्ष 2005 से परिवर्त्तन का दौर प्रारंभ हुआ। नीतीश कुमार को अनेक समस्याएँ विरासत में मिलीं। विकास दर अत्यंत कम था। कमजोर प्रशासन एवं शासन के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसंरचना तथा लोक सेवाओं की स्थिति दयनीय थी। कानून एवं व्यवस्था की स्थिति अत्यंत ही दयनीय थी। सरकार जनता का विश्वास खो चुकी थी। ऐसा लगता था, मानों अब कुछ नहीं हो सकता।

किन्तु नीतीश कुमार के मुख्यमंत्री बनते ही वर्ष 2005 से परिवर्त्तन एवं विकास का दौर प्रारंभ हो गया। विभिन्न क्षेत्रों यथा, कानून एवं व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अवसंरचना में आमूलचूल परिवर्तन शुरू हुए। अपराध के दर में तेजी से गिरावट आयी। राज्य सरकार ने ''सैप'' का गठन किया। ''सैप'' के जवान सेना से सेवानिवत्त जवान थे जो अपराधियों की धर-पकड़ में अच्छी तरह प्रशिक्षित थे। अपराधियों को सजा दिलाने की प्रक्रिया में तेजी आई। किसी भी राजनीतिक दल का अपराधी क्यों न हो, जेल भेजा जाने लगा। स्पीडी ट्रायल शुरू किया गया जिसके तहत कम समय में अपराधियों को सजा दिलाई गई। सजा पाए अपराधियों की संख्या 2006 में 6,839 से बढ़कर 2009 में 13,146 हो गई[9]।

प्रशासन में भ्रष्टाचार पर अंकुश प्रारंभ हुआ। भ्रष्ट अफसरों की पहचान करके उन्हें जेल भेजा गया तथा उनकी सम्पत्ति जब्त करके जन-कल्याण में उपयोग की गई। भ्रष्टाचार पर सरकार ने जीरो टोलेरेन्स की नीति पर कार्य प्रारम्भ किया।

प्रारम्भिक शिक्षा में बदलाव प्रारम्भ हुआ। सरकार ने बजट में इजाफा किया। बड़े पैमाने पर शिक्षकों की बहाली हुई। स्कूल बीच में ही छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में काफी कमी हुई। उदाहरणस्वरूप, 2006 में यह दर 12.8 प्रतिशत था जो 2011 में लगभग तीन प्रतिशत रह गई[10]। बालिकाओं की शिक्षा में अधिक सुधार दिखा। इनके नामांकन दर में अत्याधिक वृद्धि हुई। कक्षा आठ के बाद छात्राओं को साईकिल दिया गया ताकि सुदूर क्षेत्रों से वे पढ़ाई करने स्कूल आ सकें। राजनीतिक एवं प्रशासनिक इच्छा शक्ति के कारण प्रारम्भिक शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन संभव हो पाया।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में तीव्रगति से सुधार प्रारम्भ हुआ। 2006 एवं 2011 के बीच शिशु मृत्यु दर में आशातीत कमी आई। स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि की गई। नए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खोले गए। इन केन्द्रों में मरीजों के लिए बिस्तरों की संख्या

में वृद्धि की गई। टीकाकरण के कारण पोलियो समेत विभिन्न बीमारियों में कमी आई। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के कारण जहाँ 2006-07 में 3,077 मरीज स्वास्थ्य केन्द्रों में जाते थे, उनकी संख्या 2010-11 में बढ़कर 9,317 हो गई[11]।

2005 के बाद से राज्य में अवसंरचना विशेषकर सड़कों की स्थिति में सुधार हुआ। मुख्यमंत्री ग्राम सड़क योजना एवं बिहार राज्य पुल निर्माण निगम के तहत् सड़कों एवं पुलों के निर्माण का कार्य व्यापक स्तर पर शुरू हुआ। राज्य सरकार ने सड़क निर्माण का कार्य प्राथमिकता के तौर पर शुरू किया जिसके फलस्वरूप सड़कों की स्थिति में आमूलचूल सुधार हुआ। 2010 तक बिहार में सड़कों की कुल लम्बाई 94009.42 किलामीटर[12] हो गई।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि बिहार में 2005 से विभिन्न क्षेत्रों में विकास दिखने लगा। विकास कागज तक सीमित नहीं रहा। यह धरातल पर पहुँचा। न्याय सहित विकास का लक्ष्य रखते हुए समाज के सभी वर्गों का विकास सुनिश्चित किया गया। सरकार में आम जनता का विश्वास लौटने लगा। राज्य सरकार ने दिखाया कि दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो कम समय में विकास किया जा सकता है।

III

2005-10 के बीच इन सभी विकास कार्यों के बावजूद बहुत कुछ करना रह गया। गरीबी में मामूली गिरावट आई। 2007-10 में बिहार में सबसे अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे थे। 53.5 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे थे। यह आँकड़ा राष्ट्रीय औसत से 80 प्रतिशत अधिक था। ग्रामीण गरीबी 60.5 प्रतिशत थी। नगरीकरण का दर केवल 11 प्रतिशत था जो राष्ट्रीय औसत 31 प्रतिशत से काफी कम था[13]।

प्राथमिक शिक्षा में नामांकन जरूर बढ़ा किन्तु कक्षा की स्थिति कुछ और है। शिक्षा का स्तर बहुत ही बुरा रहा। यद्यपि यह एक देशव्यापी मुद्दा है, तथापि बिहार में समस्या अधिक गम्भीर है। अधिक उम्र के बच्चे नीचे की कक्षाओं में पढ़ते हैं। अधिकांश बच्चे पढ़ना-लिखना नहीं जानते। प्राथमिक शिक्षा में कुछ सुधार हुआ है किन्तु उच्च शिक्षा की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। दूसरे राज्यों की तुलना में बिहार उच्च शिक्षा के मामले में काफी पीछे है। उच्च शिक्षा अनेक मौलिक समस्याओं से जूझ रहा है, यथा, शिक्षकों की अनुपस्थिति, शिक्षकों की कमी, समय पर वेतन न मिलना, कुलपतियों के चयन में पारदर्शिता का अभाव, छात्रों का पलायन, पुराना सिलेबस तथा पढ़ाई के पुराने तरीके इत्यादि।

स्वास्थ्य की स्थिति भी कमोबेश ऐसी ही है। स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति खर्च अत्यन्त कम है। यह केरल का एक-तिहाई है। वार्षिक स्वास्थ्य रिपोर्ट, 2010-11 के अनुसार बिहार में जननांकीय दर वार्षिक दर की तुलना में अधिक है। शिशु मृत्यु दर

कार्यक्रम किए जायें ताकि लोग एवं छात्र खासकर छात्र एवं छात्रायें उनके विषय में अधिक जान सकें। योगी की बात को तथ्यों के आइने में देखा जाये तो सबसे ज्यादा छुट्टी सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश में होता है। जहां सरकारी कर्मचारियों के लिये साल में 365 दिन में 192 दिन छुट्टियाँ हैं। सचिवालय समेत सारे विभागीय मुख्यालयों में पांच दिन का कार्य सप्ताह है, यानी वहां शनिवार और रविवार को 104 दिन काम नहीं होता, इसी तरह प्रदेश के स्कूलों और कालेजों में भी छुट्टियों की भरमार है।

मुख्यमंत्री के सुशासन की तरफ बढ़ते कदम को नौकरशाही द्वारा फेल किये जाने का वर्णन करते हुये न्यूज टाइम पोस्ट 1 जून से 15 जून, 2017 में प्रणय विक्रम सिंह लिखते हैं कि उत्तर प्रदेश के भगवा सरकार के लगभग 70 दिन गुजरने के बाद भी सूबे में कानून गुनहगारों के सामने हांफता नजर आ रहा है। व्यवस्था अपनी लूटी हुई अस्मत के साथ दूर खड़ी खौफनाक दौर के गुजरने का इंतजार कर रही है और जनता बड़ी हसरतों के साथ अपना जनादेश देने के बाद अपनी उम्मीदों को बड़ी विवशता के साथ जार-जार देखने को मजबूर है। गुजरे दो माह के वक्त में सूबे के आवाम ने कभी कानून के मुहाफिजों को बलवाइयों के सामने अपनी हिफाजत के लिये कभी भागते देखा तो कभी पीड़ितों के विरोध करने की सजा के तौर पर अपराधियों की गोली का शिकार बनते देखा। अपराधी बारी-बारी से अस्मतरेजी करते रहें और सरकार प्रजेन्टेशन देखने में मशगूल रही। 15 मिनट के फासले पर खड़ी पुलिस दो घण्टे में पहुंचती है और पुलिस जाती है तो भी कुछ कर नहीं पाती। ऐसे तेज और समर्थ पुलिस के कन्धों पर ही उत्तर प्रदेश जैसे बड़े प्रदेश की कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी है। क्या यह मान लिया जाये कि उत्तर प्रदेश की पुलिस अक्षम, असमर्थ और गैरपेशेवर है, जो अपराधियों के सामने प्रत्येक मोर्चा हारती चली आ रही है। या यह मान लिया जाये कि उत्तर प्रदेश में पुलिस और प्रशासनिक मशीनरी का इस कदर राजनीतिकरण हो चुका है कि सरकार में तबदीली होने के साथ ही पुलिस और प्रशासनिक मशीनरी में भी तुरन्त बदलाव होना चाहिये, अन्यथा उनकी पूर्व राजनीतिक निष्ठायें नई सरकार के लिये परेशानी का सबब बन जाती हैं।

जन मानस के मन में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को लेकर पूरा भरोसा है। किन्तु सिस्टम के शरारत से पैदा हुई हरारत ने सभी को बेचैन कर दिया है। योगी ने राज्य में कानून का राज होगा का वचन विधानसभा चुनाव के पूर्व दिया था। अब अपने वचन को पूरा करना मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी है, क्योंकि सी.एम. का वचन ही होता है शासन। किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य है कि जरूरत से ज्यादा राजनीतिक दखल भ्रष्टाचार, जातिवाद और अनुशासनहीनता के चलते पुलिस किस कदर निरंकुश हो चुकी है, इसका अन्दाजा पूर्व डीजीपी जावीद अहमद के इस कथन से लगाया जा सका है कि कई पुलिस कर्मियों का अपराधियों से सांठगांठ है। पश्चिमी

प्रति एक लाख बच्चों में 300 से भी अधिक है। प्रसव के समय छः प्रतिशत से कम महिलाओं को सम्पूर्ण पैकेज का लाभ मिलता है[14]।

अवसंरचना के क्षेत्र में यद्यपि सड़कों की स्थिति में सुधार हुआ है तथापि ऊर्जा क्षेत्र की स्थित अत्यंत दयनीय है। 2000 में बिहार के विभाजन के बाद से स्थिति और गम्भीर हो गई है। अनेक बिजली उत्पादन केन्द्र तथा कोयला खदान झारखण्ड में चले गए। केवल 16 प्रतिशत लोगों को बिजली मिल पाती है जबकि राष्ट्रीय स्तर 67 प्रतिशत है[15]। राज्य विद्युत बोर्ड का वित्तीय स्वास्थ्य खस्ता है जो अत्यधिक घाटे में चल रहा है।

बिहार के घरेलू उत्पादन में कृषि की हिस्सेदारी में अधिक कमी आई है। 1993-94 में कृषि का योगदान 47.9 प्रतिशत था जो 2011-12 में घटकर 15.4 प्रतिशत रहा गया[16]। इसके बावजूद कृषि बिहार के 80 प्रतिशत लोगों की आजीविका का मुख्य स्त्रोत है। अधिकांश किसान छोटे कास्तकार हैं जो मुख्यतः खाद्यान्न की उपज करते हैं।

इस प्रकार, यद्यपि 2005-10 में बिहार के विकास दर में तीव्र गति से वृद्धि हुई तथापि यह आज भी भारत का सबसे पिछड़ा राज्य बना हुआ है। मानव विकास सूचकांक में सबसे नीचले पायदान पर है। नगरीकरण एवं औद्योगीकरण का स्तर निम्न है। गरीबी दर उच्च है। ऊर्जा समेत अन्य अवसंचरना की स्थिति दयनीय है। अतः, अभी भी राज्य को इन सभी चुनौतियों का सामना करना है।

IV

पटना जिला के मनेर प्रखण्ड का अध्ययन यहाँ किया गया है। 2005-10 के दौरान बिहार में शासन की स्थिति का जायजा लेने का प्रयास किया गया है। इस संबंध में जनता, राजनीतिज्ञ, सरकारी अधिकारी तथा गैर-सरकारी संगठन के विचार जानने के प्रयास किये गए हैं। क्षेत्र अध्ययन के आधार पर प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण किया गया है। कुल 200 उत्तरदाताओं का चुनाव रैंडम सैम्पलिंग के आधार पर किया गया है। इसमें 60 सरकारी अधिकारी, 30 राजनीतिज्ञ, 10 NGOs के प्रतिनिधि तथा 100 ग्रामीण एवं शहरी मनेर की जनता हैं। इनसे बातचीत के आधार पर आँकड़ों का संग्रहण किया गया है तथा आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न किया गया है।

सरकारी कार्यक्रम एवं नीतियाँ

सर्वे के दौरान सर्वप्रथम उत्तरदाताओं से विकास एवं सुशासन से सम्बन्धित सरकारी कार्यक्रम एवं नीतियों की जानकारी के बारे में पूछा गया। 81 जनता सभी 60 अधिकारी, सभी 30 नेता एवं सभी 10 NGOs इनके बारे में जानते थे। केवल 19 जनता इनके बारे में अनभिज्ञ थी। (सारणी 1.1)।

lkj.kh 1-1% ljdkjh dk;Øe ,oa uhfr;ksa dh tkudkjh

J.kh	gk¡	ifr'kr	ugha	ifr'kr	dqy	ifr'kr
जनता	81	81.00	19	19.00	100	100.00
अधिकारी	60	100.00	—	—	60	100.00
नेता	30	100.00	—	—	30	100.00
NGOs	30	100.00	—	—	30	100.00

यहाँ हम पाते हैं कि 19 प्रतिशत जनता सरकार के कार्यक्रमों एवं नीतियों के बारे में अवगत नहीं है। ऐसी स्थिति में सुशासन कैसे आ सकता है क्योंकि अंततः जन-सहभागिता सुशासन के लिए आवश्यक है। अगर जनता इनके बारे में जानेगी ही नहीं तो इनकी भागीदारी कैसे होगी ?

क्या कार्यक्रम एवं नीतियाँ पर्याप्त हैं ?

जब हमने पूछा कि क्या सरकारी कार्यक्रम एवं नीतियाँ सुशासन के लिए पर्याप्त हैं तो इसका विभिन्न उत्तर मिला। 28 प्रतिशत जनता, 50 प्रतिशत अधिकारी, 36.67 प्रतिशत नेता एवं 40 प्रतिशत NGOs ने कहा कि हाँ ये पर्याप्त हैं। किन्तु 72 प्रतिशत जनता, 50 प्रतिशत अधिकारी, 63.33 प्रतिशत नेता एवं 60 प्रतिशत NGOs ने कहा कि ये पर्याप्त नहीं हैं (सारणी 1.2)।

lkj.kh 1-2% D;k dk;Øe ,oa uhfr;k¡ i;kIr gk¡

J.kh	gk¡	ifr'kr	ugha	ifr'kr	dqy	ifr'kr
जनता	28	28.00	72	72.00	100	100.00
अधिकारी	30	500.00	30	50.00	60	100.00
नेता	11	136.67	19	63.33	30	100.00
NGOs	4	40.00	6	60.00	10	100.00

यहाँ हम पाते है कि 28 प्रतिशत जनता के अनुसार नीतियाँ पर्याप्त हैं। राज्य में सुशासन स्थापित करने के लिए विभिन्न कदम उठाए गए हैं। 72 प्रतिशत जनता के अनुसार नीतियों एवं व्यवहार में समन्वय नहीं है। क्रियान्वयन का अभाव है।

सकारात्मक पक्ष वाले अधिकारियों के अनुसार विकास एवं सुशासन के लिए उन्होंने अनेक योजनाओं की शुरूआत की है। नकरात्मक पक्ष वाले अधिकारियों ने सुशासन के मार्ग में आनेवाली विभिन्न समस्याओं की चर्चा की।

इसी प्रकार सकरात्मक पक्ष वाले नेताओं ने कहा कि उन्होंने विभिन्न अच्छी नीतियों का निर्माण किया है जिनके आधार पर सुशासान स्थापित करने के लिए विभिन्न कदम उठाए जा रहे हैं। नकरात्मक पक्ष वाले नेताओं के अनुसार जनता, अधिकारियों एवं उनके बीच अधिक से अधिक सहयोग एवं समन्वय की आवश्यकता है। तभी नीतियाँ जनता तक पहुँच पाएँगी तथा विकास हो पाएगा।

बहुसंख्यक NGOs के अनुसार, सरकारी नीतियाँ एवं कार्यक्रम कागज पर हैं, प्रभावी क्रियान्वयन का अभाव है। इनके अनुसार जनता वास्तविक क्रियान्वयनकर्त्ता है। अतः, केवल नीतियों के निर्माण से काम नहीं चलेगा। जनता को जागरूक करना होगा। उनकी भागीदारी बढ़ानी होगी।

जनसहभागिता

सुशासन स्थापित करने के लिए क्या जनता की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है? इस प्रश्न के उत्तर में 98 जनता, सभी 60 अधिकारी, सभी 30 नेता तथा सभी 10 NGOs ने सकरात्मक पक्ष रखा। 100 में से केवल दो जनता ने नकारात्मक पक्ष रखा।

lkj.kh 1-3% D;k lfØ; tulgHkkfxrk vko';d g

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	98	98.00	2	2.00	100	100.00
अधिकारी	60	100.00	—	—	60	100.00
नेता	30	100.00	—	—	30	100.00
NGOs	10	100.00	—	—	10	100.00

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि सक्रिय जन-सहभागिता समय की मांग है। जनता ने यह भी कहा कि नीतियों के निर्माण के समय भी उनसे परामर्श एवं सुझाव आमंत्रित किए जाने चाहिए। अधिकारियों ने कहा कि जनता को उनके उत्तरदायित्व निर्वहन के लिए प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। नेताओं ने कहा कि लगातार मॉनिटरिंग के द्वारा जन-सहभागिता बढ़ाया जा सकता है। NGOs के अनुसार, जनता वास्तविक क्रियान्वयनकर्ता है, अतःए उनकी भागीदारी नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन दोनों में आवश्यक है।

नेताओं की प्रतिबद्धता

जब पूछा गया कि सुशासन के लिए नेताओं की प्रतिबद्धता आवश्यक है तो 88 प्रतिशत जनता, 95 प्रतिशत अधिकारी, 70 प्रतिशत नेता तथा 80 प्रतिशत NGOs ने हाँ में उत्तर दिया (सारणी 1.4)।

lkj.kh 1-4% D;k jkturkvk dh ifrc)rk vko';d g

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	88	88.00	12	12.00	100	100.00
अधिकारी	57	95.00	3	5.00	60	100.00
नेता	21	70.00	19	30.00	30	100.00
NGOs	8	80.00	3	20.00	10	100.00

सकारात्मक विचार वाली जनता के अनुसार नेताओं का जन-आधार व्यापक होता है तथा क्रियान्यवन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतःए उनकी प्रतिबद्धता आवश्यक है। नकारात्मक पक्ष वाली जनता के अनुसार नेता अपने हितों की पूर्ति में व्यस्त होते हैं, जनता की सुध कम ही लेते हैं। वे नीतियों एवं कार्यक्रमों के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं।

सकारात्मक पक्ष वाले अधिकारियों ने कहा कि केवल प्रशासन सबकुछ नहीं कर सकता। विकास एवं सुशासन के लिए नेताओं की प्रतिबद्धता आवश्यक है। नकारात्मक पक्ष वालों ने कहा कि नेताओं की सोच संकुचित होती है। वे अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे रहते हैं।

इसी प्रकार, सकारात्मक पक्ष वाले नेताओं ने माना कि वे जन-जागरूकता एवं जनसहभागिता में वृद्धि कर सकते हैं जबकि नकारात्मक पक्ष वालों के अनुसार केवल नेताओं से नहीं होगा। सभी पक्षों जनता, अधिकारी तथा NGOs की भागीदारी आवश्यक है।

सकारात्मक पक्ष वाले नेताओं के अनुसार, नेता नीतियों का निर्माण करते हैं, अतः, शासन में उनकी प्रतिबद्धता आवश्यक है। क्रियान्यन को वे प्रभावित कर सकते हैं। नकारात्मक पक्ष वाले NGOs के अनुसार अधिकाधिक नेता केवल वोट बैंक की राजनीति करते हैं। विकास से उनका कोई लेना-देना नहीं है।

नेताओं एवं जनता के बीच संवाद

उत्तरदाताओं से हमने जानना चाहा कि क्या नेताओं एवं जनता के बीच संवाद होता है? 28 जनता, 33 अधिकारी, 26 नेता एवं दो NGOs ने पक्ष में जवाब दिया जबकि 72 जनता, 27 अधिकारी, चार नेता एवं आठ NGOs ने विपक्ष में जवाब दिया (सारणी 1.5)।

पक्ष वाली जनता ने कहा कि नेताओं एवं जनता के बीच संवाद होता है। नेतागण जनता की समस्याओं को सुनते हैं। विपक्ष वाली जनता के अनुसार नेतागण जाति, धर्म एव अन्य आधारों पर कुछ लोगों की ही बात सुनते हैं। आम आदमी की समस्याओं के प्रति वे गम्भीर नहीं होते।

lkj.kh 1-5% urkvk ,oa turk d chp lokn

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	28	28.00	72	72.00	100	100.00
अधिकारी	33	55.00	27	45.00	60	100.00
नेता	26	86.00	4	13.33	30	100.00
NGOs	2	20.00	8	80.50	10	100.00

सकारात्मक पक्ष वाले अधिकारियों ने कहा कि दोनों के बीच संवाद TV एवं अखबार के माध्यम से होता है। विपक्षी अधिकारियों ने कहा कि नेता अपने हितों की पूर्ति में लगे रहते हैं। सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान नहीं देते।

सकारात्मक पक्ष रखने वाले नेताओं के अनुसार जनता दरबार इत्यादि के माध्यमों से जनता से संवाद स्थापित किया जाता है तथा जनता की समस्याओं का समाधान किया जाता है। नकारात्मक पक्ष वाले नेताओं का मानना था कि जनता कोई रूचि नहीं लेती। इस कारण, संवादहीनता की स्थिति बनी रहती है।

सकारात्मक पक्ष वाले NGOs ने कहा कि उनके प्रयास के कारण नेताओं एवं जनता के बीच संवाद स्थापित होता है। किन्तु विपक्षी NGOs ने कहा कि दोनों के बीच सकारात्मक संवाद नहीं होता। नेता इसे आवश्यक मुद्दा नहीं मानते। चुनाव के समय संवाद आवश्यक मानते हैं।

नौकरशाहों एवं जनता के बीच संवाद

क्या नौकरशाहों एवं जनता के बीच संवाद होता है ? इस प्रश्न का उत्तर 33 जनता, 47 अधिकारी, आठ नेता एवं एक NGO ने हाँ में जबकि 67 जनता, 13 अधिकारी, 22 नेता एवं नौ NGOs ने नहीं में दिया (सारणी 1.6)।

हाँ में उत्तर देने वाली जनता ने कहा कि दोनों के बीच संवाद होता है जिसके कारण जनता की समस्याओं का समाधान होता है। नहीं में उत्तर देने वाली जनता के अनुसार नौकरशाही, जनोन्मुख नहीं है। यह जनता से दूरी बनाकर रखती है। यह

lkj.kh 1-6% ukdj'kkgk ,oa turk d chp lokn

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	33	33.00	67	67.00	100	100.00
अधिकारी	47	78.33	13	21.67	60	100.00
नेता	8	26.67	22	73.33	30	100.00
NGOs	1	10.00	9	90.00	10	100.00

जनता की समस्याओं को गम्भीरता से नहीं लेती है।

पक्ष में उत्तर देने वाले अधिकारियों के अनुसार दोनों के बीच संवाद के कारण समस्याओं का समाधान होता है। जनता का विकास होता है। किन्तु विपक्ष में उत्तर देने वाले अधिकारियों के अनुसार दोनों के बीच संवादहीनता के लिए जनता जिम्मेदार है। जनता जागरूक नहीं है। संवाद के लिए नहीं आती तथा नौकरशाही के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित विचार रखती है।

पक्ष में उत्तर देने वाले नेताओं के अनुसार दोनों के बीच संवाद के कारण सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्रभावी होता है। विपक्ष में उत्तर देने वाले नेताओं के अनुसार नौकरशाह जनता की समस्याओं के प्रति संवेदनशील नहीं होते।

सकारात्मक पक्ष रखने वाले NGOs के अनुसार दोनों के बीच संवाद के कारण जनता की समस्याओं का सहयोगात्मक समाधान निकलता है। नकारात्मक पक्ष वाले NGOs ने माना कि नौकरशाही अतिभार से ग्रसित है। इस कारण यह जनता के विचारों को गंभीरता से नहीं लेती है।

नेताओं एवं अधिकारियों के बीच सम्बन्ध

दोनों के बीच सम्बन्ध के बारे में पूछने पर 37 प्रतिशत जनता, 66.67 प्रतिशत अधिकारी, 13.33 प्रतिशत नेता एवं 30 प्रतिशत NGOs ने पक्ष में उत्तर दिया जबकि 63 प्रतिशत जनता, 33.33 प्रतिशत अधिकारी, 66.67 प्रतिशत नेता एवं 70 प्रतिशत NGOs ने विपक्ष में उत्तर दिया (सारणी 1.7)।

हमने उत्तरदाताओं से पूछा कि दोनों के बीच अच्छा सम्बन्ध कैसे विकसित किया जाये। जनता ने कहा कि दोनों के बीच आने वाली समस्याओं को दूर किया जाये। दोनों को एक दूसरे का सहयोग करना चाहिए।

अधिकारियों ने कहा कि नेताओं के द्वारा उन्हें स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। अधिकारियों की नियुक्ति निश्चित अवधि के लिए होनी चाहिए तथा उनके कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

नेताओं ने शिकायत की कि कभी-कभी अधिकारीगण उन्हें भ्रमित करते हैं तथा परिस्थिति की सही तस्वीर नहीं देते। इससे समस्या का समाधान प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। अतः, अधिकारियों को सम्पूर्ण आँकड़ें एवं सूचनाएँ नेताओं को देनी चाहिये। NGOs चाहते थे कि नेता एवं अधिकारी दोनों जनता की समस्याओं के प्रति जिम्मेदार एवं संवेदनशील बनें।

NGOs की भूमिका

उत्तरदाताओं से हमने पूछा कि क्या वे विकास में NGOs की भूमिका के बारे में

lkj.kh 1-7% urkvk ,o vf/kdkfj;k d chp lEcU/k

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	37	37.00	63	63.00	100	100.00
अधिकारी	40	66.67	20	33.33	60	100.00
नेता	4	13.33	26	66.67	30	100.00
NGOs	3	30.00	7	70.00	10	100.00

अवगत हैं? हमने पाया कि 67 जनता, 55 अधिकारी, 26 नेता एवं सभी 10 NGOs अवगत थे जबकि 33 जनता, सात अधिकारी तथा चार नेता अवगत नहीं थे।

lkj.kh 1-8% NGOs urkvk ,o vf/kdkfj;k d chp lEcU/k

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	67	67.00	33	33.00	100	100.00
अधिकारी	53	8.53	7	11.67	60	100.00
नेता	26	86.67	4	13.67	30	100.00
NGOs	10	100.00	—	—	10	100.00

यहाँ हम पाते है कि बड़ी संख्या में जनता विकास में NGOs की भूमिका के बारे में अवगत नहीं है। (33 प्रतिशत)।

जब हमने उत्तरदाताओं से जानना चाहा कि NGOs की क्या भूमिका होनी चाहिए तो उन्होंने कहा कि NGOs जनता को जागरूक बनाते हैं, उन्हें शिक्षित करते हैं तथा प्रोत्साहित करते हैं। वे सरकार एवं जनता के बीच कड़ी का कार्य करते हैं। सामाजिक सेवा करते हैं तथा नीतियां एवं कार्यक्रमों के निर्माण में अहम् भूमिका निभाते हैं।

यह पूछने पर कि क्या NGOs को भविष्य में और करने की जरूरत है, तो 93 प्रतिशत जनता, 81.67 प्रतिशत अधिकारी, 76.67 प्रतिशत नेता एवं शत-प्रतिशत NGOs ने हाँ में उत्तर दिया। केवल सात प्रतिशत जनता, 18.33 प्रतिशत अधिकारी एवं 23.33 प्रतिशत नेताओं ने नहीं में उत्तर दिया (सारणी 1.9)।

उत्तरदाताओं ने माना कि NGOs, सरकार एवं जनता के बीच सहयोग एवं समन्वय सुदृढ़ करना चाहिए। सरकार के द्वारा पर्याप्त धन दिया जाना चाहिए तथा नीति निर्धारण के स्तर पर NGOs की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

उपरोक्त सर्वे से स्पष्ट है कि बहुसंख्यक उत्तरदाता विकास एवं सुशासन के कार्यक्रमों एवं नीतियों से अवगत है। किन्तु, उनका मानना है कि यथोचित उद्देश्य

lkj.kh 1-9% D;k NGOs dh }kjk Hkfo"; esa vkj djus dh t:jr gS

J.kh	gk	ifr'kr	ugh	ifr'kr	dy	ifr'kr
जनता	93	37.00	93.00	7.00	100	100.00
अधिकारी	49	66.67	81.67	18.33	60	100.00
नेता	2	13.33	76.67	23.33	30	100.00
NGOs	10	100.00	7	—	10	100.00

की प्राप्ति हेतु ये पर्याप्त नहीं हैं। इनके अनुसार, भविष्य में नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्माण जन-सहभागिता के आधार पर किया जाना चाहिए। साथ ही राजनीतिक एवं प्रशासनिक इच्छा-शक्ति दृढ़ होनी चाहिए ताकि इन नीतियों एवं कार्यक्रमों को जनता तक सफलता पूर्वक पहुँचाया जा सके। इसी प्रकार, NGOs को और मजबूती से विकास एवं सुशासन के लिए कार्य करना चाहिए। यह सब करके ही सुशासन वास्तव में स्थापित किया जा सकेगा तथा आम जनता को पर्याप्त लाभ मिल पाएगा।

V

हम पाते हैं कि 2005-10 के बीच बिहार तीव्र गति से प्रगति करने वाले राज्यों में शुमार हो गया जिसने विकास के विभिन्न सूचकांकों पर बेहतरीन प्रदर्शन किया। किन्तु इनका स्तर अभी भी कम है। बिहार का विकास अभी शुरू ही हुआ है। अभी कई वर्षों के अच्छे प्रदर्शन की आवश्यकता है ताकि दशकों से पिछड़े राज्य को विकास की गति दी जा सके। तब जाकर कुछ भरपाई हो पायेगी तथा बिहार उन्नत एवं विकसित राज्यों की श्रेणी में शामिल हो जायेगा। अतः हाल के दिनों के विकास से नीति-निर्माताओं एवं क्रियान्यवनकर्त्ताओं को संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। लम्बे वर्षों के पिछड़ेपन को कुछ समय में दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिए सतत् प्रयास की आवश्यकता है। अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

संदर्भ

[1]Singh, N.K. and Nicholas Stern, *The New Bihar:Rekindling Governance and Development*, Harper Collins Publishers, India, Noida, 2013, p. xi.

[2]*Ibid*, p. xx.

[3]*Ibid*, p. xx.

[4]Mukherji, Arnab and Anjan Mukherjee, *Bihar:What Went Wrong ? And What Changed ?* NIPFP Working Paper No. 2012-10, New Delhi, 2012, p. 32.

[5]*Ibid*, p. 36.

[6]*Ibid.* p. 39.

[7]Chakrabarty, Rajesh, *Bihar Breakthrough:The Turnaround of a Beleaguered State*, Rupa Publications, Delhi, 2013, p. 59.

[8]*Ibid*, p. *67.*

[9]*Ibid*, p. *88.*

[10]*Annual Report*, Ministry of HRD, Government of Bihar, 2008-2009.

[11] *Annual Report*, Ministry of Health, Government of Bihar, 2009-2010.

[12]Bhandari, Laveesh and Kale Sumita, *Indian States at a glance, 2008-2009*, Pearson Education, Delhi, 2009, p.158.

[13]Nambisan, Vijay, *Bihar:Is in the eye of the Beholder*, Penguin Books, New Delhi, 2008, p.114.

[14]*Ibid*, p.123.

[15]*Ibid.* p. *39.*

[16]*Annual Report*, Ministry of Agriculture, Government of Bihar, 2008-2009.

बिहार के विकास में पंचायती राज एवं सुशासन की भूमिकाः एक अध्ययन

उमेश कुमार

बिहार सरकार ने सुशासन के द्वारा बिहार को विकसित राज्यों की श्रेणी में लाने के लिए कई संकल्प लिए जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशासन में सुशासन, महिला सशक्तिकरण, स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, शिक्षा, पेयजल और महिला एवं बाल विकास जैसे मुद्दों को प्राथमिकता की सूची में शामिल किया है। इस क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए विकेन्द्रीकरण तथा सुशासन पर जोर दिया गया तथा घोषणा की गई कि योजनाओं का निर्माण भी ग्रामीणजन ही करेंगे, जिसकी शुरुआत ग्राम सभा में होगी। अतः विकास प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी करवाने और सत्ता के विकेंद्रीकरण की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी साबित होगी। यहीं से राज्य में ग्रामीण विकास के स्वर्णिम युग का शुभारंभ भी माना जा सकता है। सुशासन के द्वारा विकास योजनाओं का निर्माण व इसका क्रियान्वयन, लाभार्थियों का चयन, गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों का संचालन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं तथा उसके निराकरण, कृषिगत वस्तुओं से संबंधित बाजार, लागत एवं मूल्य के निर्धारण आदि में ग्राम सभा की भूमिका को स्थापित कर दिया जाये तो बिहार न केवल भारत के एक अग्रणी राज्य के रूप में विकसित होगा वरन् केरल की तरह मानव विकास सूचकांक (जो प्रतिव्यक्ति आय, साक्षरता की दर एवं स्वास्थ्य संबंधी मानकों पर आधारित है) में भारत का विकसित राज्य बन जायेगा।

विकसित राज्यों की श्रेणी में आने के लिए चहुँमुखी प्रयास की आवश्यकता है। विगत् दशकों में बिहार में न केवल आर्थिक क्षेत्रों में वरन् सामाजिक क्षेत्रों में भी गतिहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस जड़ता को तोड़ने के लिए सुशासन के द्वारा प्रबल प्रयास की जरूरत है। बिहार की युवा आबादी को एक नयी दिशा देकर, शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर, ग्रामीण क्षेत्रों की जरूरतों के अनुरूप योजनाओं का निर्माण कर बिहार को एक विकसित राज्य बनाया जा सकता है।

बिहार के विकास में पंचायती राज एवं सुशासन की भूमिका : एक अध्ययन

राज्य तथा समाज का संरक्षण एवं संवर्धन सुशासन से ही संभव है, कुशासन से नहीं। क्योंकि कुशासन में विधिसम्मत एवं न्यायसम्मत मुद्दों का कोई महत्व नहीं होता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। जबकि सुशासन समाज हितोपयोगी होता है। समाज से राज्य फलता-फूलता है और जनहितकारी राज्य मानवाधिकारों का रक्षक होता है।

सुशासन को दो प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है– विशिष्टता और गुणवत्ता की दृष्टि से एंव संरचना की दृष्टि से। विशिष्टताओं के आधार पर सुशासन के निम्नलिखित तत्वों की चर्चा के लिए समान कानून प्रासंगिक होंगे। चाहे कोई राजा हो या प्रजा, अमीर हो या गरीब, उच्च जाति को हो या निम्न जाति का विकसित क्षेत्रों का हो या अविकसित क्षेत्रों का, गांव का हो शहर का, शिक्षित हो या अशिक्षित, स्त्री हो या पुरुष, हिन्दू हो या मुसलमान, अफसर हो या सामान्य जनता, भारतीय दंड कानून के तहत सभी के लिए समान कानून व्यवस्था है अर्थात् कानून के सामने सभी बराबर है। अधिकार सभी नागरिक को प्राप्त है जिसका पालन एक आपराधिक व्यक्ति के लिए भी किया जाता है। इसीलिए हत्या, बलात्कार जैसे जघन्य कृत्यों के अपराधियों को भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने के बाद तुरंत दंडित नहीं किया जाता, बल्कि उसे मौका दिया जाता है कि वह जुर्म कबूल करे अथवा इन्कार करे। कबूल करने पर न्यायिक अधिकारी द्वारा शीघ्र उसे दंडित किया जाता है। कबूल न करने पर उसके मामले का विचारण होता है। उसे बचाव के लिए वकील रखने का मौका मिलता है और यदि वह वकील रखने में सक्षम नहीं हो तो राज्य की ओर से सरकारी खर्च पर उसे वकील मुहैया कराया जाता है।

सुशासन के इस विशिष्ट गुण को कायम रखने के लिए विश्व के सभी जनतांत्रिक देशों में प्रशासन के विकेन्द्रीकृत स्वरूप को स्थापित किया है, जिससे प्रशासन को निरंकुश होने से रोक जाए और उसके जनहितवादी रूप को कायम किया जाये। भारत में इसी स्वरूप को मजबूती प्रदान करने के लिए नये पंचायती राज अधिनियम को संपूर्ण भारत में लागू किया गया है। भारतीय संविधान में नीति-निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में पंचायती राज व्यवस्था का दायित्व भारतीय राज्य को सौंपा गया है किन्तु पंचायती राज विषय राज्य सूची में है। 73 वां संविधान संशोधन के पश्चात् 23 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के बाद यह विधेयक बनाया गया। इसके लिए संविधान के भाग 9 'क' में अनुच्छेद 243; जोड़ा गया। साथ ही संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गई। इसमें पंचायतों के 29 कार्यों; विषयों का उल्लेख है। जैसे– कृषि, भूमि सुधार, पशुपालन, लघु-सिंचाई और शिक्षा आदि।

73 वें संविधान संशोधन के पूर्व पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा

प्राप्त नहीं था, इसलिए इन संस्थाओं का विकसित होना या न होना राज्यों की इच्छा पर निर्भर था, लेकिन संविधान का 73 वां संशोधन इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन साबित हुआ। भारतीय संविधान के इतिहास में पहली बार पंचायतों की वित्तीय स्थिति और इसकी जाँच के लिए वित्त आयोग का गठन तथा कई और सम्बन्धित विषयों पर लम्बा-चौड़ा ब्यौरा दिया गया है।

73 वें संविधान संशोधन के आधार पर 1993 में 'बिहार पंचायती राज अधिनियम' बनाया गया। जिसमें समाज के कमजोर वर्गों व महिलाओं की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित की गई। साथ ही सुशासन के तहत पंचायती राज संस्थाओं को बृहत शक्तियाँ एवं आर्थिक स्वायत्तता प्रदान कर इन्हें सुशासन के तहत सत्ता के विकेन्द्रीकरण का वास्तविक स्वरूप भी प्रदान किया गया है।

पंचायती राज में सुशासन कुछ बुनियादी अवधारणाओं पर आधारित है। राजनीति में प्रत्येक वर्ग की जनता की भागीदारी, आर्थिक विकास के लिए संसाधनों को जुटाना लोकतंत्र में बुनियादी संस्थाओं का समावेश करना और राष्ट्रीय एकता की गारंटी, इन सभी पहलुओं में महिलाओं का भी एक खास महत्व है। क्योंकि जहाँ एक तरफ उनके प्रतिनिधित्व के अभाव में संपूर्ण लोकतांत्रिक संरचना अपूर्ण रहेगी तो दूसरी तरफ उनके सशक्तिकरण के अभाव में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया अधूरी रहेगी। इसलिए बिहार में महिलाओं को पंचायतों के माध्यम से सशक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है। पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से उनकी स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। इससे संबंधित निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैः

1. पंचायतों के द्वारा महिलाओं को प्राप्त राजनीतिक अधिकार, सुशासन की ही देन है कि पिछले 15 वर्षों में देश के भीतर राजनीतिक बहस में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं।
2. पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में सुशासन के तहत महिलाओं को 50 प्रतिशत की भागीदारी से यह सिद्ध हो गया है कि जनसंख्या स्थिरीकरण, लैंगिक असंतुलन में सुधार तथा महिलाओं के हितों को प्रोत्साहित करने में वे सबसे प्रभावशाली एवं संवेदनशील माध्यम है।
3. सुशासन के द्वारा पंचायतों के माध्यम से समाज की जड़ता, धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़ियों, कुशासन एवं भ्रष्टाचार के उन्मूलन में महिलाओं ने प्रतिकूल वातावरण में भी अच्छा काम किया है।
4. पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से ग्रामीण विकास एवं महिलाओं में विकास जैसे चिन्तन का विकास हुआ है और एक नई चेतना का सूत्रपात हुआ है।

बिहार कें पंचायतों में महिला शिक्षा, राजनीतिक जागरूकता, महिला अधिकार

और दहेज प्रथा पर पूर्ण-प्रतिबंध एवं महिलाओं को टिकाऊ रोजगार उपलब्ध कराए बिना उनको पूर्ण सशक्तिकरण का सपना पूरा नहीं हो सकता। लेकिन यह सच है कि महिलाओं की उपर्युक्त समस्याओं के समाधान में पंचायती राज की अहम भूमिका होगी जिसे सुशासन द्वारा समावेशी बनाया जा सकता है।

महिला के उत्साहपूर्ण जागरूकता के कारण बिहार सरकार ने सुशासन के तहत 2006 में महिलाओं का निर्धारित आरक्षण कोटा 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया है। इसी आधार पर 2006 एवं 2011 में चुनाव सम्पन्न हुआ। इस चुनावों में राज्य के 38 जिलों में जिला परिषद् अध्यक्ष पद महिलाओं के लिए आरक्षित थे। बिहार प्रथम राज्य है जिसने पंचायत चुनाव में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की है। ग्राम पंचायत के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए न्याय मित्रों की नियुक्ति और ग्राम कचहरी की व्यवस्था की जा रही है। ज्ञातव्य है कि न्याय मित्रों के नियोजन में भी 50 प्रतिशत महिलाओं को समयोजित करने का निर्णय लिया गया है। महिलाओं ने भी इस चुनाव में बढ़-चढ़कर भाग लिया। यह इस बात से स्पष्ट है कि 2006 के चुनाव में 50 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित थीं जबकि 54.1 प्रतिशत सीटों पर महिलाएँ विजयीं रहीं। उसी तरह मई 2007 में नगर निकायों के सभापति, उप सभापति, अध्यक्ष व उपाध्यक्ष पदों के 118 सीटों के चुनाव में 93 सीटों पर महिला उम्मीदवार विजयी रहीं। राज्य की सात नगर निगमों से केवल दो गया और मुजफ्फरपुर में ही महापौर का पद महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया था। इन दोनों नगर निगमों के अतिरिक्त भागलपुर की सामान्य सीट का महापौर पद भी महिलाओं के खाते में गया।

सुशासन के तहत पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को आरक्षण देने का उद्देश्य सबसे नीचे के स्तर पर अर्थात् ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को बेहतर बनाना है। निश्चित रूप से इसके कुछ सकारात्मक पहलू उभरकर सामने आये हैं। लेकिन वास्तविक दृष्टि से इसके मूल्यांकन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास में आरक्षण के बाद भी उसका अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका है। इसका मूल कारण वास्तविक शिक्षा का अभाव, सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता का अभाव, पुरुषों की अहंकारी प्रवृत्ति, सामाजिक संदर्भों में यथास्थितिवाद के दृष्टिकोण को माना जा सकता है।

संरचना की दृष्टि से देखा जाये तो पूरे समाज के तीन प्रमुख खण्ड हैं– राज्य, बाजार एवं लोक समाज। राज्य के अर्न्तगत कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका तीनों आते हैं। बाजार का आशय तात्कालिक एवं दीर्घकालिक मुनाफा कमाना होता है। लोक समाज का अर्थ परिवार से हटकर सेवाभाव से है। अर्थात् सुशासन के विशिष्ट गुण एवं संरचनातमक स्वरूप में राज्य भी एक प्रधान एवं महत्वपूर्ण घटक है और अन्य सभी घटक उस पर निर्भर हैं।

बिहार में नीतीश सरकार ने अपने सरकार की स्थापना के बाद ही न्याय के साथ विकास को साध्य घोषित किया और सुशासन को साधन घोषित किया। यह निश्चित रूप से मानव के अधिकारों का बल प्रदान करता है। बिहार में सुशासन के साथ विकास की महत्वपूर्ण विशेषता यह रहीं कि नीतीश सरकार ने निचले तबकों से विकास शुरू किया है। इसके लिए स्वर्ण जयंती, शहरी रोज़गार योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, औजार योजना, बिहार ग्रामीण जीविकापार्जन परियोजना, जीविका जैसी योजनाओं को चलाया गया है और इसके परिणाम सकारात्मक रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में जनगणना 2001 के अनुसार बिहार भारत का सबसे पिछड़ा राज्य था। नीतीश सरकार ने इस कलंक को धोने के लिए शिक्षा विकास पर अत्यधिक बल दिया और उसके लिए कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय योजना, मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना, मुख्यमंत्री बालिका साईकिल योजना तथा नेशनल प्रोग्राम फॉर गर्ल्स एजुकेशन एन्ड एलीमेन्ट्री लेवल योजना चलायी जा रही है। इन योजनाओं के परिणाम सकारात्मक रहे हैं और शिक्षा दर में व्यापक वृद्धि हुई है। जनगणना 2001 में बिहार में साक्षरता प्रतिशत 47 था जो जनगणना 2011 के अनुसार बढ़कर 63.42 प्रतिशत हो गया है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर अधिक रही है। जनगणना 2001 में पुरुष साक्षरता 59.68 और महिला साक्षरता दर 33.12 प्रतिशत रही है जबकि जनगणना 2011 के अनुसार पुरूष साक्षरता दर 73.39 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 53. 33 प्रतिशत है। अर्थात् इस दश के में पुरुष साक्षरता दर में लगभग 14 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर में लगभग 20 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

जीवन प्रत्याशा की दृष्टि से भी सुशासन काल में सुधार आया है। इसके लिए स्वास्थ्य सुरक्षा पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसके लिए बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की गई है और कई योजनाएं चलाई गयी थी एवं समाज के निचले स्तर तक को स्वास्थ्य सुविधाएं पहुँचाने की कोशिश की गई है। जिसके परिणामस्वरूप यहाँ जीवन प्रत्याशा दर में वृद्धि हुई है। जनगणना 2001 में बिहार में जीवन प्रत्याशा 61.3 वर्ष औसत प्रति व्यक्ति था जो जनगणना रिपोर्ट 2011 के अनुसार 63.5 वर्ष औसत प्रतिव्यक्ति आयु हो गई है।

अतः स्पष्ट है कि सुशासन के द्वारा बिहार के सर्वांगीण विकास में तेजी आयी है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बिहार में सुशासन के तहत पंचायती राज संस्थाओं ने बापू के लक्ष्यों के अनुकूल कार्य कर लोकतंत्रात्मक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया है। इसमें दोष अवश्य है लेकिन प्रजातंत्र के क्रियान्वयन का यही सही तरीका है। समेकित विकास के लिए क्षेत्र विशेष की समस्याओं से संबंधित तथ्यों का समर्थन क्षेत्र विशेष की संस्थाओं द्वारा ही होना चाहिए तथा उसमें सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए। यह नितांत आवश्यक

है कि जनसहभागिता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी के उपरोक्त बिंदुओं को सुशासन के द्वारा सही दिशा देने के लिए पंचायती राज को एक रचानात्मक आंदोलन से जोड़ा जाये। यह उल्लेखनीय है कि गांधीवादी चिंतकों ने सहभागी लोकतंत्र की दृष्टि से पंचायती राज को एक जन आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया है। भारत की 70 प्रतिशत आबादी गांवों मे रहती है और इसीलिए ग्रामीण विकास के लिए पंचायती राज संस्थाओं के क्रियाकलाप को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। केंद्र और राज्य सरकार को इन संस्थाओं के योगदान पर बल देना होगा। आज पंचायती राज के क्रियाकलाप में युवाशक्ति के माध्यम से व्यापक जनसहभागिता को विकास कार्यों से जोड़ना सहज होगा। इस पहल से बिहार की युवाशक्ति का पलायन भी कम होगा। पंचायती राज के कार्यों में जन सहभागिता, पारदर्शिता और जिम्मेदारी को बढ़ाने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग, गैर-सरकारी संगठन और मीडिया की भी अहम् भूमिका होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) त्यागी एस., 2011, पंचायती राज और ग्रामीण विकास, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

(2) कुमार पी. 2011, लोक प्रशासनः सिद्धान्त एवं व्यवहार, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

(3) त्रिपाठी मधुसूदन, 2010, भारत में लोक प्रशासन, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

(4) वीर गौतम, 2012, पंचायती राज व्यवस्था, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

(5) कुमार नीतीश, 2015, विकसित बिहार की खोज, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

(6) चौधरी प्रसन्न तथा श्रीकान्त, 2016, बिहार में सामाजिक परिवर्तन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

(7) भारत की जनगणना, 2001 तथा 2011

बिहारः सुशासन के कार्यक्रम एवं विकास

पूनम कुमारी

सन् 2005 में बिहार की जनता ने पूरी आशा और विश्वास के साथ शासन की बागडोर श्री नीतीश कुमार के हाथों में सौंपी। इस उम्मीद के साथ कि अन्य राज्यों की भांति बिहार में भी कानून का राज स्थापित हो और समाज के सभी वर्गों का सुशासन, पारदर्शिता के साथ समावेशी विकास हो सके। जनता की उम्मीदों पर खरा उतरते हुए श्री नीतीश कुमार ने भी सुशासन के कार्यक्रम पर आधारित नीतियों, कार्यक्रमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया। उपलब्धियों, संभावनाओं एवं चुनौतियों से परिपूर्ण 17 वर्षों के सफर में बिहार की सरकार एवं जनता ने आपसी सहयोग एवं समर्थन से पूरे भारत वर्ष में बिहार की धुँधली हो चुकी छवि एवं सम्मान को पुर्नस्थापित करने में सफलता पाई है।

बिहार की बागडोर को अपने हाथ में लेते ही श्री नीतीश कुमार ने कई नीतिगत निर्णय लेते हुए कई सार्वजनिक संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं के पुर्ननिर्माण का बीड़ा उठाया। इस सफर में जहाँ एक ओर प्रभावी विधि व्यवस्था, कानून का राज स्थापित करने में सफलता मिली, वहीं दूसरी ओर मानव संसाधन के साथ-साथ उत्तम आधारभूत संरचना के विकास में कई नई ऊंचाईयाँ हासिल हुईं। लोगों के मन में सुरक्षा एवं निश्चय का माहौल बना, जिसका प्रभाव शहर तथा गाँवों में आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों में स्वतः दृष्टव्य है।समाज के कमजोर, साधनहीन एवं विकास से वंचित वर्गों को प्राथमिकता देते हुए बिहार के विकास की नींव रखी गई है।

ठोस, अनुशासित एवं आधुनिक प्रशासनिक एवं वित्तीय संरचना की स्थापना के परिणामस्वरूप बिहार का विकास द्रुत गति से हो रहा है। सरकार ने उच्च विकास दर को हासिल करने में समावेशी विकास के लक्ष्य को हासिल करने में समझौता नहीं किया है। सरकार द्वारा महादलितों, दलितों, अति पिछड़े और पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के लिए विशेष कल्याणकारी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। अपनी समृद्ध विरासत और गौरवशाली इतिहास को संजोने की भी पहल सरकार ने की है। अनेक ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण स्थलों पर उत्खनन का कार्य किया जा रहा है ताकि आज की पीढ़ी जान सके कि हमारा इतिहास और विरासत कितना

समृद्ध था। राज्य के ऐतिहासिक स्थलों को पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा रहा है ताकि अधिक से अधिक लोग बिहार आ सकें और अपने समृद्ध इतिहास और विरासत को जान सकें।

प्रशासन

प्रशासन तंत्र को मजबूती प्रदान करने हेतु सरकार ने जनवरी, 2006 में ''प्रशासनिक सुधार आयोग'' का गठन किया। आयोग की अनुशंसाओं के आलोक में बिहार कार्यपालिका नियमावली, 1979 में आवश्यक फेर बदल किये गये। विभागों का पुनगर्ठन करते हुए 44 विभागों का गठन तथा कार्यपालिका नियमावली के नियम 21 के अधीन चतुर्थ अनुसूची द्वारा प्रशासनिक मामलों के विभागीय स्तर पर कार्य निष्पादन हेतु प्रक्रियाओं का सरलीकरण किया गया।[1] राज्य की जनता से सीधा संवाद स्थापित करने, उनकी समस्याओं/शिकायतों से अवगत होने एवं उसके त्वरित निवारण हेतु प्रभावकारी व्यवस्था स्थापित करने हेतु ''जनता के दरबार में मुख्यमंत्री'' कार्यक्रम का नियमित आयोजन करना शुरू किया। मुख्य सचिव के अधीन जन-शिकायत कोषांग की स्थापना की गई। इस कोषांग द्वारा मासिक प्रतिवेदन की समीक्षा एवं पूरी कार्यवाही के कम्प्यूटरीकरण की व्यवस्था, विभागाध्यक्ष, प्रमंडलीय आयुक्त, ज़ोनल आई. जी. से लेकर डी. एम., एस. पी. तथा प्रखंड एवं थाना स्तर के पदाधिकारियों द्वारा एक निर्धारित दिवस पर जनता से मिलकर उनकी समस्याओं की सुनवाई एवं उसके निपटारे की कार्रवाई की जाती है। प्रशासनिक पारदर्शिता के क्षेत्र में राज्य में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के अंतर्गत जनवरी, 2007 में 'जानकारी' सुविधा केन्द्र की स्थापना की गई। आवेदकों द्वारा दूरभाष पर मांगी गई सूचनाओं के आधार पर सीधे आवश्यक कार्रवाई हेतु संबंधित विभाग को ऑनलाईन भेजने की व्यवस्था की गई। इस प्रणाली को वर्ष 2009 में डिज़िटल इम्पावरमेंट फाउण्डेशन, नई दिल्ली की ओर से स्थापित ''मंथन अवार्ड साउथ एशिया-2009'' दिया गया। भारत सरकार द्वारा ''जानकारी'' के लिए ई-गवर्नेंस हेतु "Outstanding Performance in Citizen Centric Service Delivery" राष्ट्रीय पुरस्कार (श्रेणी-गोल्ड) 2008-09 प्रदान किया गया। आम जनता को उनके काम से संबंधित सरकारी कार्यालय एवं पदाधिकारी की सही सूचना तथा दूरभाष संख्या उपलब्ध कराने हेतु एकीकृत हेल्पलाईन ''जिज्ञासा'' के नाम से अगस्त, 2010 से प्रारंभ है।[2] प्रशासनिक तंत्र की मजबूती हेतु सतत् परामर्श, बौद्धिक विकास, प्रशासन की सर्वोत्तम व्यवस्था तथा नागरिक केन्द्रित प्रशासनिक व्यवस्था के विकास के लिए ''सेंटर फॉर गुड गवर्नेंस'' की स्थापना की गई।

लोक शिकायत निवारण

आम जनता की समस्याओं एवं शिकायतों का समाधान राज्य सरकार की

सर्वोच्च प्राथमिकता रही है। शिकायतों की सुनवाई एवं निवारण का अवसर प्रदान करने की ठोस, पारदर्शी एवं जवाबदेह व्यवस्था कायम करने के उद्देश्य से गुड-गवर्नेंस की दिशा में सरकार द्वारा सम्पूर्ण क्रांति एवं विश्व पर्यावरण दिवस दिनांक-05 जून 2016 को पूरे राज्य में बिहार लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम, 2015 लागू किया गया है। अब जनता को उनकी शिकायतों की सुनवाई एवं उसके निवारण के अवसर का कानूनी अधिकार प्राप्त हो गया है। इतना ही नहीं, किसी शिकायत पर की गयी कार्रवाई अथवा पारित निर्णय की सूचना भी प्राप्त करने का उन्हें वैद्यानिक अधिकार इस अधिनियम द्वारा प्राप्त हुआ है। यह अपने आप में अभिनव प्रयोग है। बिहार देश का ऐसा पहला राज्य है, जहां आम लोगों को उनके परिवाद पर सुनवाई के साथ-साथ इसके निवारण का भी कानूनी अधिकार प्रदान किया गया है। आम जनता को राज्य सरकार द्वारा राज्य में चलायी जा रही किसी योजना, कार्यक्रम या सेवा के संबंध में कोई लाभ या अनुतोष मांगने हेतु परिवाद दायर करने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इतना ही नहीं, ऐसी किसी योजना, कार्यक्रम या सेवा का फायदा पहुंचाने में विफल रहने पर अथवा विलम्ब होने पर भी परिवाद दायर किया जा सकता है। किसी लोक सेवक द्वारा राज्य में प्रभावी किसी विधि, नीति, सेवा, कार्यक्रम या योजना के उल्लंघन से उत्पन्न किसी मामले में भी आम जनता को शिकायत करने का अधिकार इस अधिनियम के द्वारा प्रदान किया गया है। सरकार द्वारा निःशुल्क परिवाद दायर करने की व्यवस्था की गयी है। राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए स्वतंत्र प्रशासनिक ढाँचा विकसित करते हुए राज्य के सभी 101 अनुमंडलों, सभी 38 जिला मुख्यालयों के साथ सभी 44 विभागों के लिए लोक शिकायत निवारण पदाधिकारियों के पद सृजित किए गए हैं और इन पर बिहार प्रशासनिक सेवा के अनुभवी पदाधिकारियों की तैनाती भी कर दी गयी है।[3]

ठोस विधि व्यवस्था एवं भ्रष्टाचार उन्मूलन

राज्य में विधि व्यवस्था बहाल कर कानून का राज स्थापित करना सबसे बड़ी चुनौती थी जिसे सरकार ने सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर बिना कोई द्वेष या भेदभाव से कानूनी प्रावधानों एवं वैधिक प्रक्रियाओं का पालन करते हुए अपराध पर नियंत्रण एवं अपराधियों को निष्प्रभावी करने के लिए ठोस व्यवस्था लागू किया। साथ ही, संगठित अपराध पर कड़ाई से अंकुश लगाया गया है। न्यायालयों से समन्वय कर त्वरित विचारण की व्यवस्था लागू की गई और बड़ी संख्या में न्यायालय द्वारा अपराधियों को सजा सुनाई गई। जनसंख्या के अनुपात में पुलिस बल में नियुक्ति सहित, पुलिस को सभी आवश्यक संसाधनों के साथ-साथ उनके आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। असामाजिक तत्वों द्वारा जहाँ कहीं भी कलह पैदा करने या साम्प्रदायिक स्थिति पैदा करने की कोशिश की गयी तो सरकार ने त्वरित कार्रवाई

करते हुए लोगों से संवाद एवं प्रशासनिक हस्तक्षेप से इन घटनाओं को नियंत्रित किया है। इन प्रभावी कार्रवाईयों से जहाँ एक ओर नागरिकों के मन में सुरक्षा का भाव जगा, वहीं दूसरी ओर अपराधियों में कानून का डर स्थापित हुआ।[4]

ज़ीरो टॉलरेंस की नीति अपनाकर भ्रष्टाचार के विरूद्ध सरकार की मुहिम बेहद सराहनीय है। कानूनी एवं संस्थागत व्यवस्था कर भ्रष्ट लोक सेवकों के विरूद्ध प्रभावकारी कार्रवाई सुनिश्चित की गई है। निगरानी अन्वेषण ब्यूरो, विशेष निगरानी इकाई एवं आर्थिक अपराध इकाई के द्वारा भ्रष्टाचार में संलिप्त, आय से अधिक संपत्ति उपार्जित करने एवं पद का दुरूपयोग करने वाले लोक सेवकों के विरूद्ध मामले दर्ज कर उन्हें सजा दिलाने एवं उनकी अवैध संपत्ति को जब्त करने की ठोस कार्रवाईयाँ की गईं हैं। देश में पहली बार जब्त अवैध संपत्तियों के भवनों में गरीब एवं निःशक्त बच्चों के लिए विद्यालय खोले गए। प्रशासनिक स्तर पर भी विभागीय कार्रवाई संचालित कर बड़ी संख्या में सरकारी कर्मियों को सेवा से बर्खास्त किया गया है। प्रशासन के निचले स्तरों पर भ्रष्टाचार की समस्या से निदान के लिए बिहार लोक सेवा अधिकार कानून को लागू किया गया है, जिसके तहत 51 लोक सेवाओं को एक नियत समय-सीमा के अंतर्गत नागरिकों को उपलब्ध कराया जा रहा है।[5]

आधारभूत संरचना एवं विद्युतीकरण

राज्य के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए उत्तम आधारभूत संरचना के विकास पर सरकार ने उचित कदम उठाये हैं। बिहार में सड़कों, पूल-पुलियों का जाल बिछाकर न केवल सूदुर क्षेत्रों को संपर्कता प्रदान की बल्कि विभिन्न क्षेत्रों और लोगों को भी इससे जोड़ा। इससे ग्रामीण आर्थिक गतिविधियों को भी बल मिला है। वर्ष 2005-15 तक पथ निर्माण एवं ग्रामीण कार्य विभाग ने मिलकर 66500 कि.मी. से अधिक वृहद् और ग्रामीण सड़कों का निर्माण/उन्नयन किया है। अभिगम्यता बढ़ाने हेतु 5431 वृहद् पुल का भी निर्माण कराया है। नई आधारभूत संरचना के निर्माण के साथ-साथ उसके रख-रखाव की भी नीति बनाई गई। राज्य के हर सुदूर क्षेत्र से राजधानी पटना छह घंटे में पहुँचने का लक्ष्य प्राप्त करने के पश्चात अब इसे घटाकर पाँच घंटे करने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।[6]

बिहार देश का अकेला राज्य था जहाँ बिजली का उत्पादन नगण्य था और संचरण एवं वितरण की स्थिति काफी दयनीय थी। इसे चुनौती मानते हुए आशातीत सफलता हासिल की गई है। आज सभी जिला मुख्यालयों में 22-24 घंटे एवं ग्रामीण क्षेत्रों में औसतन 14 घंटे बिजली आपूर्त्ति की जा रही है। उत्पादन, संचरण एवं वितरण प्रणाली के व्यापक सुधार हेतु आठ हजार करोड़ रूपये से ज्यादा की योजनाऐं क्रियान्वित की जा रही हैं। सभी विद्युतरहित गाँवों के विद्युतीकरण की योजना पर कार्य तेजी से जारी है।[7]

महिला सशक्तिकरण एवं सामाजिक सुरक्षा

सरकार महिला सशक्तिकरण के प्रति संवेदनशील है। महिला को मुख्यधारा से जोड़ने एवं उनके साथ होनेवाले भेद-भावों को दूर करने के लिए अनेकों उपाय किये गये हैं। सर्वप्रथम पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर निकायों तथा शिक्षकों की नियुक्ति में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर महिला सशक्तिकरण की मजबूत नींव रखी गई। इसके अलावा अनेकों पहल जैसे महिला पुलिस थाना की स्थापना, महिला बटालियन का गठन, पुलिस सब-इंस्पेक्टर एवं कॉन्स्टेबलों की बहाली में महिला को 35 प्रतिशत आरक्षण और जीविका में महिला स्वयं सहायता समूहों के गठन से महिलाओं में आत्मबल, विश्वास और आत्मनिर्भरता बढ़ी है। जीविका परियोजना के तहत सहायता समूहों के गठन से लाखों महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हुई है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की आमदनी बढ़ाने का अवसर मिला है। यह एक मौन क्रांति है, जो महिलाओं के सशक्तिकरण के साथ-साथ, बिहार के सामाजिक परिदृश्य को भी तय करेगी।[8]

वर्ष 2005-06 तक सामाजिक सुरक्षा हेतु मात्र दो पेंशन योजनाऐं संचालित थीं, जिनमें पेंशनधारियों की कुल संख्या 12.25 लाख थी। आज राज्य में छह पेंशन योजनाऐं संचालित की जा रही है जिसमें 67.15 लाख लाभार्थी पेंशन का लाभ ले रहे हैं। सरकार की रणनीति उन सभी नागरिकों को सशक्त बनाने की रही है, जो तुलनात्मक रूप से वंचित एवं हाशिए पर हैं। सरकार का प्रयास है कि सभी को बराबरी का हक मिले और वे विकास की मुख्य धारा में शामिल हो सकें।

शिक्षा और स्वास्थ्य

राज्य की विशाल जनसंख्या के संसाधन एवं क्षमता संवर्द्धन को दृष्टिगत कर शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए विद्यालय से वंचित वर्गों का दाखिला सुनिश्चित कराने एवं लड़के-लड़कियों के बीच शिक्षा के अंतर को कम करने हेतु बहुआयामी रणनीतिक उपाय किए गये हैं। नए प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की गई, कक्षाओं की संख्या बढ़ाई गई, शिक्षकों की उपलब्धता एवं उपस्थिति सुनिश्चित करते हुए पुस्तक, पोशाक, साईकिल, प्रोत्साहन एवं छात्रवृत्ति जैसे योजनाओं को चलाया गया। इन सभी प्रयासों का समेकित परिणाम हुआ कि स्कूलों में उपस्थिति बढ़ी एवं स्कूल से वंचित बच्चों खासकर लड़कियों की संख्या में निरंतर कमी आयी है। टोलियों में साईकिल चलाकर स्कूल जाती लड़कियाँ, बिहार के विकास एवं बदलाव की जीती-जागती तस्वीर हैं। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण से उच्च शिक्षा की माँग बढ़ी। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु अनेक राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं तकनीकी

संस्थानों की स्थापना की गई। राज्य के युवाओं के कौशल विकास के लिए ''बिहार कौशल विकास मिशन'' की स्थापना की गई है।[9]

नागरिकों के जीवन में गुणात्मक सुधार के लिए स्वास्थ्य के महत्व को पहचानते हुए राज्य सरकार ने स्वास्थ्य व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए बुनियादी स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में सुधार किया। एक सहक्रियाशील दृष्टिकोण अपनाते हुए स्वास्थ्य व्यवस्था को अच्छे स्वास्थ्य के निर्धारक जैसे पोषण, साफ-सफाई, स्वच्छता, सुरक्षित पेय जल आदि के साथ जोड़ कर विकसित किया गया। रणनीति के तहत स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि कर बुनियादी ढाँचे में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने का प्रयास किया गया है। श्रमशक्ति का श्रेष्ठ उपयोग करने हेतु स्वास्थ्य कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण किया तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य मानकों को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक प्रखंड के स्वास्थ्य केन्द्र एवं जिला अस्पताल को एक क्रियाशील स्वास्थ्य केन्द्र के रूप में संचालित करने की पहल की गई। इससे लोगों का विश्वास स्वास्थ्य सेवाओं पर बढ़ा और बड़ी संख्या में वे अपने उपचार के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र का उपयोग कर रहे हैं।[10]

औद्योगिक नीतियाँ

ऐतिहासिक नीतिगत कारणों, अधिक जनसंख्या का घनत्व, आधारभूत संरचना में पिछड़ापन, निवेश एवं खनिजों का अभाव एवं राज्य का थलरूद्ध होने औद्योगीकरण के लिए बाधक था। इस स्थिति को बदलते हुए औद्योगिकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने औद्योगिक प्रोत्साहन नीति का सफल क्रियान्वयन किया है। आकर्षक प्रोत्साहन एवं नीतिगत पहल के कारण आज राज्य में 306 औद्योगिक इकाईयों में उत्पादन प्रारंभ हो गया है, जिसमें लगभग 7560 रूपये का निवेश हुआ है। इसके अतिरिक्त 183 इकाईयों के स्थापना का कार्य प्रगति पर है। खाद्य प्रसंस्करण, कृषि यंत्र उद्योग एवं सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग को थ्रस्ट एरिया मानते हुए प्रोत्साहन हेतु विशेष नीतियाँ बनाई गई हैं।[11]

कृषि सुधार

राज्य के विकास के रणनीति में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई, क्योंकि राज्य की 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और जनसंख्या का 76 प्रतिशत अपनी आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित है। फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता को राष्ट्रीय स्तर से बेहतर बनाने के लिए वर्ष 2008 में पहला कृषि रोड मैप क्रियान्वित किया गया। योजनाओं का लाभ उठा कर मेहनती किसानों ने राज्य में धान, गेहूँ एवं मक्का के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि की और हम राष्ट्रीय औसत से आगे निकल गये हैं। इस सफलता से उत्साहित होकर सरकार ने किसानों को केन्द्र बिन्दु में रखते हुए दूसरा कृषि रोड मैप बनाया। इसमें सभी महत्वपूर्ण अवयवों को

समेटा गया है ताकि प्रथम हरित क्रांति से छूटे बिहार के कृषि क्षेत्र में इन्द्रधनुषी क्रांति लायी जा सके जो टिकाऊ तथा सदाबहार हो। इसके माध्यम से सरकार अनाज, दाल, तिलहन, फल, सब्जी, गन्ना, जूट, मधु, मशरूम, दूध, अंडा, मांस तथा मछली के विकास हेतु इन्द्रधनुषी क्रांति लाने के लिए काम किये जा रहे हैं। इसमें कृषि उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि करना, उत्पाद के भंडारण, मूल्य संवर्द्धन, विपणन एवं संस्करण की व्यवस्था करना, सिंचाई क्षमता का पुर्नस्थापन एवं विस्तार, समर्पित फीडर के माध्यम से बिजली की उपलब्धता बढ़ाना, 250 तक के आबादी की बसावटों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना, भूमि सर्वेक्षण एवं चकबंदी की व्यवस्था और पांच वर्षों में 24 करोड़ वृक्ष लगाना शामिल है।[12]

आर्थिक विकास

विगत् पंचवर्षीय योजनाओं के तहत व्यय की गयी राशि में लगातार वृद्धि दर्ज की गयी है। वर्ष 2012-13 से वर्ष 2015-16 तक के लिए 12वीं पंचवर्षीय योजना के तहत स्वीकृत उद्व्यय 165128.96 करोड़ रूपये के विरूद्ध वास्तविक व्यय की राशि 157629.98 करोड़ रूपये है, जो निर्धारित लक्ष्य का 95.45 प्रतिशत है। 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए राज्य योजना उद्व्यय 228452 करोड़ रूपये है।

Five Year Plan	Expenditure (Rs. in Crore)
1st	102
2nd	177
3rd	332
4th	479
5th	1187
6th	2947
7th	6033
8th	5404
9th	10053
10th	21045
11th	76037
12th	228452

वित्तीय वर्ष 2004-05 में राज्य योजना उद्व्यय मात्र 3059.22 करोड़ रूपये था जो वित्तीय वर्ष 2016-17 में बढ़कर 79014.99 करोड़ हो गया है अर्थात लगभग 26 गुना वृद्धि दर्ज की गई है। बिहार में पिछले 10 वर्षों में राजस्व संग्रहण करीब तीन हजार पाँच सौ करोड़ रूपये से बढ़कर 25 हजार 499 करोड़ रूपये हो गया है। वर्ष

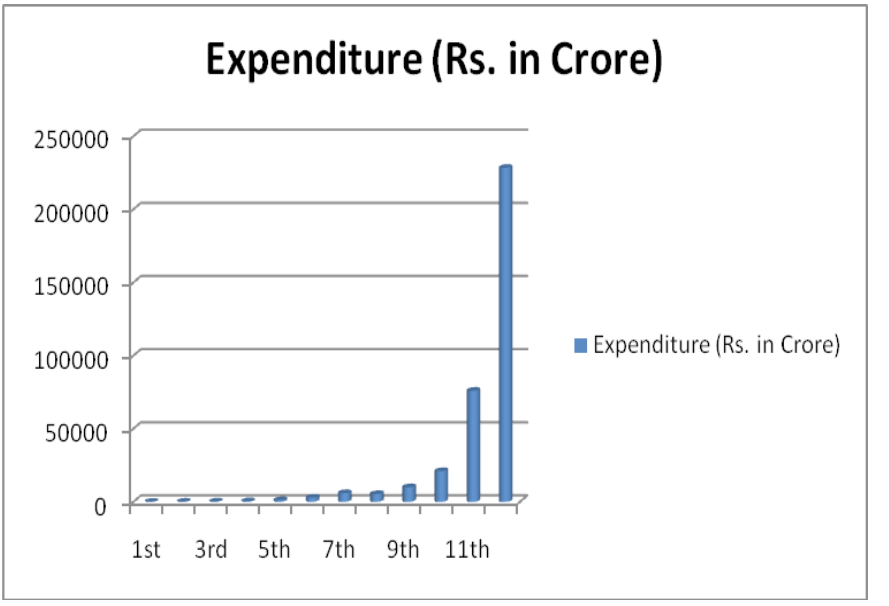

2005-06 में राज्य का वार्षिक बजट 22 हजार 500 करोड़ था, जो अब एक लाख 44 हजार 696 करोड़ रूपये है। वर्ष 2015-16 के प्रचलित मूल्य पर राज्य सकल घरेलू उत्पाद का द्रुत अनुमान 413503 करोड़ रूपये है, जबकि वर्ष 2014-15 (औपबंधिक) के लिए यह अनुमान 373920 करोड़ रूपये है। वर्ष 2015-16 में राज्य सकल घरेलू उत्पाद में 10.59 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान, जो देश की वृद्धि दर से 8.71 प्रतिशत अधिक है।[13]

विगत् पांच वर्षों में बिहार के सकल राज्य घरेलू उत्पाद का राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में प्रतिशत भागीदारी निम्नवत हैः–

Percentage Share of GSDP in GDP (All India) at Current Prices (Rs. in Crore)			
Year	**GSDP**	**GDP National**	**Percentage Share of GSDP in GDP**
2011-12	247144	8736039	2.83
2012-13	282368	9951344	2.84
2013-14	317101	11272764	2.81
2014-15 (P)	373920	12488205	2.99
2015-16 (Q)	413503	13576086	3.05

भारत की तुलना में बिहार का राज्य घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर निम्नवत हैः–

Yearly Growth in GSDP/GDP at Current Prices		
Year	**Bihar**	**India**
2012-13	14.25	13.91
2013-14	12.30	13.28
2014-15 (P)	17.92	10.78
2015-16 (Q)	10.59	8.71

आपदा प्रबंधन

वर्ष 2016 में राज्य में आए बाढ़ से 31 जिलों के 182 प्रखंडों की 1421 पंचायतों के 5014 गांवों की 87.82 लाख की मानव आबादी एवं 5.60 लाख पशु प्रभावित हुए। कुल 16.70 लाख लोगों का निष्क्रमण एवं 1351 राहत शिविरों का संचालन, जहां 9.88 लाख लोगों को रखा गया था। राहत शिविर में रहनेवाले व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन सुबह का नाश्ता, दिन-रात्रि के पके भोजन के साथ-साथ शुद्ध पेयजल, चिकित्सीय सुविधा, साफ-सफाई एवं पर्याप्त रोशनी तथा पुरुषों एवं महिलाओं के लिए अलग-अलग शौचालय की व्यवस्था की गयी थी। बाढ़ पीड़ितों के बीच मुफ्त सहायता वितरण हेतु खाद्यान्न के बदले नकद मद में 407 करोड़ रूपये तथा नकद अनुदान मद में 402 करोड़ रूपये वितरित किये गये। बाढ़ के दौरान बचाव एवं राहत, आबादी निष्क्रमण तथा आवागमन को सुचारू रूप से चलाने के लिए 4573 देशी नावों/मोटरबोटों का परिचालन किया गया।[14]

सेंडई फ्रेमवर्क एग्रीमेंट के परिप्रेक्ष्य में 15 वर्षीय आपदा जोखिम न्यूनीकरण रोडमैप 2015-2030 तैयार करने वाला बिहार देश का पहला राज्य बना। आपदा रिस्पांस में मानदंड स्थापित करनेवाला बिहार देश का पहला राज्य है। 24 घंटे में मृतकों के परिवार को अनुग्रह अनुदान भुगदान की व्यवस्था की गई है। आपदाओं में त्वरित रिस्पांस एवं राहत पहुंचाने हेतु आपदा प्रबंधन विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में एस.डी.आर.एफ. की पूर्णकालिक बटालियन को गठित एवं कार्यशील करनेवाला बिहार देश का पहला राज्य बना।

मद्य निषेध

शराबबंदी के संकल्प के साथ तीसरी बार चुनाव के मैदान में उतरकर महागठबंधन के घोषणापत्र में शराबबंदी के संकल्प को अपार जन समर्थन प्राप्त हुआ। ग्रामीण हो या शहरी क्षेत्र, सभी जगह महिलाओं, बच्चों एवं पुरूषों द्वारा इस शराबबंदी का व्यापक तौर पर स्वागत किया गया। नई सरकार के गठन के उपरांत, दिनांक-26 नवम्बर, 2015 को मद्य निषेध दिवस के अवसर पर माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने शराबबंदी का संकल्प लेते हुए 21 दिसम्बर, 2015 को नई उत्पाद नीति,

2015 को लागू किया। इस नीति के तहत पूरे राज्य में मद्यपान निषेध लागू करने का लक्ष्य रखा गया साथ ही शराब के आदी लोगों के उपचार के साथ-साथ शराब की बुराइयों से अवगत कराते हुए मद्य निषेध के प्रति जागरूकता पैदा करने की व्यवस्था की गई और इसे एक अभियान का रूप दिया गया। नीति को पूरी दृढ़ता से लागू करने के लिए प्रवर्तन तंत्र को सुदृढ़ किया गया।

नई उत्पाद नीति के तहत प्रथम चरण में पूरे बिहार में देशी शराब 1 अप्रैल, 2016 से बंद कर दी गई और ग्रामीण क्षेत्रों में विदेशी शराब को भी बंद करने का निर्णय लिया गया। शराबबंदी के समर्थन में इस प्रबल जन-समर्थन के मद्देनजर एवं महिला समूहों का शहरी क्षेत्रों में विदेशी शराब खोलने के विरूद्ध प्रदर्शन को देखते हुए सरकार द्वारा यह सम्यक विचारोपरांत एवं कानूनी राय-विचार कर निर्णय लिया गया कि जनमानस की धारणा का सम्मान करते हुए शहरी क्षेत्रों में भी विदेशी शराब पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाए और राज्य को पूर्णतया शराब मुक्त बनाया जाए। इस प्रकार, 5 अप्रैल 2016 से संपूर्ण राज्य में विदेशी शराब को भी प्रतिबंधित कर दिया गया। शराबबंदी के पक्ष में मुहिम चलाने और शराब के दुष्प्रभावों को प्रचारित करने के लिए व्यापक जन अभियान चलाया गया। सभी सरकारी विद्यालयों में नामांकित बच्चों के अभिभावकों ने शराब का सेवन नहीं करने एवं दूसरे लोगों को शराब से दूर रहने के लिए प्रेरित करने का संकल्प लिया। अभिभावकों ने एक करोड़ 19 लाख संकल्प पत्र भरे। 48 हजार से अधिक टोलों में द्वार-द्वार संपर्क कर ग्राम संवाद कार्यक्रम सम्पन्न कराया गया, जिसमें चार लाख 70 हजार जीविका समूह और 20 हजार ग्राम संगठन जुड़े हैं। कुल नौ लाख 77 हजार से अधिक स्थानों पर मद्य निषेध से संबंधित नारे लिखे गये हैं। 124 कला जत्था के कलाकारों द्वारा राज्य के सभी पंचायतों में कुल 25 हजार 300 से अधिक स्थानों पर गीत, नाटक एवं सामूहिक चर्चा के माध्यम से मद्य निषेध के संदेश को लोगों तक पहुँचाया। मद्यपान के आदी लोगों के स्वास्थ्य एवं चिकित्सा को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक जिला मुख्यालय में नशा मुक्ति केन्द्र खोला गया जहां नशामुक्ति के लिए उपचार/परामर्श दिया जा रहा है।

शराबबंदी के अन्य प्रयासों की तुलना में, बिहार सरकार का यह प्रयास अनूठा है क्योंकि मजबूत तंत्र सामाजिक भागीदारी दोनों इस अभियान के अभिन्न अंग हैं। सभी के सहयोग से शराबबंदी एक सामाजिक अभियान का रूप ले चुका है। साथ ही साथ प्रभावकारी कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कानूनी प्रावधान भी किए गए हैं। पूर्ण शराबबंदी से समाज अधिक सशक्त, स्वस्थ एवं संयमी हो रहा है, जिसका अतुल्य प्रभाव बिहार की प्रगति में परिलक्षित होगा। शराबबंदी के कारण नागरिकों के स्वास्थ्य में बेहतरी, परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार, पारिवारिक हिंसा, घरेलू कलह एवं सामाजिक अपराध में कमी परिलक्षित हो रही है। बिहार में लागू शराबबंदी का सकारात्मक प्रभाव सामाजिक सौहार्द पर भी पड़ा है और गांव एवं

शहरों में शांति एवं सद्भाव का माहौल स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अस्पतालों में शराब-जन्य रोगियों की संख्या में काफी कमी आई है। अक्टूबर, 2015 तक की तुलना में अक्टूबर, 2016 तक हत्या में 26 प्रतिशत, डकैती में 25 प्रतिशत, भीषण दंगा में 40 प्रतिशत और साधारण दंगा में 21 प्रतिशत की कमी आई है। सड़क दुर्घटना में भी 21 प्रतिशत की कमी आई है।[15]

सात निश्चय

सरकार की प्राथमिकता है कि सभी राज्यवासियों को न सिर्फ मूलभूत सुविधाएं यथा पेयजल, शौचालय एवं बिजली उपलब्ध हो बल्कि आधारभूत संरचनाओं यथा सड़कें, गली-नाली, पुल आदि का भी विस्तार हो। युवाओं और महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं सक्षम बनाने तथा उनके लिए उच्च, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था हेतु दृढ़संकल्पित है। इन्हीं बिन्दुओं को समाहित करते हुए सरकार ने विकसित बिहार के सात निश्चय की रूप-रेखा तैयार की है तथा उन्हें सुशासन के कार्यक्रम 2015-20 के तहत समाहित किया है।[16] सात निश्चय के तहत कार्यान्वित योजनाओं को सार्वभौमिक स्वरूप दिया गया है ताकि इसका लाभ बगैर किसी भेद-भाव के सभी क्षेत्रों, समुदायों, वर्गों के नागरिकों को प्राप्त हो सके।

निश्चय १: आर्थिक हल, युवाओं को बल

राज्य सरकार द्वारा बिहार की युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर बनाने, शिक्षा, कौशल विकास एवं रोजगार के अवसर प्राप्त करने एवं उन्हें सक्षम बनाने के लिए निम्नांकित योजनाएं शुरू की गई हैं:–

1. *बिहार स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड योजना–* इस योजना का प्रारंभ 2 अक्टूबर, 2016 को हुआ है जिसके तहत राज्य के इच्छुक 12वीं पास विद्यार्थी, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें शिक्षा ऋण बैंकों के माध्यम से उपलब्ध कराया जाएगा तथा सरकार द्वारा चार लाख रूपये तक के ऋण की गारंटी दी जाएगी। यह योजना आर्थिक कारणों से उच्च शिक्षा प्राप्त करने से वंचित विद्यार्थियों के लिए सहायक साबित होगी। साथ ही, इससे उच्च शिक्षा में नामांकन दर के प्रतिशत में भी सुधार आएगा।
2. *मुख्यमंत्री निश्चय स्वयं सहायता भत्ता योजना–* इस योजना के तहत 20 से 25 बेरोजगार युवाओं को रोजगार तलाशने के दौरान सहायता के तौर पर 1000 रूपये प्रति माह की दर से स्वयं सहायता भत्ता दो वर्षों के लिए दी जाएगी। वित्तीय वर्ष 2016-17 में 18.17 लाख युवाओं को लाभान्वित करने सहित अगले पाँच वर्षों में 69 लाख व्यक्तियों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है।

3. *कुशल युवा कार्यक्रम*– इस योजना के तहत 15 से 25 वर्ष के युवा जो मैट्रिक अथवा इंटरमीडिएट उत्तीर्ण हैं, उन्हें भाषा एवं संवाद कौशल, बुनियादी कम्प्यूटर ज्ञान एवं व्यवहार कौशल का प्रशिक्षण दिया जाएगा। यह प्रशिक्षण बिहार कौशल विकास मिशन कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक प्रखंड में एक प्रशिक्षण केन्द्र का निर्माण कर करेगी।

4. *बिहार स्टार्ट-अप नीति, 2016*– राज्य में युवाओं की उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए यह नीति तैयार की गई है। वित्तीय सहायता, इन्क्यूबेशन सेंटर, फंडिंग, प्रचार–प्रसार, प्रमाणीकरण आदि की व्यवस्था इस नीति का मुख्य अंग है। बिहार औद्योगिक प्रोत्साहन नीति, 2016 को लागू कर खाद्य प्रसंस्करण, पर्यटन, लघु मशीन निर्माण, सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर, प्लास्टिक एवं रबर, चमड़ा, स्वास्थ्य सेवाएं, गैर पारंपरिक उर्जा, वस्त्र एवं तकनीकी शिक्षा प्रक्षेत्रों को शामिल किया गया है।

5. *सभी विश्वविद्यालयों एवं महावद्यालयों में निःशुल्क वाई-फाई*– वर्त्तमान परिवेश में राज्य के युवाओं को ई-गवर्नेंस से जोड़ने के लिए निःशुल्क वाई-फाई की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु कुल 220.50 करोड़ रूपये की स्वीकृति प्रदान गई है। इस वित्तीय वर्ष में राज्य के 16 विश्वविद्यालय, 262 अंगीभूत महाविद्यालय, सात राजकीय अभियंत्रण महाविद्यालय, नौ चिकित्सा महाविद्यालय, आठ कृषि महाविद्यालय सहित कुल 312 संस्थानों में निःशुल्क वाई-फाई के माध्यम से इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य है।[17]

निश्चय 2: आरक्षित रोजगार महिलाओं का अधिकार

महिला सशक्तिकरण हेतु सुशासन के कार्यक्रम के अंतर्गत विकसित बिहार के सात निश्चय में से एक यह कार्यक्रम राज्य के सभी सेवा संवर्गों की सीधी नियुक्ति में महिलाओं के लिए 35 प्रतिशत क्षितिज आरक्षण की व्यवस्था लागू की गई है।

निश्चय 3: हर घर बिजली लगातार

इस योजना के तहत ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के प्रत्येक घर में मुख्यमंत्री विद्युत संबंध योजना के अंतर्गत विद्युत की उपलब्धता प्रदान करने का लक्ष्य है। 1387 विद्युत संपर्कविहीन गांवों की पहचान कर ली गई है जिसमें से 447 गांवों को प्रथम वर्ष तथा द्वितीय वर्ष में 940 गांवों को विद्युत संपर्कता प्रदान करने का लक्ष्य है।

निश्चय 4: हर घर में नल का जल

यह निश्चय राज्य के लगभग दो करोड़ परिवारों को उनके घर में पीने का साफ-स्वच्छ पानी उपलब्ध कराने का भागीरथ प्रयास है, जिसे बिहार के हर मोहल्ला

और गांव के लोगों के समेकित सहयोग से पूरा किया जाएगा। इसके तहत सभी घरों में पाईप का जल पहुंचाने तथा लोगों की चापाकल और पेयजल के अन्य साधनों पर निर्भरता समाप्त करने हेतु योजनाओं का सूत्रण किया गया है। इस निश्चय को पूरा करने हेतु राज्य सरकार द्वारा निम्न चार योजनाऐं प्रारंभ की गई हैंः–

- *मुख्यमंत्री ग्रामीण पेयजल निश्चय योजना–* इस योजना के तहत राज्य के गैर-गुणवत्ता प्रभावित 5013 ग्राम पंचायतों के सभी वार्डों के सभी परिवारों को पाईप के माध्यम से नल द्वारा स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति की जाएगी।
- *मुख्यमंत्री ग्रामीण पेयजल (गुणवत्ता प्रभावित क्षेत्र) निश्चय योजना–* इस योजना का कार्यान्वयन वैसे पंचायतों में कराया जा रहा है, जहां का जल आयरन, फ्लोराईड या आर्सेनिक से प्रभावित है। इस योजना के तहत राज्य के 2411 ग्राम पंचायतों के सभी 22261 गुणवत्ता प्रभावित बसावटों के सभी परिवारों को पाईप के माध्यम से नल द्वारा स्वच्छ पेयजल की आपूत्ति की जाएगी।
- *मुख्यमंत्री ग्रामीण पेयजल (गैर गुणवत्ता प्रभावित क्षेत्र) निश्चय योजना–* इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले चिन्हित 1683 वैसे ग्राम पंचायतों, जहां जल पूर्ण एवं आंशिक रूप से गुणवत्त प्रभावित नहीं है, के सभी परिवार लाभान्वित होंगे।
- *मुख्यमंत्री शहरी पेयजल योजना–* इस योजना के तहत राज्य के सभी 140 नगर निकायों के नल-जल से अनाच्छादित परिवारों को पाईप के माध्यम से नल द्वारा स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति की जाएगी।

निश्चय 5: घर तक, पक्की गली–नालियां

इस निश्चय के तहत प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के क्रियान्वयन के उपरांत, शेष बचे राज्य के सभी संपर्कविहीन बसावटों को पक्की सड़क से जोड़ा जाना है तथा सभी गांव एवं शहरों में गली-नाली का निर्माण कराया जाना है। इस निश्चय को पूरा करने हेतु राज्य सरकार द्वारा तीन योजनाऐं प्रारंभ की गई हैः–

- ग्रामीण टोला संपर्क निश्चय योजना,
- मुख्यमंत्री ग्रामीण गली-नाली पक्कीकरण निश्चय योजना, एवं
- मुख्यमंत्री शहरी नाली-गली पक्कीकरण निश्चय योजना।

निश्चय 6: शौचालय निर्माण-घर का सम्मान

इस योजना का कार्यान्वयन ''लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान'' के तहत की जा रही है। इस निश्चय के अंतर्गत खुले में शौच से मुक्त, स्वस्थ एवं स्वच्छ बिहार के

लिए राज्य के प्रत्येक घर में बगैर किसी भेद-भाव के सभी घरों के लिए शौचालय की व्यवस्था करने का लक्ष्य है। इस हेतु दो योजनाएं प्रारंभ की गई हैं:–

- लोहिया स्वच्छ बिहार अभिया, एवं
- शौचालय निर्माण (शहरी क्षेत्र) योजना।

निश्चय 7: अवसर बढ़े, आगे पढ़ें

इस निश्चय के तहत राज्य में तकनीकी शिक्षा के अवसरों को और बढ़ाने एवं युवाओं को राज्य में ही तकनीकी शिक्षा का बेहतर अवसर प्रदान करने का लक्ष्य है। इसे पूर्ण करने हेतु जिला एवं अनुमंडल में उच्च, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा की समेकित व्यवस्था की जानी है। इसके तहत निम्नांकित संस्थानों की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है:–

- प्रत्येक जिला में जी.एन.एम. स्कूल, पैरा-मेडिकल संस्थान, पॉलिटेकनीक संस्थान, महिला औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, अभियंत्रण महाविद्यालय की स्थापना,
- सभी चिकित्सा महाविद्यालयों में नर्सिंग कॉलेजों की स्थापना, एवं
- प्रत्येक अनुमंडल में ए.एन.एम. स्कूल एवं सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना।

निष्कर्ष

बिहार ने बड़े ही कम समय में राजनीति, प्रशासन एवं विकास में क्रांतिकारी परिवर्त्तन को प्रदर्शित किया है। वर्त्तमान सरकार ने बेहद सावधानी, योजनबद्ध तरीकों एवं प्रयासों से बिहारियों के जीवनस्तर को ऊपर उठाने में सफलता हासिल की है। आज बिहारी कहलाना बेहद गौरव और सम्मान की बात मानी जाने लगी है।

विश्व के सबसे बड़े संवैधानिक देश भारत के बिहार जैसे बड़े राज्य में यह सकारात्मक बदलाव राष्ट्रीय स्तर पर बेहद महत्वपूर्ण है। साथ ही, बिहार 243 विधान सभा सीटों के साथ देश के भविष्य की दशा-दिशा निर्धारित करने में अहम भूमिका अदा करने तथा घरेलू से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक भारत के कदमों को प्रभावित करने में सक्षम है। बिहार के विकास और सुशासन को यदि इसी प्रकार बरकरार रखा गया तो आनेवाला सदी बिहारियों के लिए और भी खुशहाल एवं समृद्ध होगी।

संदर्भ सूची

1. बिहार सरकार, सामान्य प्रशासन विभाग, *प्रशासनिक सुधार आयोग प्रतिवेदन 2006*
2. http://bpsm.bih.nic.in/jigyasa.htm
3. http://lokshikayat.bihar.gov.in/

4. http://home.bih.nic.in/
5. http://www.vigilance.bih.nic.in/
6. http://www.rcd.bih.nic.in/
7. http://www.energy.bih.nic.in/
8. http://www.icdsbih.gov.in/Women_Empowerment.aspx?GL=2&PL=4
9. http://www.educationbihar.gov.in/
10. http://www.health.bih.nic.in/
11. http://www.industries.bih.nic.in/
12. http://www.krishi.bih.nic.in/
13. Government of Bihar, Finance Department, *Economic Survey*, 2015-16.
14. http://www.disastermgmt.bih.nic.in/
15. http://excise.bih.nic.in/
16. http://pmjandhanyojana.co.in/nitish-7-saat-nischay-resolves-scheme-yojana-bihar/
17. https://www.7nishchay-yuvaupmission.bihar.gov.in/

लेख एवं रिपोर्ट

1. चाँद, भी.। पब्लिक सर्विस डिलीवरी ईन इंडियाः अंडरस्टैंडिंग द रिफॉर्म प्रोसेस (ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010)।
2. विटसोई, जे0। डेमोक्रेसी अगेन्स्ट द स्टेटः द पॉलिटिक्स ऑफ कास्ट इम्पावरमेंट इन बिहार, (कैम्ब्रिजः यूनिवर्सिटी ऑफ कैम्ब्रिज, 2007)।
3. डेबरॉय, बी. एण्ड भंडारी, एल.। इकॉनोमिक फ्रीडम फॉर स्टेट्स ऑफ इंडिया (नई दिल्लीः राजीव गाँधी इंस्टीच्यूट ऑफ कंटेम्पोरेरी स्टडीज, 2005)
4. वर्ल्ड बैंक, बिहारः टूवर्डस ए डेवलपमेंट स्ट्रेटजी, (नई दिल्लीः वर्ल्ड बैंक, 2005)
5. कुमार, एस., एण्ड राजन, आर.। ''बिहारः डेवलपमेंट मैटर्स'' इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटीकल विकली (सितम्बर, 2009)
6. झा, ए. एम., ''नया बिहारः नीतीश नेक्स्ट यात्रा'' हीमल साउथ एशियन (जनवरी, 2011)

सुशासन एवं ग्रामीण विकास
(लोक सहभागिता के संदर्भ में एक अध्ययन)

अर्चना कुमारी एवं रवीन्द्र कुमार वर्मा

भूमण्डलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी एवं उपभोक्ता वादी युग में तीव्र विकास की होड़ ने सुशासन को सभी विकासशील समाजों का परम लक्ष्य बना दिया है। इस क्रम में ग्रामीण विकास भी सुशासन के महत्व को अनदेखा नहीं कर सकता। जहां तक सुशासन के अर्थ का प्रश्न है, यह बहुत ही व्यापक और बहुआयामी अवधारणा हो गया है जो विभिन्न समाजों द्वारा उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं अनुरूप ही आंका जा रहा है। किसी समाज में कानून व्यवस्था की दुःस्थिति, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अक्षमता, तथा संवेदनहीनता का अभाव और गैर बराबरी की समस्याएँ हैं तो किसी समाज में तीव्र विकास, ग्रामीण गरीबी, टिकाऊ विकास का लक्ष्य प्रमुख प्राथमिकता होते हैं और उन्हीं लक्ष्यों के आलोक में सुशासन के लक्षण ढूंढे जाते हैं। इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि भारत जैसे विकासशील समाज में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में सुशासन की भूमिका पर अधिक बल दिया जाना। बिहार प्रदेश के संदर्भ में सुशासन विद्वानों एवं नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। सुशासन के प्रमुख अवयवों में लोकसहभागिता का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण विकास का संदर्भ सामाजिक-आर्थिक परिवेश से होता है जिसमें लोक भागीदारी की अहम् भूमिका होती है। इसी वैचारिक आलोक में प्रस्तुत आलेख सुशासन के विभिन्न अवयवों का परीक्षण ग्रामीण विकास एवं लोकभागीदारी के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। अर्थात् प्रस्तुत आलेख सुशासन और ग्रामीण विकास के बीच अंतःक्रियाओं का परीक्षण करता है तथा साथ ही इससे संबंधित अवधारणात्मक समझ को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

यहां हमें सुशासन, ग्रामीण विकास एवं लोक सहभागिता के कुछ सैद्धान्तिक पक्षों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। यहां कुछ प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उभर कर आते हैं जैसे – सुशासन वास्तव में क्या है? ग्रामीण विकास का सही अर्थ क्या है? इन दोनों परिघटनाओं में व्यक्ति या समुदाय कहां तक महत्वपूर्ण हैं? ग्रमीण विकास हेतु सुशासन के किन-किन क्षेत्रों में लोक सहभागिता की सख्त आवश्यकता है?

दूसरे शब्दों में सुशासन की वो कौन सी मान्यताएं और अवयव हैं जो ग्रामीण विकास या ग्रामीण अभिवंचित वर्गों के विकास की गति को तीव्र कर सकती हैं।

अवधारणात्मक अनुशीलन

सरकार के स्थान पर अब 'शासन' या 'गवर्नेंस' पदावली का प्रचलन बढ़ गया है। यह कोई नई अवधारणा नहीं है अपितु इसने राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन के साहित्य में अपना खास स्थान बना लिया है। सामान्यतया इसका अर्थ निर्णय-निर्माण प्रक्रिया तथा नीतियों को कार्यान्वित करने या न करने की प्रक्रिया से लगाया जाता है। यद्यपि शासन शब्द को कई संदर्भों में लिया जाता है – कॉरपोरेट शासन, अंतर्राष्ट्रीय शासन एवं स्थानीय शासन आदि। जबकि यह राष्ट्रीय विकास की योजनाओं को लागू करने तथा संसाधनों का न्यायसंगत प्रबंधन करने वाला तंत्र है। शासन जैसा कि यू.एन.डी.पी. 1997 के अनुसार यह देश के विभिन्न मसलों के प्रबंध हेतु राजनीतिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक संस्थाओं के प्रयोग से संबंधित है। पारम्परिक रूप से सभी देश सार्वजनिक मसलों को सरकार या राज्य के अभिकर्ताओं को सौंप देते हैं। वृहद् स्तर पर सरकार कई तरह के कार्य करती है जैसे निर्णय निर्माण करना, नीति निर्माण तथा विभिन्न नीतियों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा कुछ आवश्यक सेवाओं को मुहैया कराना तथा गरीब एवं असमर्थ जनता को उनके जीवन-यापन तथा रोजमर्रा के जीवन से संबंधित विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की गारंटी करना तथा उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करना। 1990 की दशक में लोक प्रबंध की धारणा के उदय के साथ ही अमेरिकी विद्वानों ने गवर्नें के स्वरूप या संरचना में बदलाव की सिफारिश की जिसके तहत कॉस्ट एफेक्टिव प्रशासन और निजि प्रबंधकीय उपायों से इस लक्ष्य को प्राप्त करने किया जा सके।[1] इन्हीं परिस्थितियों में सुशासन की अवधारणा का उदय हुआ।

शासन का अच्छा होना भी आवश्यक है जिसे हम सुशासन पदावली से प्रतिष्ठित करते हैं। कुछ लोग भ्रष्टाचार से निजात पाने के लिए पारदर्शिता हेतु ई-प्रशासन को ही सुशासन मान लेते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वान इसे विभिन्न तरीके से आंकते हैं। इस अवधारणा के विभिन्न मान्यताएं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा तय किए गये मानकों से स्पष्ट हो जाती हैं। सुशासन के आठ मुख्य लक्षणों को इंगित किया गया हैः– उत्तरदायी, पारदर्शी, संवेदनशील, प्रभावी, सर्वसहमति योग्य, कुशल, समावेशी, लोक-सहभागी, कानून का शासन स्थापित करने वाला शासन।[2] सुशासन के इन सभी अवयवों में लोकसहभागिता इनमें केंद्रीय महत्व का है। पर्याप्त लोक सहभागिता न केवल नौकरशाही के भ्रष्टाचार को कम करेगा बल्कि निर्णय निर्माण प्रक्रिया में समाज के गरीब एवं अभिवंचित वर्ग की आवाज एवं सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार सुशासन समाज के वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के प्रति भी उत्तरदायी होता है। देखा जाय तो सुशासन अपने में प्रभावी राजनीतिक

संस्थाओं और उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग तथा राज्य द्वारा सार्वजनिक संसाधनों का सही प्रबंधन समाहित करता है। अनिवार्यतः यह लोकतंत्र, लोककल्याण एवं विधि का शासन के बीच परस्पर अंतःक्रिया है। इस प्रकार सुशासन का दायरा सार्वजनिक क्षेत्र के साथ साथ निजि क्षेत्र और सामाजिक गतिविधियों तक फैला है। पुनः यह मानवाधिकार तथा विधि के शासन एवं लोकतांत्रिक मूल्यों, जैसे लोगों द्वारा समान राजनीतिक सहभागिता, द्वारा निर्देशित होता है।[3] इसकी प्रवृत्ति सत्तावादी एवं निरंकुश शासन तथा नौकरशाही के शासनात्मक रूप के विरूद्ध है। यह चीन एवं इण्डोनेशिया जैसे देशों के शासन की प्रकृति से स्पष्ट होता है।[4] ये सारे पक्ष निर्णय-निर्माण में नागरिकों की सहभागिता तथा सार्वजनिक हित संबंधी मामलों में महत्वपूर्ण है।

सुशासन का दूसरा पहलू तेजी से विकास कर रहे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से संबंध रखता है। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्राथमिकतायें समाज के वृहद् समर्थन या सहमति पर आधारित होगी तथा नीति-निर्माण एवं विकास संसाधनों के बटवारे में नागरिक समाज तथा विभिन्न हित समूहों के सीधे सहभागिता सुशासन की उभरती हुई प्रवृति है। पर्याप्त रूप से सूचित जनता तथा सूचना प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक उपयोग से ही सामाजिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित किया जा सकता है। यह शासन में पारदर्शिता को सुनिश्चित करता है। ICT के कारण सरकार द्वारा लोगों धोखा देना आसान नहीं रह गया है क्यों कि इससे नागरिकों का सरकारी गतिविधियों को अवलोकित करना सुलभ हो जाता है। जहां सरकार अदक्ष एवं लक्ष्यहीन हो जाती है वहां नागरिक समाज एवं स्वयंसेवी संस्थाएं ICT के माध्यम से उनको पहचान लेती हैं तथा समाधान के उपाय ढूंढ़ लेती हैं। यह लोगों को सही सूचना का निस्सरण कर नागरिक समाज को न केवल सशक्त बनाती हैं बल्कि एक दूसरे को नजदीक लाती हैं ताकि राष्ट्रीय विकास में प्रभावकारी सहभागिता हो। रिचर्ड हीक्स ने एक कदम आगे बढ़कर यह तर्क दिया कि सूचना प्रौद्योगिकी न केवल गरीब एवं अभिवंचित वर्ग की आवाज को बुलंद करती है अपितु सूचना ग्रहण करने वाले एवं सूचना देने वाले दोनो रूपों में निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करती है।[5] इसी लिए यह तर्क दिया जाता रहा है कि ई-गवर्नेंस ही गुड गवर्नेंस है।[6]

सुशासन एवं लोकतांत्रिक विकास भारतीय परिपेक्ष्य में गरीबों के हित के प्रति उत्तरदायी प्रतीत होता है। राज्य एवं नागरिक समाज के बीच परस्पर पहचान और कार्यात्मक संबंध स्थापित हो जाता है जिससे समाज के अभिवंचित वर्ग के सामाजिक उत्तरदायित्व, उनकी सहभागिता, समावेशी एवं न्यायसंगत विकास को बढ़ावा मिलता है। निर्णय-निर्माण में सहभागिता एवं नीतियों के शीघ्र कार्यान्वयन के बिना लोगो की सत्ता एवं संसाधनों तक न्यायासंगत पहुंच सम्भव नहीं हो सकती।

संक्षेप में सुशासन को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इसके तीन अवयवों (components), उपकरण (instrument) एवं लक्ष्य (goal) पर नजर डालना आवश्यक

है। घटकों में सहभागिता, सहमति, उत्तरदायी, पारदर्शिता, संवेदनशीलता एवं दक्षता, समानता एवं विधि का शासन है जिसे SMART से प्रतिपादित किया जा सकता है। इन लक्ष्यों को निम्नलिखित उपकरणों के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है, वे हैं – राजनीतिक संस्थाओं को प्रभावपूर्ण एवं उत्तरदायी बनाकर, नीतियों को लागू करने वाली सहभागी संरचनाओं का निर्माण कर, सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों का समन्वय, नीतियों एवं योजनाओं के प्रति नागरिकों को जागरूक बनाकर सूचना एवं संचार तकनीक का विकास तथा उन तक लोगों की पहुंच को सुगम बनाकर, विकास संसाधनों की व्यवस्था एवं उनका न्यायसंगत अधिकाधिक उपयोग इत्यादि। निष्कर्षतः सुशासन का मुख्य प्रयोजन भ्रष्टाचार को नियंत्रित करना, अभिवंचित वर्ग को सशक्त बनाना, प्राकृतिक तथा अन्य संसाधनों का न्यायसंगत प्रबंध एव समावेशी विकास हैं। इन सारी बातों को निम्न *सारिणी–1* द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सुशासन एक 'आदर्श' है जिसकी प्राप्ति पूर्णता में कठिन तो है पर फिर भी लोक सहभागिता के माध्यम से टिकाऊ मानवीय विकास को सुनिश्चित करना सुशासन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है।

सारिणी – 1
सुशासन के घटक, उपकरण एवं आउटकम

?kVd	midj.k	y{; ,oa ifj.kke
सहभागिता एवं सर्वसहमति	• सहभागी संरचनाए • अभिवंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व • सरकारी एवं गैर सरकारी साझेदारी	• समाजिक व्यवस्था का बरकरार • गरीबों की आवाज को बुलन्द करना
उत्तरदायित्व न्यायसंगत समानता एवं विधि का शासन	प्रभावपूर्ण एवं उत्तरदायी राजनीतिक संस्थाएं विकास संसाधनों का न्यायपूर्ण बंटवारा	प्राकृतिक एवं अन्य संसाधनों का न्यायसंगत वितरण लाभों का न्यायपूर्ण बंटवारा एवं कानून व्यवस्था कायम करना
पारदर्शिता संवेदनशीलता एवं प्रभावकारिता	ई–गवर्नेंस एवं जागरूकता • उत्तरदायी नौकरशाही • ICT तक नागरिकों की पंहुच	भ्रष्टाचार पर नियंत्रण नागरिकोन्मुख
परिणामोन्मुख	• लेक मांगों के अनुरूप प्रक्रिया एवं संरचना में बदलाव • निर्णय–निर्माण का विकेन्द्रीकरण	सेवा दक्षता उपलब्ध संसाधनों का उपयोग
लो–कास्टिंग	• मानवीय एवं अन्य संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग	
SMART*	उपरोक्त सभी	टिकाऊ एवं समावेशी विकास

* S= Simple, M= Management Attitude, A= Accountable, R=Responsive, T=Transparent

ग्रामीण विकास का संदर्भ

पुनः ग्रामीण विकास भी एक जटिल परिघटना है जिसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। इसके कई आयाम होते हैं जैसे – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक। ग्रामीण विकास को विश्व स्तर पर परिभाषित करने का प्रयास किया गया ताकि सारे देशों खासकर विकासशील देशों में ग्रामीण विकास के तय मानकों पर कदम उठाया जा सके। पिछले दशकों में ग्रामीण विकास को आर्थिक वृद्धि से जोड़ा गया। यानि लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार लाना या इसे उपर उठाना। परन्तु विश्व बैंक द्वारा प्रतिपादित परिभाषा सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त सेक्स विश्वविद्यालय के रॉबर्ट चैम्बर्स ने विश्व बैंक से मिलती-जुलती परिभाषा दी। भारतीय विद्वानों में आर. एन. आजाद तथा अदिशेसैया तथा महात्मा गांधी आदि[7] के विचार संदर्भनीय है। इन सभी ने केवल आर्थिक वृद्धि को विकास का पर्याय नहीं माना बल्कि ग्रामीण जनता के बीच सौहार्दपूर्ण सामाजिक जीवन तथा गुणवत्तापूर्ण जीवन शैली को विकास का मानक तय किया। चैम्बर्स ने तो स्पष्ट किया कि ग्रामीण क्षेत्र के गरीब एवं अभिवंचित वर्गों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति ही ग्रामीण विकास है। केवल मूलभूत संरचनाओं के निर्माण को ही ग्रामीण विकास का पर्याय नहीं माना जा सकता बल्कि ग्रामीण जनता स्वावलम्बी हो कर अपना जीवन यापन करें और सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में स्वस्फूर्त भूमिकायें निभाने में सक्षम हों। निष्कर्ष यह कि विकास की प्रक्रिया जनोन्मुख होनी चाहिए चाहे वह शिक्षा या स्वास्थ्य या नागरिक सुविधाओं का ही संदर्भ क्यों न हो। अगर निर्मित मूलभूत संरचनाओं एवं सेवाओं तक सभी की पहुंच सुनिश्चित नहीं की जाती तब तक ग्रामीण विकास अर्थहीन है। अर्थात् विकास योजनाओं के निर्माण से लेकर उसके फल के वितरण में आम जन की भागीदारी ही ग्रामीण विकास को पूर्णता तक पहुंचा सकती है।

ग्रामीण विकास एक वैज्ञानिक अवधारणा नहीं बल्कि किसी नीति का साध्य है। इसका सबसे महत्वपूर्ण संबंध स्थानीय संसाधनों का, जिसपर ग्रमीण जनता का जीवन निर्भर रहता है, न्यायसंगत बंटवारा तथा टिकाऊ प्रयोग है। यह भी आश्वस्त करना आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त लाभों पर आधारित वर्तमान आर्थिक गतिविधि प्राकृतिक संपदा को हानि न पहुंचाए। ग्रामीण प्रशासन द्वारा इसे सुरक्षित रखने की गारंटी भी आवश्यक है। ग्रामीण जनता जब तक आवश्यकता से अधिक उत्पादन नहीं करेगी तब तक उनकी गरीबी दूर नहीं होगी। इतना ही नहीं बाजार व्यवस्था को भी उनके अनुरूप होना होगा। ग्रामीणों को अपना श्रम पर्यावरणापेक्षी और आर्थिक उपादेयता के अनुरूप रखना होगा। सुशासन की यह आवश्यक शर्त है कि स्थानीय प्रशासन इस प्रकार हो कि ग्रामीण उत्पादों के विपणन, बदलती बाजार व्यवस्था एवं आवश्यक सेवाओं से संबंधित पर्याप्त सूचनाओं का आदान प्रदान को

सुनिश्चित हो सके। इसे निम्नलिखित सारिणी से स्पष्ट किया जा सकता है।

सारिणी –२
ग्रमीण विकास के घटक एवं उनकी प्रकृति

xkeh.k fodkl d? ?kVd	?kVdk dh izdfr
नीतियाँ	केवल अवधारणा या विचार नहीं अपितु नीति-साध्य
आयाम	बहुआयामी- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक
	ग्रामीण विकास के मानकों के अनुरूप ग्रामीण जनता के
जीवन स्तर में सुधार	जीवन स्तर को ऊपर उठाना (चैम्बर्स, गांधी, अदिसेशैया)
	अनुकूल मूलभूत संरचना एवं आधुनिक तकनीकों का
मूलभूत संरचना एवं तकनीक	प्रावधान
	संरचनाओं एवं तकनीकों को सर्वसुलभ बनाना
सार्वभौमिकता	प्रशिक्षण एवं सहायता द्वारा जीवन यापन के लिए स्वावलंबी
जनता को सक्षम बनाना यानि इनेबलिंग	बनाना
	स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का न्यायसंगत रूप
संसाधनों का उपयोग	से प्रबंधन करना
	लोक सहभागिता को सक्रिय एवं सार्थक बनाना
लोक सहभागिता	

ग्रामीण विकास, लोक सहभागिता एवं सुशासन

लोक सहभागिता का अर्थ केवल प्रशासनिक संरचनाओं में लोगों की उपस्थिति मात्र नहीं है अपितु इसका अर्थ विकास की संपूर्ण प्रक्रिया में लोगों की स्वैच्छिक, सक्रिय एवं सार्थक भागीदारी, खासकर नीति निर्माण, कार्यान्वयन, मूल्यांकन एवं अनुश्रवण तथा विकास के लाभों में समुचित हिस्सेदारी, का होना है।[8] सुशासन एवं ग्रामीण विकास के विद्वानों में लोकसहभागिता, खास कर गरीब और कमजोर वर्गों की सहभागिता, को उच्च प्राथमिकता देने पर सहमति है। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि लोक सहभागिता में पुरुष एवं महिलाओं की बराबर की भागीदारी आवश्यक है। सहभागिता या तो सीधे स्वेच्छा से लोगों की सक्रियता या वैध एवं प्रतिनिधि संगठनों के माध्यम से की जाती है। यहां यह इंगित करना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रतिनिधित्वात्मक लोकतंत्र का अर्थ आवश्यक रूप से समाज के कमजोर वर्गों की चिंता मात्र नहीं अपितु निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में भी अंतर्निहित है। इन वर्गों को संसूचित (informed) एवं संगठित करना भी लोकसहभागिता का महत्वपूर्ण अवयव है। परन्तु इस दिशा में ठोस एवं उत्साहजनक सफलता नहीं मिली है।

लोक सहभागिता के व्यावहारिक पक्ष पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि विकास के लिए लोकसहभागी संरचनाएं तो निर्मित की गईं पर वास्तविक तौर पर सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जा सकी है। सरकार द्वारा किये जाने वाले विकास कार्यों एवं सेवाओं में कतिपय व्याधियां व्याप्त हैं यथा आम लोगों की अनदेखी, दोषपूर्ण नीतियां, लाभुकों की गलत पहचान तथा भ्रष्टाचार। सरकारी तंत्रों में कार्यरत् अधिकारीगण द्वारा सार्वजनिक संसाधनों का दुरूपयोग किया जाना भी विकास की गति में बाधाएं उत्पन्न करता है। ऐसा नहीं है कि पहले लोक सहभागिता की आवश्यकता को नहीं महसूस किया गया परन्तु वांछित सफलता नहीं मिली उदाहरणार्थ सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सहकारी आन्दोलन तथा पंचायतीराज संस्थाएं जिनमें लोगों की स्वस्फूर्त एवं गुणवत्तापूर्ण सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जा सकी।

कालान्तर में 1990 की दशक में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए लोकसहभागी अभिकरणों का निर्माण किया गया जिसमें DRDA, CPART IRDP के अभिकरण आदि महत्वपूर्ण हैं। परन्तु स्थानीय स्तर पर लोगों की स्वस्फूर्त भागीदारी के लिए पुरज़ोर उपाय नहीं किये गये। विगत् कुछ दशकों में कुछ सहभागी अभिकरणों ने अपना प्रभाव दिखाया है उदाहरण के लिए आंध्रप्रदेश में 'जन्म भूमि', ए.पी.भी.भी.पी. वाराबंदी आदि। 1980 की दशक में भूमि की आर्थिक उपादेयता तथा सिंचाई के बेहतर प्रबंधन के लिए 'इरिगेशन चक सोसाईटी' एवं एस.एफ.डी.ए. जैसे प्रयास उल्लेखनीय है। इरिगेशन चक सोसाईटी प्रारंभ में काफी कारगार साबित हुआ था परन्तु उसका राज्य स्तर पर व्यापक विस्तार नहीं हुआ।[9] पारम्परिक 'गोआम' गतिविधि या खेती से संबंधित सामुदायिक प्रयास भी लोक सहभागिता की सफलता को इंगित करता है। यहां अप्रासंगिक नहीं होगा कि सार्वजनिक खाद्य वितरण में भी सहभागी जनवितरण निगरानी समिति भी कारगर साबित नहीं हो रही है जो कि पी.डी.एस. सामग्री की लगातार हो रही कालाबजारी से सिद्ध होता है।[10]

निष्कर्ष एवं सुझाव

उपरोक्त विवेचन से विदित होता है कि सुशासन तभी सम्भव होगा जब विकास कार्यक्रमों में सक्रिय एवं सार्थक लोकभागीदारी को सुनिश्चित किया जायेगा। सुशासन के लगभग सभी अवयवों में लोगों की जागरूकता एवं उनकी स्वस्फूर्त भागीदारी की आवश्यकता है। अनुभव बताते हैं कि सहभागी संरचनाएं तो निर्मित की गईं परन्तु प्रभावकारी लोकसहभागी सुनिश्चित नहीं की जा सकी है इसीलिए वांछित फल नहीं निकले।

ऐसा हम नहीं कह सकते कि सुशासन को हम नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इस

संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:–

- ग्रामीण विकास के सभी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु लोक सहभागी संरचनाएं बनाई जानी चाहिए तथा गुणवत्तापूर्ण एवं सार्वभौमिक भागीदारी विकास प्रक्रिया के चारों चरणों--योजना निर्माण, कार्यान्वयन, मूल्यांकन तथा अनुश्रवण और फलाफल में भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- सहभागी संरचनाओं में समाज के कमजोर एवं अभिवंचित वर्गों की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- आधारभूत संरचनाओं एवं उनके निर्माण और स्थान का चयन ग्रामीण गरीबों की आवश्यकताओं एवं उपयोगिताओं के आलोक में किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण स्तर पर कार्यान्वयन तंत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का सघन उपयोग किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में ई-पंचायतों की स्थापना एवं उनकी सक्रियता पर जोर दिया जाना चाहिए।
- आमसभा/ग्रामसभा को नियमित एवं सशक्त बनाया जाना चाहिए तथा उनमें स्थायी समितियों को सक्रिय बनाना होगा।

इन उपायों के बाद ही हम संपूर्ण भारत में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में सुशासन को स्थापित कर सकते हैं तथा ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणी

[1]Christopher Hood, "A Public Management for All Seasons", Public Administration, Vol. 68, Spring, 1993, pp. 3-19

[2] World Bank, Development Report 2002

[3] GTZ Theme, retrieved from <http//www.gtz.de/en/theme/politicsche-reformen/882.htm> in March, 2016

[4] Atta, El-Battahani, "Crisis, Politics and Governance in Sudan, University of Khartoun, Sudan" retrieved from http://www.ossrea.net/rw/goodgover-03.htm

[5] (i) Richa rd Heeks, Information and Communication Technology, Poverty and Development, Development Informatics, Institute of Development Policy and Management, Manchester (ii) Arce A. Long and Norman Long, "The Dynamics of Knowledge" in Long and Long (eds), Battlefield of Knowledge: The Interlocking of Theory and Practice in Social Research and Development, Routledge, London, 1992

[6] Bata K. Dey, "e-Governance in India: Problems, Challenges and Opportunities-A Future Vision", Indian Journal of Public Administration, Special Number on e-Governance, 2001

[7] (i) Malcolm Adishesaiah, "Let my Country Awake" in IX Course on Development Through Participation, IIPA, New Delhi, 1991 (ii) R N Azad, "Integrated Rural Development in Dynamics of Development", IX Course on Development Through Participation, IIPA, New Delhi, 1991

[8] S N Mishra, "Dimensions of Participation" in IX Course on Development Through Participation, IIPA, New Delhi, 1991

[9] Nirnajan Pant and R K Verma, Farmers Organisation and Irrigation Management, Ashish Publishing House, New Delhi, 1983

[10] R K Verma, "Participative Vigilence Over Food Administration", Indian Journal of Political Science, Jan-March, 2007

भारत के सुशासन में नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व

राजबीर सिंह दलाल एंव सरबन कुमार

नागरिक सहभागिता लोकतन्त्र की गुणवत्ता एवं सफलता का पैमाना ही नहीं अपितु सुशासन का भी एक घटक है। नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक उतरदायित्व एक दूसरे के पूरक है। एक में वृद्धि, दूसरे में वृद्धि या उन्नति का कारण बनती है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है और इसका राजनीतिक विकास हो रहा है। संसदीय लोकतन्त्र होने के नाते आम जनता की नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन में सीमित भागीदारी रही है जिसके चलते प्रशासनिक उतरदायित्व को आम जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से तय कर पाना कठिन रहा है। हालांकि गत् दो दशकों में भारतीय शासन-प्रशासन में कुछेक क्रांतिकारी बदलाव लाए गए है जिनमें प्रमुख है सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग, नागरिक अधिकार पत्र, जनसूचना अधिकार एवं लोक सेवा प्रदाय अधिकार। इन प्रावधानों ने आमजन मानस की प्रशासनिक सहभागिता के नए आयामों को जन्म दिया है और प्रतिनिधि लोकतन्त्र को प्रत्यक्ष लोकतन्त्र की ओर प्रवर्त किया है। इससे प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को तय करने में काफी मदद मिली है लेकिन अभी-भी भारत को इस दिशा में काफी कुछ करना है, वर्तमान आलेख में राजबीर सिंह दलाल व सरबन कुमार ने भारत में नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता, इनकी संकल्पना, विभिन्न आयामों तथा अन्तः सम्बन्धों का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

भूमिका

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जिसमें 2011 की जनगणना के अनुसार 125 करोड़ की आबादी तथा 85 करोड़ मतदाता है और यहां के नागरिक शासन का हिस्सा बनने के लिए उत्साहित है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्णय लेने की प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी का होना बहुत महत्वपूर्ण घटक है। इतना

ही नहीं यह लोकतंत्र की गुणवत्ता एवं सफलता का पैमाना भी है कि उस शासन में जन सभागिता की मात्रा और स्तर क्या है? इसके अतिरिक्त नागरिक सहभागिता और प्रशासनिक जबावदेहिता एक-दूसरे से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए कारक हैं। जन-सहभागिता का तात्पर्य नागरिकों के निर्णय लेने, नीति बनाने और नीति क्रियान्वयन करने तथा प्रशासनिक प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्मिलित होना है। जन सहभागिता का तात्पर्य केवल आर्थिक और शारीरिक मदद करना ही नहीं है बल्कि जनता में यह विश्वास उत्पन्न करना है कि विकास कार्यक्रम उनके हैं, और उनके सहयोग द्वारा विकास कार्यक्रमों को कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करने का प्रयास करना है। वास्तविक अर्थ में जब नागरिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग होकर विकास कार्य में हिस्सा लेते हैं तब नागरिक सहभागिता होती है।

शासन में नागरिक भागीदारी, एक द्विपक्षीय कार्यकलाप हैं जिसके अर्न्तगत सरकारी एजेंसियों और साथ ही सभी नागरिकों के लिए भी पूरी भागीदारी अनिवार्य है, जैसे कि बेहतर सेवा प्रदान करना, सार्वजनिक नीति में परिवर्तन करना, शिकायतों का समधान करना आदि। इसी प्रकार जवाबदेही का अर्थ है कि पूरे किये या ना किये गये कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायी होना ऐसी जिम्मेदारी जिससे किसी मुद्दे, किसी बात (कार्य) के प्रति जवाब या हिसाब-किताब भी मांग की जा सकें, वह जवाबदेही कहलाता है। प्रशासनिक संगठनों में निर्णय के स्तर अधिक होने से जवाबदेही की समस्या बढ़ती है। प्रशासनिक जवाबदेहिता तय करने हेतु सरकारी तन्त्र के अतिरिक्त जन सहभागिता को अनेकों अध्ययनों में एक आवश्यक कारक माना गया है। इस हेतु देश में अनेकों आन्दोलन भी हुए हैं जिनमें प्रमुख जे.पी. मूवमेन्ट (1974-78) तथा अन्ना हजारें का आन्दोलन (2011-12) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वहीं 73वां तथा 74वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1993 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु अहम कदम कहे जा सकते हैं जिनके वास्तविक क्रियान्वन को दो दशक से भी अधिक समय बित चुका है और इस नयी व्यवस्था के तहत देश में इन संस्थाओं हेतु पांच बार आम चुनाव हो चुके हैं इसके अतिरिक्त सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग, सिटीजन चार्टर, जनसूचना अधिकार अधिनियम (2005) तथा सेवा अधिकार अधिनियम (2015) इस दिशा में उल्लेखनीय कदम कहे जा सकते हैं। वर्तमान आलेख में भारत में जनसहभागिता तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व की अवधारणाओं के मध्य संबंध देखने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार नागरिक सहभागिता के चलते भारतीय प्रशासन में उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के प्रयास किये गए हैं और वे कितने सार्थक हैं।

उद्देश्य

जन सहभागिता किसी भी शासन व्यवस्था के लोकतान्त्रीकरण की एक आवश्यक शर्त है और इसकी सफलता को मापने का एक पैमाना भी। जन सहभागिता के प्रमुख

उद्देश्य जनसाधारण के वर्तमान तथा भावी जीवन स्तर को ऊँचा उठानें के लिए उनके अन्दर दृढ़ इच्छाशक्ति उत्पन्न करना; समुदाय में उपलब्ध संसाधनों की पहचान तथा उन्हें विकसित करना; समुदाय को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रेरित करना तथा समुदाय में उपलब्ध सक्रिय मानवशक्ति को उत्पादक कार्यों की ओर उन्मुख करना है। क्षेत्र विशेष में संचालित होने वाले विकास एवं कल्याणकारी कार्यों की सूचना, समुदाय (लाभार्थियों) को देना; विभिन्न समूहों, संगठनों तथा माध्यमों से जनता को विकास प्रक्रिया में जोड़ना एवं जनसाधारण को उनकी स्थानीय समस्याओं की पहचान करने तथा संभावित सार्थक समाधान के लिए चर्चा करने का अवसर प्रदान करना, इसके अन्य उद्देश्य है।

समुदाय में स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहित करना ताकि वह शेष समुदाय को प्रेरित कर सके और समुदाय के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु नवीन प्रौद्योगिकी तथा प्रणालियों के प्रयोग का प्रचलन बढ़ाना; सुंसगठित प्रचार के द्वारा समुदाय को शिक्षित, जागरूक तथा उत्तरदायी बनाना एवं जनसाधारण को समस्या-समाधान के लिए सरकार पर निर्भर रहने के बजाय आत्मनिर्भर बनाने की ओर ठोस प्रयास करना, जन सहभागिता के केन्द्र में रहता है।

अर्थ एवं परिभाषा

नागरिक सहभागिता का अर्थ है कि शासकीय एवं प्रशासनिक प्रक्रियाओं में लोगों की भागीदारी। इससे प्रशासन पर नागरिकों के नियत्रंण तथा प्रभाव की अपेक्षा की जाती है। यह प्रशासन तंत्र को सरल और कारगर ढंग से चलानें के लिए जनसमर्थन हासिल करती है और उसको सफल बनाती है। यह प्रशासन को लोगों की जरूरतों के प्रति जवाबदेही बनाती है। जवाबदेही और उतरदायित्व कुछ समानविक से शब्द है जिनकों प्रायः एक दूसरे के लिए भी प्रयुक्त कर दिया जाता है। जवाबदेयता शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से सेनिक संगठनों में किया जाता है और इसमें जवाबदेही होने का अर्थ सही-सही और पर्याप्त रिकार्ड रखना ओर इस प्रकार जन सम्पति की सुरक्षा करना। अनेक लेखकों ने जवाबदेही और उत्तरदायित्व के विषय में भेद दिखानें का प्रयास किया है। जवाबदेही की मान्यता उत्तरदायित्व की व्यवस्था में अपने आप निहित हो जाती है। दोनों के बीच मुख्य अन्तर यह माना जाता है कि उत्तरदायित्व में नैतिकता का पुट रहता हैं तथा नीतिशास्त्र के ज्ञान में भी अपना दखल रखती है दूसरी ओर जवाबदेहिता एक कानूनी मान्यता है जिसका सम्बन्ध प्रशासकीय क्रियाओं से अधिक है जो नियन्त्रण की योजना के एक भाग के रूप में भी कार्य करती है। जनतांत्रिक सरकार 'लोकप्रिय प्रभुसत्ता के सिद्धांत' पर आधारित है अर्थात् जनतंत्र में जनता सर्वोच्च है और प्रशासन अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी है या होना चाहिए। अतः प्रशासन में जनता की भागीदारी महत्वपूर्ण हो जाती है। यह प्रतिनिधिक जनतंत्र को भागीदारी जनतंत्र में बदल देती है, तथा 'नीचे से शासन' की धारणा को बढ़ावा देती है।

भारत में नागरिक सहभागिता संबंधी प्रावधान

भारत में शासन प्रशासन में नागरिक सहभागिता को हम उनकी सामान्य प्रशासन में भागीदारी तथा विकास कार्यों में भागीदारी दो मौटे संवर्गों में दिखा सकते हैं।

अ. सामान्य प्रशासन में भागीदारी

उपेक्षित और असंगठित होने के कारण जनता आमतौर पर प्रशासन पर निश्चित और नियमित प्रभाव नहीं रख पाती। अतः प्रशासनिक प्रक्रिया पर जनता का प्रभाव मुख्यतया अप्रत्यक्ष और औपचारिक पद्धतियां पर निर्भर है। भारत में प्रतिनिधि लोकतन्त्र होने के कारण जनता की प्रशासन में प्रत्यक्ष भागीदारी काफी कम रहती है। जनता निम्नलिखित माध्यमों द्वारा अपनी भागीदारी प्रशासन में सुनिश्चित करती है:

1- ***fuokZpu*** प्रतिनिधिक जनतंत्र को मोटेतौर पर दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है – *राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार* और *संसदीय प्रणाली की सरकार*। संयुक्त राज्य अमेरीका और ब्रिटेन क्रमशः इन दोनों प्रणालियों के जनक एवं आदर्श मॉडल कहे जाते हैं। भारत में संसदीय शासन प्रणाली है जिसकी सरकारों में वास्तविक कार्यपालिका विधायिका से निकलती है और अपनी नीतियों तथा कार्यों के लिए यह इसी के प्रति उतरदायी रहती है। विधायिका का उत्तरदायित्व जनता के प्रति होता है तथा कार्यपालिका पर जनता का नियंत्रण अप्रत्यक्ष है। भारत में सरकार के तीनों ही स्तरों पर चुनाव की अवधि पांच वर्ष की है और निर्वाचन ही वह प्रभावी प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनता प्रशासन पर अपना नियन्त्रण रखती है। यदि शासन-प्रशासन स्वेच्छाचारी तथा अकुशल है तो इसको समय-समय पर होने वाले चुनावों के द्वारा बदला जा सकता है और भारतीय जनता ने अनेकों बार केन्द्र एवं राज्य सरकारों को उनकी प्रशासनिक कुशलता तथा जनकल्याण हेतु आगामी चुनावों में दोबारा सत्ता में पहुंचाया है और विपरीत आचरण करने पर सत्ता से बाहर का रास्ता भी दिखाया है। इस प्रकार चुनाव जनमत एवं जनता के विश्वास को तय करने का एक प्रमुख एवं ठोस मापदण्ड है। किन्तु भारत में निर्वाचन की अवधि लम्बी होने तथा जनता की उदासीनता एवं अन्य कारणों के चलते, प्रशासन पर सीमित पकड़ ही रहती है। फिर भी किसी लोकप्रिय सरकार में लोगों के विश्वास की अभिव्यक्ति चुनावों के माध्यम से होती हैं, इसमें कोई दोराय नही है।

2- ***Okkil cykuk*** यह एक सीधा जनतांत्रिक उपाय है। इसका प्रयोग स्विटज़रलैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरीका के कुछेक राज्यों में किया जाता है जहां प्रशासनिक अधिकारियों का चुनाव सीधे जनता करती है। वापस बुलाने की व्यवस्था से लोग प्रतिनिधियों को उनका कार्यकाल पूरा होने से

पहले ही हटा सकते हैं यदि प्रतिनिधि लोगों की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करने में विफल रहता है या जनता उसके कार्य से संतुष्ट न हो। वापस बुलाने के उपाय का मुख्य लाभ यह हैं कि इससे लोगों का अपने प्रतिनिधियों पर, उनकी पेशेवर भूमिका और कर्तव्य के मामले में लगातार नियंत्रण बना रहता है। किन्तु भारत में अभी तक इस प्रक्रिया को न तो सैद्धान्तिक मान्यता ही मिल पायी है और न ही व्यावहारिक रूप से यह यहाँ पर सम्भव लगता है।

3- *iHkkoh lewg* 'दबाव समूह' शब्द का जन्म संयुक्त राज्य अमेरीका में हुआ था। यह ऐसे लोगों का समूह है जो अपने समान हितों को संरक्षित करने तथा आगे बढ़ाने के उद्देश्य से सक्रिय रूप से संगठित होतें हैं। स्वंयसेवी संस्थाएं, गैर सरकारी संगठन, ट्रेड यूनियन, समुदाय आधारित संगठन, रोज़गार संगठन, व्यावसायिक संगठन, छात्र संघ, सम्प्रदाय एवं जाति आधारित संघ इत्यादि ऐसे ही समूहों के उदाहरण है। इन समूहों को हित समूह भी कहा जाता है। अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए वे प्रशासन पर दबाव डालते हैं। वे सरकार में नीति निर्माण और नीति क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं और इसके लिए वे प्रचार, प्रतिवेदन, सार्वजनिक बहस, विधायकों से संपर्क, लॉबिंग जैसे कानूनी तथा विधायी उपायों का सहारा लेते हैं। वे प्रशासन और अपने सदस्यों के बीच संपर्क साधने का काम करते है। परंतु कभी-कभी वे बंद, प्रदर्शन, हड़तालों, हिंसक कार्यवाहियों और भ्रष्ट उपायों यथा रिश्वत एवं चंदे का भी प्रयोग करते हैं जिससे सार्वजनिक हितों और प्रशासनिक अखंडता को नुकसान पहुंचता है। भारत में ऐसे अनगिणत संगठन एवं समूह सक्रिय है जिनमें से अनेक तो काफी सक्रिय एवं प्रभावी है और सार्वजनिक नीति-निर्धारण एवं क्रियान्वयन में अहम् भूमिका निभाते हैं। किन्तु इन संगठनों की गैर-संस्थागत भागीदारी कभी-कभी तो पूरी व्यवस्था के लिए भी चुनौती बन जाती हैं। छोटी-छोटी बातों पर एवं मांगों के लिए सड़कें तथा रेल मार्ग जाम करना देश में आम बात हो गई है। वोट बैंक की राजनीति ने इन समूहों एवं संगठनों के महत्व एवं भूमिका को अत्यधिक बढ़ा दिया है और कई बार तो ऐसा लगता है कि इस देश में कानून के शासन की अवधारणा एक दिखावा तथा छलावा मात्र है। सरकार तथा प्रशासन को इन समूहों एवं संगठनों के समक्ष नतमस्तक होता देखा गया है जो पूरी की पूरी व्यवस्था की वैधता एवं प्रभावकारिता पर भी प्रश्न चिन्ह लगा देती है।

4- *lykgdkj lfefr;k* इनको सलाहकार परिषद् या बोर्ड भी कहा जाता है। ये ऊपर से नीचे तक सभी स्तरों पर प्रशासन प्रणाली से जुड़ी होतीं हैं।

इनमें विशेषज्ञ, नागरिक और विशेष हितों के प्रतिनिधि होते है। ये प्रशासन और जनता के बीच कड़ी का काम करती है और प्रशासनिक नीतियों, समस्याओं एवं कार्य पद्धतियों पर सरकार को सलाह देती है। इन संस्थाओं की सिफारिशें केवल सलाहकारी होती हैं और संबद्ध विभाग इनको मानने को बाध्य नहीं होता। परंतु वे विभाग के जनसंपर्क प्रति संमरण तथा मूल्यांकन के कारगर उपायों के रूप में काम करती है तथा प्रशासन के चरित्र को जनतांत्रिक बनाती है। लगभग सभी सरकारें अपने आप को अधिक से अधिक लोकप्रिय तथा जनतान्त्रिक सिद्ध करने हेतु ऐसी समितियों का गठन करती रहीं हैं किन्तु इनके संगठन के पीछे मकसद भी राजनीतिक होता है और इनकी संरचना भी दलीय हित एवं सोच से प्रेरित रहती है।

5- *tuer* उपरोक्त औपचारिक पद्धतियों के विपरीत प्रशासन में, जनता की भागीदारी के संबंध में, जनमत जनता की राय है। यह अखबारों, सार्वजनिक मंच, राजनीतिक दलों, रेडियों, टेलिविजन, सिनेमा, दबाव समूहों तथा शिक्षा संस्थानों इत्यादि के द्वारा व्यक्त होता हैं। इनमें से स्वतंत्र अखबार जनमत के सबसे प्रभावशाली माध्यम है। इसको जनतंत्र का 'चौथा स्तंभ' भी कहा जाता है। लेकिन इसके लिए मीडिया का स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होना तथा उसमें जबावदेही तथा राष्ट्रीयता की भावना का होना आवश्यक है जो सामान्यतः हमारे जनसंचार माध्यमों में अब देखने को कम ही मिलता है। मीडिया में संवदेन शून्यता की बढ़ती प्रवृत्ति को प्रायः देखा गया है जो निश्चित रूप से एक चिन्ता का विषय है। फिर भी मीडिया के जनमत के निर्माण तथा प्रशासन में जन सहभागिता और प्रशासनिक जबावदेही को तय करने में अहम् भूमिका निभाई है और यह ऐसा कर रहा है, इसमें कोई दोराय नहीं है। प्रशासन में जनता की भागीदारी की एक पद्धति के रूप में जनमत का महत्व सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावित करने, प्रशासन को उत्तरदायी बनाए रखने और प्रशासन पर नियन्त्रण एवं निगरानी विधि निर्माण के स्त्रोत का काम करने और उनके कार्यान्वयन को आसान बनाने का रहता है। यह सरकार की अलोकप्रिय और गैर जनतांत्रिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करता है। अनेकों अबसरों पर मीडिया ने कमजोर एवं असहाय लोगों की आवाज को बुलन्द किया है। प्रशासनिक अधिकारी जितना मीडिया से डरते हैं, उतना शायद ही किसी अन्य चीज से डरते हो।

6- *fLkVh tu pkVj* जन सहभागिता को बढ़ाने हेतु तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व को तय करने की दिशा में यह एक अहम् कदम कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य प्रशासनिक कार्यों को अधिक जन उपयोगी तथा जनता की पहुंच

में लाने और प्रत्येक संगठन के मूल कार्यों तथा उन्हें सम्पन्न करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सूचना आम जनता तक पहुंचाने हेतु उस विभाग या कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर लगाना है ताकि आम नागरिक को किसी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े। सिटीज़न चार्टर की अवधारणा जॉन मेजर की ब्रिटिश सरकार द्वारा 1991 में प्रतिपादित की गई और 1998 में टोनी ब्लेयर की सरकार ने इसे पुनः स्थापित किया। जिसका प्रमुख उद्देश्य नागरिकों को बेहतर सार्वजनिक सेवाऐं प्रदान करना रहा है सुशासन आज की मांग है और यह सतत् विकास हेतु अति आवश्यक है। पारदर्शिता, उतरदायित्व एवं जबावदेहिता, सुशासन के प्रमुख घटक है। सिटीज़नचार्टर इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आवश्यक कारक कहा गया है जिसका मूल उद्देश्य सेवा प्रदायिता तथा उपभोक्ता के मध्य परस्पर विश्वास का माहौल पैदा करते हुए नागरिकों को बेहतर सार्वजनिक सेवाऐं उपलब्ध करवाना है तथा नागरिकों को इस हेतु सशक्त करना है। गुणवत्ता, चयन, मानक, मूल्य, उतरदायित्व तथा जबावदेहिता इसके प्रमुख सिद्धान्त माने गए हैं। भारत में 1997 में पहली बार नागरिक अधिकार पत्र लागू किए गए। भारत में कार्मिक, पेंशन तथा लोक शिकायत निवारण मन्त्रालय में प्रशासनिक सुधार विभाग सिटीज़न चार्टर तैयार करवाने तथा लागू करवाने हेतु नोडल एजेन्सी के रूप में कार्य कर रहा है। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिटीज़न चार्टर को प्रभावी बनाने हेतु अनेक सुझाव दिए हैं तथा इस दिशा में भारत सरकार द्वारा 2011 में संसद में एक बिल भी पेश किया गया। सिटीजन चार्टर का प्रमुख उद्देश्य समयबद्ध तथा गुणवत्तापूर्ण लोक सेवाओं का प्रदाय सुनिश्चित करना है।

7- *Tku lpuk vf/kdkj vf/kfu;e] 2005%* इस अधिनियम को आम नागरिक को सशक्त करने वाला आजाद भारत का सबसे शक्तिशाली तथा प्रभावी कदम कहा जा सकता है जो किसी भी लोक प्राधिकरण को अपनी सभी सूचनाऐं, सेक्शन 8 एवं 9 को छोड़कर, आम नागरिक की पहुंच में लाने हेतु बाधित करता है अर्थात् किसी भी संगठन की वे सब जानकारियाँ जो सांसद तथा विधायक प्राप्त कर सकते हैं, वे आम नागरिक को भी प्राप्त करने का अधिकार है। यदि कोई जनसूचना अधिकारी किसी आर.टी.आई. आवेदनकर्त्ता को सूचना नहीं देता या जान-बूझकर देने में देरी करता है या गलत सूचना देता है तो वह रूपये 250/– प्रतिदिन के हिसाब से 25000/– रूपये तक के दण्ड का भागीदार हो सकता है। इसके अतिरिक्त उस पर विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। अतः जन सहभागिता बढ़ाने तथा प्रशासनिक जबावदेहिता तय करने में यह एक क्रांतिकारी कदम

कहा जा सकता है। लेकिन इस अधिनियम के दुरूपयोग तथा इसकी प्रभावकारिता की चुनौतियों को भी नजर अन्दाज नही किया जा सकता हैं।

8- Lkok dk vf/kdkj vf/kfu;e% आम जनता का यह अधिकार कि वह कुछ सार्वजनिक सेवाओं को तय समयावधि में पाने का हक रखती है सेवा का अधिकार कहलाता है। इसके तहत तय समय सीमा में काम का निबटारा करना संबंधित अधिकारियों की बाध्यता होती है। समय सीमा के अन्दर सेवा नहीं उपलब्ध कराने वाले अधिकारियों के लिए दण्ड का प्रावधान किया जाता है। हरियाणा सरकार ने 4 मई 2015 को सेवा का अधिकार अधिनियम, 2014 के तहत 163 सेवाओं को अधिसूचित किया। यह अधिसूचना नागरिकों को समयबद्ध तथा सुविधाजनक सेवाएं प्रदान करने के लिए जारी की गयी। यह सुविधाएं एक निर्धारित समयावधि में उपलब्ध कराई जायेगी तथा अनावश्यक देरी अवस्था में जुर्माने का भुगतान करना होगा। उदाहरण के रूप में राजस्व विभाग समयबद्ध तरीके से 20 सेवाएं प्रदान करेगा। रिकार्ड अधिकारों की सभी प्रमाणित प्रतियों के साथ जिसमें जमाबंदी, गिरदावरी तथा नियमों में किसी बदलाव की जानकारी पटवारी द्वारा एक दिन में मुहैया कराई जाएगी। भूमि के सीमांकन की जानकारी 45 दिनों में सर्कील राजस्व अधिकारी द्वारा 45 दिनों में दी जाऐगी, अनुसूचित जाति व जनजाति, पिछड़ा वर्ग, विशेष पिछड़ा वर्ग आदि सभी प्रमाण-पत्र सात दिनों में तहसीलदार द्वारा दिये जाऐगे। स्वास्थ्य विभाग द्वारा वर्ष 2015 के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के जन्म एवं मृत्यु प्रमाण-पत्र सात दिनों में जारी किये जायेगे। जबकि इससे पहले के वर्षों में 15 दिनों का समय दिया जाता था। जैसे-जैसे इस अधिकार की लोगों को जानकारी मिल रही है वे इसका उपयोग कर रहे है। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग तथा ई-शासन ने इस कार्य को यथार्थ बनाने में अहम भूमिका निभाई है।

ब. विकास प्रशासन में भागीदारी

विकास प्रशासन में जनता की भागीदारी का अर्थ है, विकास के उन कार्यक्रमों के प्रशासन की प्रक्रिया में जनता की सीधी भागीदारी जिनका उद्देश्य समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, सुधार एवं विकास लाना है। इसके प्रमुख आयाम में नवाचार तथा परिवर्तन हेतु जनता को प्रेरित करना; निर्णय-निर्माण, नीति एवं कार्यक्रमों के निगरानी और मूल्यांकन में भागीदारी; लाभों के बंटवारें में भागीदारी तथा आम जनमानस को परिवर्तन एवं सुधार हेतु तैयार करना हैं। विकास प्रशासन में जनता की भागीदारी विभिन्न कार्यतंत्रों के द्वारा होती है, जैसे कि पंचायती राज संस्थाएं, शहरी स्थानीय निकाय, सहकारी संस्थाएं, महिला मंडल, किसान सेवा

समितियां, युवा केंद्र तथा अन्य स्वंयसेवी/गैर-सरकारी संगठन। विकास प्रशासन में जनता की भागीदारी विभिन्न संदर्भों में उपयोगी है–

- स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, परिवेशीय और तकनीकी परिस्थितियों के बारे में यह प्रशासन को भारी जानकारी देती है। विकास कार्यक्रमों के नियोजन, कार्यक्रम निर्माण तथा क्रियान्वयन की प्रक्रिया में इस जानकारी का बहुत महत्व है।
- इससे उन परियोजनाओं के चयन में मदद मिलती है जो जनता के लिए सीधे तौर पर प्रासंगिक है।
- यह कार्यक्रम की सफलता के लिए अति आवश्यक धन, श्रम, सामग्री इत्यादि के रूप में स्थानीय संसाधनों को जुटाना आसान बनाती है।
- यह प्रशासनिक सत्ता के दुरूपयोग के खिलाफ सुरक्षा का काम करती है और इस प्रकार कार्यक्रमों के संचालन में भ्रष्टाचार के अवसरों को कम करती है।
- कार्यक्रमों में समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को भाामिल करके यह कार्यक्रमों से मिलने वाले लाभों को अमीर और प्रभावशाली वर्गो द्वारा हड़पे जाने से रोकती है।
- इससे स्थानीय लोग विकास से होने वाले परिवर्तनों का आसानी से स्वीकार कर लेते है और वे गलतियों तथा विफलताओं के प्रति सहनशील हो जाते है।
- सरकारी सहायता बंद हो जाने के बाद भी कार्यक्रमों को चलाए रख कर यह सरकार के आर्थिक बोझ को कम करती हैं। इन कार्यक्रमों का प्रबंधन स्वयंसेवकों या समुदाय-आधारित कार्यकर्ताओं द्वारा किया जा सकता है।
- यह उतरदायित्व लेने और अपनी समस्याओं का खुद समाधान करने की लोगों की क्षमता तथा सामर्थ्य को बढ़ाती है और उनमें आत्मनिर्भरता, पहल तथा नेतृत्व की भावना विकसित करती है।
- समाज में यह सजग प्रहरी की भावना को बढ़ावा देती है और इस प्रकार सबसे निचले स्तर पर जनतंत्र को मजबूत करती है।

परंतु भारत में प्रशासन में और विशेषकर विकास प्रशासन में जनता की भागीदारी को सीमित करने तथा प्रभावशीलता को कम करने वाले अनेक कारक हैं जिनमें प्रमुख कारक हैः अभिजातवर्गीय और यंत्रवत नौकरशाही, जातिवाद, संप्रदायवाद, निर्धनता, निरक्षता, प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक वातावरण, नकारात्मक राजनीतिक हस्तक्षेप और वोट बैंक की राजनीतिक, समय प्रतिबंध अर्थात कार्यक्रमों की समयबद्ध प्रकृति, प्रशासन में भ्रष्टाचार और आचार के निम्न स्तर विशेषकर राष्ट्रीयता की भावना एवं

राष्ट्रीय चरित्र का अभाव, त्रुटिपूर्ण प्रशासनिक कार्यप्रणाली तथा भागीदारी मूलक संस्कृति की कमी। प्रशासन तथा लाभार्थियों के मध्य गठजोड़ तथा विकास के लिए प्रायोजित धन का गोलमाल तथा आम जनता का इस बारे में उदासीन रवैया। ऐसे अन्य कारक है जिन्होंने भारत में जन सहभागिता को मर्यादित किया है तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व की स्कील।

प्रशासनिक उत्तरदायित्व के प्रकार

प्रशासनिक उतरदायित्व का अर्थ है, प्रशासनिक प्रक्रिया में लक्ष्य प्राप्ति के लिए अधिकारधारी की जवाबदेही। उत्तरदायित्व की संकल्पना अधिकार के दुरूपयोग पर नजर रखने का काम करती है। प्रशासनिक प्रक्रिया में उत्तरदायित्व तीन प्रकार का होता है– राजनीतिक, संस्थागत, और व्यावसायिक।

1. **jkTkuhfrd mÙkjnkf;Ro%** संसदीय शासन व्यवस्था में प्रशासन पर सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रण राजनीतिक उतरदायित्व के रूप में होता है। प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय और उसके अन्तर्गत आने वाले विभागों तथा उपक्रमों के कार्यकलापों और कामकाज के लिए व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति तथा सामूहिक रूप से संसद के प्रति उतरदायी होता है। सफलता या विफलता का सम्पूर्ण उतरदायित्व सम्बद्ध मंत्री पर होता है। इससे मंत्रालय में एक विभाग के अन्तर्गत समस्त प्रशासनिक एजेंसियों और कार्यालयों के कामकाज पर नियंत्रण रखा जा सकता है। मंत्री एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में नीतिगत मामले में दिशा-निर्देश देता है। जिनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सार्वजनिक उद्यमों सहित विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों की रहती है। राजनीतिक मुखिया ही अपनी प्रशासनिक व्यवस्था के कामकाज के लिए मुख्य कार्यकारी और विधायिका के प्रति सम्पूर्णतः उतरदायी होता है। यह उत्तरदायित्व तभी सफल होगा जब प्रशासनिक व्यवस्था से सहयोग मिलेगा। इस व्यवस्था में बड़ी संख्या में विभिन्न स्तरों के अधिकारी शामिल रहते है। यदि अधिकारी सहयोग नहीं करते तो सम्बद्ध मंत्री को मुख्य कार्यकारी और विधायिका की आलोचना झेलनी पड़ती है। कार्यकुशलता के लिए राजनीतिक उतरदायित्व के कारण कभी-कभी मंत्री को सदन के अध्यक्ष की डॉट भी खानी पड़ती है और अपने पद से भी हटना पड़ सकता है। आम जनता की बढ़ती जागरूकता और मीडिया ने मन्त्री पर जनमत के प्रभाव को भी काफी हद तक सुनिश्चित कर दिया है। मंत्री के राजनीतिक उत्तरदायित्व को सफल और सार्थक बनाने की बड़ी जिम्मेदारी अधिकारियों पर रहती है जो उसकी नीतियों और कार्यक्रमों के साथ सहयोग करते हैं और उसे सफल बनाने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। वास्तव में ये उस सरकार के कार्यक्रम और नीतियाँ हैं, अकेले मंत्री की नहीं।

2- LkaLFkkxr mÙkjnkf;Ro% आधुनिक कल्याणकारी लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्थाओं में एक प्रशासनिक एजेंसी या संस्था को जन कल्याण के प्रति उत्तरदायी और संवदेनशील रहना पड़ता है। अन्यथा उसके लिए लम्बे समय तक टिके रहना मुश्किल होगा। हमने जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विलय और समन्वय के जरिए सरकारी एजेंसियों के पुनर्गठन के अनेक उदाहरण देखे हैं। जो संगठन और संस्थाएं समय के साथ-साथ आत्म केन्द्रित हो जाती हैं और अपने हित के लिए काम करने लग जाती हैं, और ये भूल जाती है कि वे जनता की सेवा के लिए हैं। ऐसी संस्थाओं के सामने आगे चलकर अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो जाता है। तथापि प्रशासनिक एजेंसियां और विभाग अपने हितों और पहचान की सुरक्षा के लिए जी-जान लगा देती है। इससे राजनीतिक नेतृत्व और समाज के सामने यह चुनौती आ खड़ी होती है कि वे सार्वजनिक संगठनों का कामकाज सुव्यवस्थित करने के लिए संगठनात्मक परिवर्तनों के जरिए कार्यवाही शुरू करें। संस्थागत उत्तरदायित्व भी प्रभावशीलता और कुशलता लोकतान्त्रिक शासन की गुणवता का पैमाना है।

3- 0;kolkf;d mrjnkf;Ro% अतीत की अपेक्षा, आज अनेक विशेषज्ञ जैसे, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, अकाउंटेंट, कम्पनी सेक्रेटरी, वकील आदि, पेशेवर लोग प्रशासनिक सेवाओं और सार्वजनिक उद्यमों में आ रहे हैं। अपने पेशे में उनकी कुछ मान्यातएं होती हैं, आचरण के नियम होते हैं, अपने कर्तव्य पालन के दौरान जिनका निर्वाह करना उनके लिए आवश्यक होता है। यहीं नहीं व्यावसायिक संस्थाएं अपने सदस्यों पर अनुशासन और उत्तरदायित्व भी लागू करती है। कभी-कभी व्यावसायिक संस्थाएं गलत काम का दोषी पाए जाने पर उस व्यक्ति की सदस्यता भी समाप्त कर देती हैं। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जब सार्वजनिक सेवाओं में कार्यरत् व्यावसायिक विशेषज्ञों ने अपने पेशे के मानकों और ईमानदारी के सवाल पर नौकरी तक छोड़ दी। नियमानुकूल आचरण का ये उत्तरदायित्व सिर्फ तकनीकी विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है। आज प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों ने भी व्यावसायिक स्तर विकसित कर लिया है और उनके अपने नियम तथा मानक है। प्रशासनिक सेवाओं में यह स्वागत योग्य कदम है। व्यवसायिक उत्तरदायित्व का कारगर रूप से निर्वाह तब होता है जब प्रशासनिक कर्मचारी इस बात के प्रति जागरूक हो कि नियमानुकूल व्यवहार और आचरण क्या है? भारत में ऐसी दर्जनों संविधिक संस्थाऐं यथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया, बार काउंसिल ऑफ इंडिया, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिशद आदि कार्यरत है।

निष्कर्ष

अंत में हम कह सकते है कि लोकतंत्र को जवाबदेह एवं जनता के प्रति उतरदायी बनाने की लड़ाई वे लोग नहीं लड़ सकते जिन्होंने लोकतंत्र एवं व्याख्या को विकृत किया है। यह लड़ाई वे लड़ सकते हैं जिनके पास मौजूदा विकृतियों से मुक्त होने की आकांक्षा व श्रेष्ठ शासन का ढांचा है। नागरिक सहभागिता की गुणवत्ता का स्तर प्रशासानिक जबावदेही को तय करने में अहम् भूमिका निभा सकता है। यद्यपि पिछले दो दशकों में भारत में नागरिक सहभागिता काफी हद तक बढ़ी है लेकिन अभी भी सार्वजनिक जीवन में हमें इस दिशा में काफी कुछ करना है ताकि प्रशासनिक जबावदेहिता को तय किया जा सके। विकसित देशों के विकसित होने की पीछे एक प्रमुख कारण वहां की जनता की उच्च स्तरीय प्रशासनिक सहभागिता तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्व है जिसे भारत में भी अपनाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- द्वारका प्रसाद सांवलें, *लोक प्रशासन,* एटलाटिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2006,
- एम लक्ष्मीकांत, *लोक प्रशासन,* टाटा मक्रावहील, नई दिल्ली, 2012
- डॉ. हरिश्चन्द्र शर्मा, *लोक प्रशासन,* विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2008,
- डॉ. अनिल कुमार सिंह, *लोक प्रशासन,* इशिका पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर 2013
- www.sewakaadhiar.com
- *ūght to Information Act, 2005*, Govt. of India, Ministry of Personnel, Pensions & Public Grievences, New Delhi, 2005
- *Right to Service Act, 2015*, Govt. of India, Ministry of Personnel, Pensions & Public Grievences, New Delhi, 2015
- citizenchartinindia.com

भारतीय प्रजातन्त्र में सूचना का अधिकार तथा सुशासन की स्थापना

पूनम

भारत ही नही वरन् विश्व के अधिकांश राष्ट्रों जहाँ प्रजातान्त्रिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी है। वहाँ भी और जहाँ स्थापित नही हुई है वहाँ भी प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था द्वारा सुशासन की मान्यता प्रदान करना शासन की अनिवार्य स्थिति बन गई है। भारतीय प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में भी सूचना के अधिकार को सुशासन की स्थापना के लिए आवश्यक मानते हुए 2005 में इसे देश भर में लागू कर दिया गया। लागू करते समय यह आवश्यकता अनुभव की गई कि इससे तन्त्र में पारदर्शितापूर्ण, उत्तरदायी तथा लोककल्याणकारी शासन स्थापित होने में मदद मिलेगी, साथ ही लोक निकायों में व्याप्त भ्रष्टाचार से मुक्ति पाने के अवसर भी उपलब्ध होंगे।

सूचना का अधिकार और सुशासन की पारस्परिक सम्बद्धता

सूचना का अधिकार तथा सुशासन में परस्पर गहन संबंध है। वर्तमान में स्थापित अधिकांश प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों का स्वरूप इस प्रकार से विकसित हुआ है कि यदि उनमें से उन देशों के संविधान द्वारा प्रदत्त कुछ अधिकारों से वंचित कर दिया जाये तो वह अत्यन्त विकृत हो जायेगा तथा लोकसेवकों के क्रियाकलापों में निरंकुशता के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने प्रारम्भ हो जायेंगे। सूचना का अधिकार भी कुछ उसी प्रकार का अधिकार है जिसका सम्बन्ध सीधे तौर पर सुशासन की स्थापना से है और जो वर्तमान स्थापित प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों के लिए विशेष लाभकारी होने के साथ ही अत्यन्त प्रासंगिक भी है।सुशासन युक्त राज्य में निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य होने के साथ ही अपेक्षित भी हैं। साथ हीं ये गुण सूचना के अधिकार अधिनियम के भी प्रतिनिधि गुण हैं जिनका झुकाव लोकतांत्रिक व्यवस्था की ओर होता है–

सहभागिता

सूचना का अधिकार शासन व्यवस्था में पारस्परिक सहभागिता स्थापित करने में

सहयोग प्रदान करता है। यह एक ऐसी कड़ी के रूप में काम करता है जो जनता तथा लोकसेवकों को प्रत्यक्ष तौर पर जोड़ती है। विकास, रोज़गार, स्वास्थ्य, शिक्षा, जैसे विभिन्न लोक कल्याणकारी मुद्दों पर प्रश्न पूछकर जनता लोकसेवकों की जवाबदेही सुनिश्चित करते हुए प्रतियोगी की तरह नहीं बल्कि सहयोगी की भाँति अपनी सकारात्मक सहभागिता सुनिश्चित कर सुशासन की स्थापना करने में अपना योग दे सकती है। सम्पूर्ण विकास और सशक्तिकरण के लिए जनभागीदारी पूर्ण दृष्टिकोण को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रश्न सिर्फ लोकतंत्रिक संस्थाओं के निर्माण का नही बल्कि साथ-साथ लोकतान्त्रिक रूप से उपयुक्त विकास का भी है। जैसे कि मानव विकास प्रतिवेदन 1991 में ही मानव स्वतंत्रता सूचक (Human Freedom Index) को लाया गया तो मानव विकास प्रतिवेदन 1992 में राजनीतिक स्वतंत्रता सूचक (Political Freedom Index) को लाया गया।[1] इसी प्रकार सूचना स्वतंत्रता सूचक (Information Freedom Index) की भाँति ही सूचना का अधिकार भी काम कर रहा है, जिसका महत्व न सिर्फ जनता को सूचना प्रदान करना है, बल्कि प्राप्त सूचनाओं के आधार पर स्वयं तथा लोकसेवकों में भी जागृति स्थापित कर सुशासन स्थापना में दोनों ही का सहयोग करना भी है।

पारस्परिक उत्तरदायित्व

सूचना का अधिकार जबसे लागू हुआ है उसने जनता को जागरूक करने के साथ-साथ जनता के प्रति शासन के उत्तरदायित्त्व को समझ पाने में भी मदद की है। यद्यपि इस अधिकार के दुरूपयोग की जानकारियाँ भी प्राप्त होती रहती हैं तब भी प्रशासन पूर्व से अधिक मुस्तैद नजर आता है तथा लोगों द्वारा इस अधिकार का अधिकाधिक प्रयोग करने के पक्ष में नजर आता है। अब जनता सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत हित के किसी भी प्रश्न का उत्तर प्रशासन से माँग सकती है और प्रशासन द्वारा नागरिकों को उनके प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य भी है जिससे वे जनता के प्रति उत्तरदायी हो जाते हैं और इससे अपनी कार्यप्रणाली को साफ-सुथरा रखना उनकी अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है।

विधि का शासन

सुशासन की व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए विधि के शासन का होना अत्यन्त अनिवार्य हो जाता है जिसकी पूर्ति में सूचना का अधिकार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विधि की सर्वोपरियता एवं सर्वोच्चता, विधि के समक्ष समानता व विधि का समान संरक्षण ऐसे तत्व हैं जिन्हें किसी नागरिक को प्राप्त अधिकारों के समतुल्य रखना अन्यन्त अनिवार्य है। साथ ही, न्यायपालिका का स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं प्रभावी होना भी अनिवार्य हो जाता है ताकि व्याप्त कुशासन की स्थिति पर अंकुश लगाया जा सके।

पारदर्शिता

सुशासन का अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु पारदर्शिता है। स्वच्छ, स्वस्थ व संवेदनशील प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि शासन व प्रशासन में उपयुक्त स्तर तक पारदर्शिता लायी जाये। इस हेतु सुशासन में खुलापन, सहभागिता, सूचना का अधिकार, नागरिक घोषणापत्र व सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग पर प्रभावी बल दिया जाना जरूरी है और ऐसा विभिन्न केन्द्रीय तथा राज्यी स्तरों पर हो भी रहा है। वर्ष 1990 के दशक में और अब 21वीं सदी के चरण में सूचना का अधिकार या सूचना की स्वतंत्रता और पारदर्शिता में विशेष परिवर्तन या एक आन्दोलन उभरकर सामने आया है। उक्त के पीछे एक सद्भावना छिपी मानी जाती है, जिसे लॉर्ड एक्टन ने बखूबी अपने शब्दों में कहा है, ''ऐसी कोई भी चीज सुरक्षित नहीं, जो चर्चा और प्रचार बर्दाश्त नहीं कर सकती है।'' आज विश्व के अधिकांश देशों में सूचना व पारदर्शिता को लेकर कानून बनाये जा रहे हैं अथवा बनाये जा चुके हैं, जैसे कि कोलंबिया में 1996 में अनुच्छेद 15 में संबंधित प्रावधान को डाला गया, तो दक्षिण अफ्रीका में 1996 में अनुच्छेद 32 में प्रावधान है। अतः शासन में पारदर्शिता स्थापित करने के लिए अनिवार्य है कि इसकी माँग जनता द्वारा ही उठायी जाये। (सुनील गुप्ता एवं कमल कुमर सिंह, 'सुशासन,' राष्ट्रीय पुस्तक न्याय, भारत, पृष्ठ 15–16.)

विश्वसनीयता

सुशासन की स्थापना में विश्वसनीयता एक अनिवार्य तत्व है। राजनेताओं प्रशासकों तथा आम नागरिकों के मध्य कुशल शासन व्यवस्था स्थापित करने हेतु परस्पर विश्वसनीयता का होना जरूरी है। यह विश्वसनीयता राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक किसी भी प्रकार की हो सकती हैं। विश्व बैंक द्वारा सुशासन के सन्दर्भ में वचनबद्धता की उल्लिखित किया गया है। इसका तात्पर्य नागरिकों को बेहतर जीवन स्तर, मानव अधिकार, और बेहतर शासन उपलब्ध कराने में कृतसंकल्प होकर कार्य करने से है, अर्थात् सरकार कोई भी नीति, कार्यक्रम या कार्य करेगी वह निर्विवाद रूप से अपने सुशासन के लक्ष्यों के प्रति वचनबद्ध होकर ही करेगी। इसके लिए आवश्यक है कि उपयुक्त कानूनी परिवेश तैयार किया जाये जहाँ अपेक्षित परिणामों को प्राप्त किया जा सके; निर्णयन प्रक्रिया को उपयुक्त रूप से लाया जा सके, उपयुक्त नियमों और आधारों पर कार्य किया जाये; नियमों के प्रयोग और अनुपालन में उपयुक्त निष्पक्षता न निरन्तरता हो, संगठन के उद्देश्य स्पष्ट हो इत्यादि। इसके अतिरिक्त सिविल सेवा में परिवर्तन लाने पड़ेगें। उनमें जन विकास व जनता के प्रति प्रतिबद्धता जगानी पड़ेगी जिसमें उपयुक्त, निश्चित व विश्वसनीय परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

वर्ल्ड बैंक द्वारा भी सूचना के अधिकार को सुशासन का अविभाज्य भाग माना गया है। वर्ल्ड बैक ने सुशासन के निम्न लक्षण बताये हैं :

1. राजनीतिक जवावदेही
2. स्वतंत्रता की उपलब्धता
3. नियमों से आबद्ध नागरिक तथा जनशक्ति
4. प्रशासकीय जवाबदेही
5. पारदर्शिता
6. सूचना की उपलब्धता
7. प्रभावशीलता
8. दक्षता तथा
9. समाज और सरकार के मध्य सहयोग।

डॉ. एस.एल. गोयल ने सूचना का अधिकार तथा सुशासन के पारस्परिक सम्बन्ध को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक मॉडल प्रस्तुत किया जिसे निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है–[2]

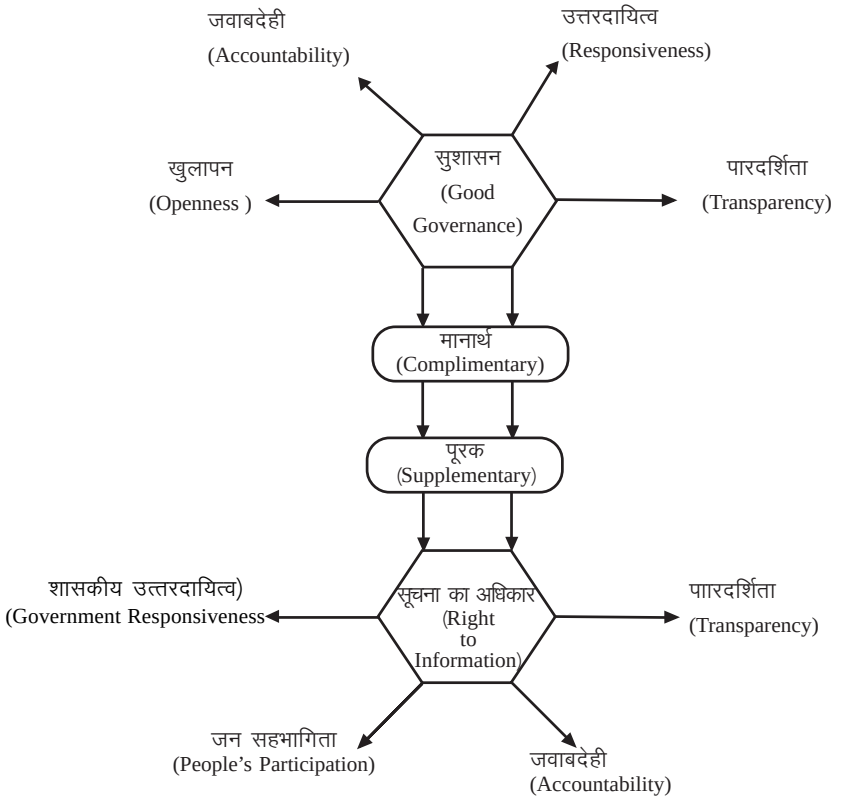

सूचना का अधिकार अधिनियम नियमावली, 2015 की प्रशिक्षण कार्यशाला के दौरान मुख्य सूचना आयुक्त जावेद उस्मानी ने कहा था कि सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 सुशासन के लिए क्रन्तिकारी कदम है। अधिनियम का मुख्य उद्देश्य शासन, प्रशासन व जनता के बीच संतुलन बनाना हैं। जिससे नौकरशाही की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता व भ्रष्टाचारमुक्त देश का निर्माण हो सके।[3] सूचनाएँ सटीक हों, प्रश्नों के सही उत्तर दिये जाएँ तथा समय पर सूचना मिले, इससे प्रशासनिक कुशलता बहुत बढ़ जाती है। आम जनता के प्रति प्रशासनिक तन्त्र का उत्तरदायित्व भी स्थापित हो जाता है और यह सुशासन के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु है। आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का जमाना है। इसलिए वेबसाइट्स का प्रावधान प्रत्येक आधिकारिक कार्यालय चाहे वह कार्यपालिका, न्यायपालिका अथवा विधायिका का हो, से सम्बन्धित विस्तृत सूचना वेबसाईट्स पर दे देने से सूचना अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत सूचना माँगने की आवश्यकता नही रहेगी। इन वेबसाइट्स को अद्यतन करते रहना होगा ताकि किसी भी समय किसी भी नागरिक को सूचना अपने आप मिल जाये। कम्प्यूटर के जमाने में ऐसा करना बहुत ही आसान तरीका है और उचित भी। जब से सूचना अधिकार अधिनियम लागू किया गया है, प्रत्येक आधिकारिक कार्यालय के दस्तावेजों को अद्यतन करने की आवश्यकता बढ़ गई है। अब वह समय गया जब पंजियाँ अथवा अभिलेख सालों-साल तक अद्यतन नहीं किये जाते थे अथवा वित्तीय मामलों में अंकेक्षण आपत्तियों का निस्तारण नहीं किया जाता था।[4]

केन्द्रीय सूचना आयोग ने अधिनियम के सेक्शन 2(h) की व्याख्या करते हुए सार्वजनिक अधिकारी को परिभाषित किया है कि वह संस्था जो सक्षम सरकार के आदेश या नोटिफिकेशन के द्वारा स्थापित या अधिनियमित की जाये और जो सरकार द्वारा वित्तपोषित और कंट्रोल की जाएँ। जिसमें ऐसी गैर सरकारी संस्थाएँ भी शामिल हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर फण्ड प्राप्त करती हैं। सार्वजनिक कार्यों के विभिन्न प्रकार होने से कुछ कार्य अब निजी संगठनों द्वारा भी किये जाने लगे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि अब इनको भी सार्वजनिक अधिकारियों की न्यायधारिता के अन्दर लाया जाये जैसे कि बंग्लादेश और दक्षिण अफ्रीका में प्रस्तावित कानून में है।[5]

सूचना के अधिकार द्वारा सुशासन की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जाता है। सूचना के अधिकार को जन केन्द्रित शासन में उपशिक्षक और सहभागितापूर्ण लोकतंत्र को मजबूत करने वाली कड़ी के रूप में भी जाना जाता है। इसके माध्यम से जनता सरकार की नागरिकों के प्रति सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया के माध्यम से जाँच और पड़ताल कर, चुने हुए प्रतिनिधियों को गम्भीरतापूर्वक जवाबदेह बनाने की दृष्टि से अपनी भूमिका निभा सकती है। संसार भर में सरकारी अधिकारियों तथा सांसदों के कार्यों की निगरानी रखने तथा देखरेख करने के लिए भी इस प्रकार के कानूनों को प्रक्रिया में लाया जाता था। लोग यह सूचना प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार रखते थे

कि उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि अपने द्वारा किये गये वायदों को किस प्रकार पूरा कर रहे हैं, नौकरशाही सार्वजनिक धन को किस प्रकार व्यय कर रही है और जनप्रतिनिधि किस प्रकार विशेष हित समूहों के साथ किस प्रकार के सम्पर्क में हैं। सुशासन के अभाव में किसी भी प्रकार के विकास कार्यक्रम की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार को जनता के जीवन से जुड़ी बातों के साथ सही तालमेल बैठा पाना सम्भव नहीं है।[6]

आज वैश्वीकरण का दौर अपने चरम पर है। वैश्वीकरण के इस युग में भारत में व्याप्त इस स्वार्थपरक राजनीतिक संकीर्णता ने राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिरता को खतरे में डाल दिया है और राष्ट्रीय अस्मिता को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर बौना बनाकर खड़ा कर दिया है। समय की माँग है कि इस वैश्वीकरण के युग में केन्द्र में एक सशक्त और सर्वथा स्थिर सरकार हो जो अपनी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों का निर्धारण, बाहरी देशों की अर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों और नीतियों का समुचित आंकलन करे ताकि वैश्वीकरण में निहित चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक करते हुए सुशासन की स्थापना के सपने को साकार कर सकें।

सूचना क्रान्ति, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने आज सभी क्षेत्रों पर अपना प्रभाव छोड़ा है एवं आज विश्व का हर देश और समाज इस आधुनिकीकरण को अपना भी रहा है। जिसका प्रभाव यह है कि आज राजनीति में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि राजनीति का आधुनिकीकरण हो रहा है। आज राजनीतिक पार्टियों द्वारा अपनी सभी गतिविधियों और ऐजेंडों को आम जनता तक इसी सूचना और प्रौद्योगिकी के माध्यम से पहुँचाया जाता है और यदि किसी स्तर पर सूचनाएँ जनता तक नहीं पहुँचें तो उसे सूचना प्राप्ति के अपने अधिकार का प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। इस कारण सूचना का अधिकार अधिनियम भारत जैसे राष्ट्र में सुशासन की व्यवस्था की स्थापना से जुड़ा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण जनाधिकार है। भारत में पूर्व में कई वर्षों तक लगातार विभिन्न अधिकारों को लागू कराये जाने के लिए प्रयास भी होते रहें हैं। इसी के फलस्वरूप सूचना का अधिकार, नागरिक घोषणा पत्र, ई-गवर्नेंस, सिटीजन चार्टर ई-याचिका, ई-सुविधा सहित कई लोकहित से जुड़े प्रसंग देखे जा सकते हैं। समकालीन सरकारों द्वारा अनेक ऐसी ही योजनाओं का श्री गणेश कर सुशासन रूपी महायज्ञ में सुभिधा का काम किया गया है जो निश्चित ही अपनी शुद्धता को प्राप्त हो समस्त लोकतान्त्रिक वातावरण में फैल जायेगी।

भारत में सुशासन की स्थापना के समक्ष सर्वाधिक बड़ी बाधा भ्रष्टाचार की व्यापकता ही है। इसमें राजनीतिक व प्रशासनिक दोनों तरह का भ्रष्टाचार शामिल है। गठबन्धन सरकारों के दौर में बढ़ती राजनैतिक अस्थिरता ने शासन व प्रशासन

दोनों ही स्तरों पर भ्रष्टाचार व अनुत्तरदायित्व को जन्म दिया है। इससे मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व को क्षति पहुँची है व साथ ही शासन व प्रशासन का एक-दूसरे पर नियन्त्रण ढीला हुआ है। इस स्थिति ने अदक्ष, अनुत्तरदायी व असंवेदनशील नौकरशाही को बढ़ावा दिया है। भारत में न्यायिक, पुलिस व प्रशासन सुधारों की दिशा में गम्भीरतापूर्वक व तत्परतापूर्वक प्रयास नहीं किये गये हैं। जो प्रयास हुए हैं उन पर सरकारों द्वारा सामाजिक-प्रौद्योगिकी, समाजिक उद्यमशीलता व स्वस्थ तथ्य समाज का अभाव पाये जाने से पर्याप्त जन-सहयोग की प्राप्ति नहीं हो पाती है। संसाधनों के अविवेकपूर्ण व अन्यायपूर्ण वितरण से निर्धन व अमीर के मध्य अत्यधिक अन्तर पाये जाने से न्याय, समता व समावेशन जैसे सुशासन के लक्ष्य अधूरे रह जाते हैं। इसके अलावा जनसंख्या का अतिरेक एक ऐसी विशिष्ट समस्या है जो विकासमूलक उपलब्धियों को कमतर बना देती है व सुशासन के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है।[7]

सन्दर्भ सूची

1. सुनील गुप्ता एवं कमल कुमार सिंह, 'सुशासन', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2014, नई दिल्ली, पृष्ठ– 17.
2. डॉ. एस.एल. गोयल, 'गुड गवर्नेन्स एण्ड राइट टू इन्फॉर्मेशन', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ– 31.
3. www.livehindustan.com.
4. www.rachnakar.org.
5. राजकुमार सिवाच, 'इप्लिमेंटिंग राइट टू इन्फॉर्मेशन एक्ट 2005', द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अंक LV जुलाई-सितम्बर, 2009, पृष्ठ–704–706.
6. भारत सरकार, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग, सूचना का अधिकार सम्बन्धी प्रथम प्रतिवेदनः मास्टर की टू गुड गवर्नेंस, जून 2006, पृष्ठ–1.
7. मनीष कुमार पटेल, 'वैश्विक परिदृश्य में सुशासन : एक अवधारणात्मक समीक्षा', द्वितीय (संयुक्तांक), जनवरी – दिसम्बर – 2011, पृष्ठ 159.

शासन-प्रशासन में सुशासन का सरदार पटेल मॉडल

जनक सिंह मीना

वैश्विक परिपेक्ष्य में देखते हैं तो पायेंगे कि सुशासन की अवधारणा सदैव रही है परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि समय के साथ उसके अर्थ और निहितार्थों में बदलाव आये हैं। आज न केवल विकासशील देशों में अपितु विकसित देशों में भी शासन व्यवस्था एवं प्रशासनिक व्यवस्था के संदर्भ में सुशासन या अभिशासन या गुड गवर्नेंस पर जोर दिया जा रहा है। विभिन्न शोध, अध्ययनों एवं तथ्यों से एक बात उभरकर आयी है कि उन देशों में विकास और विकास के क्रियाकलाप शासन व्यवस्था में अच्छे तत्वों/घटकों को बनाए रखने की प्रभाविकता पर सीधा निर्भर करते हैं, अर्थात् जिन देशों की शासन व्यवस्था में अच्छे तत्व भली प्रकार से कार्य कर रहे हैं, वहाँ विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जबकि शेष संसाधन, नीति सभी समान हैं। सुशासन की अवधारणा किसी उत्परिवर्तन का परिणाम नहीं है अपितु इसका लम्बा इतिहास रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसे देखते हैं तो 'गुड गवर्नेंस' का सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा में सन् 1628 में उपयोग हुआ और वर्ष 1701 में संक्षिप्त रूप से यह संतुलित तौर पर एक लोकोक्ति या अवलोकन कथन के रूप में परिलक्षित हुआ- "Wise princess ought not to be admired for their government but governance" अर्थात् ''बुद्धिमान युवराज्ञी को केवल उसकी सरकार की वजह से नहीं वरन् शासन की वजह से प्रशंसित होना चाहिए''। सुशासन के मानकों को हम प्लेटो की 'रिपब्लिक', कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और 'महाभारत' में भी अवलोकित कर सकते हैं। महात्मा गांधी ने भी स्वराज्य के साथ 'सुराज' की बात कही है।[1]

शासन एक प्रक्रिया है जो मूल्ययुक्त व्यवस्था या निरपेक्ष व्यवस्था की ओर इंगित करती है। सुशासन को प्रजातांत्रिक सांचे में दक्ष और प्रभावी प्रशासन से जोड़ा जाता है। यह उद्देश्यपरक तथा विकासोन्मुख प्रशासन के समान है जो कि जन सामान्य के जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी हेतु कटिबद्ध है। यह उच्चस्तर की सांगठनिक प्रभाविकता को लागू करता है। यह राजनीतिक और प्रशासनिक शक्ति के केन्द्र की

सक्षमता को जोड़ते हुए उसे समाज में उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करने को तैयार करने से संबंधित है। यह व्यवस्था की साख, उसकी वैधानिकता तथा उच्चतम दक्षता को स्थापित करने हेतु शासन के नवीन मूल्यों को आत्मसात करने की ओर इंगित करता है।[2]

इस अध्ययन में वल्लभ भाई पटेल के 'सुशासन' की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है इसलिए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वह कार्यकाल या समयावधि क्या है जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। सर्वप्रथम यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात के नाडियाद में हुआ और यह वह समय था जब देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। पटेल इसी काल में बच्चे से युवा और प्रौढ़ होते रहे और उन पर उस समय की स्थिति, परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। पटेल ने 1910 से 1913 की अवधि में इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टर बनकर भारत आए और 41 वर्ष की आयु में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने से लेकर विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए अनेक आंदोलनों का नेतृत्व कर देश की आजादी एवं आजादी के बाद देश को एकता-अखण्डता की डोर में पिरोने से लेकर देश के उप-प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री के रूप में मृत्युपर्यन्त 15 दिसम्बर, 1950 तक देश के शासन-प्रशासन में महती भूमिका निभाते हुए भविष्य के भारत के लिए अद्वितीय कार्य किए। अब हमें यह देखना है कि पटेल ने अपनी कार्य अवधि में देश के प्रशासन एवं शासन को किन घटकों एवं तत्वों का समावेश कर 'सुशासन' स्थापित कर नई दिशा प्रदान की। इस हेतु सर्वप्रथम वर्तमान में 'सुशासन' के आधार तत्वों को जानने की आवश्यकता है–

विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों एवं लोक प्रशासन के क्षेत्र में हो रहे विकास के आधार पर सुशासन के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैंः–

1- mÙkjnkf;Ro %& मानव विकास प्रतिवेदन 2002 में कहा गया है कि लोकतांत्रिक संस्थाएं और पद्धतियां विकसित की जानी चाहिए, जिनमें विभिन्न विषय सम्मिलित हों, सत्य के लिए प्रतिस्पर्धा या भागीदारी हो जन समुदाय या लोगों की सहभागिता हो और सत्ताधारी या प्राधिकृत वर्ग का उत्तरदायित्व हो। शासन और प्रशासन में द्विभाजन को भी देखा जाए तो दोनों ही स्थानों पर कार्यों का विभाजन भी है और स्पष्ट वर्गीकरण भी परन्तु ये दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं और निकटता के साथ संबंधित हैं। अतः शासन और प्रशासन को अपने.अपने क्षेत्रों, कर्त्तव्यों, दायित्वों का निर्वहन करते हुए जनहित में राष्ट्र का विकास करना चाहिए। यदि इस विकास या अपने कर्त्तव्य निर्वहन में कमी रहती है तो उसका उत्तरदायित्व लेने में भी किसी प्रकार का संकोच या उदासीनता नहीं बरतनी चाहिए।

इस संबंध में वल्लभभाई पटेल के कार्यों, विकास, कर्त्तव्यनिष्ठता, जनहित एवं राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से देखते हैं तो वे प्रत्येक जगह अपनी अपेक्षाओं

से आगे ही दिखाई पड़ते हैं। उनमें किसी भी स्थिति में अपने कर्त्तव्यों, कार्यों के प्रति उदासीनता का कोई स्थान नहीं था। वे निडरता, निर्भीकता एवं सुदृढ़ता के साथ आगे आते और उत्तरदायित्व लेने में निःसंकोच बने रहते थे। अतः हम कह सकते हैं कि शासन और प्रशासन में 'सुशासन' की स्थापना में वल्लभभाई पटेल ने एक सजग प्रहरी की भूमिका का निर्वहन किया और एक ऐसे भारत का निर्माण किया जिसकी लोक कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

2- ikjnf'kZrk& परम्परागत गोपनीयता आधारित प्रशासनिक संस्कृति से सूचना, खुलेपन और पारदर्शी कार्य संस्कृति की आवश्यकता पर सुशासन बल देता है। वुडरो विल्सन ने कहा था–'मेरा विश्वास है कि सरकार को पूरी तरह बाहर (अर्थात् खुली) होना चाहिए, न कि अंदर (अर्थात् गोपनीय)। मैं अपनी ओर से यह मानता हूँ कि कोई जगह ऐसी नहीं होनी चाहिए जहां वह सब कुछ किया जा सके जिसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता हो।'[3] भारत में सूचना का अधिकार अधिनियम-2005 इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है। शासन और प्रशासन में पारदर्शिता लाने के लिए भारत में SMART (S-Simple, M-Moral, A-Accountable, R-Responsive, T-Transparent) अर्थात् सरल, नैतिक, जवाबदेह, उत्तरदायी एवं पारदर्शी सरकार की संकल्पना को साकार रूप दिये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

वल्लभभाई पटेल स्पष्टवादी थे। वे झूठा विश्वास दिलाने वाली बातों को सिरे से ही नकार देते थे और वे स्वयं स्पष्टवादी थे तथा दूसरों से भी स्पष्ट व्यवहार चाहते थे। वे एक खुली किताब की तरह थे। एक भाषण के दौरान पटेल ने कहा था कि 'मैं साफ बोलने में विश्वास करता हूँ और लघु सामग्री क्या है, मैं नहीं जानता। वे उस व्यक्ति से घृणा भी करते थे, जो स्पष्ट न हो तथा शंका की परिधि में हो।'[4]

3- lgHkkfxrk& संपूर्ण विकास और सशक्तिकरण के लिए जनता की भागीदारी अत्यन्त आवश्यक है। शासन और प्रशासन में जन सहभागिता उनके आत्मविश्वास, आत्मसम्मान एवं अपनापन की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। वल्लभभाई पटेल सदैव आशावादी रहे और उनमें लोगों को पहचानने की अद्भुत शक्ति थी तथा वे विरोधी को भी अपना बना लेने में महारथी थे। यह सब उनको अपने कार्यों में स्पष्टता एवं पारदर्शिता रखकर बिना किसी भेदभाव के सहभागिता करके मन जीत लेते थे।

4- opuc)rk] fuf'prrk& सरकार कोई भी नीति, कार्यक्रम या कार्य करे तो वह निर्विवाद रूप से लक्ष्यों एवं उद्दे यों को मद्देनजर रखते हुए प्रतिबद्ध होकर कार्य करे, साथ ही कार्यों एवं नीतियों में ढुलमुल रवैया नहीं हो और

दृढ़ता एवं निश्चितता के साथ उनका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। पटेल सदैव वादे के पक्के, अपने निर्णयों के प्रति सकारात्मक एवं सुदृढ़ रहते हुए आत्मविश्वास से भरे हुए थे क्योंकि उनके मन में न लोभ था, न लालच, न स्वार्थ और न ही किसी प्रकार का कोई मोह। उनमें था तो केवल जूनून और राष्ट्र निर्माण के प्रति त्याग व समर्पण।

5- fof/k dk 'kklu%& सरकार को अपनी शक्तियों का प्रयोग कानून के अनुसार ही करना चाहिए; उसे व्यवस्था को कार्यपालिका और उसकी प्रशासकीय शक्तियों को पर्यवेक्षित व अन्वेषित करने का संवैधानिक अधिकार होना चाहिए। सरदार पटेल विधि के ज्ञाता भी थे और पेशे से वकील और साथ ही इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की डिग्री हासिल की थी। वे यह भली प्रकार समझते थे कि शासन-प्रशासन व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए 'विधि का शासन' अत्यन्त आवश्यक है।

6- lonu'khyrk%& यहाँ शासन व्यवस्था एवं प्रशासनिक तंत्र जन समुदाय के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करे तो पूरा वातावरण बेहतर बनेगा और कार्यों में शीघ्रता आयेगी। सरदार पटेल को संवेदनशीलता के संदर्भ में देखते हैं तो वे अत्यन्त संवेदनशील और समय, आवश्यकता और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सक्रिय रहकर क्रिया-प्रतिक्रिया करते थे। देश की स्वतंत्रता, एवं स्वतंत्रता पश्चात् राष्ट्र के निर्माण में वे पूरे सजग प्रहरी की तरह नजर आए तभी तो देश की 562 रियासतों का एकीकरण करने में सफल रहे।

7- n{krk ,oa izHkko'khyrk%& सुशासन के अन्तर्गत दक्षता, क्षमता एवं उसकी प्रभावशीलता का निकटस्थ संबंध है। जब सरकार और सरकारी तंत्र अपने कार्यों में दक्ष होंगे तथी उनमें क्षमताएँ बढ़ेंगी और इन दोनों से प्रभावशीलता परिणामस्वरूप प्राप्त होगी। वल्लभभाई पटेल जिस कार्य को भी हाथ में लेते पूरी लगन से मन लगाकर कार्य करते और उसमें निपुणता प्राप्त कर अपनी क्षमताओं को बढ़ाते जिसके परिणामस्वरूप वे बचपन, युवावस्था एवं प्रौढ़ावस्था में राष्ट्र हित में वे सभी कार्य किए, जिन्हें वे आवश्यक समझते थे। भारत में सिविल सर्विसेज़ आज भी उन्हीं के निर्णयों की देन है।

8- lanf"V%& सरकार बिना किसी भेदभाव के नीति, नियम एवं कानूनों का निर्माण करें और उसे सबके लिए एक जैसा लागू करे तभी देश को एकता की डोर में बांधा जा सकता है। अन्यथा शांति व्यवस्था, कानून व्यवस्था चुनौती बनकर रह जाती हैं। सरदार पटेल सभी को एक दृष्टि से देखते थे, उनके मन में किसी प्रकार का भेदभाव या पाप नहीं था तभी तो इतने कठिन

एवं चुनौतीपूर्ण कार्यों को वे आसानी से सरल बनाते हुए आगे बढ़ते रहे।

9- lketL; ;ksxnku& लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में यह आवश्यक है कि देश को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर सामंजस्य बनाया जाए। यहां सभी वर्गों, समुदायों एवं समाजों के बीच एक ऐसी व्यवस्था मुहैया करवायी जानी चाहिए जिससे लोकहित की साधना पूर्ण हो सके। वल्लभभाई पटेल ने अपने समकालीनों, ब्रिटिश सत्ता, आंदोलनों एवं कार्यों को इस प्रकार समन्वयात्मक बनाया कि बिना किसी व्यवधान के अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की ओर आगे बढ़ते चले गए।

अभिशासन एक अत्यन्त विस्तृत अवधारणा है जो प्रत्येक स्तर पर संचालित होती है, जैसे घरेलू स्तर पर, गाँव, नगरपालिका, राज्य, राष्ट्र या वैश्विक स्तर पर। संयुक्त राष्ट्र ने सुशासन को सहस्राब्दिक विकास लक्ष्यों (Millennium Development Goals) का एक अत्यावश्यक घटक माना है क्योंकि 'सुशासन', गरीबी, असमानता एवं मानवजाति की अन्य अनेक खामियों के खिलाफ संघर्ष के लिए एक आधारभूमि की रचना करता है।[5]

सरदार वल्लभभाई पटेल का सुशासन मॉडल

सर्वप्रथम जब सुशासन की बात पटेल के संदर्भ में करते हैं तो एक बात उभरकर आती है कि उनको 'सरदार' की उपाधि दी गई। उसी में सुशासन का अर्थ समाया हुआ है। यदि इसे और स्पष्ट करते हैं तो इस प्रकार किया जाना ज्यादा सही होगा– 'सरदार से असरदार' अर्थात् सरदार पटेल में ऐसी विलक्षण प्रतिभाएँ, ऐसे संस्कार, संस्कृति एवं विशेषताएँ समाहित थी जो पूरी व्यवस्था के लिए ही 'असरदार' (अर्थात् प्रभावशाली) साबित हो रही थी। उनकी इन्हीं विशेषताओं, क्षमताओं एवं कार्यों के आधार पर एक मॉडल का निर्माण किया गया है जिसे वल्लभभाई पटेल का सुशासन मॉडल कहा जा सकता है जो निम्नानुसार है–

सु	सुनिश्चितता, सुस्पष्टता, सूदूरवर्ती, सुप्रभावी, सुदृढ़ता
शा	शान, शीघ्रता, शान्ति
स	सरलता, सजगता, समग्रता, समानता, समावेशी, समदृष्टि, संवेदनशील, सराहनीय, सत्यता, सशक्तिकरण, समर्पण
न	नूतन, नवोन्मेशी, नैतिकता, नवीनता, निस्वार्थता, निर्णयन, निर्भीकता

सरदार पटेल का उक्त सुशासन मॉडल लेखक द्वारा विकसित है जिसमें उस समय से लेकर वर्तमान में भी ये प्रमुख लक्षण/घटक या तत्व विद्यमान हैं। सरकार और प्रशासनिक तंत्र को पारदर्शी, उत्तरदायी, संवेदनशील, दक्ष, प्रभावशील बनाने के

लिए नीति, नियमों, कानून आदि में सुस्पष्टता, सुनिश्चितता, दूरदृष्टि का होना नितांत आवश्यक है। इसी प्रकार सुशासन की स्थापना से सहजता, सरलता, शीघ्रता, शान और शान्ति का वातावरण बनता है जो विकास की ओर अग्रसर करता है। इस मॉडल में समदृष्टि, समानता, समग्रता, सजगता, सत्यता, सशक्तिकरण, समर्पण, एवं समावेशी ऐसे घटक हैं जिसमें सुशासन समाया हुआ है। इस मॉडल के माध्यम से समझा जा सकता है कि शासन-प्रशासन में नवीन तकनीकों, नवोन्मशी सिद्धातों को सम्मिलित करते हुए आगे बढ़ा जाए और साथ ही निर्णयों में स्पष्टता, दृढ़ता, ईमानदारी, निर्भीकता का पुट हो जिससे नैतिकता को साथ लेकर आगे बढ़ा जा सके। पटेल मॉडल में वे सभी घटक/तत्व समावेशित हैं जिनसे सुशासन को वास्वविकता के ध रातल पर क्रियान्वित कर लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निहित समयावधि में प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. सुनील गुप्ता एवं कमल कुमार सिंह, सुशासन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2001, पृ.4
2. ओ.पी. मिनोचा, गुड गवर्नेंस न्यू पब्लिक मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव, आईजेपीए, जुलाई-सितम्बर, पृ. 272
3. पूर्वोक्त (सुनील गुप्ता) पृ.15
4. रवीन्द्र कुमार, सरदार वल्लभभाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1991, पृ.10
5. वर्ल्ड बैंक ग्लोबल मोनिटरिंग रिपोर्ट, 2006

सुशासन की पूर्वनिर्धारित शर्त - महिला प्रतिनिधित्व और सहभागिता

पिंकी पुनिया

मानवता का आधा हिस्सा महिलाएँ सदियों से पूरे विश्व में भेदभाव, अन्याय तथा शोषण का शिकार होती रहीं हैं। जहां सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की पहचान तथा अस्तित्व सिर्फ परिवार तक सीमित रहा है वहीं आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं द्वारा किए गए घरेलू कार्य का कोई योगदान स्वीकार नहीं किया जाता। यदि राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति पर विचार करें तो हम देखते हैं कि प्राचीन यूनानी नगर राज्यों, जहाँ से राष्ट्र राज्यों का विकास प्रारम्भ होता है, में महिलाओं को प्रतिनिधित्व देना तो बहुत दूर, उन्हें नागरिकता के अधिकार से भी वंचित कर दास वर्ग की श्रेणी में रखा जाता था। आज के विकसित राष्ट्रों ने भी महिलाओं को मताधिकार बहुत देर से प्रदान किया। महिलाओं को मत देने का अधिकार अमेरिका ने 1920 में, ब्रिटेन ने 1928 में तथा फ्रांस ने 1944 में दिया। इस प्रकार हम पाते हैं कि एक तरह से महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में हाशिये पर फेंक दिया गया।

भारतीय राजनीति में आजादी के 68 सालों के बाद भी महिलाओं की स्थिति को अच्छा नहीं कहा जा सकता है। देश की आबादी का आधा हिस्सा होने के बावजूद शासन और नीति-निर्माण के विविध स्तरों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है तथा आज भी राजनीति को पुरुषों का ही क्षेत्र माने जाने वाली मान्यता काम कर रही है। आज भी संसद और राज्य व्यवस्थापिकाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की दर 10 प्रतिशत का आंकड़ा भी पार नहीं कर पाई है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति को उनके मतदाता के रूप में उपस्थिति की दर, चुनाव में प्रत्याशी के रूप में नामांकन की दर, प्रतिनिधि संस्थाओं में उपस्थिति, मंत्री स्तरीय पदों पर उपस्थिति और राजनीतिक दलों में भूमिका सम्बन्धी आंकड़ों की सहायता से भली प्रकार समझा जा सकता है। यदि हम मतदाता के रूप में भारतीय महिलाओं की भागीदारी की बात करें तो वह पुरुषों की तुलना में अभी भी काफी कम

है। 16वीं लोकसभा में महिलाओं का मतदान प्रतिशत 47.7 था। हालांकि यह मतदान प्रतिशत प्रथम चुनाव की तुलना में बढ़ा है परन्तु इसमें स्थायित्व नहीं है चुनावों में उम्मीद्वार के रूप में भी महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में काफी कम है। 2014 के आम चुनावों में कुल 5308 उम्मीदवारों में से महिला उम्मीदवारों की संख्या मात्रा 402 थी जिसमें से 61 महिलाएं विजयी रहीं थीं। राजनीतिक दल महिलाओं को उम्मीद्वार के रूप में प्रस्तुत करने में हिचकिचाते हैं। वर्ष 2014 के आम चुनावों में भाजपा ने 37, कांग्रेस ने 53, बसपा ने 28, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने छह और भारतीय साम्यवादी पार्टी ने चार महिला प्रत्याशियों को उम्मीद्वार के रूप में उतारा।[1]

लोकसभा, राज्यसभा और राज्य विधानसभाओं में भी महिला प्रतिनिधित्व की स्थिति अच्छी नहीं है। यदि मंत्रिस्तरीय पदों पर महिलाओं की संख्या की बात करें तो वह और भी कम है। 2009 की लोकसभा में पिछले वर्ष तक 33 क्रेन्द्रीय मंत्रियों में दो महिला मंत्री तथा 37 राज्यस्तरीय मंत्रियों में छह महिलाएं थी[2] इसलिए इस बात का परीक्षण किया जाना आवश्यक हो जाता है कि कही राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का निम्न प्रतिनिधित्व समाज में महिलाओं की हीन स्थिति और महिला समस्याओं से जुड़ा हुआ तो नहीं है क्योंकि आज जहां एक तरफ लिंग अनुपात में कमी आ रही है वहीं महिलाओं के खिलाफ हिंसा और अपराध में भी बढ़ोतरी हुई है। इसके साथ ही रोज़गार, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी महिलाएं हाशिए पर पड़ी हुई है। इन सब कारकों ने महिलाओं की पहले से ही कमजोर स्थिति को और अधिक चिन्ताजनक बना दिया है।

इस पूरे सन्दर्भ में महिलाओं का अधिक से अधिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत जरूरी हो जाता है। इसी के चलते 1970 के बाद से महिला आन्दोलनों के अन्तर्गत राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता और प्रतिनिधित्व बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है क्योंकि कोई भी ऐसी व्यवस्था, विशेष रूप से राजनीतिक जहां पर पूरे समाज और देश के लिए निर्णय लिए जाते हैं में सिर्फ एक लिंग के लोगों का प्रतिनिधित्व हो, लोकतन्त्रात्मक नहीं हो सकती और बिना लोकतान्त्रिक मूल्यों के स्थापित शासन, सुशासन होने का दावा नहीं कर सकता। इस कारण महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व बढ़ाने की आवश्यकता पर काफी जोर दिया जा रहा है साथ ही उसकी आवश्यकता और लाभों के लिए विभिन्न तर्क भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जैसे[3]–

- *न्याय सम्बन्धी तर्क* – महिलाओं का असमान प्रतिनिधित्व अलोकतान्त्रिक और गलत है क्योकि महिलाएँ आबादी का आधा हिस्सा है इसलिए वे उन सभी संस्थाओं में प्रतिनिधित्व पाने की हकदार है जहाँ पर उन कानूनों का निर्माण होता है जिनके अन्तर्गत वे रहती हैं।

- *हितों का समुचित प्रतिनिधित्व* – महिलाओं और पुरूषों के राजनीतिक हित और आवश्यकताएँ भिन्न होते हैं क्योंकि समाज में लिंग के आधार पर काफी भिन्नता पाई जाती है और इस भिन्नता का प्रतिनिधित्व स्वंय महिलाओं द्वारा ही भली प्रकार किया जा सकता है।
- *साधनों का उचित उपयोग*– यदि महिलाएं राजनीति में उचित भागीदारी नहीं रखती है तो मूल्यवान मानव साधनों की हानि होगी।
- *प्रेरणादायक तर्क*– महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में भागीदारी और मौजूदगी अन्य महिलाओं के लिए भी प्रेरणा का कार्य करेगी।

हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि एक लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के लिए महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत आवश्यक है परन्तु इसके बावजूद राजनीतिक क्षेत्र में आने को लेकर अभी भी महिलाओं के अन्दर हिचकिचाहट है। इसके पीछे कई कारण है वास्तव में महिलाओं को राजनीति में आने के लिए कई प्रकार की चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे –

- कार्य का दोहरा भार
- कमजोर आर्थिक स्थिति
- शिक्षा और राजनीतिक प्रशिक्षण का अभाव
- राजनीति का पुरुषवादी स्वरूप और अपराधीकरण
- महिला संगठनों और महिलाओं के बीच तालमेल और सहयोग का अभाव।
- राजनीतिक दलों का असहयोग
- पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अर्न्तगत परम्परागत भूमिका
- आत्मविश्वास का अभाव
- राजनीति के बारे में यह सोच कि यह 'गन्दा क्षेत्र' है
- मीडिया की भूमिका

इन समस्याओं और राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के पिछड़ेपन के कारण यह आवश्यक हो गया है कि महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठाए जायें और इन्हीं कदमों और उपायों में एक उपाय व्यवस्थापिकाओं और राजनीतिक दलों में महिलाओं के लिए स्थानों का आरक्षण देने का प्रावधान है। आरक्षण व्यवस्था के द्वारा महिलाओं की राजनीतिक भर्ती के केन्द्र में यह विचार रहा है कि महिलाएँ राजनीति में सिर्फ प्रतीकात्मक रूप में नजर न आयें। इसकी बजाए इन संस्थाओं में उनकी इतनी संख्या अवश्य हो, जिसके द्वारा

वे नीति-निर्माण को प्रभावित करने में सक्षम हों अर्थात प्रतिनिधियात्मक संस्थाओं में उनकी भागीदारी कम से कम 30 या 40 प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए। आज तकरीबन 40 देशों में राष्ट्रीय विधानपालिका के चुनावों में लिंग आधारित आरक्षण मौजूद हैं। चाहे वो संवैधनिक संशोधनों के द्वारा हो या वैधानिक कानूनों में परिवर्तन के द्वारा हो। इसवेफ अलावा 50 से भी अधिक देशों में राजनीतिक पार्टियों ने स्वैच्छिक रूप से अपने संविधन में आरक्षण की व्यवस्था की है। जबकि कई देशों में दोनों प्रकार के आरक्षण को अपनाया गया है।[4]

भारत में महिला आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में प्रतिनिधियात्मक संस्थाओं में महिलाओं के लिए विशेष स्थान आरक्षित करने का विचार लम्बे समय से वाद-विवाद का विषय रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रान्तीय विधान सभाओं में 41वें स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए थे।[5] संविधान सभा में भी महिलाओं के लिए आरक्षण का मुद्दा उभरा था परन्तु उसे अनावश्यक बतलाकर अस्वीकार कर दिया गया।

इसके बाद सत्तर के दशक के प्रारम्भ तक महिला आरक्षण का मुद्दा एक प्रकार से मृत पड़ा रहा, जब तक भारत में महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए गठित समिति; सी.एस.डब्ल्यू.आई. 1974 ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की थी। समिति ने महसूस किया कि भारतीय महिलाओं की स्वतः राजनीति में आने की प्रक्रिया बहुत धीमी और ठहरी हुई है क्योंकि भारतीय संस्कृति अराजनीतिक है तथा परंपराएँ महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के विरुद्ध है।[6] परन्तु समिति ने महिलाओं के लिए आरक्षण को अस्वीकार कर दिया तथा ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के लिए वैधिक पंचायतों (Statutory Women's Panchayats) के गठन का समर्थन किया। हालांकि इससे पहले बलवंत राय मेहता समिति (1957) ने भी पंचायतों में दो महिला सदस्यों को मनोनीत करने की बात की थी।

1970 के दशक में कुछ स्वायत्त महिला संगठन भी अस्तित्व में आये और उन्होंने महिला आन्दोलन, औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं और शक्ति संगठनों के बीच व्याप्त सम्बन्धों जैसे क्रांन्तिकारी प्रश्नों को उठाया।[7]

1985 में राजीव गांधी सरकार ने महिलाओं के विषयों को प्राथमिकता के आधार पर लिया और महिला आरक्षण पर बहस का नया दौर पुनः उस समय प्रारम्भ हुआ जब सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय परिपेक्ष्य योजना[8] (National Perspective Plan 1988-2000) ने अपना मसौदा प्रस्तुत किया। एन.पी.पी. ने महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में भागीदारी कम होने के अनेक कारण बताते हुए, महिला भागीदारी को बढ़ाने के लिए विशेष प्रावधानों की व्यवस्था को आवश्यक बताया। एन.पी.पी. द्वारा की गई

सिफारिशों के आधार पर 1993 में नई सरकार ने पुनः ग्रामीण और शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थान आरक्षित करने के लिए 73वें और 74वें संविधान संशोधन विधेयक को प्रस्तुत किया जिसे बहुमत से स्वीकार कर लिया गया।[9] इन संविधान संशोधनों के द्वारा जहां एक तरफ राजनीतिक शक्ति का ग्रामीण स्तर तक विक्रेन्द्रीकरण किया गया, वहीं दूसरी तरफ देश की आधी आबादी महिलाओं के लिए शहरी और ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में एक-तिहाई स्थान आरक्षित कर दिए गए। इन संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति की महिलाओं के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित किए गए।

1993 और 1996 के बीच के समय में संसद तथा राज्य विधान सभाओं में भी महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित करने की मांग जोर पकड़ने लगी। राजनीति में महिलाओं की समान भागीदारी के मनोवैज्ञानिक दबाव के बीच मोर्चा सरकार ने भारत की राजनीति में महिलाओं की अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु संसद तथा राज्यों की विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करने की घोषणा की। इस घोषणा को क्रियान्वित करने की दृष्टि से 12 सितम्बर, 1996 को भारत की संसद में 'महिला आरक्षण विधेयक' प्रस्तुत किया गया, परन्तु इस विधेयक को प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। 1996 से लेकर अब तक इस विधेयक को कई बार संसद में रखा जा चुका है और संसद की विभिन्न समितियों द्वारा इस पर विचार किया जा चुका है परन्तु यह अभी तक अधिनियम का रूप प्राप्त नहीं कर पाया है।

महिला आरक्षण सम्बन्धी विवादित मुद्दे

- महिला आरक्षण से 'बीबी-बहू ब्रिगेड' तैयार होगी या सिर्फ सम्पन्न घरानों की महिलायें ही राजनीति में प्रवेश कर पायेंगी। इससे सभी वर्गों की महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण नहीं हो पाएगा।
- महिला विधेयक द्वारा प्रस्तुत चक्रीकरण (Rotation) व्यवस्था जिसमें महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों को स्थायी नहीं बनाया गया है बल्कि बारी-बारी से लाटरी प्रणाली द्वारा निर्धारित किया जायेगा। इससे महिलाओं और पुरुषों दोनों को कठिनाई होगी। क्योंकि न तो महिलाओं को पता होगा कि अगली बार उनके लिए कौन सा स्थान आरक्षित होगा और न ही पुरुषों को कि कब उनका स्थान छिन जाएगा। साथ ही इससे उत्तरदायित्व की भावना भी खत्म हो जाएगी।
- महिला आरक्षण लोकतन्त्र के सिद्वान्त के विरूद्व है जिसमें कुछ स्थान आरक्षित करके अन्य व्यक्तियों की वहाँ से चुने जाने की स्वतंत्रता खत्म कर दी जाती है।

- इससे प्राक्सी-वूमन अर्थात् ऐसी महिलायें ही राजनीति में आयेंगी जिनके स्थान पर कार्य उनके परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा किया जाएगा।
- महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण के स्थान पर इसे बढ़ाकर महिलाओं की जनसंख्या के अनुपात में देने की मांग की जा रही है।
- महिला आरक्षण से यह धारणा विकसित होगी कि बाकी के स्थान पुरुषों के लिए स्वतः आरक्षित हैं।
- सिर्फ महिला उम्मीद्वारों के खिलाफ लड़ने से महिलाओं की वास्तविक शक्ति नहीं उभर पाएगी।
- महिला आरक्षण की अवधि के बारे में भी आम राय नहीं बन पा रही है।
- महिला आरक्षण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा को पार कर जाएगा।

महिला आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में तर्क

महिला आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में कई प्रकार के तर्क दिए जाते रहें हैं जो इस प्रकार हैं –

i{k e rd

- राजनीतिक पार्टियां अपने पितृसत्तात्मक चरित्र के कारण महिलाओं को प्रतिनिधित्व नहीं देना चाहती हैं। अतः महिला आरक्षण अनिवार्य है।
- महिलाओं के राजनीति में आ जाने से महिला प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ेगी और वे एक ताकतवर समूह के रूप में अपनी मांगें प्रस्तुत कर पाएंगी।
- महिलाओं का राजनीति में प्रवेश संसद को एक नई दिशा देने वाला होगा जिससे स्वस्थ राजनीति का विकास होगा और वाद-विवाद की दिशा भी परिवर्तित होगी।

foi{k e rd

- आरक्षण का प्रावधान संविधान में प्रदत् समानता के सिद्वान्त के विरूद्व है।
- महिलाओं के हित समाज से अलग नहीं हैं।
- इस व्यवस्था द्वारा समाज के अन्य वर्ग भी इसी प्रकार की मांग करने लगेंगे जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा पैदा होगा।

महिला आरक्षण के अनुभव

1993 में भारत में स्थानीय निकायों ने महिलाओं को 33ः आरक्षण प्रदान किया गया उस पर शोध के अनुभवों के आधार पर जो परिणाम सामने आए हैं वो इस प्रकार हैं –

1. सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की अधिक भागीदारी से नारीवादी मूल्य, प्राथमिकताएं और विशेषताएं आगे आ रही हैं।
2. महिलाओं का राजनीति में अधिक संख्या में होना इस सोच में भी परिवर्तन कर रहा है कि राजनीति सिर्फ पुरुषों का कार्य क्षेत्र है।
3. महिलाओं की राजनीति में बढ़ती भागीदारी अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणा का कार्य कर रही है।
4. इच्छा होने के बावजूद पारिवारिक दबाव और राजनीतिक अपराधीकरण के कारण महिलाएं राजनीति में नहीं आती हैं परन्तु आरक्षण ने राजनीति में आने की इच्छुक महिलाओं के लिए मंच प्रदान किया है।
5. महिलाओं की राजनीति में उपस्थिति से निकायों में प्रयोग की जाने वाली भाषा में सुधार हुआ है।
6. महिलाओं की ज्यादा संख्या में भागीदारी पार्टी संगठन और संरचना में भी परिवर्तन ला रही है।
7. गम्भीर परिस्थितियों में महिलाओं ने महिला सम्बन्धी मांगों और आधारभूत आवश्यकताओं के लिए पार्टी से हटकर भी एक दूसरे का साथ दिया है।
8. सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक मंच पर आकर कार्य करने से महिलाओं में जागरूकता और आत्मविश्वास आया है।
9. पारिवारिक स्तर पर भी महिलाओं की भूमिका में परिवर्तन आया है। परिवार के सदस्यों के लिए अब वह घरेलू भूमिका तक सीमित रहने वाली पत्नी, बहन और माँ नहीं हैं।

हालांकि इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में कई दलों का नेतृत्व महिलाओं के हाथों में रहा है परन्तु उनका नेतृत्व पुरुषों के नेतृत्व से बहुत ज्यादा अलग नहीं रहा है। संसद या विधानमंडलों में महिलाओं ने जेंडर सम्बन्धी मुद्दों को जोर-शोर से नहीं उठाया है। परन्तु इसके पीछे समाजीकरण के कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विशिष्ट जनादेश के अभाव में अधिकांश महिला नेता यह महसूस करती हैं कि वे अपने क्षेत्र के पुरुषों और महिलाओं दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। वास्तव में सार्वजनिक जीवन में अभी भी भारतीय नारीवादिता पर पितृसत्तात्मक मूल्यों का वर्चस्व है। समान्यताः सार्वजनिक जीवन में आम जनता की स्वीक्रिति पाने के उद्देश्य से राजनीति में सक्रिय महिलाएं पुरुषों की प्राथमिकताओं को अपना लेती हैं।

परन्तु इन सबके बावजूद इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सार्वजनिक जीवन में जितनी कम महिलाएं रहती हैं नारीवादी मूल्य, प्राथमिकताएं और विशेषताएं उतना

ही कम मात्रा में सामने आते हैं इसलिए आवश्यकता इस बात की भी है कि महिला और पुरुष दोनों को ही जेंडर के संबंध में अधिक संवेदनशील बनाया जाए। महिलाओं की आर्थिक आजादी, शिक्षा और जागरूकता भी इसी से जुड़े हुए मसले हैं। परिवार और समाज के भीतर जेंडर संबंध की पुनर्संरचना महिलाओं की स्वतन्त्रता और समानता की ओर पहला कदम है।

संदर्भ

[1]*www.eci.nic.in*

[2]*Ibid.*,

[3]Birgit Sauer, *Introduction: Relerence of Representation of Women in Politics (Draft)*, University of Geneva, 2004, p.5.

[4]Drude, Dahlerup, "Increasing Women's Political Representation: New Trends in Gender Quota" in *Women in Parliament: Beyond Numbers*, (ed.) Julie Ballington and Azza karam, IDEA publication, Sweden, 2005, p.145.

[5] Background Paper, "Symposium on Political Empowerment of Women: Reservation for Women in Political Bodies", *W.S.D.C.*, p.8.

[6] Chapter III, Political Status in "Towards Equality", *Report of the Committee on the Status of Indian Women*, Government of India, 1974, p. 238.

[7] Kumud Sharma, *Power Vs. Representation: Feminist Dilemmas, Ambivalent State and the Debate on Reservation for Women in India,* C.W.D.S, 1998, pp. 11-12.

[8] National Perspective Plan (1988-2000), Chapter VII, "Political Participation and Decision Making", *Government of India, 1988,* pp. 153-167.

विकास के लिए सुशासन की अनिवार्यता

मदन गोपाल सिन्हा

सन्तुलित, सर्वांगीण एवं समावेशी विकास के लिए सुशासन अनिवार्य है। 'सुशासन' का शाब्दिक अर्थ है, अच्छा शासन। व्यापक अर्थ में शासन, प्रशासन एवं सरकार का समान अर्थ में प्रयोग किया जाता है लेकिन इन तीनों में अन्तर है। राजनीतिक कार्यपालिका का कार्य 'शासन' कहा जाएगा, नौकरशाही अर्थात् लोकसेवा का कार्य, प्रशासन है और सरकार एक संगठन है, जिसके तीन अंग हैं– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। सरकार के इन तीनों अंगों को लोकतंत्र के तीन स्तम्भ भी कहा जाता है। सन् 1748 में फ्रांसीसी विद्वान मॉन्टेस्क्यू की पुस्तक 'The spirit of Laws' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उनके द्वारा शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, जिसके अनुसार नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सरकार के तीनों अंगों का अलग-अलग होना आवश्यक है। मॉन्टेस्कयू का यह सिद्धान्त लोकतंत्र के विस्तार और विकास का प्रमुख साधन बना।

लम्बे समय से मीडिया को भी लोकतंत्र का एक स्तम्भ माना जा रहा है। यह लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। मीडिया की बढ़ती शक्ति के चलते इसे चौथी दुनिया भी कहा जाता है। सन् 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके सहयोगी राष्ट्रों को प्रथम विश्व, सोवियत संघ और उसके सहयोगी राष्ट्रों को द्वितीय विश्व और विभिन्न विकासशील राष्ट्रों को तृतीय विश्व कहा गया। मीडिया को चतुर्थ विश्व कहा जाता है। मीडिया से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सुशासन एवं विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करे। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त मान्य है और संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता का सिद्धान्त मान्य है। ब्रिटेन में संसद द्वारा सिर्फ एक वोट के बहुमत से कितना भी बड़ा निर्णय लिया जा सकता है, साथ ही, वहाँ पर न्यायिक पुनर्विलोकन की भी व्यवस्था नहीं है। इसके चलते वहाँ पर संसद सर्वोच्च हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संसद द्वारा संविधान में संशोधन किये जाने की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। दूसरी तरफ, वहाँ पर न्यायपालिका को न्यायिक पुनर्विलोकन की विशेष शक्ति प्राप्त है। इन कारणों से वहाँ पर न्यायपालिका सर्वोच्च हो जाती है।

भारत में व्यवस्थापिका और न्यायपालिका को समान स्तर पर रखा गया है। यहाँ पर संविधान सर्वोच्च है और सरकार के सभी अंगों को संविधान द्वारा निर्धारित दायरे में रहकर कार्य करना है। वैसे, यहाँ न्यायपालिका को संविधान का संरक्षक बनाया गया है।

नीति-निर्धारण एवं विभिन्न कानूनों को लागू करना प्रत्यक्ष रूप से कार्यपालिका का ही कार्य है, अतः सरकार के तीनों अंगों में कार्यपालिका के कार्य बढ़ जाते हैं। लोगों के रोजमर्रा के कार्यों से सीधा सम्बन्ध कार्यपालिका का ही होता है, अतः आम लोगों के लिए व्यवहार में सरकार का अर्थ कार्यपालिका ही है। कार्यपालिका के दो भाग हैं– राजनीतिक कार्यपालिका और नागरिक प्रशासन। सरकार के सभी अंगों का और विशेष रूप से कार्यपालिका का कुशल और सक्षम होना आवश्यक है। यह सुशासन की अनिवार्य शर्त है।

आज का युग इण्टरनेट का है। आज किसी के लिए भी किसी भी महत्त्वपूर्ण तथ्य को गुप्त रखना सम्भव नहीं है। आज जनता निष्क्रिय सरकार का बोझ ढोने के लिए तैयार नहीं है। अतः आज योग्य, कुशल एवं विकास को महत्त्व देने वाली सरकार सबकी आकांक्षा है। आज सुशासन एवं विकास की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सुशासन की अवधारणा सामान्यतः समाज शास्त्र की सभी शाखाओं से और विशेष रूप से राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन और अर्थशास्त्र से सम्बद्ध है। ऐसी मान्यता है कि सुशासन तथाकथित सभ्य समाज की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान कर सकता है। सुशासन की अवधारणा स्थिर न होकर गतिशील है, परिवर्तनशील है, विकासशील है और परिस्थिति-सापेक्ष है। सुशासन का महत्त्व हर काल में, हर समाज में रहा है। सुशासन जनसाधारण की आवश्यकता है और पढ़े-लिखे लोगों की मांग है।

हम सभी शासकों को याद नहीं रखते, बल्कि कुछ ही शासकों को याद रखते हैं। वे ही शासक इतिहास में स्थान पाते हैं, जिनका शासन लोक कल्याण को समर्पित रहा होता है। सामान्यतः सम्पूर्ण समाज के और विशेष रूप से वंचित वर्ग के कल्याणार्थ शासन ही सुशासन है। वर्तमान सन्दर्भ में 'सुशासन' शब्द का प्रयोग पहली बार सन् 1989 में विश्व बैंक द्वारा किया गया। सन् 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद जब विश्व एकध्रुवीय हो गया तब 'सुशासन' शब्द का प्रयोग जोर पकड़ने लगा।

विकसित राष्ट्र, तृतीय विश्व के राष्ट्रों (विकासशील एवं पिछड़े राष्ट्रों) को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता देने को तैयार हैं लेकिन वे उसके साथ कुछ शर्तें जोड़ देते हैं और उन्हें 'सुशासन' का नाम देते हैं। सुशासन, विदेशी सहायता के अधिकतम

उपयोग और उसकी वसूली का आश्वासन देता है।

विकसित राष्ट्रों की तरफ से विश्व बैंक ने सुशासन के लिये निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक घोषित किया हैः

- राजनीतिक व्यवस्था की वैधता, समय से निर्वाचन तथा जनता के प्रति उत्तरदायी सरकार, अर्थात् सीमित एवं लोकतांत्रिक सरकार।
- संघ-निर्माण की स्वतंत्रता तथा शासन (नीति-निर्माण और नीति कार्यान्वयन) में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक समूहों की सहभागिता।
- सुस्थापित एवं व्यवस्थित शासन-सरंचना, जो कानून के शासन और स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका पर आधारित हो, ताकि मानवाधिकारों की रक्षा हो सके, सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके तथा शोषण एवं अत्याचार से लोगों को बचाया जा सके।
- नौकरशाही के सदस्यों में उत्तरदायित्व का भाव हो तथा प्रशासन पारदर्शी हो।
- सार्वजनिक नीतियों के निर्माण, निर्णय-निर्माण तथा सरकार के कार्यकरण के नियंत्रण और मूल्यांकन के उद्देश्य से सूचना, संचार तथा विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना।
- कुशल, प्रभावी एवं सुदृढ़ प्रशासनिक संरचना, ताकि जनता से प्राप्त राजस्व का सदुपयोग हो सके।
- सरकार तथा समाज की अन्य संस्थाओं के बीच सहयोग की भावना।

सुशासन का अर्थ है मूल्य आधारित शासन। क्या औचित्यपूर्ण है, क्या सही है और क्या गलत है, क्या अच्छा है और क्या बुरा है, क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है इत्यादि का ध्यान रखते हुए नीति-निर्धारण और नीति-कार्यान्वयन ही सुशासन है। इस तरह सरकार की संरचना और उसके संचालन, दोनो में न्याय, औचित्य, नैतिकता, अच्छाई, ईमानदारी इत्यादि का ध्यान रखना सुशासन की अनिवार्य शर्त है। सुशासन का अर्थ है राजनेताओं और प्रशासकों द्वारा लोककल्याण को ध्यान में रखकर अपने अधिकारों का प्रयोग करना। लेकिन लोक कल्याण की परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है।

बेंथम के अनुसार– 'लोककल्याण का अर्थ है अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख'।

लेकिन भारतीय अवधारणा के अनुसार लोक कल्याण का अर्थ *'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'* से भी एक कदम आगे अर्थात् *'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय'* है।

इसे गांधी जी ने 'सर्वादय' की संज्ञा दी।

इस दृष्टि से देखा जाये तो सुशासन का अर्थ है नीति-निर्धारण एवं नीति-कार्यान्वयन के लिए अधिकृत लोगों का सबके कल्याण को ध्यान में रखकर कार्य करना। इस प्रकार, लोक सेवकों द्वारा लोक सेवा को अपना आदर्श मान कर उत्कृष्ट रीति से कार्य करना ही सुशासन है।

सुशासन की अवधारणा मूल्य सापेक्ष होने के साथ ही आत्मनिष्ठता के गुण से भी युक्त है। अर्थात् विभिन्न लोग सुशासन को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हैं।

विकास का अर्थ है, पूर्ण विकास, अर्थात् राष्ट्र के सभी भागों का, समाज के सभी वर्गों का, हर एक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास। सिर्फ आर्थिक विकास ही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि में गुणात्मक सुधार भी आवश्यक है। सबका नैतिक विकास भी एक पहलू है। आर्थिक विकास के साथ ही पर्यावरण-संरक्षण भी एक चुनौती है।

वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स के अनुसार उत्पादन बढ़ाना महत्त्वपूर्ण है लेकिन उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उसका न्यायोचित वितरण। सम्पूर्ण सम्पत्ति समाज की है और लोगों के बीच उसका उचित वितरण सुशासन की मांग करता है। सुशासन, साधन और साध्य, दोनों है। प्रमुख साध्य है सबका पूर्ण विकास और सुशासन इसे प्राप्त करने का साधन है। दूसरी तरफ, सुशासन, इस अर्थ में साध्य है कि सत्ता की प्रकृति प्रायः नकारात्मक और यथास्थितिवादी होती है। अतः हमें सत्ता को कल्याणकारी बनाने और नकारात्मक एवं आत्मकेन्द्रित होने से रोकने के लिए अर्थात् सुशासन के लिए हर सम्भव उपाय करते रहना है।

भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद मिली-जुली अर्थव्यवस्था अपनाई गई लेकिन विकास के समाजवादी मॉडल पर सरकार का विशेष जोर था। सन् 1991 ईस्वी में सोवियत संघ का विघटन हो गया। इसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा। अब आर्थिक विकास के उदारवादी मॉडल पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा। भारत ने भी सन् 1991 में उदारीकरण की ओर कदम बढ़ाए। सन् 1947 से सन् 1991 तक विकास का जो समाजवादी मॉडल अपनाया गया था, उससे राष्ट्र का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव नहीं हुआ। पिछले 26 वर्षों से भारत विकास का उदारवादी मॉडल अपनाए हुए है। इन 26 वर्षों में राष्ट्र के सकल आर्थिक विकास की गति तेज हुई लेकिन इसका लाभ कुछ ही लोगों तक सीमित रहा, अधिकांश लोग फटेहाल ही रहे। अमीरों और गरीबों के बीच अन्तर भी बढ़ा और बड़ी संख्या में आर्थिक घोटाले हुए। तीव्र आर्थिक विकास ने पर्यावरण को बहुत क्षति पहुँचाई। शिक्षा का विस्तार हुआ लेकिन उसमें गुणात्मक सुधार नहीं हुआ, बल्कि उसके स्तर में गिरावट आई। हम

साधन-सम्पन्न बने लेकिन हमारे अन्दर संवेदना घटती गई, हमारा भौतिक विकास हुआ लेकिन नैतिक विकास अवरूद्ध हुआ। कुल मिलाकर इसे क्षति ही कहा जाएगा। उपयुक्त विकास का अर्थ वैसी व्यवस्था का निर्माण करना है, जिसमें लोग बिना भय और लोभ के निर्णय ले सकें। ऐसा विकास अभी भी दूर की कौड़ी है।

पूंजीवाद, सब कुछ निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने की वकालत करता है, साम्यवाद सम्पूर्ण सम्पत्ति पर समाज के नियंत्रण की बात करता है, लोकतांत्रिक समाजवाद के अन्तर्गत यह माना जाता है कि बड़ी सम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए और छोटी सम्पत्तियाँ निजी क्षेत्र में रह सकती हैं, वर्तमान समय में यह विचार समाने आया है कि सबको धर्म एवं विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करने तथा सबकी अनिवार्य आवश्यकताएँ (भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं चिकित्सा) पूरी करने का उत्तरदायित्व सरकार का हो और इसके अलावा लोग सही तरीके से जितना धन अर्जित कर सकते हैं, उन्हें उतना धन अर्जित करने की छूट दे दी जाए। सब कुछ देखने के बाद यह अन्तिम विचार ही उपयुक्त और व्यावहारिक लगता है।

1980 के दशक में सम्पूर्ण भारतवर्ष में सभी विभागों को मिलाकर लगभग तीन करोड़ पचास लाख लोग सरकारी, अर्द्ध-सरकारी क्षेत्र में नौकरी में थे लेकिन आज यह संख्या लगभग दो करोड़ हो गई है, जबकि आज यह संख्या पाँच करोड़ से अधिक होनी चाहिए थी। हमारे देश में यह आम धारणा है कि सबको सरकारी नौकरी देना सम्भव नहीं है। यह धारणा गलत भी नहीं है। सबको सरकारी नौकरी प्रदान करना सम्भव नहीं है, लेकिन पाँच करोड़ लोगों को सरकारी नौकरी में रखना सम्भव है। हमारे यहाँ जिन्हें सरकारी नौकरी मिल गई है, उनके वेतन-भत्ते नियमित रूप से बढ़ते रहते हैं और अन्य लोगों पर किसी का ध्यान नहीं जाता है। हमारे देश में समय-समय पर सरकार द्वारा सीमान्त एवं लघु किसानों के ऋण माफ किये जाते हैं लेकिन बड़ी संख्या में वैसे अत्यन्त निर्धन लोग भी हैं, जो कृषि पर ही निर्भर हैं और पूर्णतः भूमिहीन हैं, उन्हें कहीं से ऋण भी नहीं मिल पाता है, अतः उन्हें ऋण माफी योजना का लाभ भी नहीं प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, ऋण-माफी योजना का लाभ वैसे लोगों को भी मिल जाता है जिनके पास कृषि के अलावा भी आय के अन्य साधन हैं।

भारत में पाँच करोड़ लोगों को सरकारी नौकरी देना सम्भव है, यदि वेतन का निर्धारण करते समय प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय औसत आय को आधार बनाया जाए। चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को वर्तमान समय में पन्द्रह हजार रुपये प्रतिमाह से 25000 रुपये प्रतिमाह के वेतनमान में रखा जाए, तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों को बीस हजार रुपये प्रतिमाह से 40,000 रुपये प्रतिमाह के वेतनमान में रखा जाए, द्वितीय श्रेणी के कर्मचारियों-अधिकारियों को तीस हजार रुपये प्रतिमाह से 60,000 रुपये प्रतिमाह के वेतनमान में रखा जाए और प्रथम श्रेणी के अधिकारियों को चालीस हजार रुपये

प्रतिमाह से 80,000 रुपये प्रतिमाह के वेतनमान में रखा जाए। राष्ट्रपति का वेतन प्रतिमाह एक लाख रुपये हो और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को अस्सी हजार रुपये प्रतिमाह से एक लाख रुपये प्रतिमाह के बीच में रखा जाए। कर्मचारियों-अधिकारियों के अवकाश प्राप्त करने की उम्र 58 वर्ष कर दी जाए, इससे लगभग एक करोड़ लोग शीघ्र ही अवकाश प्राप्त कर लेंगे। चार करोड़ नए लोगों को नए वेतनमान के अन्तर्गत नियुक्त कर लिया जाए। पुराने वेतनमान वाले लगभग एक करोड़ कर्मचारी-अधिकारी सेवा में बने रहेंगे, उन्हें कुछ अतिरिक्त लाभ देकर नए वेतनमान में शामिल कर लिया जाए। सभी कर्मचारियों-अधिकारियों को नियमानुसार मकान भत्ता और महंगाई भत्ता देय होंगे। जी.पी.एफ. और पेंशन की सुविधा सबको मिलनी चाहिए। सरकार ने पेंशन की सुविधा को समाप्त कर के गलती की है।

सभी वरिष्ठ नागरिकों को अनिवार्य रूप से एक हजार रुपये प्रतिमाह और सत्तर वर्ष से अधिक उम्रवालों को एक हजार पाँच सौ रुपये प्रतिमाह पेंशन दी जाए। सभी दिव्यांगों को भी अनिवार्य रूप से नियमित तौर पर आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सभी प्रकार की सब्सिडी को समाप्त कर दिया जाना चाहिए और सभी परिवारों को अनिवार्य रूप से प्रतिमाह दो हजार रुपये प्रदान किए जाएँ। इन उपायों से महंगाई कम होगी, आर्थिक असमानता और भ्रष्टाचार में भी बहुत कमी आएगी। आज भारत के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यहाँ पर पैसे और पैरवी के बल पर गलत काम भी कराया जा सकता है और अच्छे काम को भी रोकवाया जा सकता है। उपर्युक्त उपाय भारत की यह छवि बदलने में सहायक होंगे।

भारत में जनसंख्या-वृद्धि अभी भी बहुत बड़ी समस्या है, अतः इसे शून्य पर लाने और फिर ऋणात्मक करने का युद्ध-स्तर पर प्रयास किया जाना चाहिए। इसके अभाव में उपर्युक्त सारे उपाय अपर्याप्त ही साबित होंगे।

उदारीकरण के प्रभाव में सरकार शिक्षा और स्वास्थ्य-सुविधाओं को निजी क्षेत्र के हवाले करती जा रही है। यह उचित नहीं है। शिक्षा, बाजार से खरीदी जानेवाली चीज नहीं है। शिक्षा का अर्थ सिर्फ विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त करना नहीं है, बल्कि शिक्षा इससे बहुत बड़ी चीज है। विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त करना शिक्षा का एक भाग है, शिक्षा का मूल उद्देश्य है विद्यार्थियों को अच्छे संस्कार देना। शिक्षा का अर्थ है सद्गुणों का विकास, चरित्र-निर्माण, नैतिक गुणों का विकास। वर्तमान समय में शिक्षा के नाम पर सिर्फ साक्षरता का प्रसार हो रहा है और वह भी ठीक से नहीं हो रहा है। सरकार को स्ववित्तपोषित शिक्षा-व्यवस्था को समाप्त करके सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी स्वयं वहन करनी चाहिए। विद्यालयों में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था समाप्त कर दी जानी चाहिए। इसी तरह सभी लोगों को अच्छी स्वास्थ्य-सुविधाएँ प्रदान करने की जिम्मेदारी सरकार को स्वयं लेनी चाहिए।

शिक्षा और स्वास्थ्य पर किया गया खर्च सकारात्मक परिणाम देगा। इसी तरह सरकार को सम्पूर्ण राष्ट्र में शराब बन्दी लागू करनी चाहिए, तत्काल इससे आर्थिक क्षति होती प्रतीत होगी लेकिन कुछ समय बाद यह नीति हर तरह से लाभकर प्रतीत होने लगेगी।

हमें आर्थिक विकास एवं पर्यावरण-संरक्षण में तालमेल बैठाकर चलना होगा। इसके लिए हमें प्रकृति से जुड़ना होगा, प्रकृति के साथ चलना होगा। आरामतलब जीवनशैली का परित्याग आवश्यक है। पर्यावरण-संरक्षण के लिए व क्षारोपण, जंगलों-पहाड़ों का संरक्षण, नालियों के पानी को तालाबों में एकत्र करना और उसे शोधित करके पुनः प्रयोग में लाना, ठोस अपशिष्ट को सुखाकर उसे कोयले के साथ जलावन के रूप में प्रयोग करना, ठोस अपशिष्ट से ईंट का निर्माण करना, तैल प्रवाही वाहनों का प्रयोग कम करना और सायकिल के प्रयोग को बढ़ावा देना इत्यादि उपाय तीव्र गति से करने होंगे।

संतुलित, पूर्ण एवं समावेशी विकास के लिए शासन-प्रशासन में सुधार आवश्यक है। राजनीतिक व्यवस्था भरोसा पैदा नहीं करती है। अब राजनीतिज्ञों से किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है। हमारे राजनीतिक दल सत्ता की राजनीति करते हैं, सिद्धांत की राजनीति नहीं। वे यह भूल जाते हैं कि सिद्धांत की पवित्रता एवं आचरण की दृढ़ता के बल पर सबकुछ किया जा सकता है। गांधीजी और लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने यही किया। यदि राजनीतिज्ञ अपना आचरण सुधार लें तो उनकी विश्वसनीयता बढ़ेगी और नागरिक प्रशासन भी अधिक उत्तरदायी होगा। राजनीतिज्ञों का विश्वसनीय होने के साथ ही उनका योग्य होना भी आवश्यक है। इससे उनकी स्वीकार्यता और अधिक बढ़ेगी। इसके लिए हमें सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र, भाषा इत्यादि की संकीर्ण राजनीति से मुक्त होना होगा। ऐसा करके हम अच्छे लोगों को महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन कर सकेंगे, जो सुशासन का आधार है। महान कवि-दार्शनिक अलेक्जेण्डर पोप का यह सुप्रसिद्ध कथन है कि वही शासन-व्यवस्था अच्छी होगी, जिसका संचालन करने वाले लोग अच्छे होंगे। इसके अलावा, राजनीति, सेवा का साधन है, स्वयं साध्य नहीं है। हमारे राजनेताओं को चाहिए कि वे राजनीति को पेशा न बनाएँ। राजनेताओं को एक निश्चित उम्र के बाद सक्रिय राजनीति से स्वयं अलग हो जाना चाहिए। राजनेताओं के लिए व्यापक स्तर पर प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले जाने चाहिए, इससे उन्हें योग्य और कर्मठ बनाना सम्भव होगा।

शासन के साथ ही प्रशासन में भी सुधार की आवश्यकता है। नागरिक प्रशासन सरकार की नीतियों के निर्धारण एवं कार्यान्वयन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। व्यवहार में सभी प्रमुख कार्य नागरिक प्रशासन द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं। नागरिक प्रशासन में पुलिस प्रशासन भी सम्मिलित है। इन्हें सामान्य शब्दों में 'सरकारी अधिकारी और कर्मचारी' कहा जाता है। 70 साल पहले तक इसका स्वरूप

औपनिवेशिक था और इसका उद्देश्य लोगों पर शासन करना था। लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ ही इसके स्वरूप और उद्देश्य में परिवर्तन अपेक्षित हो गया। पिछले सत्तर वर्षों में इसके स्वरूप को लोकतांत्रिक और लोक कल्याणकारी बनाने के अनेक प्रयास किए गए लेकिन अभी तक इसमें सीमित सफलता ही मिली है। पहले इसमें सिर्फ उच्च वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद धीरे-धीरे इसमें अन्य वर्गों का भी प्रतिनिधित्व हुआ, पहले इसमें बड़े पदों पर सिर्फ अंगरेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले ही नियुक्त होते थे, लेकिन अब अन्य भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले भी बड़ी संख्या में बड़े पदों पर कार्यरत हैं।

प्रशासन से जुड़े लोग अपने को जनता का सेवक नहीं, बल्कि स्वामी समझते हैं, उन्हें इस मानसिकता से मुक्त करना होगा। उन्हें यह अहसास कराना होगा कि वे वास्तव में लोक सेवक ही हैं। लोक सेवकों के लिए नियमित एवं उत्कृष्ट प्रशिक्षण इसमें अधिक सहायक होगा।

भारतीय दण्ड संहिता 150 वर्षों से भी अधिक पुरानी हो चुकी है। इसे अंग्रेजों ने भारतीयों को दबाए रखने के लिए बनाया था। इसमें अनेक परिवर्तन हुए हैं, लेकिन मूल समस्या अभी भी ज्यों की त्यों है। आज भी पुलिस किसी को भी चौबीस घंटे तक बन्द कर सकती है, उसके तुरत बाद वह उस व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत कर देगी। न्यायालयों में पुराने मुकदमों का बोझ इतना अधिक है कि न्यायालय उस नए मामले पर शीघ्र विचार करने की स्थिति में नहीं रहता है और उस व्यक्ति को चौदह दिनों की न्यायिक हिरासत में भेज देता है। वह व्यक्ति नए सिरे से अपनी जमानत कराता है। यह व्यवस्था बदलनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति पर पहली बार कोई आरोप लगा है तो उसे नोटिस दी जानी चाहिए। उसके द्वारा जवाब नहीं दिए जाने या सन्तोषजनक जवाब नहीं दिये जाने पर पुनः उसे एक बार नोटिस दी जानी चाहिए, यदि दूसरी बार भी वह वैसा ही व्यवहार करता है तब उसे अग्रिम जमानत कराने की नोटिस दी जानी चाहिए। इसके बाद भी यदि वह सकारात्मक कदम नहीं उठाता है, तब उसकी गिरफ्तारी होनी चाहिए। पेशेवर अपराधियों के साथ कड़ा व्यवहार आवश्यक है, लेकिन उन्हें भी सुधरने का अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें योग, प्राणायाम, आध्यात्मिक प्रवचन इत्यादि के माध्यम से सुधारने का प्रयास करते रहना चाहिए।

वर्तमान समय में पुलिस-प्रशासन, राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के अधीन है, अतः वह सरकार से जुड़े लोगों को गम्भीर आरोप होने पर भी अग्रिम जमानत कराने के लिए पर्याप्त समय देता है, जबकि साधारण लोगों को पहली बार आरोपित होने या साधारण आरोप होने पर भी तुरत गिरफ्तार कर लेता है। इस स्थिति को बदलने के लिए पुलिस प्रशासन को चुनाव आयोग की तरह स्वायत्तशासी बनाना आवश्यक है।

भारत में जेलों की स्थिति अत्यन्त खराब हैं। जेलों के भीतर बड़े अपराधियों का शासन चलता है। भारत में बड़ी संख्या में वैसे लोग जेलों में बंद हैं, जिन्हें न्यायालय से जमानत मिल गई है, लेकिन वे इतने निर्धन हैं कि वे जेल से बाहर आने के लिए आवश्यक कार्यवाही सम्पन्न नहीं करा पा रहे हैं। ऐसे लोगों को व्यक्तिगत शपथपत्र के आधार पर जमानत दे देनी चाहिए। भारत में बड़ी संख्या में वैसे लोग भी कई वर्षों से जेलों में बन्द हैं, जिनसे सम्बन्धित मुकदमों का निपटारा विभिन्न कारणों से टलता रहता है। ऐसे लोगों को भी जमानत दे दी जानी चाहिए। यह अच्छा हुआ कि डॉ. मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्रित्व काल में संसद ने यह प्रस्ताव पारित कर दिया कि जिन मामालों में सात वर्ष या उससे कम की कैद की सजा का प्रावधान है, उन मामलों में गिरफ्तारी आवश्यक नहीं है। यह भी सुखद है कि भारत में अपवाद स्वरूप ही किसी को मृत्युदण्ड दिया जाता है।

निष्कर्ष

यह है कि भारत में सर्वांगीण विकास का कार्य अभी शेष है और इसके लिए सुशासन आवश्यक है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने सन् 1974 में सम्पूर्ण क्रान्ति, जिसमें सात क्रान्तियाँ (*सामाजिक क्रान्ति.* समाज में समानता एवं बंधुत्व की स्थापना करना, *आर्थिक क्रान्ति*–आर्थिक विकेन्द्रीकरण करना तथा ग्राम को विकास की इकाई बनाकर आर्थिक समता लाने का प्रयास करना, *राजनीतिक क्रान्ति*– राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त करना तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण करना एवं जनता को अधिक अधिकार सौंपकर सहभागी बनाना, *सांस्कृतिक क्रान्ति*–भारतीय संस्कृति की रक्षा करना तथा सांस्कृतिक मूल्यों का लोगों में पुनः विकास करना, *शैक्षणिक क्रान्ति*– शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाना तथा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना, *आध्यात्मिक क्रान्ति*–नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना तथा लोगों को भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर ले जाना एवं *वैचारिक क्रान्ति*– मनुष्यों के विचारों में जागृति उत्पन्न करना) शामिल थीं, का नारा दिया था। ऐसी क्रान्ति सुशासन एवं विकास में सहायक होगी, जो सभ्य समाज की जिम्मेदारी है।

सन्दर्भ सूची

- कॉन्सेप्ट ऑफ गुड गवर्नेन्स, द्वारा–श्री एस. सी. अरोरा, चेयरमैन, लोकप्रशासन विभाग, एम.डी.यूनिवर्सिटी, रोहतक.
- राजनीतिक विचारक, द्वारा–डॉ. पुखराज जैन, प्र.– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1997, पृष्ठ–192.
- राजनीतिक विचारक, द्वारा– डॉ. सुरेशचन्द्र सिंघल, प.– लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2002, पृष्ठ–344.

- विज्ञान प्रगति, जून, 2008 में प्रकाशित डॉ. जगदीप सक्सेना का निबंध, 'ग्लोबल वार्मिंगः मुकाबला सायकिल से'।
- महान व्यक्तित्व, सं.– डॉ. लाल एवं जैन, प्र.– उपकार प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ–23.
- अलेक्जेण्डर पोप।
- अरिहन्त हिन्दी श्रेष्ठ निबंध।
- साहनी हिन्दी–अंग्रेजी निबंध।
- पॉपुलर हिन्दी निबंध, प्र.– उपकार प्रकाशन, आगरा।
- प्रो. अमर्त्य सेन के आलेख।

नौकरशाही और सुशासन

रितेश भारद्वाज

यदि कहा जाए कि आज दुनिया के सभी देशों, व्यावसायिक संगठनों या किसी भी प्रकार की संस्थाओं के समक्ष जो बड़ी चुनौतियाँ मौजूद हैं, उनमें से एक है ऐसा स्थायी कार्यकारी तंत्र गठित करना अथवा प्राप्त करना, जो दक्षता से काम करे, विस्तृत अर्थों में कहें तो सुशासन की स्थापना करें, निर्धारित राष्ट्र उद्देश्यों को प्राप्त करें। उत्पत्ति के समय से ही प्रत्येक राज्य की यह अभिलाषा रही है कि उसके पास इस प्रकार का स्थायी तंत्र या नौकरशाही हो, जो विधि राज्य द्वारा स्थापित लक्ष्यों को पूर्ण प्रतिबद्धता व जनमत की आकांक्षाओं पर खरा उतरने के साथ दक्षता व प्रभावशीलता से प्राप्त करे। ऐसे में राज्य हो अथवा किसी भी स्तर की कोई भी संस्था के कार्यकरण रूप में, जो उसके प्रत्यक्ष स्वरूप को प्रकट करता रहा अथवा कार्य करता रहा, उस तंत्र को समय-समय पर विभिन्न नाम दिए गए परंतु जो सर्वाधिक प्रचलन में है उसे 'नौकरशाही' कहा जाता है।[1] चाहे हम उग्र प्रकार की सर्वसत्तात्मक तानाशाही के अधीन रहते हों अथवा उदार लोकतंत्र के अधीन, हम बहुत अधिक हद तक किसी न किसी प्रकार की नौकरशाही के द्वारा शासित हैं। इस प्रकार लगभग हर स्थान, चाहे वह सार्वजनिक हो अथवा निजी, बड़े संगठन हों, विकसित व अविकसित देश हों, संस्थाएँ, समूह या कुछ संगठित हों, वहाँ हम नौकरशाही के रूप देख सकते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, गैर सरकारी, और सरकारी जीवन के इस क्षेत्र में हम प्रायः नौकरशाही देख सकते हैं पर कहीं भी नौकरशाहीकरण की प्रवृत्ति इतनी अधिक नहीं बढ़ पाई, जितनी की राज्य के क्षेत्र या शासन में।

नौकरशाही

'नौकरशाही' शब्द एक जटिल शब्द है जिसकी विभिन्न परिभाषाएँ की गई हैं। वस्तुतः नौकरशाही की अवधारणा ही इतनी व्यापक है जिसने उसकी व्याख्या की है, नित नई परिभाषा, नया अर्थ दिया है। फिर भी नौकरशाही के स्वरूप को समझने के लिए उन कुछ परिभाषाओं पर गौर करना आवश्यक है। सर्वप्रथम कहा जाता है कि यह शब्द; ब्यूरोक्रेसी अर्थात् 'अधिकारी तंत्र' फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'ब्यूरो' से बना

जिसे 1745 में विंसेट डी गार्ने नामक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ने सर्वप्रथम गढ़ा। ऐसा लगता है कि प्रारंभ से ही इस शब्द का प्रयोग अपमानजनक तौर पर किया गया और यह सरकारी अधिकारियों के संबंध में था। गार्ने ने कहा, फ्रांस में एक बीमारी है जो हमें तबाह कर रही है। यह बीमारी *ब्यूरोमेनियम* कहलाती है। फ्रेंच में ब्यूरो का अर्थ है डेस्क अर्थात मेज। नौकरशाही शब्द का प्रयोग प्रारंभ में एक ऐसी सरकार को बताने के लिए किया गया जो अधिकारियों के द्वारा चलाई जाती है।[2] मार्शल डिमॉक कहते हैं कि नौकरशाही समाज की वह अवस्था है जिसमें संस्थान व्यक्तियों और परिवार के सरल संबंधों का स्थान ले लेते हैं। यह विकास का वह चरण है, जिसमें श्रम विभाजन, विशेषीकरण, संगठन, पदसोपान, नियोजन तथा व्यक्तियों के बढ़े स्वरूप समूहों में ऐच्छिक अथवा अनैच्छिक तरीकों के कठोर नियंत्रण की स्थापना होती है। संस्थानों का विस्तृत रूप ही सरल भाषा में नौकरशाही है।[3]

एम. एफ. मार्क्स इसके चार अर्थ गिनता है जिन रूपों में इनका प्रयोग किया जा सकता है – (1) अधिकारी तंत्र एक विशेष प्रकार के संगठन के रूप में (2) संगठन के अच्छे प्रबंध में नौकरशाही एक व्याधि के रूप में (3) नौकरशाही का अर्थ एक 'बड़ी सरकार' और (4) नौकरशाही स्वतंत्रता को सदा अपंग कर देने वाले रोग के रूप में।[4] इस प्रकार ऐसी धारणाएँ उभरकर सामने आने लगी हैं जिन्होंने स्वीकार किया कि अधिकारियों के समूहों तथा संगठन की पद्धतियों के बीच शक्ति और आकार के अतिरिक्त अन्य भेद भी होते हैं। बीसवीं सदी में 'नौकरशाही' शब्दावली का प्रयोग संस्थानों के लिए किया जाने लगा न कि उनमें काम करने वाले अधिकारियों के लिए। इन अधिकारियों को नौकरशाह इसलिए कहा जाने लगा कि वे न केवल इस सामाजिक समूह के सदस्य हैं, अपितु इसलिए कि वे संस्थानों में काम करते हैं।[5] वर्तमान में भी विद्वान नौकरशाही की परिभाषा में संगठन की पद्धति पर बहुत बल देते हैं।

लोकसेवा और नौकरशाही

लोकसेवा (सिविल सर्विस) शब्द का प्रचलित अर्थ राज्य की प्रशाासकीय सेवा की असैनिक शाखाएँ हैं। इस शब्द की ब्रिटेन में यह परिभाषा कही गई है – राजनैतिक या आर्थिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त ताज (क्राउन) के वे सेवक जो असैनिक रूप में सेवायोजित हैं और जिनका पारिश्रमिक पूर्णरूप से तथा प्रत्यक्षतः उस धनराशि में से दिया जाता है, जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गई हो। टामलिन आयोग (1919–31) की इस परिभाषा से यह प्रकट है कि लोक सेवा में उन लोगों को शामिल नहीं किया गया है जो प्रतिरक्षा सेनाओं के सदस्य होते हैं। राजनीतिक या आर्थिक पद धारण करने तथा सरकार के लिए अवैतनिक रूप से कार्य करने वाले सार्वजनिक राजस्व से वेतन प्राप्त करने वाले अधिकारियों को लोक

सेवा का सदस्य नहीं माना जाता परंतु यह स्पष्ट है कि इन क्षेत्रों के लोग लोकसेवक भले ही न कहलाएँ परंतु नौकरशाही की विशेषताएँ ये भी धारण करते हैं। हर्मन फाइनर ने कहा है, अधिकारियों का यह एक सेवा पेशेवर निकाय है, जो स्थायी वेतनभोगी तथा कार्य कुशल या दक्ष होता है। ई.एन. ग्लेडन के अनुसार, लोकसेवा से अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्षता से चयनित, प्रशासनिक रूप से कार्य सक्षम, राजनैतिक तौर पर निष्पक्ष और समाज की सेवा की भावना से ओत-प्रोत हो। यदि हम लोक सेवा की विशेषताएँ देखें तो वे निम्न हैं –

1. इसमें सैनिक और न्यायिक सेवाओं के लोग शामिल नहीं होते।
2. इसमें वे लोग भी शामिल नहीं होते जो राजनीतिक पदों पर होते हैं और वे भी नहीं जो राज्य के लिए अवैतनिक पद पर काम करते हैं।
3. यह अव्यवसायी राजनीतिज्ञों के विपरीत व्यावसायिक प्रशासकों की संस्था है।
4. इसके सदस्यों का चयन पार्टी आधारों के विपरीत खुली प्रतियोगिता द्वारा होता है।
5. इनको नियमित रूप से राज्य के द्वारा भुगतान किया जाता है। लोकसेवा में रहते हुए लोकसेवकों को निजी लाभ का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता।
6. इसके सदस्य सार्वजनिक सेवा को जीवन भर के कैरियर के तौर पर लेते हैं, अतः यह एक कैरियर सेवा है।
7. लगातार प्रशिक्षण और कार्य अनुभव के कारण वे अपने व्यवसाय के विशेषज्ञ बन जाते हैं, इस अर्थ में इसके सदस्य कार्यकुशल होते हैं।
8. यह श्रेणी क्रम सिद्धांत के आधार पर संगठित होती है और आदेश निचले पद से ऊपर की ओर पिरामिड की तरह एक कड़ी में फैलते हैं।
9. निष्पक्षता– इसके सदस्य भिन्न-भिन्न राजनीतिक शासनों का काम निष्पक्षता से करते हैं।
10. अनामता – यह बिना किसी प्रशंसा अथवा निंदा के काम करती हैं।

चूंकि वेबर के प्रतिमान में बताई गई लगभग सभी विशेषताएँ कम से ज्यादा स्तर पर हमारी लोक सेवाओं या कर्मचारी तंत्र में अभिन्न रूप से आज भी मिल रही हैं अतः कालांतर में हम लोक सेवाओं को ही 'नौकरशाही' कहने लग गए हैं।

सुशासन के संदर्भ में आधुनिक प्रवृत्तियाँ

परिवर्तित होती सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं से कोई भी अछूता नहीं रह सकता ऐसे में अधिकारी तंत्र या लोकसेवा भी अछूती नहीं रह

सकती। इसी संदर्भ में नौकरशाही कार्यप्रणाली में विगत् तीन-चार दशकों में अत्यधिक परिवर्तन आया है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही प्रतिमान को आदर्श इसलिए माना था कि वह संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि का साधन था, किंतु विगत् अनुभव यही सिद्ध करता है कि नौकरशाही प्रणाली ने किसी भी शासकीय संगठन में कार्यकुशलता या दक्षता को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया, अपितु स्वयं नौकरशाही कठोरता, औपचारिकता तथा अकार्यकुशलता का पर्याय बन चुकी है। आज जबकि शासन दिन-प्रतिदिन नई प्रवृत्तियों, चुनौतियों से उलझ रहा है व सुशासन आज की आवश्यकता बन गया है, फिर भी नौकरशाही अभी वहीं की वहीं है। नौकरशाही में व्याप्त अनेक त्रुटियों के बावजूद वर्तमान में कल्याणकारी राज्यों में इसकी भूमिका वहीं सर्वोपरि बनी हुई है, क्योंकि अभी तक नौकरशाही का विकल्प न मिलने के कारण विकास तथा कल्याण के कार्य भी पूर्णतः नौकरशाही पर ही निर्भर होते हैं और आने वाली अवधारणाओं का भी यही आधार होगा। तथापि नौकरशाही ने अपने आपको काफी बदला है तथा उसकी आधुनिक प्रवृत्तियों को हम आगे इस प्रकार समझ सकते हैं।

आज लोकसेवा के चरित्र में बड़ा परिवर्तन आया है। पुराने नकारात्मक स्वरूप ने अब सकारात्मक स्वरूप के रूप में स्थान लेना शुरु कर दिया है। 18वीं एवं 19वीं शताब्दियों में नौकरशाही की व्याख्या शासकीय कार्यालयों तथा तार्किकों की शक्ति के रूप में की जाती थी। कालांतर में शास्त्रीय अवधारणा के फलस्वरूप नौकरशाही निरंकुश, कठोर, औपचारिक, अहंग्रस्त तथा आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति ग्रहण करती गई। कार्य में विलंब, दुरुपयोग, भ्रष्टाचार, अनुत्तरदायित्व, अहं मानसिकता, प्रायः इसके साथ कहलाने लगे। परंतु आज नौकरशाही का सकारात्मक सिद्धांत अधिक माना जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि इसकी बुराइयाँ एकाएक खत्म हो गईं वरन् आप-हम उसकी अच्छाइयों को सकारात्मक रूप से बढ़ा रहे हैं, ताकि उसके दुष्प्रभाव कम हो सकें। परम्परागत नौकरशाही में पर्यावरणानुकूल परिवर्तन भी लाए गए हैं, जो अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी, जनसेवी भावना से युक्त, जनोन्मुख, मानवीय युक्त, दक्षता, प्रभावशीलता से योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए आक्रामक रूप तैयार किया जा रहा है। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विकास नौकरशाही में भी विशेषीकरण को 'सामान्य से विशेष' की ओर अग्रसर करती है। कल्याणकारी राज्य का बढ़ता महत्व इसके क्षेत्र व दायित्व दोनों में वृद्धि कर रहा है। अतः राज्य में चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, विधि तथा अन्य तकनीकी विषयों की भांति 'प्रशासन' भी एक महत्वपूर्ण विशेषज्ञतापूर्ण कार्य माना जाने लगा है। दूसरी ओर सामान्य अधिकारी स्वयं को प्रशासन का और सामान्य प्रशासन के अधिकारी अपने आपको किसी विशिष्ट क्षेत्र का विशेषज्ञ सिद्ध करने को उत्सुक है।

बीसवीं सदी के अंत में कम्प्यूटर तथा मानव संसाधन की उन्नति में अप्रत्याशित

वृद्धि ने नौकरशाही का मानव विकास संसाधन की ओर झुकाव बढ़ा दिया है। मशीन, वित्त सामग्री तथा प्रक्रियाओं की भांति कार्मिक के रूप में कार्य करता मानव भी संगठन की अमूल्य संपदा है। इसी तथ्य के मद्देनजर रखते हुए वर्तमान नौकरशाही में भी कर्मचारियों के दृष्टिकोणों तथा सक्षमताओं का विस्तार बड़े पैमाने पर दृष्टिगोचर हुआ है। इनमें सेवी वर्गीय नीति का निर्माण, योग्यता आधरित भर्ती, पर्याप्त प्रशिक्षण, पदोन्नति, आकर्षक वेतन, कार्य निष्पादन, मूल्यांकन तथा वृत्ति का विकास इत्यादि सम्मिलित हैं। किसी भी संगठन में कर्मचारियों का बना रहना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि कर्मचारियों का संतुष्ट व प्रतिबद्ध रहना। विकास प्रशासन और सुशासन पर जोर दिए जाने से मानवीय संबंधों की महत्ता उजागर हुई है तथा अब नौकरशाही से भी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक संबंधों के साथ औपचारिकता को हटाकर अनौपचारिकता को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है। यद्यपि नौकरशाही की कार्यप्रणाली कठोर तथा संवेदनशून्य मानी जाती है, परंतु नौकरशाही की परम्परागत कार्यशैली में समायानुकूल प्रजातांत्रिक परिवर्तन अपरिहार्य होते जा रहे हैं।

वर्ष 2015 में वर्तमान भाजपा सरकार द्वारा 'प्रगति' (PRAGTI - Pro-Active Governance And Timely Implementation) योजना लागू की गई है जो कि बहुउद्देशीय एवं बहुल.मॉडल पर आधारित है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य जन-शिकायतों/समस्याओं का निवारण करना है। इसके साथ ही महत्वपूर्ण राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय योजनाओं का निरीक्षण एवं समीक्षा करना है। इस योजना के उद्घाटन के समय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि ''आज पूरा विश्व भारत की ओर उत्सुकता से देख रहा है। इसलिये भारत में सुशासन को अधिक कुशल एवं उत्तरदायी होना होगा और 'प्रगति' योजना इस दिशा में एक प्रयास है।''[6]

अभी हाल ही (2017) में भारत सरकार द्वारा 129 नौकरशाहों को उनके गैर-निष्पादन कार्यों के चलते इन्हें जबरन सेवामुक्त किया गया है। सरकार द्वारा लगभग 24000 ग्रुप-ए सेवा अधिकारियों का व 42251 ग्रुप-बी सेवा अधिकारियों की सेवा समीक्षा की गयी जिसके उपरान्त 129 अधिकारियों को सेवामुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त यह भी तय किया गया कि इन अधिकारियों की सेवा समीक्षा पहले 15 वर्ष के अन्तराल पर और दूसरी सेवा समीक्षा 25 वर्ष पूरी होने पर की जायेगी और यदि इनकी कार्य निष्पादन समीक्षा सकारात्मक नहीं पायी गयी तो इन्हें सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा।

बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में नौकरशाही व राजनीति को एक दूसरे से पृथक माना जाता था। मिनोब्रुक सम्मेलन (1968) के बाद यह मान्यता बदलती गई कि राजनीति तथा प्रशासन एक दूसरे के पूरक हैं तथा इस संदर्भ में नीति विज्ञान का विकास तथा नौकरशाही को समग्र रूप उल्लेखनीय माना गया। आज विकास तथा सुशासन की आवश्यकताओं ने तटस्थता की परम्परागत नौकरशाही अवधारणाओं को बदले जाने

पर मजबूर कर दिया है। परिवर्तित परिस्थितियों में प्रशासन तथा राजनीति के मध्य समीपता ही नहीं, अपितु अंतःनिर्भरता भी बढ़ी है। दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू माना जाता है। विश्व बाजारीकरण व उदारवाद आदि ने तो कई राज्यों में इस अवधारणा को पूरी तरह बदलकर रख दिया है।

आज की नौकरशाही को आम जनता को निरीह प्राणी के रूप में जानने की अपेक्षा उसमें जन-संपर्क तथा अंतर्वैयक्तिक संपर्क बनाने का कौशल प्रदान किया जाता है। कल्याणकारी राज्य द्वारा संचालित हो रही विभिन्न कल्याणकारी विकासोन्मुख योजनाओं या कार्यक्रमों को भागीदारी से प्राप्त करने पर बल दिया है।

सुशासन की व्यापक अवधारणा, जिसमें समस्त विश्व के संपूर्ण सतत् विकास का दर्शन शामिल है, पर्यावरण को भी अपने लक्ष्यों में समेटे हुए है, अतएव आज की नौकरशाही भी पर्यावरणीय अनुकूलता को प्राप्त कर रही है। प्रशासनिक संस्थाएँ जहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश को प्रभावित करती हैं, वहीं उस पर्यावरण से खुद भी प्रभावित होती हैं। शिक्षा के प्रसार, औद्योगिक आधुनिकीकरण के कारण परिवर्तित हुई सामाजिक संरचना तथा व्यवहार के मद्देनजर आज नौकरशाही के व्यवहार में भी परिवर्तन आ रहे हैं। आज नौकरशाही पर भी दक्षता, मितव्ययिता तथा प्रभावशीलता प्राप्त करने का दबाव है। वर्तमान विज्ञान व सूचना तकनीकी ने नौकरशाही की एक और बड़ी प्रवृत्ति 'लालफीताशाही' पर लगाम कसना शुरू कर दिया है। लोकतांत्रिक मूल्यों तथा प्रजातांत्रिक प्रयासों एवं भागीदारी के फलस्वरूप आज नौकरशाही की शक्ति की भूख तथा अहं में वृद्धि पर भी रोक लगाई जा रही है। यदि यह कहा जाए कि लोकसेवा और नौकरशाही की मूल भावना तथा मूल्यों में भी वर्तमान में परिवर्तन आ रहा है या लाया जा रहा है, तो यह उचित ही होगा क्योंकि यदि यह प्रासांगिक और समयानुसार नहीं चलेगी तो खुद तो नष्ट होगी ही, साथ ही राज्य के कार्यात्मक स्वरूप पर भी नष्ट होने का खतरा मंडराने लगेगा।

संदर्भ

[1]क्वोटेड बाइ मार्टिन व्रफाइजर, इन स्टेट एंड ब्यूरोव्रेफसी इन यूरोप : दि ग्रोथ ऑपफ ए कॉन्सेप्ट युजिनी कामेलका एंड मार्टिन क्राइजर (संपादित) ब्यूरोक्रेसी–दिन कैरियर ऑफ ए कॉन्सेप्ट; वाजिरानी गुलाब, 1979

[2]गुप्ता, सुनील, सिंह, कमल कुमार, सुशासन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृष्ठ–126

[3]डाइमोक मार्शल इ. : ब्यूरोव्रेफसी सेल्फ इग्जैमिंड, इन एलबर्ट लेयूफ्सकी, पृष्ठ 191–92

[4]मार्क्स एपफ.एम. : दि एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, पृष्ठ-16

[5]क्राइजर मार्टिन, ओ.पी. सिट, पृष्ठ–28

[6]इवा, एटजोनी हालवी, ब्यूरोक्रैसी एंड डिमॉक्रेसी, 1983, पृष्ठ–85

[7]बाटा वेफ.डे. : ब्यूरोक्रेसी, डिवेलेपमेंट एंड पब्लिक मैनेजमेंट इन इंडिया, 1978, पृष्ठ–2

[8]डेनिस एंड थॉमसन : 'ब्यूरोक्रेसी एंड डिमॉक्रेसी', ग्रेन ड्यूकन (संपादित) डिमॉक्रेटिक थिअरी एंड प्रैक्टिस, 1985

[9]सैनी आर.वेफ., 'एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉम। : नीड फॉर प्रेजेंट टाइम, पृष्ठ–280

[10]www.pmindia.gov.in, 25 March, 2015

सुशासन, विकास एवं नौकरशाही

सच्चिदानन्द मिश्र एवं धर्मेन्द्र नाथ चौबे

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का सशक्तिकरण विकास है। व्यक्ति की क्षमता एवं स्वतंत्रता का विस्तारीकरण ही विकास है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में विकास सुधार या श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर बढ़ते रहने की प्रक्रिया ही विकास है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं एवं सुविधाओं की पूर्ति की मांग ही विकास है। विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो जीवन को गतिशील व बहुआयामी बनाती है। सुशासन विकास को गतिशील एवं सृजनात्मक बनाये रखने की विधा है। सुशासन व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के सशक्तिकरण की विधा है। सुशासन व्यक्ति के जीवन में सृजनात्मक एवं उपादेयता लाने की विधा है। नौकरशाही सुशासन को व्यावहारिक रूप देने एवं व्यवस्था को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने वाली प्रशासकीय इकाई है। सुशासन और विकास नौकरशाही के चरित्र एवं कार्य संस्कृति पर ही निर्भर करता है। नौकरशाही यदि चरित्रवान है, ईमानदार है, अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक है तो सुशासन होगा, विकास की परिस्थितियाँ निर्मित होंगी। यदि नौकरशाही ईमानदार नहीं है, चरित्रवान नहीं है, देशभक्त नहीं है तो सुशासन संभव नहीं है, विकास संभव नहीं है। अपराधियों में पराभव एवं आम जनों में सुरक्षा भाव की स्थापना सुशासन का संकेतक है, नौकरशाही की कर्तव्यशीलता का प्रमाण है। कानून व्यवस्था की सुखद स्थिति ही वह बुनियाद है जिस पर सुशासन की इमारत खड़ी होती है और विकास पल्लवित एवं पुष्पित होता है। सुशासन और विकास का सही मूल्यांकन तभी संभव है जब नौकरशाही का सही मूल्यांकन हो।

सुशासन को आधुनिक परिकल्पना समझा जाता है किन्तु यह परिकल्पना प्राचीन भारत में भी विद्यमान थी। उस समय सुशासन को ही राजधर्म कहा जाता था। शासन में धर्म सर्वोपरि था। यद्यपि की राजतंत्र था किन्तु राजा निरंकुश नहीं था। उसकी इच्छा सर्वोपरि नहीं थी। वह धर्म से नियंत्रित था, धर्म सामूहिक विवेक पर आधारित था। उस समय न तो दैवीय कानून प्रचलित था, न स्वेच्छाचारिता प्रभावी थी। अपितु इन सबके विपरीत राजधर्म प्रभावी था। राजधर्म अर्थात सुशासन का

वर्णन जातक कथाओं में, महाभारत के शान्ति पर्व यानि अनुशासन पर्व में मिलता है, शुक्रनीतिसार में एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। जहां लिखा है– *प्रजा का सुख ही राजा का सुख है। प्रजा का कल्याण ही राजा का कल्याण है।* जिस चीज में प्रजा आनन्द का अनुभव करे, उसी चीज में राजा को भी आनन्द का अनुभव करना चाहिये। राजा का कर्तव्य है कि प्रजा की सुख एवं समृद्धि की खोज करे। इन ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि धर्म की अनुपस्थिति में समाज में अव्यवस्था एवं अराजकता फैल जाती है। सबका जीवन असुरक्षित हो जाता है। धर्म के उल्लंघन के लिये राजा उत्तरदायी हैं। वृहदआरण्य उपनिषद् में लिखा है कि राजा का प्रमुख कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा करे। जिससे सभी को विकास का समान अवसर मिल सके। तथा मजबूत व्यक्तियों द्वारा कमजोर का शोषण न किया जाये। राजधर्म (सुशासन) का अभाव ही समाज में अव्यवस्था फैलने का मुख्य कारण है।

आधुनिक युग में सुशासन की संकल्पना सर्वप्रथम 1990 में विश्व बैंक के पूर्व अध्यक्ष वारवर कोलेनल ने लोक सेवा की दक्षता न्याय प्रणाली में विश्वसनीयता एवं प्रशासन की आम जनता के प्रति जिम्मेदारी के सन्दर्भ में किया था। 1992 में विश्व बैंक की एक पुस्तक सुशासन एवं विकास में यह स्पष्ट किया गया है कि सुशासन वही है जिसमें सामाजिक एवं आर्थिक संसाधनों का प्रयोग जनकल्याण हेतु किया जाये। सुशासन ऐसा वातावरण निर्मित करने की प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के अपनी क्षमता का विकास कर सके। अपने व्यक्तित्व का निर्बाध रूप से विकास कर सके। आगे चलकर समाज वैज्ञानिकों ने सुशासन के लिये पारदर्शिता एवं जन सहभागिता को आवश्यक बताया।

सुशासन की सफलता के लिये आवश्यक है कि नौकरशाही अपने दायित्वों का निर्वहन ईमानदारी पूर्वक करे। सुशासन को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी अन्तिम रूप से नौकरशाही की होती है। शासन को सुशासन में बदलने के लिये नौकरशाही का लोक के प्रति समर्पण और राजकाज के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी होना अनिवार्य है। सुशासन की परिकल्पना तभी साकार होती है जब सरकारी प्रक्रिया को व्यावहारिक बनाकर देश में एक खुला एवं जवाबदेह प्रशासन की उपलब्धता साकार ही है। जब प्रभावकारी नीतियों को जनता के कल्याण के लिये ईमानदारी से लागू किया जाता है। जब नागरिकों को सरकार के निकट लाकर शासन की प्रक्रिया में जन भागीदार बनाया जाता है।

किन्तु दुर्भाग्यवश नौकरशाही उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य में एक कमजोर कड़ी के रूप में उभरी है। इसका मुख्य कारण नौकरशाही का अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन रहना एवं भ्रष्टाचार में लिप्त रहना है। देश में यह अवधारणा प्रचलित है कि भ्रष्टाचार और राष्ट्रीय सम्पदा की लूट के लिये मुख्य रूप से जन प्रतिनिधि जिम्मेदार हैं, किन्तु इसमें नौकरशाही की भूमिका बराबर की है। जिधर देखिये नौकरशाही के

भ्रष्टाचार की परतें खुल रही हैं। देश का सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश हो, मध्य प्रदेश हो या आन्ध्र प्रदेश हो जगह-जगह नौकरशाहों की करतूत से देश शर्मिन्दा है। उत्तर प्रदेश में अभी तक जितने भी भ्रष्टाचार हुए हैं। उन सभी में नौकरशाहों की संलिप्तता रही है। उत्तर प्रदेश पिछले दो दशक से भ्रष्टाचार नौकरशाहों का चारागाह बन चुका है, जिससे की राज्य में सुशासन की स्थापना नहीं हो सकी है। उत्तर प्रदेश के भ्रष्ट आईएएस अधिकारियों में कई नाम है, जिन्होंने अपने कुकृत्यों से सुशासन की रीढ़ तोड़ दी है। इसमें राकेश बहादुर, संजीव सरन, रविन्द्र के. नायर और देवदत्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन पर नोएडा भूमि आवण्टन में घपले का आरोप है। सीबीआई इन चारों के खिलाफ आरोप पत्र भी दाखिल कर चुकी है। देश में सुशासन स्थापित न होने के बहुतेरे कारण हैं किन्तु उनमें एक प्रमुख कारण नौकरशाही का भ्रष्टाचार में लिप्त होना है। अगर नौकरशाही भ्रष्ट न हो तो सुशासन की स्थापना होते देर नहीं लगती। जिस नौकरशाही का उत्तरदायित्व राष्ट्र में सुशासन की स्थापना कर देश को बुलन्दी पर ले जाना है, वह राजनेताओं का बगलगीर बन देश की सम्पदाओं को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। यह समझना होगा कि जब तक नौकरशाह अपने उत्तरदायित्वों के प्रति नैतिक रूप से जवाबदेह नहीं होंगे, तब तक सुशासन की स्थापना संभव नहीं है।

मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने राज्य का नेतृत्व सम्भालते हुए ''सबका साथ सबका विकास'' की नीति पर चलने की घोषणा की। इसके साथ ही भ्रष्टाचार मुक्त पारदर्शी शासन का संकल्प दोहराया। सबसे बड़ी बात है कि सरकार तामझाम से परे पहले ही दिन से काम करती दिखाई दे रही है। अभी तक मुख्यमंत्री ने कैबिनेट की पहली बैठक भी नहीं बुलाई थी फिर भी सब मंत्री और मंत्रालय अपने काम पर जुट गये थें। इसका परिणाम भी होता नजर आ रहा है और राज्य का माहौल भी बदलने लगा है। अगर हम योगी राज की पहले एक सप्ताह पर नजर दौड़ाये तो भविष्य की एक तस्वीर बनायी जा सकती है।

शपथग्रहण के बाद अपनी कैबिनेट की पहली बैठक में ही मुख्यमंत्री ने अपने मंत्रियों से 15 दिन के अन्दर अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति का ब्यौरा मुख्यमंत्री के सचिव एवं भाजपा की प्रदेश इकाई को उपलब्ध कराने का निर्देश दिया। मुख्यमंत्री ने मंत्रियों को अनावश्यक बयानबाजी से बचने की हिदायत दी। इसके साथ ही कैबिनेट मंत्री श्रीकान्त शर्मा एवं सिद्धार्थनाथ सिंह को नियमित रूप से सरकार के निर्णय की जानकारी देने हेतु सरकार के प्रवक्ता के तौर पर नियुक्त किया।

मुख्यमंत्री ने हर काम होने की समय सीमा निर्धारित करने का निर्देश दिया। हर विभाग का सीटिजन चार्टर तैयार करने और समय से लागू करने का निर्देश दिया। विद्युत आपूर्ति में सुधार के लिये नौ बिन्दुओं का एजेन्डा भी जारी किया जिसमें विद्युत

वितरण निगमों के प्रबन्ध निदेशक को रोस्टर के मुताबिक बिजली उपलब्ध कराने के निर्देश दिये।

वरिष्ठ प्रशासनिक अफसरों की पहली बैठक में ही उन्होंने स्पष्ट किया कि भ्रष्टाचार और कानून व्यवस्था के मुद्दों पर सरकार जीरो टालरेन्स की नीति अपनायेगी। इसके लिये उन्होंने एक संकल्प भी दोहराया। उन्होंने मुख्य सचिव, अपर मुख्य सचिव, प्रमुख सचिवों एवं अन्य सचिवों के साथ बैठक कर भाजपा का संकल्प पत्र भी दिया। इसके साथ ही मुख्यमंत्री ने प्रत्येक अधिकारी को अपने-अपने विभागों के हिसाब से सप्ताहभर में इस पर अमल करने का निर्देश दिया। मुख्यमंत्री ने पिछली सपा सरकार में विभिन्न विभागों में नियुक्त सभी सलाहकारों, अध्यक्षों, उपाध्यक्षों व सदस्यों की सेवा समाप्त कर तत्काल कार्य मुक्त करने का आदेश दिया। मुख्यमंत्री ने चुनावों के दौरान किये गये सपा सरकार के सभी फैसलों की भी समीक्षा करने का निर्णय लिया। जिन अधिकारियों की पुनः नियुक्ति की गयी थी, उनकी समीक्षा हो रही है। मुख्यमंत्री ने सभी दफ्तरों, अस्पतालों और स्कूल-कालेजों में पान, गुटखा और तम्बाकू के सेवन पर रोक लगा दी। मंत्रियों को कार्यालय में प्रातः 9.30 बजे और सायं 6.30 बजे तक उपलब्ध रहने को कहा। मुख्यमंत्री ने मंत्रियों का ज्यादा से ज्यादा सोशल मीडिया का इस्तेमाल कर संवाद व सम्पर्क स्थापित करने का आग्रह किया। मंत्रियों को नसीहत भी दी गयी कि प्रायः हूटर और सायरन बजाने से बचें। यह भी कहा कि किसी को स्टेटस सिम्बल के नाम पर गनर नहीं दिये जायेंगे। शासन में अधिकतम एक सप्ताह के अन्दर फाइल का निपटारा करना होगा। मुख्यमंत्री ने राज्य सरकार के कार्यालयों में उपस्थिति के लिये बॉयोमेट्रिक प्रणाली या सीसीटीवी कैमरा लगाने का निर्देश दिया। विभाग में पंजीकृत दागी कर्मी एवं माफिया किस्म के ठेकेदारों का पंजीकरण समाप्त करके इसके स्थान गुणवत्तापरक एवं पाददर्शी कार्य करने वाली ठेकेदारों एवं संस्थाओं को मौका दिया जाये। अवैध खनन पर पूरी तरह से रोक लगाने के लिये प्रमुख सचिव खनन व गृह को निर्देश दिया जाये। इसके साथ ही अधिकारियों को यह चेतावनी भी दी कि जहां अवैध खनन की शिकायतें प्राप्त होंगी वहां के जिलाधिकारी एवं वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को सीधे जिम्मेदार ठहराया जायेगा। मुख्यमंत्री ने अवैध बूचड़खानों के खिलाफ स्पष्ट एवं भेदभाव रहित कार्रवाई करने का आदेश दिया। चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग के अपराधियों पर कठोर कार्रवाई करने का आदेश दिया। योगी ने नाराजगी जताते हुये कहा कि सरकारी अस्पतालों में डाक्टरों की उपस्थिति सुनिश्चित होनी चाहिये।

इसके साथ ही मुख्यमंत्री ने युवतियों पर तेजाब हमले के बारे में कठोर कार्रवाई करने का आदेश दिया। *एन्टी रोमियो दल* के नाम पर युवतियों से छेड़छाड़ करने के खिलाफ अभियान भी चालू कर दिया। मुख्यमंत्री ने पुलिस कर्मियों को चेताया कि किसी पार्क में सहमति से बैठे जोड़ों को न सताया जाये। छेड़छाड़ करने वालों के

बाल कटवाना, सार्वजनिक स्थान पर मुर्गा बना देना, कालिख पोतने जैसे कृत्य न किये जाये। मुख्यमंत्री ने राज्य सचिवालय की सुरक्षा व्यवस्था भारतीय संसद की तर्ज पर करने का निर्देश दिया।

सत्ता परिवर्तन के साथ ही कार्य संस्कृति में भी बदलाव चतुर्दिक दिखना शुरू हो गया। दफ्तरों में सरकारी कर्मचारी समय से पहुंचने लगें। केन्द्रीय जांच एजेन्सियों को राज्य सरकार पूरा सहयोग देने लगी। आयकर प्रवर्तन निदेशालय की बढ़ती गतिविधियों से भ्रष्टाचारियों में हड़कम्प मच गया। जहां तक पूर्ववर्ती सरकारें विकास के कार्यों में धन की कमी का रोना रोतीं और सरकारी धन का अपव्यय करती रहीं। वहीं योगी सरकार में फिजूलखर्ची पर लगाम लगायी जाने लगी। और लोकोपयोगी योजनाओं में धन की कमी आड़े नहीं आने दी जा रही हैं। *एन्टी रोमियो दल* के कार्यों, शराबियों की धरपकड़ और मंत्रियों द्वारा अपने दफ्तर में झाड़ू लगाने के दृश्यों ने जहां एक ओर शमा बांधा, वहीं दूसरी ओर किसानों की ऋणमाफी के अपने वादे पूरा कर योगी सरकार ने हुकूमत के वकार को नई ऊंचाई बख्शी है। बेलगाम नौकरशाहों को काम करने की कार्य संस्कृति का पहला पाठ पढ़ाया तो खादी को जनता की खिदमत और ख्याल करने का मंत्र दिया। जनता में कानून के प्रति विश्वासभाव जगाने के लिये पुलिस के अधिकारियों को व्यस्त बाजारों में प्रतिदिन डेढ़ से दो किलोमीटर पैदल गस्त का निर्णय कानून व्यवस्था के मोर्चे पर सरकार की गम्भीरता को बयान करता है। तो अवैध बूचड़खानों के परिणामदायक कार्यवाही ने कानून के इकबाल को बुलन्द करने का काम किया। मनमानी फीस वसूलने वाले फंसते नजर आने लगें। लालबत्ती कल्चर डिब्बे की शोभा बन गयी। भ्रष्टाचार, भोजन, सुरक्षा, स्वास्थ्य और बिजली जैसे अहम मुद्दे को वरीयता प्रदान कर सरकार ने आगे के पांच साल के लिये अपने इरादे साफ कर दिये। प्रदेश के मुख्यमंत्री का तीन तलाक पीड़ित महिलाओं को सरकारी मदद देने का आह्वान, मुस्लिम छात्रों को मुख्य धारा में लाने के लिये मदरसों के पाठ्यक्रम में सुधार का निर्णय और मुस्लिम बेटियों की भाादी के लिये योगी सरकार का अपना खजाना खोलना सियासत के पहले पन्ने पर सबका साथ सबका विकास की सुनहरी इबारत लिखने लगा है।

वास्तव में सुशासन जन केन्द्रित उपक्रम है और मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने प्रदेश में बढ़ती सरकारी छुट्टियों को लेकर जिस तरह प्रदेशवासियों के दुखती रगों पर अंगुली रखी उससे उनके समर्थक तो समर्थक उनके विरोधी भी आलोचना से परहेज करने लगें। सपा संस्थापक मुलायम सिंह यादव तो पार्टी लाइन को तोड़कर उनका समर्थन करने लगें। बेहद साफगोई और उतनी ही अनाक्रमता के साथ योगी ने कहा कि प्रदेश में बहुत छुट्टियां महापुरुषों के नाम पर होती हैं। अच्छा होगा कि उनके नाम पर छुट्टी न करके उनकी जयन्ती एवं पुण्यतिथियों पर उनकी याद में ऐसे

कार्यक्रम किये जायें ताकि लोग एवं छात्र खासकर छात्र एवं छात्रायें उनके विषय में अधिक जान सकें। योगी की बात को तथ्यों के आइने में देखा जाये तो सबसे ज्यादा छुट्टी सबसे बड़े प्रदेश उत्तर प्रदेश में होता है। जहां सरकारी कर्मचारियों के लिये साल में 365 दिन में 192 दिन छुट्टियाँ हैं। सचिवालय समेत सारे विभागीय मुख्यालयों में पांच दिन का कार्य सप्ताह है, यानी वहां शनिवार और रविवार को 104 दिन काम नहीं होता, इसी तरह प्रदेश के स्कूलों और कालेजों में भी छुट्टियों की भरमार है।

मुख्यमंत्री के सुशासन की तरफ बढ़ते कदम को नौकरशाही द्वारा फेल किये जाने का वर्णन करते हुये न्यूज टाइम पोस्ट 1 जून से 15 जून, 2017 में प्रणय विक्रम सिंह लिखते हैं कि उत्तर प्रदेश के भगवा सरकार के लगभग 70 दिन गुजरने के बाद भी सूबे में कानून गुनहगारों के सामने हांफता नजर आ रहा है। व्यवस्था अपनी लूटी हुई अस्मत के साथ दूर खड़ी खौफनाक दौर के गुजरने का इंतजार कर रही है और जनता बड़ी हसरतों के साथ अपना जनादेश देने के बाद अपनी उम्मीदों को बड़ी विवशता के साथ जार-जार देखने को मजबूर है। गुजरे दो माह के वक्त में सूबे के आवाम ने कभी कानून के मुहाफिजों को बलवाइयों के सामने अपनी हिफाजत के लिये कभी भागते देखा तो कभी पीड़ितों के विरोध करने की सजा के तौर पर अपराधियों की गोली का शिकार बनते देखा। अपराधी बारी-बारी से अस्मतरेजी करते रहें और सरकार प्रजेन्टेशन देखने में मशगूल रही। 15 मिनट के फासले पर खड़ी पुलिस दो घण्टे में पहुंचती है। और पुलिस जाती है तो भी कुछ कर नहीं पाती। ऐसे तेज और समर्थ पुलिस के कन्धों पर ही उत्तर प्रदेश जैसे बड़े प्रदेश की कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी है। क्या यह मान लिया जाये कि उत्तर प्रदेश की पुलिस अक्षम, असमर्थ और गैरपेशेवर है, जो अपराधियों के सामने प्रत्येक मोर्चा हारती चली आ रही है। या यह मान लिया जाये कि उत्तर प्रदेश में पुलिस और प्रशासनिक मशीनरी का इस कदर राजनीतिकरण हो चुका है कि सरकार में तबदीली होने के साथ ही पुलिस और प्रशासनिक मशीनरी में भी तुरन्त बदलाव होना चाहिये, अन्यथा उनकी पूर्व राजनीतिक निष्ठायें नई सरकार के लिये परेशानी का सबब बन जाती हैं।

जन मानस के मन में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को लेकर पूरा भरोसा है। किन्तु सिस्टम के शरारत से पैदा हुई हरारत ने सभी को बेचैन कर दिया है। योगी ने राज्य में कानून का राज होगा का वचन विधानसभा चुनाव के पूर्व दिया था। अब अपने वचन को पूरा करना मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी है, क्योंकि सी.एम. का वचन ही होता है शासन। किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य है कि जरूरत से ज्यादा राजनीतिक दखल भ्रष्टाचार, जातिवाद और अनुशासनहीनता के चलते पुलिस किस कदर निरंकुश हो चुकी है, इसका अन्दाजा पूर्व डीजीपी जावीद अहमद के इस कथन से लगाया जा सका है कि कई पुलिस कर्मियों का अपराधियों से सांठगांठ है। पश्चिमी

उत्तर प्रदेश अर्थात मेरठ मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, नोएडा, मथुरा, आगरा आदि में उन्होंने ऐसे पुलिस कर्मियों की भरमार बताई थी। यद्यपि योगी सरकार ने ऐसे पुलिस कर्मियों की सूची तैयार कर उनके खिलाफ कठोर कार्यवाही करने की बात कही है। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के द्वारा लगाये जा रहे जनता दरबार में सार्वाधिक शिकायत पुलिस को लेकर ही आती है। ये शिकायतें बता रही हैं कि हत्या, अपहरण, लूट, बलात्कार, डकैती, ड्रग्स की तस्करी तथा जमीनों पर कब्जे जैसी संगीन अपराधिक वारदातों में पुलिस ने न केवल अपराधियों को संरक्षण दिया बल्कि आवश्यकता पड़ने पर सक्रिय भूमिका भी निभाई।

अतः विकास और सुशासन को तभी संभव बनाया जा सकता है, जब नौकरशाही शासन का सहयोग ईमानदारी के साथ करे और अपने कर्तव्यों के प्रति सतत् जागरूक रहे।

भारत में सुशासनः एक सम्यक दृष्टिकोण

कमलेश नारायण मिश्र एवं अंजुलता मिश्र

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद का अंत हो गया। एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देश उपनिवेशवाद से मुक्त होकर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आये। इस नवीन राज्यों के राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिये 1950 में राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में एक नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। इस नवीन सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आधुनिक राजनीतिक मूल्य जैसे प्रजातंत्र स्वतंत्रता, समानता और न्याय को स्थापित करना था। नूतन सिद्धांतों के सम्प्रति 1960 में राजनीतिक विकास की अवधारणा अस्तित्व में आयी जिसका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता को बढ़ाना तथा शासन की प्रक्रियाओं में जन भागीदारी को सुदृढ़ करना था। वैश्वीकरण तथा नव उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यांकन के लिये 'सुशासन' की अवधारणा अस्तित्व में आयी। सर्वप्रथम इसे विश्व बैंक ने संज्ञान में लिया और यह स्पष्ट किया कि सुशासन का मुख्य उद्देश्य ऐसी धारणा का प्रतिपादन करना था जो सरकार के कार्यों का मूल्यांकन निष्पादन के आधार पर कर सकें। क्योंकि ''राज्य निर्माण और राष्ट्र निर्माण की संकल्पना किसी देश के विकास का राजनीतिक पक्ष प्रस्तुत करती है''[1]। राज्य और राष्ट्र निर्माण के विकास में सुशासन और विकास दोनों अपरिहार्य तत्व हैं क्योंकि बिना सुशासन के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती और विकास तभी संभव है जब सुशासन अस्तित्व में हों।

सर्वविदित है कि सुशासन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई सरकार सामाजिक और आर्थिक संसाधनों के लिये शक्ति का प्रयोग करती है। अर्थात सुशासन के अंतर्गत यह देखा जाता है कि किसी राजनीतिक प्राधिकार के द्वारा किस प्रकार निर्णय किये जाते हैं साथ ही उस निर्णय का क्रियान्वयन कहाँ तक प्रभावी होता है। विकास की प्रक्रिया में समाज का अंतिम व्यक्ति उससे प्रभावित होता है

अथवा नहीं। ''राजनीतिक विश्लेषणों में शक्ति और प्रभाव समान रूप से केन्द्रीय अवधारणायें हैं, प्रभाव तो कभी-कभी शक्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है''[2]। अर्थात सुशासन एक गत्यात्मक अवधारणा है। यह एक बहुआयामी प्रक्रिया है क्योंकि शासन करने की प्रक्रिया में केवल सरकार के अंग ही भाग नहीं लेते बल्कि अनेक अंग भाग लेते हैं तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश पर उसका प्रभाव भी पड़ता है। सुशासन और विकास की अवधारणा तभी सफल कही जायेगी जब वह आमजन के हित में समर्पित हो। जॉन रस्किन की प्रसिद्ध पुस्तक 'Unto the Last' के अध्ययन से महात्मा गाँधी को पता चला है कि ''संसार में सर्वोत्तम जीवन किसान और श्रमिक का है''[3]। वास्तव में किसी देश में नियोजित आर्थिक विकास, लोक तंत्रात्मक, समाजवादी समाज की रचना, वर्गविहीन समाज की स्थापना, सामाजिक न्याय, राजनीतिक स्थिरता एवं स्थायित्व तथा वैश्विक परिपेक्ष्य में आर्थिक आत्म निर्भरता जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति सुशासन और विकास के बीच समन्वय से हीं संभव है।

सन् 1992 में विश्व बैंक ने सुशासन को स्पष्ट करते हुए कहा कि सुशासन एक मूल्य सापेक्षिक अवधारणा है क्योंकि प्रत्येक शासन को सुशासन नहीं कहा जा सकता। एक विशेष प्रकार के शासन (जिसकी जवाबदेही तथा जिम्मेवारी दोनों जनता के प्रति हो को ही सुशासन की उपमा दी जा सकती है। इतना ही नहीं 'United Nation Economic and Social Commission for Asia and the Pacific' में सुशासन के लिये विधि का शासन, जनता की भागेदारी, स्वतंत्र न्यायपालिका, मानवाधिकार एवं प्रजातंत्र, प्रशासनिक जवाबदेही एवं दक्षता के साथ गैर सरकारी संगठनों के साथ और सरकारी संगठनों की भूमिका को भी अपरिहार्य बताया गया है। यहाँ इसका अर्थ यह भी नहीं लगाया जाना चाहिये कि सुखपूर्ण जीवन ही सुशासन का द्योतक है।' प्रसन्नता के लिये सुखपूर्ण जीवन नहीं वरन् दुख उठाकर और निम्न सुखों को त्याग कर उच्च नैतिक सुखों की प्राप्ति आवश्यक है।[4]

जहाँ तक भारत में सुशासन का सवाल है, भारत में सुशासन की स्थिति न तो बहुत नैतिक है न तो बहुत ही निम्न। दोनों का मिला जुला स्वरूप यहाँ देखने को मिलता है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में यद्यपि विधि का शासन, स्वतंत्र न्यायपालिका, सूचना का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि क्षेत्रों में प्रगति अवश्य हुई है, तथापि सामाजिक न्याय, राजनीतिक व प्रशासनिक जवाबदेही तथा प्रशासनिक गतिविधियों में जन सहभागिता के क्षेत्र में ठोस कदम उठाने की आज भी जरूरत महसूस हो रही है। 2014 के आम चुनाव के पश्चात भारतीय राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला कि लगभग तीन दशकों के पश्चात् किसी एक राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हुआ। तत्कालीन सरकार ने उसी समय 'Minimum Government and Maximum Governance' के सिद्धांत पर

कार्य करने का संकल्प लिया। इसको व्यवहार में प्रयोग करने का संकल्प लिया। इसको व्यवहार में प्रयोग करने की दृष्टि से सरकार ने प्रौद्योगिकी पर बल दिया प्रौद्योगिकी से संबंधित 'Digital India Startup' तथा 'Skill India' जैसी योजनायें शुरू की जिससे शासक और शासित के बीच दूरियाँ कम हो सकें। सम्प्रति यह सुशासन के परिपेक्ष्य इसकी परणति और प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। 'राज्य को सदैव इस बात का प्रयास करना चाहिये कि न केवल वह स्वयं बल्कि नागरिक सार्वजनिक पूर्ति के लिये कार्य करे। इस प्रकार के कार्य से राज्य धार्मिक विद्वेष से छुटकारा पाकर मानवीयता का बीजारोपण भी कर सकता है।[5]

हाँ, एक बात तो बड़ी ही दिलचस्प है वर्ष 2016 में 'सुशासन बाबू' के रूप में बिहार के माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार जी अत्यधिक चर्चा में रहे क्योंकि उन्होंने अपने चुनाव अभियान में 'शराब बंदी' लागू करने का जो वादा किया था। इतना ही नहीं इस मुद्दे पर उन्हें अत्प्रत्याशित समर्थन भी मिला खासकर महिला मतदाताओं के बीच। सरकार बनने के बाद 'सुशासन बाबू' ने अपना वादा पूरा भी किया। निःसंदेह यह बेहद साहसिक असाधारण और संजीदा फैसला था क्योंकि कहने की जरूरत नहीं है, शराब ने ग्रामीण इलाकों में बृहद स्तर पर बर्बादी की दासता लिखी है।

अन्ततः भारत में सुशासन की इस अवधारणा को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने की आज सख्त जरूरत है। वैश्वीकरण के इस युग में समाज में हमें सभ्य नागरिक तभी कहा जायेगा जब हमारी चेतना और प्रतिनिधित्व के मूल में सुशासन होगा, जनता और सरकार के बीच आत्म निर्भरता बढ़ेगी। अन्यथा यह सत्य है कि इतिहास के प्रत्येक अवस्था में उसके विनाश के बीज होते हैं। आज आवश्यकता है कि हमें इन चुनौतियों से लड़ने के लिये तैयार रहना होगा।

संदर्भ

1. रजनी कोठारी, 'स्टेट एण्ड नेशन बिल्ड' ए थर्ड वर्ल्ड प्रसपेकटीव, 1976.
2. Robert A. Dahl: Moder Political Analysis Page-40
3. मोहनदास करमचंद गाँधी, आटोबायोग्रॉफी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।
4. लियो स्ट्रास और जोसेफ, हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल फिलॉसफी, शिकागो 1968 पृष्ठ 684.
5. मीखू पारेख, बेन्थम्स पॉलिटिकल थाट क्रूमटेल्स, लंदन 1973 पृष्ठ 4.

भारत में आवास की समस्या के निदान में सुशासन की भूमिका

अमित कुमार सिंह एवं ममता पठानिया

भोजन और वस्त्र के बाद मानव के लिए उपयुक्त आवास तीसरी सबसे महत्वपूर्ण बुनियादी जरूरत है। आवास मात्र सर छुपाने की जगह नहीं है जो किसी व्यक्ति की रक्षा विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं और गैर-सामजिक तत्वों से करता है बल्कि उसे एक निश्चित आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। उपयुक्त आवास व्यक्ति के बौद्धिक विकास को निर्धारित करता है और राष्ट्र के समग्र विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। हालांकि आवास जीवन की एक बुनियादी आवश्यकता है जिसकी पुष्टि हमारे देश का संविधान भी स्पष्ट शब्दों में करता है, इसके बावजूद भारत में आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसे अस्वस्थकर आवासीय इलाकों में रहने के लिए मजबूर है जहाँ का भौतिक और सामाजिक वातावरण किसी भी लिहाज़ से मानव निवास के अनुकूल नहीं है। अतः आवास जैसी मुलभूत आवश्यकता का समाधान किए बगैर देश में सुशासन की कल्पना नामुमकिन है। जब देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा मलिन बस्तियों में रहता हो और लाखों की तादाद में लोग सड़कों पर रहने के लिए मजबूर हों तो ऐसे में सुशासन कैसे स्थापित हो सकता है? यही वजह है कि सभी नागरिकों को उपयुक्त, पर्याप्त एवं किफायती आवास उपलब्ध कराना शासन की एक प्रमुख जिम्मेदारी बन गयी है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रपत्र का उद्देश्य भारत में आवास की समस्या का संक्षिप्त विवेचन कर उन उपायों को चिन्हित करना है जिनसे देश के सभी परिवारों को किफायती आवास उपलब्ध कराने में मदद मिल सके।

वर्तमान समय में किसी राष्ट्र की उन्नति, उद्यमिता और श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर है कि उसने अपने शासन के प्रत्येक अंग का कितना प्रभावी, न्यायसंगत और लोक कल्याण की भावना से उपयोग किया है। अतः राष्ट्रीय सरकारों का लक्ष्य एक ऐसे शासन तंत्र की स्थापना से होना चाहिए जिसमें प्रत्येक नागरिक को उनकी इच्छाओं और क्षमताओं के अनुरूप एक सुरक्षित और उपयोगी जीवन प्राप्त करने का

इष्टतम अवसर मिल सके। इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्र अपने समस्त भौतिक और मानवीय संसाधनों का प्रबंधन सुसंगत तरीके से करे। भारत का संविधान भारत को एक कल्याणकारी राज्य का दर्जा देता है और राज्य को यह जिम्मेदारी प्रदान करता है कि वो बिना किसी भेदभाव के अपने समस्त नागरिकों को एक उच्च स्तरीय जीवन उपलब्ध कराये। हमारा संविधान कदम-कदम पर इस बात की तरफ इशारा करता है कि देश के नागरिकों को समुचित शिक्षा मिले, उनके स्वास्थ्य की देखभाल हो, सबको उपयुक्त आवास उपलब्ध हो, देश में आवश्यक आधारभूत ढांचे का निर्माण हो एवं पिछड़े व वंचितों का उत्थान हो। इन उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जब हमारा राष्ट्र सुशासन की राह पर चले और अपनी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्राथमिकताओं का निर्धारण समाज की सहमति से गरीब और सबसे कमजोर व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर करें।

हमारे उद्देश्य भले ही कितने पावन क्यूँ न हों किन्तु इस सच्चाई से भी इनकार नही किया जा सकता कि आज देश के समक्ष ऐसी कई चुनौतियां हैं, जिनका हल हम आजादी के 70 साल बाद भी नहीं निकाल पायें हैं और जिनका समाधान किए बगैर सच्चे अर्थ में सुशासन की स्थापना संभव नहीं है। ऐसी ही एक समस्या, उपयुक्त आवास की कमी से सम्बंधित है, जो दिनोंदिन विकराल होती जा रही है। विभिन्न रिपोर्टों, चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर-सरकारी, के अनुसार देश की करीब एक-चौथाई जनसंख्या निम्नस्तरीय आवासीय क्षेत्रों में मलिन बस्तियों, अथवा अवैध कॉलोनियों में अपना जीवन बसर कर रही हैं। आवास की इस समस्या का विस्तार ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में देखने को मिलता है। लेकिन विपरीत आवासीय परिस्थितियों का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है क्यूंकि गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा आज भी गावों में ही निवास करता है। इनमें से ज्यादातर लोग भूमिहीन कृषक मजदूर हैं जो अपनी खराब वित्तीय दशा के कारण मजबूरन ऐसी प्रतिकूल आवासीय परिस्थिति में रहते हैं जहां उन्हें अपने दैनिक शारीरिक जरूरतों को पूर्ण करने हेतु पर्याप्त स्वच्छ पेयजल और शौचालय भी उपलब्ध नहीं है। इनके मकान अस्थायी और कच्ची सामग्रियों से बने हैं। इनका बसाव प्रायः नदी-नालों, सड़क, पार्कों, आदि के किनारे खाली पड़ी जमीनों पर अनाधिकृत रूप से होता है। ये निर्धन परिवार जब जीविका की खोज में नगरों की तरफ पलायन करते हैं तो वहां भी उन्हें आवास की समस्या से दो-चार होना पड़ता है। हालांकि शहरों में पेट भरने के लिए उन्हें कोई न कोई काम मिल ही जाता है पर रहने के लिए उपयुक्त आवास नहीं मिल पाता है। शहरों में मकानों की आसमान छूती कीमतें और उनका मासिक किराया इतना अधिक होता है कि चाहकर भी एक गरीब व्यक्ति किसी उपयुक्त आवासीय क्षेत्र में निवास नहीं कर सकता। मजबूरन उन्हें गन्दी बस्तियों में अथवा अनाधिकृत कॉलोनियों में रहने के लिए मजबूर होना पड़ता

है जहाँ बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव है।

वास्तव में ख़राब आवासीय दशाएं जहाँ गरीबी की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हैं, वहीं दूसरी ओर हमारी आवासीय योजनाओं की विफलता का जीता जागता उदाहरण भी है। यूँ तो आवास का निर्माण प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति अथवा परिवार की आर्थिक स्थिति के साथ जुड़ा हुआ है परन्तु इस बात से भी इनकार नहीं किया सकता है कि विभिन्न प्रकार की मुलभुत सुविधाएं जिसमें सड़क, बिजली, पानी, नाली, आदि की व्यवस्था अकेले व्यक्ति के बस की बात नहीं है। यहाँ सरकार की भूमिका महती हो जाती है। यदि इंदिरा आवास योजना जैसी सरकारी आवास योजना की ही बात करें तो हम पायेंगे की यह योजना अपनी कुछ अन्तर्निहित प्रशासनिक खामियों और इसके क्रियान्वयन में हुई अनियमितता की वजह से इक्षित सफलता नहीं प्राप्त कर सका है। इस योजना का क्रियान्वयन गरीब लोगों की आवासीय समस्या के निवारण के लिए किया गया था परन्तु इस योजना के तहत निर्मित घरों में उचित बिजली, पीने के पानी, सड़कों तक पहुँचने का रास्ता, जल निकासी की सुविधा, स्ट्रीट लाइट, आदि जैसी बुनियादी सुविधाओं की भारी कमी है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रपत्र का उद्देश्य भारत में आवास की समस्या और उसके स्वरूप की विस्तृत विवेचना शासन के परिपेक्ष्य में करना है। उपलब्ध साहित्यों और आंकड़ो के आंकलन के बाद यह पत्र इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि गरीबों को किफायती आवास उपलब्ध कराये बिना गरीबी के प्रति देश की लड़ाई अधूरी ही रहेगी। जहाँ तक किफायती आवास का सवाल है, यह सरकार के प्रभावी सहयोग के बगैर असंभव है। इस प्रपत्र का प्रयास उन उपायों और सीमाओं को भी चिन्हित करना है जिनसे देश के सभी परिवारों को किफायती आवास उपलब्ध कराने में मदद मिल सके।

आवास एक मूलभूत आवश्यकता

इसमें कोई दो राय नहीं है कि भोजन और वस्त्र के बाद मानव के लिए सबसे जरूरी आवश्यकता आवास की है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आवास का तात्पर्य क्या है? क्या आवास का अर्थ सिर्फ चार दीवारों से युक्त एक कमरा और एक व्यक्ति के सर के ऊपर छत का होना है अथवा इससे कहीं इतर जीवन जीने की दशाएं हैं। सरल शब्दों में "आवास एक ऐसी संरचना है जिसमे निवास किया जाये या रहा जाये"। परन्तु हमारे अनुभव बताते हैं कि मानव को ईंट, बालू, सीमेंट, आदि से निर्मित भवन से ज्यादा एक घर की आवश्यकता होती है। यानि कि एक ऐसा आवास जो न व्यक्ति को केवल आसरा दे बल्कि मानसिक और सामाजिक रूप से सुरक्षा भी दे। आवास वह स्थान है जहाँ मनुष्य सामान्यतः सबसे ज्यादा अपनापन महसूस करता है। दिन भर की थकान के बाद जब उसका शरीर आराम और मन शांति चाहता है तो उसके आवास का घरेलू माहौल ही है जहाँ पहुंचकर उसे सबसे ज्यादा सुकून

मिलता है। आवास व्यक्ति के जान और माल दोनों की सुरक्षा करता है। इसमें प्राकृतिक आपदाओं; जैसे आंधी-तूफ़ान, वर्षा, गर्मी, जंगली जानवर के साथ-साथ सामाजिक अपराधों; जैसे चोरी, डकैती आदि से सुरक्षा शामिल है।

आवास व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए एक ऐसी जरूरत है जो उसे स्थायित्व देकर आगे के जीवन की परिकल्पना को साकार करने में सहयोग करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO, 2010) ने आवास का वर्णन आवासीय वातावरण के रूप में किया है। इसमें आश्रय के लिए इस्तेमाल में लायी जाने वाली भौतिक संरचना, सभी आवश्यक सेवायें, सुविधायें, और उपकरण शामिल हैं जो व्यक्ति और परिवार के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा के लिए आवश्यक होते हैं। दरअसल, आवास उन बुनियादी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में से एक है, जो लोगों के जीवन और कल्याण की गुणवत्ता को निर्धारित करता है। यह मानव अस्तित्व और उत्तरजीविता के लिए मौलिक आवश्यकता है। आवास की इस महत्ता को आज से करीब सात दशक पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) के अनुच्छेद 25 (1) में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया था। इसमें स्वीकार किया गया था कि 'प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा जीवन स्तर जीने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो'[1]। यही वजह है कि मानव विकास की कोई भी योजना उचित आवासीय दशाओं के प्रावधान के बगैर अधूरी मानी जाती है।

वास्तव में आवास अपने आप में एक विस्तृत शब्द है जिसके कई आयाम हैं। मानव जीवन को सम्पूर्णता प्रदान करने में इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। वाटसन और ऑस्टरबेरी ने इसे सात आयामों में विभाजित किया है। ये हैंः स्थायित्व, विस्तार, सुविधासंपन्न, गोपनीयता, सुरक्षा, क्रियाशीलता और सामाजिक वातावरण। इनमें से प्रत्येक आयाम अपने आप में एक व्यापक प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। यदि स्थायित्व के सन्दर्भ में बात की जाये तो मानव स्वाभाव से ही अपने व्यक्तिगत और सामजिक जीवन में स्थायित्व प्राप्त करने हेतु प्रयासरत् रहता है और यही वजह है कि आश्रय के रूप में आवास का निर्माण कर न केवल खुद को संरक्षित करता है बल्कि अपने सम्पूर्ण परिवार को भी स्थायित्व प्रदान करता है। इसी प्रकार से आवास की सम्पूर्णता के लिए उसे विभिन्न प्रकार की आधारभूत सुविधाओं से परिपूर्ण होना चाहिए। इसमें आवास की स्थिति, बनावट, बसावट, मल-मूत्र तथा गंदे जल के निकालने की व्यवस्था, पेयजल व बिजली की व्यवस्था, अच्छे आवागमन की सुविधा अत्यंत आवश्यक है। आवास का महत्व इस बात से भी है कि एक तरफ वह अपने चारदीवारी के अन्दर न केवल व्यक्ति के निजी जीवन की निजता बनाये रखता है बल्कि आवासीय संकुल के द्वारा व्यक्ति को आपसी सम्बन्ध, प्रेम-स्नेह, सहानुभूति, सहयोग, एक दुसरे से जुड़े होने का अहसास, त्याग, दया आदि विभिन्न सामाजिक

गुणों के विकास के लिए सही वातावरण उपलब्ध करता है जो मानव विकास के लिए एक अनिवार्य तत्व हैं।

अतः आवासीय दशाओं की गुणवत्ता को मात्र एक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता के सन्दर्भ में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि एक कल्याणकारी राष्ट्र होने के नाते भारत सरकार का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने प्रत्येक नागरिक को रहने के लिए पर्याप्त जगह, सुरक्षित और समुचित संरचना, स्वच्छ और सहनीय परिवेश, पर्याप्त प्रकाश, शुद्ध हवा और पानी, बिजली, साफ-सफाई और सड़कों की तरह अन्य नागरिक सुविधाओं को उपलब्ध कराये। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी चमेली सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) के मामले की सुनवाई करते हुए स्पष्ट तौर पर कहा है कि "किसी भी सुसभ्य एवं संगठित समाज में, मनुष्य को उसके जीवन का अधिकार उसे सिर्फ प्राणीमात्र की जरूरतों को प्रदान करने से सुनिश्चित नहीं होता। यह अधिकार उसे तब प्राप्त होता है जब उसे विकसित होने के लिए सभी सुविधाएं निश्चित रूप से प्राप्त हों और वह अपने विकास के रास्ते के सभी अवरोधों से मुक्त हो। किसी भी सभ्य समाज में जीवन जीने के अधिकार का आशय भोजन, पानी, स्वच्छ वातावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास के अधिकार से होता है। ये सभी मूलभूत मानवाधिकार हैं और इनके बिना सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र एवं भारत के संविधान में निहित सभी नागरिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने की बात करना बेमानी होगी। अतः आवास के अधिकार का मतलब सिर्फ सिर के ऊपर छत प्रदान करने भर से नहीं है, बल्कि इसका अर्थ आवास के साथ उन सभी मूलभूत सुविधाओं के अधिकार से भी है जो व्यक्ति को जीने एवं विकसित होने में मदद करें"।[2]

भारत में आवास की स्थिति - संक्षिप्त विवरण

जहाँ तक भारत में आम लोगों की आवासीय दशाओं का सवाल है, वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में आवासीय मकानों की कुल संख्या करीब 2446.4 लाख थी। जबकि इसी दौरान देश में निवास करने वाले परिवारों की संख्या करीब 2446.9 लाख थी। यद्यपि इन आंकड़ों के अनुसार भारत में किसी भी प्रकार की आवासीय समस्या नहीं होनी चाहिए परन्तु जब इन आवासों की गुणवत्ता और उपलब्धता पर गौर करते हैं तो स्पष्ट होता है कि भारत में आवास की समस्या एक चिंताजनक स्तर तक पहुँच गई है। आज देश में आवास की कमी का आंकलन मुख्य रूप से चार प्रकार से किया जाता है (i) गैर मरम्मत योग्य कच्चा घर (ii) जीर्ण-शीर्ण आवासों में रहने वाले परिवार (iii) सघन आवासों में रहने वाले परिवार जिन्हें आवास चाहिए और (iv) आवासहीन परिस्थितियों में रहने वाले परिवार।

तालिका 1 में दिए गए आंकड़े निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न

rkfydk- 1
ckjgoÈ ipo"kÊ; ;kstuk dh rgr xfBr dk;Zy leg vkokl dh deh dk vuqeku

Øe l-	vokl dh deh dh dkj.k	deh ¼nl yk[k½	
		xkeh.k	'kgjh
1.	आश्रयहीन परिवार	4.15	0.53
2.	गैर-मरम्मत योग्य कच्चे आवास में रहने वाले परिवार	20.21	0.99
3.	जीर्ण-शीर्ण आवासों में रहने वाले परिवार	7.47	2.27
4.	अत्यधिक जनघनत्व वाले आवास में रहने वाले परिवार	11.30	14.99
	कुल आवास कि कमी	43.13	18.78

स्रोतः (i) ग्रामीण विकास मंत्रालय, 2011 एवं (ii) आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय, भारत सरकार

सरकारी आकलनों के अनुसार वर्ष 2012 में देश में कुल 6.17 करोड़ आवास की कमी थी। शहरी क्षेत्रों में यह कमी 1.87 करोड़[3] मकानों की थी जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में 4.31 करोड़ की थी। इस वर्गीकरण के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की सबसे ज्यादा आवश्यकता उन दो करोड़ परिवारों को है जो कच्चे और गैर-मरम्मत योग्य आवासों में अस्थायी रूप से निवास करते हैं (तालिका I)। जबकि शहरी क्षेत्रों में आवास की कमी का सबसे बड़ा कारण अत्यधिक जनघनत्व वाले आवासों (80 %) के कारण है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में आश्रयहीन परिवारों कि संख्या 41.5 लाख थी, जबकि शहरी क्षेत्रों में इनकी संख्या करीब 5.3 लाख थी जिन्हें आवास की तत्काल आवश्यकता थी।

यहाँ सवाल मात्र इस बात का नहीं है कि भारत में करीब छह करोड़ लोगों को उपयुक्त आवास की जरूरत है। यह देखना भी उतना ही आवश्यक है कि इतनी बड़ी संख्या में मकान समाज के किस वर्ग को चाहिए। आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय, भारत सरकार ने 12वीं योजना के समग्र विकास के लिए एक तकनीकी समूह का गठन किया था जिसका प्रमुख उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में आवास की कमी के आकलन हेतु अपनाई गयी पद्धति की समीक्षा कराना और एक स्थायी और व्यवहार्य पद्धति अपनाना था। इस तकनीकी समूह के अनुसार भारत के शहरी क्षेत्रों में आवास की कमी का 95 प्रतिशत हिस्सा आर्थिक रूप से कमजोर अथवा निम्न आय.वर्ग के लोगों से संबंधित है। ये वैसे लोग हैं जिनकी पारिवारिक आमदनी 10,000/- रुपये प्रति माह से कम है। इसी प्रकार ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों की आवासीय समस्या के आकलन के लिए 12वीं योजना में एक तकनीकी समूह का गठन किया था। इस तकनीकी समूह के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी आवास की कमी का 90 प्रतिशत हिस्सा गरीब तबके से संबंधित है। इनमें से अधिकतर लोग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, बंधुआ मजदूर, अति पिछड़े वर्ग से सम्बंधित हैं। अर्थात आवास की समस्या आर्थिक रूप से कमजोर

rkfydk- 2
Hkkjr e vkFkd J.kh - 2012 d vkèkkj ij vkokl h; deh dk forj.k

Øe l-	vokl dh deh d dkj.k	deh ¼nl yk[k½	
		l[;k	ifr'kr e
1.	आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग	10.55	56.18
2.	निम्न आय वर्ग	7.41	39.44
3.	जीर्ण-शीर्ण आवासों में रहने वाले परिवार	0.82	4.38
	कुल आय वर्ग	18.78	100.00

स्रोत – आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय, 2012, भारत सरकार

तबके के बीच ज्यादा गंभीर है। इसी प्रकार भारत की 37.7 करोड़ शहरी जनसंख्या का करीब 17.4 प्रतिशत हिस्सा मलिन बस्तियों में निवास करता है। सामान्य तौर पर ये मलिन बस्तियाँ अस्थायी रूप से अस्वस्थकर जगहों पर कच्ची सामग्रियों से बनी होती हैं और सभी मूलभूत सुविधाओं से वंचित होते हैं। ऐसे आवासीय इलाके किसी भी लिहाज से मानव निवास के लिए अनुकूल नहीं कहे जा सकते हैं।

भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त के कार्यालय द्वारा भारत में आवासों की निवास योग्यता परखने के लिए सभी मकानों को तीन श्रेणियों; – अच्छा, रहने योग्य और जीर्ण में बांटा गया है। भारत की जनगणना (2011) के अनुसार, उन मकानों को जिन्हें किसी भी मरम्मत की आवश्यकता नहीं है और काफी अच्छी स्थिति में हैं, उन्हें अच्छे मकान कहा गया है। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे अच्छे मकानों की संख्या 53.2 प्रतिशत है। ऐसे मकान जिनमें मामूली मरम्मत की आवश्यकता होती है उन्हें रहने योग्य मकानों की श्रेणी में रखा गया है और ऐसे मकानों की संख्या 41.5 प्रतिशत है। वैसे मकान जिनमें क्षरण के लक्षण दिखते हैं, जीर्ण हो चुके हैं, और वैसी स्थिति में पहुँच चुके हैं[3] जिनकी मरम्मत अथवा पुनर्निर्माण नहीं की जा सकती है वे जीर्ण मकानों के श्रेणी में रखे गए हैं। ऐसे मकानों कि संख्या करीब पाँच प्रतिशत है। इस वर्गीकरण के अनुसार ग्रामीण भारत में 46 प्रतिशत मकान अच्छी स्थिति में हैं, 48 प्रतिशत निवास योग्य हैं और 6.5 प्रतिशत जीर्ण हैं। इन आंकड़ों के अनुसार कुल 2446.4 लाख जनगणना घरों में से 131.7 लाख घर जीर्ण हो गए हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में जीर्ण मकानों की संख्या शहरी क्षेत्रों की तुलना में पांच गुना अधिक है।

यदि हम कुछेक चयनित मूलभूत आवासीय सुविधाओं पर एक नजर डालें तो पायेंगे कि सम्पूर्ण भारत में करीब चार प्रतिशत ऐसे परिवार हैं जिनके पास रहने के लिए कोई भी अलग से कमरा उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार 37 प्रतिशत ऐसे परिवार हैं जो मात्र एक कमरे वाले आवास में अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ रहते हैं। यदि

rkfydk- 3

Hkkjr e vkokfl r edkuk dh l[;k vkj mudk forj.k fuokl ;kX; rk dk vkdkj ij ¼n l yk[k½

{k=	dy fuokfl r edkuk dh l[;T	fuofl r edkuk dk forj.k mudk fuokl ;kX; rk dk vkdkj ij		
		vPNh	fuokl ;kX;	th.k
xkeh.k	166.26	76.36 (46%)	78.97 (48%)	10.82 (6%)
'kgjh	78.48	53.79 (68%)	22.47 (29%)	2.26 (3%)
Hkkjr	244.64	130.12 (53%)	101.44 (41%)	13.07 (5%)

स्रोत – भारत की जनगणना, 2011

जल जैसी अति महत्वपूर्ण आवश्यकता की बात की जाये तो मात्र 43.9 प्रतिशत घरों में नल द्वारा पेयजल की सुविधा उपलब्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो मात्र 31 प्रतिशत घरों को नल द्वारा पेयजल पहुँच पाता है। इसी प्रकार मात्र 46.9 प्रतिशत घरों में शौचालय बने हुए हैं। ग्रामीण इलाकों में तो स्थिति और भी दयनीय है क्यूंकि वर्ष 2011 तक मात्र 31 प्रतिशत घरों में शौचालय की सुविधा थी। यह आंकड़ा न केवल लोगों के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से चिंताजनक है बल्कि परिवार और खासकर महिलाओं के सम्मान और उनकी सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी चिंताजनक है। एक तरफ जहाँ खुले में शौच जाना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हानिकारक है वहीं दूसरी तरफ घरों से गंदे जल का खुली नालियों के द्वारा बहाया जाना भी कई तरह की बीमारियों को आमंत्रण देता है। अफ़सोस इस बात का है कि आज सिर्फ 5.7 प्रतिशत ग्रामीण आवास ढकी हुई नालियों से जुड़े हैं वहीं 44 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में यह प्रतिशत है जिसे किसी भी हालत में संतोषजनक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार जहाँ सम्पूर्ण भारत के मात्र 67 प्रतिशत परिवार अपने घरों में रोशनी विद्युत् द्वारा करते हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्र में यह आंकड़ा मात्र 55 प्रतिशत है।[5]

हालांकि नगरीय क्षेत्रों की स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों से बेहतर है फिर भी बड़े शहरों में मलिन बस्तियों का विस्तार एक अनपेक्षित वास्तविकता है। ये मलिन बस्तियाँ, जिन्हें झुग्गी, झोपड़पट्टी, स्लम आदि के नाम से जाने जाते हैं। ये बस्तियाँ न केवल यहाँ रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य के लिए अहितकर होती हैं बल्कि सम्पूर्ण शहरी क्षेत्रों की स्वच्छता को भी दुरूह बना देती हैं। भारत की जनगणना, 2011 के हिसाब से भारत के कुल वैधानिक नगरीय क्षेत्र का 17.4 फीसदी जनसंख्या इन्हीं मलिन बस्तियों में निवास करती है। आज लगभग सभी बड़े नगरों की एक बड़ी आबादी इन्हीं मलिन बस्तियों में रहती है जैसे विशाखापट्नम की 44.1 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या और मुंबई की 41.3 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या मलिन बस्तियों में रहती है। यह शहरी योजनाकारों और सरकार दोनों के लिए काफी चिंताजनक विषय है।

rkfydk- 4
Hkkjr e dN p;fur lfoèkkvk dh ikfjokfjd Lrj ij miyCèkrk ,o mudk forj.k ¼nl yk[k½

Øe l-	lfoèkk,¡	xkeh.k	'kgjh	dy
1.	रहने के लिए एक भी कमरा नहीं	7.21 (4%)	2.43 (3%)	9.64 (4%)
2.	रहने योग्य मात्र एक कमरा	66.15 (39%)	25.34 (32%)	91.49 (37%)
3.	नल द्वारा पेयजल की उपलब्धता	51.70 (31%)	55.70 (70%)	107.41 (43%)
4.	शौचालय की उपलब्धता	51.57 (31%)	64.16 (81%)	115.74 (47%)
5	बिजली की उपलब्धता	92.81 (55%)	73.08 (93%)	165.90 (67%)
6	ढकी हुई नाली की सुविधा	9.64 (6%)	35.10 (44%)	44.74 (18%)

आवास की समस्या के दूरगामी प्रभाव

गरीबी और निम्न आवासीय परिस्थिति आपस में सहसंबंधित है। यूँ तो गरीबी का प्रत्यक्ष प्रभाव आवासीय दशाओं पर ज्यादा पड़ता है, जो स्वाभाविक भी है, परंतु निम्नस्तरीय आवासीय परिस्थितियां व्यक्ति के आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, मानसिक स्थिति, सुरक्षा, शिक्षा, निजता, आदि को प्रभावित करती हैं, जिसका सीधा असर व्यक्ति की उत्पादन क्षमता एवं मानव विकास पर पड़ता है। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि कोई व्यक्ति दीर्घकालिक अवधि के लिए निम्न आवासीय परिस्थितियों में निवास करता है तो इससे अनेक प्रकार के दुष्परिणाम हो सकते हैं। इनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैः

1- **vkfFkZd%** वास्तव में गरीबी और अनुपयुक्त आवास के बीच एक चक्रीय संबंध होता है। खासकर शहरों में जहाँ किफायती आवास का अत्यंत अभाव है, एक गरीब व्यक्ति को एक छोटे से कमरे के लिए भी बड़ी रकम चुकानी पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में उनके पास घर के किराए के बाद इतनी रकम भी नहीं बच पाती है जिसे वह अन्य आवश्यक सेवाओं जैसे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, अच्छे भोजन आदि पर उचित प्रकार से खर्च कर सके। अच्छी शिक्षा के अभाव में उनके बच्चे भी अकुशल मजदूर बनकर रह जाते हैं जिससे उनका गरीबी के दुष्चक्र से बाहर निकलने की सम्भावना क्षीण हो जाती है।

2- **LokLF;%** एक अध्ययन के अनुसार राष्ट्र की आबादी का लगभग सात प्रतिशत हिस्सा यानि कि करीब 6.3 करोड़ लोग स्वास्थ्य संबंधी व्यय के कारण गरीबी रेखा (बीपीएल) के नीचे चले गए हैं[6]। भारत के स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार देश में स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च से उत्पन्न गरीबी का सर्वाधिक प्रभाव ग्रामीण इलाकों में होता है[7]। आज भी देश के आधे से

अधिक घरों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है। एक अध्ययन के अनुसार मानव जीवन को प्रभावित करने वाली 80 प्रतिशत बीमारियाँ प्रदूषित जल के कारण होती हैं।[8] भीड़-भाड़ वाले आवासों में रहने वाले बच्चों को दिमागी बुखार (मेनिनजाईटिस) होने की संभावना सामान्य बच्चों की तुलना में 10 गुना अधिक होता है[9]। इसी प्रकार बेघर बच्चों के मानसिक रूप से अस्वस्थ होने की सम्भावना अन्य बच्चों की तुलना में तीन से चार गुना अधिक होती है, (ब्रुक्स-गुन, 1997)।[10] बच्चों में उत्पन्न होनेवाली चिंता, उत्तेजना और अवसाद की समस्या को भी भीड़-भाड़ और घरों में अत्यधिक जनघनत्व के साथ जोड़कर देखा जाता है जो अंततः उनकी शिक्षा को प्रभावित करता है।

3- xkeh.k —"kdk dh leL;k% ग्रामीण लोग खासकर खेतिहर श्रमिक जिन्हें मजदूरी के बदले अनाज मिलता है, उपयुक्त आवास के अभाव में लम्बे समय तक उसका संचय नहीं कर पाते हैं और मजबूरीवश उन्हें औने-पौने दामों में व्यापारियों को बेचना पड़ता है और आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। इसी प्रकार पशुपालन जो भारतीय कृषि की रीढ़ है और किसानों के लिए अतिरिक्त आय का एक महत्वपूर्ण साधन भी है, आवासहीनता की स्थिति में गरीब ग्रामीण इससे होने वाले लाभ से वंचित रह जाते हैं।

4- efgykvk dh leL;k,a% विपरीत आवासीय परिस्थितियों का सबसे बड़ा नुकसान महिलाओं को उठाना पड़ता है चाहे वो शहरों के मलिन बस्तियों में रहतीं हों अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में। इन महिलाओं के घर में शौचालय नहीं होने के कारण खुले में या खेतों में जाना पड़ता है। इससे न केवल उनकी निजता बाधित होती है बल्कि उनकी स्वास्थ्य और सुरक्षा की भी समस्या बढ़ जाती है। विजया पाधि के एक शोध के अनुसार खुले में शौच करने वाली और साफ सफाई में ध्यान न देने वाली ग्रामीण भारतीय महिलाओं में गर्भावस्था के प्रतिकूल परिणाम देखने को मिलते हैं।[11]

5- lkefrd vyxko% एक बेघर व्यक्ति का सदैव अपने परिवार, दोस्तों और अन्य सामाजिक संबंधों से कट जाने की संभावना रहती है और कई बार व्यक्तिगत सुरक्षा से समझौता करना पड़ता है। आवासहीन व्यक्ति कई बार अवसाद और न्यून आत्मविश्वास का शिकार हो जाता है। ऐसी स्थिति उसके आर्थिकोपार्जन की प्रक्रिया को बाधित कर देती है।

आवास की समस्या के हल का प्रयास

भारत सरकार ने प्रारम्भ से ही अपने गरीबी उन्मूलन प्रयासों के तहत कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया है परन्तु जब आवास की बात आती है तो शुरुआती पांच वर्षीय योजनाओं में आवास निर्माण को काफी कम महत्व मिला। क्यूंकि सरकार का यह मानना था कि आवास निर्माण एक व्यक्तिगत मुद्दा है और सरकार को इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। यही वजह है कि कुछेक योजनाओं को

छोड़कर आवास निर्माण को सरकार ने काफी कम समर्थन दिया। आम जनता के लिए कोई विशिष्ट आवास नीति अथवा कार्यक्रम नहीं बनाये गए, हालांकि समाज के कुछ लक्षित लोगों के लिए जैसे औद्योगिक मजदूरों, कुछ संस्थाओं के लिए आवासीय कॉलोनियों, आदि के लिए आवास निर्माण के सिमित कार्यक्रम चलाये गए। लेकिन इन योजनाओं में आवास की कमी को दूर करने और शहरी क्षेत्रों में झुग्गी आबादी का विकास करने की क्षमता नहीं थी। यही वजह है कि 1980 के दशक तक आते-आते सभी नागरिकों के लिए पर्याप्त, उचित और किफायती आवास मुहैया कराना भारत के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती बन गया।

यही वजह है कि वर्ष 1985-86 में विशेष तौर पर गरीबों के बीच आवास की कमी को दूर करने और ग्रामीण क्षेत्रों में आवास उपलब्ध कराने हेतु एक वृहद् कार्यक्रम इंदिरा आवास योजना चलाई गयी। इस योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय योजनाओं के निर्माण के लिए गरीबी रेखा के नीचे के व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इसी दौरान भारत की पहली राष्ट्रीय आवास नीति सन 1988 में तैयार की गयी। इस योजना के तुरंत बाद केंद्र की सरकार बदल गयी और उसने एक नयी राष्ट्रीय आवास नीति की घोषणा सन 1994 में की जिसका लक्ष्य वर्ष 2000 तक सभी को आवास उपलब्ध कराना था। इसके बाद वर्ष 1998 में एक विस्तृत राष्ट्रीय आवास एवं पर्यावास नीति-घोषणा की गयी और इसने नौंवी योजना के अंत तक "सभी के लिए आवास" उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा था। आगे चलकर सरकार ने शहरी क्षेत्र की बदलती हुई बुनियादी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शहरी आवास एवं पर्यावास नीति 2007 लागू की।

यदि इन कुछ नीतिगत उपायों से हटकर आवास संबंधी कार्यक्रमों के बारे में चर्चा करते हैं तो पाते हैं कि पिछले 25-30 वर्षों में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएं और कार्यक्रम लागू किए गए हैं। (i) इंदिरा आवास योजना (ii) ग्रामीण आवास के लिए प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (iii) ग्रामीण आवास के लिए साख के साथ सब्सिडी योजना (iv) ग्रामीण आवास एवं पर्यावास विकास के लिए अभिनव प्रयास (v) समग्र आवास योजना (vi) ग्रामीण आवास एवं पर्यावास के लिए राष्ट्रीय मिशन आदि प्रमुख हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्र की बात की जाये तो इसका प्रारम्भ राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एनआरईपी -1980) और राष्ट्रीय भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आरएलईजीपी) - 1983) के मजदूरी रोजगार कार्यक्रम से हुई थी।आगे चलकर वर्ष 1985 में आरएलईजीपी की एक उप-योजना के तौर पर इंदिरा आवास योजना की शुरूआत की गयी जिसमें अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और मुक्त कराये गए बंधुआ मजदूरों के मकानों के निर्माण की योजना बनायी गयी। आगे चलकर वर्ष 1996 में इंदिरा आवास योजना को एक स्वतंत्र कार्यक्रम बना दिया गया और लक्ष्य यह रखा गया कि यह योजना समस्त ग्रामीण

गरीब परिवारों के आवास की आवश्यकता को पूर्ण करेगा। यद्यपि इंदिरा आवास योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ो की संख्या में मकान बनाए गए फिर भी ग्रामीण आवास के क्षेत्र काफी कुछ किया जाना बाकी है।

इंदिरा आवास योजना की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर है कि इसके लाभार्थियों का चयन निष्पक्ष एवं पारदर्शी तरीकों से हो। परन्तु भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (2014) की एक रिपोर्ट के अनुसार लाभार्थियों का चयन निर्धारित मानकों के अनुसार नहीं किया गया है। इस योजना के तहत बनाए गए मकानों की गुणवत्ता कई जगह स्तरीय नहीं पाए गए हैं, मकानों का निर्माण कार्य समय पर पूरा नहीं हुआ है, कई मकान अधूरे बने पड़े थे। इस योजना के अंतर्गत निर्मित घरों के बारे में शिकायतों जैसे इसके नींव के कमजोर होने, छत बनाने में खराब सामग्री का प्रयोग, मकान का अधूरा निर्माण और इसका गैर आपदा प्रतिरोधी होना प्रमुख है। इस योजना की एक बड़ी कमी यह रही है कि इसमें पेयजल आपूर्ति, बिजली के साथ-साथ अन्य बुनियादी सेवाओं को उपलब्ध करने के लिए उचित वित्तीय प्रावधान नहीं किया गया है।

इसी प्रकार यदि शहरी क्षेत्र में गरीबों के लिए लागू की गयी योजनाओं की बात कि जाये तो यहाँ भी केंद्र सरकार ने सिमित स्तर पर कुछ योजनाओं का क्रियान्वयन किया है। इसमें से कुछेक इस प्रकार से हैंः औद्योगिक श्रमिकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए एकीकृत रियायती आवास योजना (1952); कम आय वर्ग आवास योजना (1956); शहरी मलिन बस्तियों का पर्यावरण सुधार (1972); राष्ट्रीय गंदी बस्ती विकास कार्यक्रम (1996), आवास और आश्रय उन्नयन के लिए योजना (SHASHU 1989 में नेहरू रोजगार योजना के भाग के रूप में शुरू की है और 1997 में बंद); आश्रय उन्नयन योजना PMIUPEP (प्रधानमंत्री के शहरी गरीबी और रोजगार कार्यक्रम भी एक छोटा जीवन काल 1996-1997 था) के तहत; रैन बसेरा (1988-1989)। दो लाख आवास कार्यक्रम, VAMBAY (बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (2001-02 में शुरू की) और नवीनतम JNNURM (जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन)।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण योजना एकीकृत आवास एवं स्लम विकास कार्यक्रम रही है जिसे वर्ष 2005 में केंद्र सरकार द्वारा शुरू किया गया था। इस नई योजना में दो पूर्ववर्ती कार्यक्रमों, वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (VAMBAY) और नेशनल स्लम विकास योजना (एनएसडीपी) को सम्मिलित किया गया है। आईएचएसडीपी कार्यक्रम का उद्देश्य मलिन बस्तियों में पेयजल आपूर्ति, स्वच्छता, सीवरेज, ठोस अपशिष्ट निपटान जैसे बुनियादी सेवायें उपलब्ध कराकर यहाँ रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना है। इस योजना के तहत भी प्रारम्भ की गयी परिजनाओं में कई खामियां थी। परियोजनाएं समय बद्ध तरीके से पूर्ण नहीं की

गयी, इनके क्रियान्वयन से पहले सही आंकड़ो जिसमे मलिन बस्तियों की संख्या, मलिन बस्तियों की आबादी का सही सही आकार, पेयजल, शौचालयों, आदि जैसे सभी बुनियादी सेवाओं की वस्तुस्थिति आदि आते हैं, का अभाव देखा गया इसके अलावा कई मलिन बस्तियों जिनमें ये योजनाएँ लागू की गयीं, वहां लोगों को अपने घर पर कोई कानूनी अधिकार नहीं है जो गरीबी की समस्या के निदान को चुनौतीपूर्ण बनाता है। यहाँ विकसित किया गया बुनियादी ढांचा, योजना के बाद के चरण में अपने अपर्याप्त रखरखाव, वित्तीय सहायता, खराब गुणवत्ता और सही दिशा निर्देश के आभाव के कारण बेकार होते जा रहे हैं जिसकी वजह से इन बस्तियों के निवासियों के लिए निम्न स्तर की सेवायें हीं उपलब्ध हो पा रही हैं। इसी प्रकार लाभार्थियों का चयन भी सही प्रकार से नहीं हुआ है और जिससे हाशिए पर रहने के लिए गरीब और मजबूर लोगों को योजना का लाभ नहीं मिल पा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि आईएचएसडीपी योजना का अधिकांश लाभ मलिन बस्तियों में रहने वाले गैर-गरीब लोग उठा रहे हैं।

प्रधानमंत्री आवास योजना

आवास की महत्ता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान केंद्र सरकार ने वर्ष 2022 तक सभी के लिए आवास की परिकल्पना की है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केन्द्र सरकार ने वर्ष 2022 तक देश के शहरी क्षेत्रों में दो करोड़ मकान बनाने का लक्ष्य रखा है। प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी के अनुसार "आवास का होना गरीबों के जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ है जो उन्हें एक बेहतर जीवन की ओर ले जाता है। सरकार का प्रयास सिर्फ एक घर प्रदान करने भर से नहीं है, बल्कि ऐसा उपयुक्त वातावरण प्रदान करना है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन को पूर्ण रूप से जीने के लिए सक्षम हो सके"। इस योजना को दो भागों में विभाजित किया गया है; (i) प्रधानमंत्री आवास योजना-सबके लिए आवास (ग्रामीण) और (ii) प्रधानमंत्री आवास योजना-सबके लिए आवास (शहरी)

¼i½ **çèkkuea=h vkokl ;kstuk&lcdsfy, vkokl ¼xzkeh.k½** इस योजना के तहत सभी बेघर और जीर्ण-शीर्ण घरों में रहने वाले लोगों को पक्का मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि लाभार्थियों की सूची प्रत्येक वर्ष तैयार जी जायेगी। योजना के अनुसार वर्ष 2016-17 से 2018-19 के कालखंड में एक करोड़ गरीब और जरूरतमंद लोगों को पक्का घर बनाने के लिए मदद प्रदान की जाएगी। मकानों की क़ीमत केंद्र और राज्यों के बीच बांटी जाएगी। इसका 60 प्रतिशत केंद्र सरकार और शेष 40 प्रतिशत भाग राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। इस योजना के तहत मैदानी क्षेत्रों में प्रत्येक लाभार्थी को

1,20,000 तक एवं पहाड़ी व दुर्गम क्षेत्रों में 1,30,000 तक सहायता प्रदान की जायेगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लाभार्थी को मनरेगा के अंतर्गत 90 से 95 दिनों की मजदूरी का अवसर प्रदान किया जायेगा जिससे की 18 हजार तक की आय होगी। इसके साथ ही प्रत्येक लाभार्थी को शौचालय के निर्माण हेतु 12 हजार की अतिरिक्त वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाएगी। लाभान्वितों की पहचान के लिए सामाजिक-आर्थिक-जातीय जनगणना-2011 का उपयोग किया जाएगा। पूर्ण पारदर्शिता एवं निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए लाभान्वितों की पहचान का कार्य सामाजिक-आर्थिक-जातीय जनगणना की सूचनाओं का प्रयोग कर किया जाएगा। लाभान्वितों की वार्षिक सूची की पहचान ग्राम सभा द्वारा सहभागिता पूर्वक की जाएगी। मूल सूची की प्राथमिकता में परिवर्तन के लिए ग्राम सभा को लिखित में न्यायसंगत ठहराना होगा। लाभार्थियों को मिलने वाली आर्थिक सहायता सीधे उनके बैंक अथवा पोस्ट ऑफिस खाते में स्थानांतरित की जाएगी। लाभान्वित को 70,000 रुपए तक का ऋण लेने की भी सुविधा प्रदान की जाएगी।

¼ii½ **çèkkuea=h vkokl ;kstuk&lcdk fy, vkokl** ¼'kgjh½ इस मिशन का उद्देश्य निम्नलिखित चार विकल्पों के माध्यम से स्लमवासियों सहित शहरी गरीबों की आवासीय आवश्यकता को पूरा करना है–

Lo-LFkkuß Lye iquoZkl% पहले विकल्प "में सरकार भूमि का संसाधन के रूप में उपयोग करते हुए निजी प्रवर्तकों की भागीदारी से स्लमवासियों का स्लम पुनर्वास करना चाहती है। इससे न सिर्फ शहर मलिन बस्तियों से मुक्त हो जायेंगे, बल्कि गरीबों को रहने के लिए एक उपयुक्त आवास मिल सकेगा।

ØfMVß lkt&lgk;rk ls fdQk;rh vkokl% इसके तहत ईडब्ल्यूएसस यानी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग और एलआईजी यानी निम्न आय वर्ग के लोगों की आवास की जरूरत को पूरा करने के लिए ऋण आधारित ब्याज सब्सिडी दी जाएगी। घर के लिए कर्ज मांगने वाले शहरी ईडबल्यूएस और एलआईजी वर्ग के पात्र लोगों की जिनकी वार्षिक पारिवारिक आय तीन लाख और छह लाख रुपए तक है उन्हें 6.5 प्रतिशत की दर पर 15 वर्षों की अवधि के लिए या ऋण अवधि के दौरान, इसमें से जो भी कम हो, के लिए ब्याज सब्सिडी दी जाएगी।

Hkkxhnkjh esa fdQk;rh vkokl% तीसरे विकल्प "के द्वारा किफायती दर पर ईडब्ल्यूएस श्रेणी के लिए आवासों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए सरकार अपनी एजेंसियों और निजी क्षेत्र से भागीदारी करके योजना बनाएगी। ऐसी

परियोजनाओं में 1.5 लाख रुपए की दर से केंद्रीय सहायता सभी ईडब्ल्यूएस आवासों के लिए उपलब्ध होगी। इसके लिए राज्य और शहरी निकायों द्वारा इन्हें सब्सिडी, किफायती लागत पर भूमि, स्टैंप शुल्क छूट, आदि प्रदान की जाएगी। कोई भी किफायती आवास परियोजना केंद्रीय सहायता का पात्र तभी होगी जबकि परियोजना में आवासों की संख्या का कम से कम 35 प्रतिशत आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) के लिए हो तथा एक परियोजना में कम से कम 250 आवास हों।

ykHkkFkh vkèkkfjr 0;fäxr vkokl fuek.k d fy, lfCl Mh

इस योजना के तहत आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के उन लोगों की मदद की जाएगी जो नए आवास के निर्माण या मौजूदा आवास के सुधार के लिए कर्ज चाहते हैं। इस विकल्प के तहत ऐसे परिवार नए आवासों के निर्माण के लिए 1.5 लाख रुपए की केंद्रीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं। सहायता की मांग करने वाले को शहरी आवास कार्य योजना (एचएफएपीओए) का हिस्सा होना चाहिए और उसके पास उसके मालिकाने वाली जमीन के कागजात होनें चाहिए।

उपाय क्या है?

विभिन्न सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत में आवास की समस्या न केवल मात्रात्मक है बल्कि इससे कहीं ज्यादा गुणात्मक है। जैसे कि ग्रामीण भारत में 94.7 प्रतिशत परिवारों के पास अपना मकान होने के बावजूद भी 44.6 प्रतिशत ऐसे परिवार हैं जिनके मकान या तो घास-फूस, मिटटी अथवा अर्ध-पक्के सामग्रियों से बने हुए हैं। इसी प्रकार 6.5 प्रतिशत परिवारों के मकान रहने लायक नहीं बचे हैं और 47.5 परिवारों के मकानों को काफी मरम्मत की जरूरत है। ग्रामीण परिवारों को मिलने वाली अन्य मूलभूत सुविधाओं की माली स्थिति भी उपरोक्त परिच्छेदों से स्पष्ट हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि ग्रामीण आवास की समस्या का हल सिर्फ एक कमरे के आवास को मुहैया कर नहीं निकाला जा सकता है। इसके लिए एक एकीकृत योजना अपनानी होगी। आवास को मात्र ईंट, गारे, पत्थर, दीवार, छत आदि से घिरा हुआ कमरा न मानकर बल्कि इसे जीने की परिस्थिति के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।

बड़े पैमाने पर किफायती आवासों का निर्माण समस्या का हल ढूंढने में एक अहम् प्रयास हो सकता है पर हमें यह भी समझना होगा कि सरकार कितने परिवारों को आवास उपलब्ध करा पाएगी। संभव है कि सबके लिए आवास कार्यक्रम के द्वारा ईडब्ल्यूएस-एलआईजी वर्ग के एक छोटे से हिस्से को मकान मिल जाए परन्तु आवास की विकराल होती समस्या का पूर्ण रूप से हल नहीं निकाला जा सकता है।

आंकड़े बताते हैं कि आनेवाले समय में नगरीकरण की प्रक्रिया और भी तेज़ होगी जिससे न केवल नगरीय क्षेत्रों में लोगों का पलायन बढेगा बल्कि नगरों की अपनी जनसँख्या में अत्यधिक वृद्धि होगी जिससे अनाधिकृत कॉलोनियों, मलिन बस्तियों और असंगठित अचल संपत्ति का विस्तार और भी तेज़ गति से होगा। दूसरी तरफ मौजूदा गरीबी रेखा से नीचे रह रही जनसंख्या जिसकी तादाद बहुत बड़ी है वह खुद के लिए एक उपयुक्त आवास का निर्माण कर पाने में बिलकुल असक्षम है। प्रो. कुंडू की अध्यक्षता में गठित शहरी आवास की कमी पर तकनीकी समूह की रिपोर्ट के अनुसार नगरीय क्षेत्र में आवासीय कमी का 96 प्रतिशत आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग (ईडब्ल्यूएस) तथा कम आय वर्ग (एलआईजी) समूह से सम्बंधित है और इस वर्ग की आमदनी दस हजार रुपये प्रति माह से भी कम है। अतः इस वर्ग को अपने आवास के लिए बैंक से ऋण प्राप्त कर पाना अत्यंत ही मुश्किल कार्य है और यदि ऋण प्राप्त हो भी जाए तो उसकी अच्छी-खासी मासिक क़िस्त को चुका पाना इन गरीब परिवारों के लिए असंभव सा है।

अतः लोगों की आवास की समस्या से निपटने के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना होगा। हमें ऐसी नीतियाँ बनानी होगी जिससे जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को लाभ मिल सके। दीर्घकाल की आवासीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त आवास के मानदंडों को स्थानीय संदर्भ में फिर से परिभाषित करने और एक खास प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। न केवल आवश्यकता आधारित योजनाओं को लागू करना होगा बल्कि एकीकृत शहरी विकास की योजना को प्राथमिकता देनी होगी, और तभी जाकर सबके लिए पर्याप्त और उचित आवास का लक्ष्य पूरा हो पायेगा। सभी के लिए पक्के आवास उपलब्ध कराने के साथ-साथ निम्न स्तरीय आवासीय इलाकों में बुनियादी सुविधाओं, पानी, शौचालय, जल निकासी, सड़कों आदि की व्यवस्था अधिक कारगर हो सकती है। इस प्रकार निवेश की एक छोटी राशि झुग्गी आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को कवर कर सकती है।

हमें शहरों की समस्त अनौपचारिक बस्तियों पर सटीक आंकड़े तैयार करने होंगे और उन विनियामक और प्रक्रियात्मक बाधाओं को चिन्हित करना होगा जो कि गरीब समुदायों के लिए खुद के लिए आवास निर्माण और उसके उन्नयन में बाधा डालते हैं। शहरों में गैर-उपयोग की गई सार्वजनिक भूमि की पहचान और उन्हें किफायती दरों पर कम आय वाले समूहों के आवास के लिए आवंटित करने के लिए एक तंत्र का निर्माण किया जाना चाहिए। गरीब लोग जिन अनौपचारिक बस्तियों में रह रहे हैं उनको नियमित करने और जिस भूमि पर उनका मकान बना है उसपर निवास करने के वैधानिक अधिकार को सुरक्षित करना आवश्यक हैं। वास्तव में भारत जैसे विशाल देश में आवास की समस्या का हल निकाल पाना सरकार अथवा किसी एक समूह के लिए असंभव हैं। अतः इसके लिए सपूर्ण समाज की भागीदारी आवश्यक है

और इसमें गरीब समुदायों, राष्ट्रीय और स्थानीय अधिकारियों, भूमि मालिकों, औपचारिक और अनौपचारिक भूमि डेवलपर्स, गैर सरकारी संगठनों, शिक्षाविदों, धार्मिक समूहों और निजी क्षेत्र सभी को एक साथ आना होगा।

संदर्भ

1. द राइट टू एडीकुएट हाउसिंग, फैक्ट शीट न. 21/रिव्यू. 1 (जिनेवाः ऑफिस ऑफ़ द यूनाइटेड नेशंस हाई कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स) अवेलेबल ऐट http://www.ohchr.org/Documents/Publications/FS21_rev_1_Housing_en.pdf.
2. इंडिया कानून, चमेली सिंह बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, केस अपील (सिविल) 12122 ऑफ़ 1995, सुप्रीम कोर्ट ऑफ़ इंडिया, डेट ऑफ़ जजमेंट 15/12 1995.
3. हाउसिंग एंड अर्बन पावर्टी एलिवीएसन मिनिस्ट्री, (2012): अर्बन हाउसिंग शॉर्टेज (2012-2017), रिपोर्ट ऑफ़ द हाउसिंग एंड अर्बन पावर्टी एलिवीएसन मिनिस्ट्री टू एस्टीमेट द अर्बन हाउसिंग शॉर्टेज फॉर द 12 फाइव ईयर प्लान (2012-2017), गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, न्यू डेल्ही.
4. प्लानिंग कमीशन (2011): वर्किंग ग्रुप रिपोर्ट ऑन रूरल हाउसिंग फॉर द 12 फाइव ईयर प्लान (2012-2017), गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, न्यू डेल्ही.
5. सेन्सस ऑफ़ इंडिया (2011): हाउसिंग स्टॉक, एमेनिटीज & एसेट्स इन स्लुम्स - सेन्सस २०११, ऑफिस ऑफ़ थे रजिस्ट्रार जनरल ऑफ़ इंडिया.
6. बर्मन, पी. आहूजा, आर. & भंडारी, एल. (2010): थे एमप्रोवाईजिंग इफ़ेक्ट ऑफ़ हेल्थकेयर पेमेंट्स इंडियाः न्यू मेथोडोलोजी एंड फाइंडिंगस, इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, वोल. 45, पीपी 65-71.
7. मिनिस्ट्री ऑफ़ हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर (2014): नेशनल हेल्थ पालिसी 2015 ड्राफ्ट, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया.
8. http://www.onlymyhealth.com/top-water-related-diseases-in-india-1300271205.
9. शेल्टर (2006): 'चांस ऑफ अ लाइफटाइम द इम्पैक्ट ऑफ बाद हाउसिंग ऑन चिल्ड्रेनस लाइवस', अवेलेबर ऐट https://england.shelter.org.uk/_data/assets/pdf_file/0016/39202/chance_of_a_Lifetime.pdf.
10. ब्रुक्स, गुण, जीन, ग्रेग जे., डंकन एंड लॉरेंस अबेर, एडी, नेबरहुड पावर्टी, कॉन्टेक्स्ट एंड कॉननीकुएंसम फरो चिल्ड्रेन, न्यूयार्क, रुस्सेलसगे फाउडेंशन 1977.
11. पाधि, के. बेकर, के. एंड अदर्स (2015): रिस्क ऑफ एडवर्ड प्रेगनैंसी आउटकम्स अमंग वीमेन प्रक्टिसिंग पुअर सैनिटेशन इन रूरल इंडियाः ए पापुलेशन बेस्ड प्रोस्पेक्टिव कोहोर्ट स्डटी, पलोस मेडिसिन, अवेलेबल ऐट https://doi.org/10.137/journal.pamed.1001851.
12. सीएजी ऑफ इंडिया (2014): रिपोर्ट न. 37 ऑफ 2014–परफॉरमेंस ऑडिट ऑफ़ इंदिरा आवास योजना ऑफ यूनियन गवर्नमेंट, मोनिस्ट्री ओग रूरल डेवलपमेंट, अवेलेबल ऐट http://www.cag.gov.in/sites/default/files/audit_report_files/Union_Performance_Indira_Awaas_Yojana%20_37_2014_chapter_13_conclusion.pdf.

सुशाासन एक अवधारणाः भारतीय परिपेक्ष्य

पंकज कुमार तिवारी

भारत में सुशासन (Good Governance) की अवधारणा नई नहीं है। इसे रामराज्य तथा स्वराज की परम्परागत का एक नया कलेवर माना जा सकता है। ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'' तथा ''वसुधैव कुटुम्बकम'' को अपना आदर्श मानने वाले इस देश में सुशासन कोई नई परिकल्पना नहीं है। सुशासन का अर्थ केवल यहीं तक सीमित नहीं है कि कोई सरकार अथवा सामाजिक संगठन किस प्रकार आपसी अभिक्रिया करते है अपितु इसका संबंध नागरिकों को प्रति सेवा प्रदान करने में राज्य की क्षमता से है, इस बात से हैं कि जनता के संसाधनों का प्रबंधन कैसे हो रहा है, लोक नियामक शक्तियों का प्रयोग कैसे किया जा रहा है.....।

'श्रीमद्भागवतगीता', 'मनुस्मृति', 'यजुर्वेद', 'महाभारत' तथा चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' जैसे ग्रन्थों में सुशासन के व्यापक नियम, शासक, शासन के कर्तव्य एवं *'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'* जैसे मौलिक संरचना पर आधारित लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा भी सुशासन की दिशा में नवीन आधुनिक और सकारात्मक कदम है। एक समय था जब लोकतंत्र के संदर्भ में एक आम धारणा प्रचलन में थी कि यह जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में इस प्रशासनिक व्यवस्था में भी अनेक कमियां उजागर हुईं। अब लोकतंत्र के अन्तर्गत जनता के हित को सर्वोपरि रखते हुए प्रशासन के प्रति सरकार की जवाबदेही और इसमें पारदर्शिता को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। जिससे प्रशासनिक व्यवस्था को अधिक सश्रम, प्रभावकारी बनाया जा सके। इसी बेहतर प्रशासनिक व्यवस्था को 'सुशासन' का नाम दिया गया है। 'महात्मा गांधी के सामाजिक न्याय की अभिव्यक्ति उनके स्वराज और रामराज्य की परिकल्पनाओं में होती है।[1] जो सुशासन का ही द्योतक है। बहुधा ऐसा माना जाता है कि सुशासन की अवधारणा मूल रूप से पश्चिम के देशों से उत्पन्न हुई है, क्योंकि पश्चिमी देशों की राजनीतिक व्यवस्था कुछ ऐसी है जिनमें समावेशी विकास पर अधिक बल दिया

जाता है। लेकिन भारत में प्राचीन काल से भी ऐसे प्रशासन की कल्पना की गई थी जिसमें वर्तमान सुशासन व्यवस्था की छवि को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राष्ट्रपिता गांधी ने ऐसे भारत का सपना देखा था जिसमें रामराज्य के सभी गुण विद्यमान हो। ''रामराज्य ग्रामीण मुख्य रूप से कृषि प्रधान व्यवस्था का सूचक था।''[2] गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के सप्तम् एवं अंतिम कांड में जिस रामराज्य का वर्णन किया है उसमें सुशासन के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।

अर्थात रामराज्य में किसी को भी शारीरिक, मानसिक और भौतिक किसी प्रकार का कष्ट नहीं था, सभी एक दूसरे के साथ प्रेम से रहते हुए अपने-अपने धर्म के अनुसार नीति और मर्यादा का पालन करते थे। वर्तमान में जिस प्रकार के सुशासन की बात की जा रही है निश्चित रूप से उसमें ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं। किसी भी राज्य की महत्ता इस बात में निहित है कि वह किस सीमा तक लोककल्याणकारी हैं। *'इस संदर्भ में राज्य का अपने नागरिकों के प्रति देश की सुरक्षा शांति और प्रशासन के अतिरिक्त भी व्यापक कर्तव्य व उत्तरदायित्व है'*।[3] अर्थात विधि के शासन से परिपूर्ण ऐसी सक्षम, संवेदनशील और प्रभावकारी प्रशासनिक व्यवस्था जिसमें सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी हों, जिसमें नागरिकों की सहभागिता हों तथा समावेशी विकास पर बल दिया जाता हो, उसे ही सुशासन का नाम दिया जा सकता है।

सुशासन में मानवधिकार, न्याय प्रणाली, शिक्षा प्रणाली नागरिकों के स्वास्थ्य आदि का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। सुशासन के समक्ष खड़ी केन्द्रीय चुनौतियों का संबंध सामाजिक विकास से भी है। वैश्वीकरण के इस युग में संपर्क साधनों के क्रान्तिकारी तरक्की से जहाँ दुनिया सिमटती हुई नजर आ रही है वहाँ सुशासन का अपरिहार्य उद्देश्य सामाजिक अवसरों का विस्तार और गरीबी-उन्मूलन होना चाहिए। न्याय, सशक्तिकरण, रोजगार एवं क्षमतापूर्वक सेवा प्रदायन सुशासन के स्तम्भ हैं। एक ऐसा समाज जो सुशासन के आदर्शों को अपनाना चाहता है उसे इन्हीं मूल्यों पर कार्य करना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश के राष्ट्रीय विकास में आम जन को उनका उचित अंश लाभ मिल रहा है या नहीं। ध्यातव्य हैं कि प्रजातंत्र में ही सुशासन को बेहतर तरीके से पुष्पित एवं पल्लवित किया जा सकता है क्योंकि 'प्रजातंत्र ही मानवता के प्रति हमारे उत्साह की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।'[4]

किसी भी राज्य की शक्ति और स्थिति वहां के नागरिकों के सम्पन्नता, सुख और विकास पर अवलम्बित होती है। वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से राज्य के उद्देश्य

में यह वर्णित है कि 'शान्ति व्यवस्था सुरक्षा एवं न्याय ही राज्य का मूल कर्तव्य एवं लक्ष्य है।' यही सुशासन का पर्याय भी है। महाभारत के शान्तिपर्व में भी यह कहा गया है कि 'राज्य के निरन्तर सत्य की रक्षा करनी चाहिए, व्यक्तियों के नैतिक जीवन का पथ-प्रर्दशन, शुद्धि तथा नियन्त्रण करना चाहिए तथा पृथ्वी को मानव के निवास योग्य एवं सुखदायिनी बनाना चाहिए। प्रत्येक युग के विचारकों ने इसे सामाजिक सन्दर्भों में परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। अल्टेकर के अनुसार 'प्रजा का सर्वांगीण कल्याण ही राज्य का परम उद्देश्य है।' इस प्रसंग में अरस्तू की उक्ति सर्वाधिक समीचीन है– 'राज्य की उत्पति जीवन के लिए है तथा सद्जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है।'[5]

fu"d"kZ सुशासन एक विशद् हितकारी अवधारणा है इससे संबंधित कार्य ही लोक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं। सुशासन की भावना से ही राज्य जनता में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में वांछित सुविधायें प्रदान कर जीवन को सुखद गरिमामय बना सकता है। लेकिन विषय के प्रसंग में हमें अपनी पीठ थपथपाने की भी जरूरत नही हैं। हमें यह मंथन करना होगा कि क्या हम अपने आप को बीते हुए कल से बेहतर बना रहे हैं, यदि हाँ, तो यही हमारी सबसे बड़ी जीत है और यदि नहीं तो यह हमारी हार है। सुशासन के इस अवधारणा की अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए हमें एक बेहतरीन सोच रखनी पड़ेगी। सरकार को हर एक को सुनना पड़ेगा, हर एक से सीखना पड़ेगा, क्योंकि हर कोई सब कुछ नहीं जानता है लेकिन हर एक कुछ न कुछ जरूर जानता है, हमारी नीति अच्छी होगी तो हमारी उन्नति अवश्य होगी।

संदर्भ

1. उर्मिला शर्मा एस शर्मा, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, एटलांटिक प्रकाशन, पेज– 337
2. Prof. SPMT Contemporary Political Thought, Reg Pub., New Delhi- 2011, Page-420
3. डा. सुभाष कश्यप, राजनीति कोष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयत निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009 पृ.514.
4. A.D Ashirwadam, Political Theory, The upper, India Pub. House Pvt. Ltd., Lucknow Tenth edition 1974 page- 370.
5. State exists for the life and continues for the sake of good life Aristotle.

सुशासन और विकासः ग्रंथ सूची

हुकम चन्द यादव
सुनीता गौतम

- अग्रवाल, मनोज. चुनाव सुधारः सुशासन की ओर एक कदम. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 2008, 208 पृ.
- अग्रवाल, शिवाली. भ्रष्टाचार और सुशासन. दिल्लीः राधा प्रकाशन, 2013, 234 पृ.
- उपाध्याय, ममता. सुशासन एवं सतत् विकास, इन्दौर, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, 2015, 159 पृ.
- गुप्ता, सुनील एवं शर्मा, कमल कुमार. सुशासन नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट. 2011, 222 पृ.
- जैन, आर. वी. भारतीय समाज अधिकारी तंत्र और सुशासन. 2007, 155 पृ.
- झा, पंकज कुमार. सुशासन के आइने में बिहार. नई दिल्लीः विद्या विहार. 2010, 272 पृ.
- पाण्डेय, गिरिश चन्द्र. सुशासन एवं जिलाधिकार. नई दिल्लीः आयुष्मान पब्लिकेशन 2012. 184 पृ.
- फैजल, अनुराग एवं घनश्याम. झारखंड में सुशासन. दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 2013, 240 पृ.
- भादुड़ी, अमित. प्रतिष्ठा पूर्ण विकास. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट. 2011, 107 पृ.
- मीणा, सुशीला देवी. सूचना का अधिकार एवं सुशासन. जयपुरः साहित्य सागर. 2016, 240 पृ.
- मीना, जनक सिंह. भारत में प्रशासनिक सुधार एवं सुशासन. दिल्लीः पाइनियर. 2016, 151 पृ.
- मुरारी, मयंक. मानववाद और राज्य व्यवस्थाः सुशासन या प्रशासन की

एकात्म अवधारणा, नई दिल्लीः सत्यम पब्लिशिंग हाऊस. 2010, 248 पृ.

- मिश्रा, कौशल किशोर. मनुस्मृति में राज्य और सुशासन, नई दिल्लीः राहुल पब्लिशिंग हाऊस. 2012, 245 पृ.
- राव, भास्कर. सुशासनः भ्रष्टाचार.मुक्त लोक सेवाओं का प्रदाता. दिल्लीः सेज प्रकाशन. 2016, 360 पृ.
- सिकरवार, दिवाकर सिंह. सुशासनः चुनाव सुधार. दिल्लीः जी.पी.एच. प्रकाशन. 76 पृ.
- सिंह, बैजनाथ. सामुदायिक ग्रामीण विकास. नई दिल्लीः नैशनल बुक ट्रस्ट. 2016, 151 पृ.
- हरिवंश एवं फैज़ल, अनुराम. झारखंडः सुशासन अब भी संभावना है. नई दिल्लीः हिन्दी बुक सेन्टर. 2009, 455 पृ.
- श्रीवास्तव, अभिषेक कुमार. जनपद स्तर पर सुशासन. नई दिल्लीः हिन्दी बुक सेन्टर 2015, 177 पृ.
- श्रीवास्तव, सुजीत. मानव अधिकार एवं सुशासन. दिल्लीः नेहा प्रकाशन, 2012, 153 पृ.

Books

- Abraham, Akampurira. *Decentralisation, Local Governance and Development: An Aspect of Development.* Hamburg: Anchor Academic Publishing, 2014.
- Adedeji, Adebayo, ed. *Comprehending and Mastering African Conflicts: The Search for Sustainable Peace and Good Governance.* 6th ed. London : Zed Books , 1999.
- Ahluwalia,J. S, ed. *Governance for Sustainable Development*. London: World Environment Foundation, 2005. 304p.
- Ahluwalia, J. S, ed. *Sustainable Development through Good Governance*. New Delhi: World Environment Foundation, 2007.
- Ahrens, Joachim, Caspers, Rolf and Weingarth, Janina, ed. *Good Governance in the 21st Century: Conflict, Institutional Change, and Development in the Era of Globalization*. Cheltenham: Edward Elgar, 2011.
- Ahrens, Joachim. *Governance and Economic Development: A Comparative Institutional Approach.* Cheltenham: Edward Elgar, 2002. 433p.
- Arora, Ramesh K and Batra, Satish K, ed. *Governance and Development.* Jaipur: Aalekh, 2011. 268p.
- Arora, Ramesh K, ed. *People-Centered Governance*. Jaipur: Aalekh, 2001. 321p.
- Bagchi, Kanak Kanti. *Good Governance and Development: An Indian Perspective*. Delhi: Abhijeet, 2009.400p.
- Beschel, Robert P. *Key Themes and Priorities for Governance and Capacity Building in the Asian and Pacific Region.* Manila: Asian Development Bank, 1998. 94p.
- Bigsten , Arne, ed. *Globalization and Development: Rethinking Interventions and Governance*. London: Routledge, 2013. 258p.
- Biju, Mootheril Raghavan. *Good Governance and Administrative Practices*. New Delhi: Mittal Publisher, 2007.

- Bisht D.S. *Governance and Development of Rural India.* Dehradun: Trishul Publications, 2014. 449p.
- Brautigam, Deborah. *Governance and Economy: A Review.* Washington, D.C: World Bank, 1991.48p.
- Brouwer, Maria. *Governance and Innovation: A Historical View.* Oxon: Routledge, 2008. 245p.
- Brown-Shafii, Susan. *Promoting Good Governance, Development and Accountability*. Basingstoke: Palgrave Macmillan, 2011.
- Chakrabarty, Bidyut and Bhattacharya, Mohit, ed. *The Governance Discourse: A Reader*. New Delhi: Oxford, 2008. 330p.
- Chakravarti, Ashok. *Aid Institutions and Development: New Approaches to Growth, Governance and Poverty.* Cheltenham: Edward Elgar, 2005. 190p.
- Chang, Ha-Joon, ed. *Rethinking Development Economics*. London: Anthem Press, 2003. 543p.
- Cheshire, Lynda, Higgins, Vaughan and Lawrence, Geoffrey, ed. *Rural Governance: International Perspectives*. London: Routledge, 2007. 316p.
- *Citizens' Report on Governance and Development* 2008-09. Delhi: Daanish Books, 2009.199p.
- Collin, Paul, ed. *Applying Public Administration in Development: Guideposts to the Future.* Chichester: John Wiley, 2000. 384p.
- *Corruption, Good Governance and Economic Development: Contemporary Analysis and Case Studies.* New Jersey : World Scientific, 2015.
- Craig, David. *Development Beyond Neoliberalism?: Governance, Poverty Reduction and Political Economy* . New York: Routledge, 2006. 340p.
- Dahal, Dev Raj, Uprety, Hari and Subba, Phanindra. *Good Governance and Decentralization in Nepal*. Kathmandu: Center for Governance and Development Studies, 2002. 188p.
- Dahal, Dev Raj. *The Challenge of Good Governance: Decentralization and Development in Nepal*. Kathmandu : Centre for Governance and Development Studies, 1996.
- Dasgupta, Susmita, et.al. *Air Pollution During Growth: Accounting for Governance and Vulnerability.* Washington, D.C: World Bank, 2004. 29p.
- Datta, Prabhat. *Good Governance and Development*. Kolkata: Progressive Publishers, 2009.
- Datta, Prabhat. *Towards Good Governance and Sustainable Development.* Kolkata: Das Gupta, 2003.
- Delmas, Magali A. and Young, Oran R, ed. *Governance for the*

Environment: New Perspectives. Cambridge: Cambridge Univ. Press, 2009. 288p.

- Diamond, D. R and McLoughlin, J. B, ed. *Education for Planning: The Development of Knowledge and Capability for Urban Governance*. Oxford: Pergamon Press, 1973.108p.
- Dubash, Navroz K, ed. *Handbook of Climate Change and India: Development, Politics and Governance*. New Delhi: Oxford University Press, 2012. 400p.
- Duffield, Mark. *Global Governance and the New Wars: The Merging of Development and Society*. London: Zed Books, 2014. 293p.
- Faundez, Julio, ed. *Good Government and Law: Legal and Institutional Reform in Developing Countries.* Hampshire : Macmillan Press , 1997.
- Ferdinand, Peter. *Governance in Pacific Asia: Political Economy and Development from Japan, Burma.* New York: Continuum, 2012. 420p.
- Fonchingong , Tangie Nsoh and Gemandze , John Bobuin. *Cameroon: The Stakes and Challenges of Governance and Developmen*t. Bamenda: Langaa RPCIG, 2009.
- Gariyali, C K. and Vettivel, S K. *Amma Model of Development in Tamil Nadu : Growth, Well-Being, Welfare and Exemplary Governance : Peace, Progress, Prosperity : A model for India and the World*. New Delhi: Vetri, 2014. 264p.
- Ghosh , Robin and Gabbay, Rony, ed. *Good Governance Issues and Sustainable Development: The Indian ocean*. New Delhi: Atlantic Publishers, 1999.
- Ghosh, R N, ed. *Corruption, Good Governance and Economic Development*. New Jersey: World Scientific, 2015.
- Ghosh, Robin, ed. *Good Governance Issues and Sustainable Development*. New Delhi: Atlantic Publishers, 1999.
- Gomez, Georgina M. and Knorringa, Peter, ed. *Local Governance, Economic Development and Institutions*. London: Palgrave, 2016. 332p.
- Gradstein, Mark. *Governance and Economic Growth*. Washington, D C: World Bank, 2003.14p.
- Grindle, Merilee Serrill. *Getting Good Government; Capacity Building in the Public Sectors of Developing Countries*. Harvard: Harvard Institute for International Development , 1997.
- Gupta, Desh and Dahiya, Bhagwan. *India in a Globalising World*. New Delhi: Hope India, 2005. 391p.Gupta, M *C.* [et.al], ed. *Governance and Poverty: Towards more Effective Public Service Delivery*. New Delhi: Indian Institute of Public Administration, 2000. 219p.
- Harris, Roger and Rajora, Rajesh. *Empowering the Poor: Information*

and Communications Technology for Governance and Poverty Reduction: A Study of Rural Development Projects in India. Bangkok: UNDP Asia-Pacific Development Information Programme, 2006. 163p.

- Hass, Larry, Mazzei, Leonanrdo and O'Leary, Donal. *Setting Standards for Communication and Governance: The Example of Infrastructure Projects*. Washington, D C: World Bank, 2007. 47p.
- Hatchard, John, Ndulo, Muna and Slinn, Peter. *Comparative Constitutionalism and Good Governance in the Commonwealth: An Eastern and Southern African Perspective*. Cambridge, New York: Cambridge University Press, 2004.
- Hettige, Siri and Gerharz, Eva, ed. *Governance, Conflict and Development in South Asia: Perspectives from India, Nepal and Sri Lanka*. New Delhi: Sage, 2015. 293p.
- Houdhary, Kameshwar, ed. *Globalisation, Governance Reforms and Development in India*. New Delhi: Sage, 2007. 552p.
- Hout, Wil and Obison, Richard, ed. *Governance and the Depoliticisation of Development*. Oxon: Routledge, 2009. 228p.
- Hout, Wil. *The Politics of Aid Selectivity: Good Governance Criteria in World Bank, US and Dutch Development Assistance*. London: Routledge, 2007.
- Humphreys, Charles. *Better Governance for Development in the Middle East and North Africa: Enhancing Inclusiveness and Accountability*. Washington, D C: World Bank, 2003.
- Huque, Ahmed Shafiqul and Zafarullah, Habib, ed. *International Development Governance*. London: CRC Press, 2005. 896p.
- Jain, R B. *Induced Development to Good Governance: Paradigm Shift in the Concept of Development*. New Delhi: Deep & Deep Publications, 2011.
- Jain, R B, ed. *Corruption-Free Sustainable Development: Challenges and Strategies for Good Governance*. New Delhi: Mittal, 2004. 302p.
- Jayal, Niraja Gopal and Pai, Sudha, ed. *Democratic Governance in India: Challenges of Poverty, Development and Identity*. New Delhi: Sage, 2001. 264p.
- Jega, Attahiru. *Democracy, Good Governance and Development in Nigeria: Critical Essays*: Spectrum Books Limited, 2007. 326p.
- Jha, Uma Shankar and Yadav, S. N. *Rwanda: Towards Reconciliation, Good Governance and Development*. New Delhi: Association of India Africanist, 2003. 227p.
- Jorgensen, Miriam, ed. *Rebuilding Native Nations: Strategies for Governance and Development*. Tucson: The University of Arizona Press, 2007.

- Joseph, T M, ed. *New Governance Paradigm: Issues in Development*. Delhi: Kalpaz, 2008. 394p.
- Jreisat, Jamil E, ed. *Governance and Developing Countries*. Leiden: Brill, 2002.
- Kadekodi, Pal K, Kanbur, Ravi and Rao, Vijayendra, ed. *Development in Karnataka: Challenges of Governance, Equity and Empowerment* . New Delhi: Academic Foundation, 2008. 432p.
- Kalia, Shefali. *Good Governance and Development*. New Delhi: New Century Publications, 2004.
- Kaufmann, Daniel, Kraay, Aart and Mastruzzi, Massimo. *Governance Matters iv: Governance Indicators for 1996-2004*. Washington, D C : World Bank, 2005. 133p.
- Kesarwani, Deepak. *Good governance: Issues and Sustainable Development*. New Delhi: Oxford, 2013.
- Kettani, Driss and Moulin, Bernard. *E-Government for Good Governance in Developing Countries: Empirical Evidence from the eFez Project*. New York: Anthem Press, 2015.
- Khan, M Adil. *Economic Development, Poverty Alleviation and Governance: The Asian Experience*. Aldershot: Avebury, 1996. 144p.
- Kothari, Miloon. *Development and Social Action*. Oxford: Oxfam, 1999. 192p.
- Kotschau, Kerstin. *Good Governance and Developing Countries*. New York: Peter Lang, 2008.
- Lenin, Nooh-Ul Alam. *Towards Good Governance and Development: Clarion Call from National Council 2002 Bangladesh Awami League*. Dhaka: Nooh-Ul Alam Lenin Information and Reserach Secre., 2003.
- Lewis, John P. *India's Political Economy: Governance and Reform*. Delhi: Oxford University Press, 1995. 401p.
- Luther, M M. *Building a Vibrant India: Democracy, Development and Ethics*. New Delhi: Tata McGraw Hill, 2003. 600p.
- Mawere, Munyaradzi and Mwanaka, Tendai R, ed. *Democracy, Good Governance and Development in Africa*. Bamenda: Langaa RPCIG, 2015.
- McGinnis, Michael D, ed. *Polycentric Governance and Development: Readings From the Workshop in Political Theory and Policy Analysis*. Michigan: University of Michigan Press, 1999. 432p.
- Meadowcroft, James , Langhelle , Oluf and Ruud, Audun, ed. *Governance, Democracy and Sustainable Development: Moving Beyond the Impasse*. Cheltenham, UK: Edward Elgar, 2012. 340p.
- Mengkui, Wang, ed. *Good Governance in China- A Way Towards Social Harmony: Case Studies by China's Rising Leaders*. Oxon: Routledge,

2009. 415p.

- Misra, Suresh and Dhaka, Rajvir S, ed. *Humanizing Development: Trends in Public Administration*. New Delhi: Sustainable Development Foundation, 2001. 352p.
- Moore, Mike. *A World Without Walls: Freedom, Development, Free Trade and Global Governance*. Cambridge: Cambridge University Press, 2003. 292p.
- Morris, Sebastian, ed. *India Infrastructure Report, 2002: Governance Issues for Commercialization.* New Delhi: Oxford University Press, 2002. 337p.
- Mudacumura, Gedeon M and Morçöl, Göktug, ed. *Challenges to Democratic Governance in Developing Countries*. New York: Springer, 2014.
- Nabli, Mustapha K and Humphreys, Charles, ed. *Better Governance for Development in the Middle East and North Africa: Enhancing Inclusiveness and Accountability*, Washington, D C: World Bank, 2003. 281p.
- Nautiyal, Npurna and Bourai, Himanshu, ed. *Decentralised Governance, Regional Development and Women Empowerment*. New Delhi: Gyan, 2013. 284p.
- Netherlands Scientific Council for Government Policy. *Development Policy and Good Governance.* Hague: The Author, 2001.
- Noman, Akbar ... [et al.], ed. *Good Growth and Governance in Africa: Rethinking Development Strategies.* Oxford: Oxford University Press, 2012.
- Nwonwu, F O C and Kotze, Dirk, ed. *African Political Elites: The Search for Democracy and Good Governance*. South Africa: Africa Institute of South Africa, 2008.
- Okoth-Okombo, Duncan, Kwaka, Joseph and Muluka, Barrack, ed. *Challenging the Rulers: A Leadership Model for Good Governance*. Kenya: East African Educational Publishers, 2011.
- Organisation for Economic Co-operation and Development. Development Assistance Committee. *DAC Orientations on Participatory Development and Good Governance*: Organisation for Economic Co-operation and Development, 1994. 26p.
- Picciotto, Robert. *Putting Institutional Economics to Work: From Participation to Governance* .Washington, D C: The World Bank, 1995. 22p.
- Ramanathan, Chathapuram S and Dutta, Subhabrata, ed. *Governance, Development, and Social Work*. New York: Routledge, 2014.
- Rao, K. Sreedhar. *Governance, Security and Development: Hope for*

Tomorrow. New Delhi: Concept, 2013.382p.

- Ray, Binayak. *India: Sustainable Development and Good Governance Issues*. New Delhi: Atlantic, 1999.
- Sahni, Pardeep and Medury, Uma, ed. *Governance for Development: Issues and Strategies*. New Delhi: Prentice-Hall, 2003.165p.
- Samuel, John and Jagadananda, ed. *Social Watch India: Citizens Report on Governance and Development 2003*. New Delhi: National Social Watch Coalition, 2003.128p.
- Samuel, John, Yogesh Kumar and Behar, Amitabh, ed. *Social Watch India: Citizens Report on Governance and Development, 2004*. New Delhi: National Social Watch Coalition, 2004. 191p.
- Schoburgh, Eris D, Martin, John and Gatchair, Sonia, ed. *Development Local Governance: A Critical Discourse in 'Alternative Development'*. London: Palgrave, 2016. 260p.
- Seidman, Ann, Seidman, Robert B. and Walde, Thomas W, ed. *Making Development Work: Legislative Reform for Institutional Transformation and Good Governance*. Boston: Kluwer Law International, 1999. 308p.
- Seidman, Ann. *Making Development Work: Legislative Reform for Institutional Transformation and Good Governance.* Boston: Kluwer Law International, 1999.
- Sharma, Ravindra, ed. *Grass-Root Governance: Changes and Challenges in Rural*. Jaipur: Aalekh, 2005. 256p.
- Singh, Parmanand and Julian, A Francis, ed. *Globalization and Sustainable Good Governance: Challenges and Opportunities.* New Delhi: Legal Education and Research Society and Manak, 2010. 452p.
- Singh, N N and Stern, Nicholas, ed. *New Bihar: Rethinking Governance and Development.* Noida: HarperCollins, 2013. 387p.
- Smith, B C. *Good Governance and Development*. Hampshire: Palgrave Macmillan, 2007. Sobhan, Rehman, ed. *Towards a Theory of Governance and Development: Learning From East Asi*a. Dhaka: Centre for Policy Dialogue, 1998. 392p.
- Subramanian, T S R. *Journeys Through Babudom and Netaland: Governance in India*. New Delhi: Rupa, 2004. 359p.
- Sundram, Joma Kwama and Chowdhury, Anis, ed. *Is Good Governance Good for Development*. New York: Bloomsbury Academic, 2012.
- Tendler, Juditch. *Good Government in the Tropics*. London: Johns Hopkins Univ. Press, 1997.
- Thadaboina, Venkatamallu. *E-Governance and Rural Development: Experiences and Future Prospects in India.* Delhi: B. R. Publishers, 2013. 280p.

- Thakur, Ramesh and Wiggen, Oddny, ed. *South Asia in the World: Problem Solving Perspectives on Security, Sustainable Development and Good Governance*. Tokyo: United Nations University Press, 2004.
- Thomas, Caroline. *Global Governance, Development and Human Security: The Challenge of Poverty and Inequality*. London: Pluto Press, 2000. 149p.
- Turner, Mark and Hulme, David. *Governance, Administration and Development: Making the State Work*. London: Macmillan Press, 1997. 272p.
- United Nations. Department of Economic and Social Affairs. *Poverty Reduction and Good Governance: Report of the Committee for Development policy on the sixth session 29 Mar-2Apr 2004*. New York: United Nation, 2004.
- Verghese, B G. *India's Northeast Resurgent: Ethnicity, Insurgency, Governance, Development*. New Delhi: Konark, 2004. 519p.
- Wignaraja, Ponna and Sirivardana, Susil, ed. *Pro-Poor Growth and Governance in South Asia: Decentralization and Participatory Development*. New Delhi: Sage, 2004. 459p.
- Woods, Ngaire and Welsh, Jennifer, ed. *Exporting Good Governance: Temptations and Challenges in Canada's Aid Program*. Canada: Wilfrid Laurier University Press, 2007.
- World Bank. *Governance: The World Bank's Experience*. Washington, D C: The World Bank, 1994.
- World Bank. *World Development Report 2017: Governance and the Law*. Washington, D C: World Bank, 2017. 281p.
- Yadav, S N and Baghel, Indu. *Good Governance and Human Development*. New Delhi: Jnanada, 2009. 285p.

Articles

- Agarwal, U C. Governance for Development: Constitutional Goals and Directives. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.19-29.
- Akira Nakamura. Tokyo Government Tries Governance: Development and Problems of Public Administration in Japan's Capital City. *International Review of Administrative Sciences*, 64(2), Jun 1998: p.235-46.
- Alagh, Yoginder K. Development Policy and Governance. *Indian Economic Journal*, 53(1), Apr-Jun 2005: p.3-13.
- Alagh, Yoginder K. Governance and Development. *Yojana*, 57, Jan 2013: p.13-17.
- Alagh, Yoginder K. Governance and Development. *Yojana*, Aug 2005: p.2-8.
- Alex, Jiju P. E-Governance as a Pre-Requisite for Development. *Indian Journal of Social Work*, 72(4), Oct 2011: p.563-587.
- Ansari, M M. Right to Information and its Relationship to Good Governance and Development. *Prashasnika*, 36(1-2), Jan-Dec 2009: p.56-77.
- Arizpe, Lourdes. Culture, Governance and Globalization. Development, 48(1), Mar 2005: p.35-39.
- Asaduzzaman, Mohammed. Development Role of the Local Governance Institutions in Bangladesh. *Nepalese Journal of Public Policy and Governance*, 24(1), Jun 2009: p.96-111.
- Azmal, Fara, Alam, Quamrul and Coghill, Ken. Integrated Governance: A Pre-Requisite for Sustainable Market-Oriented Development in Bangladesh. *International Journal of Public Administration*, 32(10), Aug 2009: p.829-51.
- Bagoyoko, Niagale and Gibert, Marie V. The Linkage Between Security, Governance and Development: The European Union in Africa. *Journal of Development Studies*, 45(5), May 2009:p.789-814.
- Balogun, M J. The Scope for Popular Participation in Decentralization, Community Governance and Development: Towards a New Paradigm of Centre-Periphery Relations. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000: p.153-73.

- Bardhan, Pranab. Decentralization of Governance and Development. *Journal of Economic Perspectives*, 16(4), Fall 2002:p.185-205.
- Benjamin, Solomon. Governance, Economic Settings and Poverty in Bangalore. *Environment and Urbanization*, 12(1), Apr 2000: p.35-56.
- Bhardwaj, Bishal and Paudel, Balananda. Governing Strategy for Poverty Reduction: Good governance in Achieving Sustainable Rural Development in Nepal. *Administration and Management Review*, 22(2), Aug 2010: p.1-26.
- Bhattacharya, Mohit. Globalisation, Governance and Development. *The Indian Journal of Political Science*, 62(3), Sep 2001:p. 349-357.
- Biswas, Anil. Corruption, Participatory Development and Good Governance. *Yojana*, 57, Jan 2013: p.38-43.
- Booth, Philip. Aid, Governance and Development**.** *Studies: An Irish Quarterly Review*, 97(388), Winter 2008: p. 445-457.
- Breathnach, Proinnsias. Regional Governance and Regional Development: Implications of the Action Programme for Effective Local Government. *Administration*, 61(3), 2013: p.51-73.
- Brinkerhoff, Derick W. and Goldsmith, Arthur A. Institutional Dualism and International Development: A Revisionist Interpretation of Good Governance. *Administration and Society*, 37(2), May 2005: p.199-224.
- Callender, Guy and Johnston, Judy. Governments and Governance: Examining Social and Economic Autonomy in Malaysia and Singapore. *Asian Journal of Public Administration*, 20(2), Dec 1998: p.151-72.
- Capuno, Joseph J. et al. The Development Payoffs of Good Governance: Emerging Results of a Social Experiment in Bulacan and Davao de Norte. *Philippine Journal of Public Administration*, 46(1-4), Jan-Oct 2002: p.210-39.
- Carey, Gemma and Harris, Patrick. Developing Management Practices to Support Joined-up Governance. *Australian Journal of Public Administration*, 75(1), Mar 2016: p.112-118.
- Casey, Colleen. Public Values in Governance Networks: Management Approaches and Social Policy Tools in Local Community and Economic Development. *American Review of Public Administration*, 45(1), Jan 2015 : p.106-127.
- Chahar, S S and Neera. Paradigm Shift in Governance Reform: Putting People at the Centre Stage of Development. *Indian Journal of Public Administration*, 53(3), Jul-Sep 2007:p.441-455.
- Cheema, Shabbir. The Role of Public Administration and Governance Stakeholders in Attaining the Millennium Development Goals. *Asian Review of Public Administration*, 17(1-2), Jan-Dec 2005: p.113-18.
- Chibba, Michael. Lessons from Selected Development Policies and

Practices**.** *Development in Practice*, 19(3), May 2009: p. 365-370.

- Chikulo, B C. Decentralization for Good Governance and Development: The Zambian Experience. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000: p.26-48.
- Christopoulos, Stamatios, Horvath, Blazs and Kull, Michael. Advancing the Governance of Cross-Sectoral Policies for Sustainable Development: A Meta-Governance Perspective. *Public Administration and Development*, 32(3), Aug 2012:p.305-323.
- Claessens, Stijn. Corporate Governance and Development. *The World Bank Research Observer,* 21, (1),Spring 2006: p. 91-122.
- Dash, Bharatee Bhusana and Raja, Angara V. Institutions and the Quality of Governance: An Empirical Study on Interstate Differences in Economic Development in India. *Asia-Pacific Development Journal*, 16(1), Jun 2009: p.1-26.
- Debroy, Bibek. Governance and Economic Development. *Administrative Change*, 37-38(2 and 1), Jan-Dec 2010: p.34-54.
- Dellepiane-Avellaneda**,** Sebastian. Good Governance, Institutions and Economic Development: Beyond the Conventional Wisdom. *British Journal of Political Science*, 40(1), Jan 2010), p. 195-224.
- Deshmukh, B G. Some Perspectives on Governance for Development. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.14-18.
- Devendra Babu, M. Governance, Planning and Development: The Case of PRIs in Karnataka. *Indian Journal of Regional Science*, 33(2), 2001: p.83-97.
- Dhar, T N. Urban Problems in Uttar Pradesh and Importance of e-Governance. *Nagarlok*, 41(2), Apr-Jun 2009: p.1-12.
- Dhingra, Anjali and Misra, D.C. Rural Informatics Network for e-Governance in Rural Development Sector. *Journal of Rural Development*, 20(4), Oct-Dec 2001: p.711-20.
- Dixit, Avinash. Governance Institutions and India's Development. *Indian Journal of Industrial Relations*, 44(4), Apr 2009: p.539-53.
- Drezner, Daniel W. The System Worked: Global Economic Governance During the Great Recession. *World Politics*, 66(1), Jan 2014: p.123-164.
- Dubois, Marc. The Governance of the Third World: A Foucauldian Perspective on Power Relations in Development. *Alternatives*, 16(1),Winter 91, p.1-30.
- Duffield, Mark. Social Reconstruction and the Radicalization of Development: Aid as a Relation of Global Liberal Governance. *Development and Change*, 33(5), Nov 2002: p.1049-071.
- Ekka, Vincent. Sustainable Development, Disparity and Emerging Governance Issues. *Social Action*, 66(1), Jan-Mar 2016: p.37-53.

- Ferreira, G.M. Good Governance and the Failed State. *The Comparative and International Law Journal of Southern Africa*, 41(3), Nov 2008: p. 428-448.
- Fox, Jonathan. Governance and Rural Development in Mexico: State Intervention and Public Accountability. *Journal of Development Studies*, 32(1), Oct1995: p.1-30.
- Fraser-Moleketi, Geraldine. Quality Governance for Sustainable Growth and Development. *International Review of Administrative Sciences*, 69(4), Dec 2003: p.463-70.
- George, Clive. Sustainable Development and Global Governance. *Journal of Environment and Development*, 16(1), Mar 2007: p.102-25.
- Ghimire, Madhav Prasad. Public Administration, Governance Strategies and Millennium Development Goals in Nepal. *Asian Review of Public Administration*, 17(1-2), Jan-Dec 2005: p.88-102.
- Ghosh, Arun. Governance, Institution-Building and Economic Development. *Economic and Political Weekly*, 31(24), 15 Jun 1996: p.1432-433.
- Gill, S S. Development, Liberalisation and Government. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.39-44.
- Golden Jubilee Special Number on Governance for Development. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.1-410.
- Gorospe-Jamon, Grace, Ricote, Eleazar E. and Cabo, Wilhelmina L. The Governance of Local Sustainable Development: The Role of the Association of Schools of Public Administration in Philippines. *Asian Review of Public Administration*, 20(1-2), Jan-Dec 2008: p.72-81.
- Haruna, Peter Fand Kannae, Lawrence A. Connecting Good Governance Principles to the Public Affairs Curriculum: The Case of Ghana Institute of Management and Public Administration. *Journal of Public Affairs Education*, 19(3), Summer 2013: p. 493-514.
- Helmsing, A H J. Externalities, Learning and Governance: New Perspectives on Local Economic Development. *Development and Change*, 32(3), Mar 2001: p.277-308.
- Herath, Tikiri Nimal. Decentralization of Governance and Economic Development: The Sri Lankan Experience After Establishment of Provincial Councils. *South Asia Economic Journal*, 10(1), Jan-Jun 2009: p.157-85.
- Hooja, Rakesh. Governance, Development and the Maintenance of Internal Security: Some Comments. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.223-227.
- Hope, Kempe Ronald, Sr. Capacity Development for Good Governance in Developing Countries: Some Lessons From the Field. *International*

Journal of Public Administration, 32(8), Jul 2009: p.728-40.

- Hout, Wil. Good Governance and Aid: Selectivity Criteria in Development Assistance. *Development and Change*, 33(3), Jun 2002: p.511-27.
- Hout, Wil. The Anti-politics of Development: Donor Agencies and the Political Economy of Governance. *Third World Quarterly*, 33(3), 2012: p.405-422.
- Jain, R B. Good Governance for Sustainable Development: Challenges and Strategies in India. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.50-71.
- Jain, R.B. Towards Good Governance: A Half Century of India's Administrative Development. *International Journal of Public Administration*, 24(12), 2001: p.1299-1334.
- Jalan, Bimal. Economics, Politics and Governance. *Vikalpa*, 29(2), Apr-Jun 2004: p.1-7.
- Jane, Modon Mohan. A Study on Post-Reforms Corporate Ethics and Economic Development in India - Theory and Evidence. *Management Accountant*, 49(6), Jun 2014: p.27-33.
- Jayal, Niraja Gopal. The Governance Agenda: Making Democratic Development Dispensable. *Economic and Political Weekly*, 32(8), 22-28 Feb 1997: p.407-12.
- Jeong, Moon-Gi and Feiock, Richard C. Impact Fees, Growth Management, and Development: A Contractual Approach to Local Policy and Governance. *Urban Affairs Review*, 41(6), Jul 2006: p.749-68.
- Kadekodi, Gopal, Kanbur, Ravi and Rao, Vijayendra. Governance and the "Karnataka Model of Development". *Economic and Political Weekly*, 42(8), 24 Feb 2007: p.649-52.
- Kanie, Norichika. A Charter Moment: Restructuring Governance for Sustainability. *Public Administration and Development*, 32(3), Aug 2012: p.292-304.
- Kapur, V P. Peace Order and Development with Human Face. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.121-127.
- Kasinathan, Gurumurthy and Gurmurthy, Anita. Internet Governance and Development Agenda. *Economic and Political Weekly*, 43(14), 5 Apr 2008: p.19-23.
- Knott, Jack H. Governance and Economy in Asia and the United States: Institutions, Instruments and Reform. *Asia Pacific Journal of Public Administration*, 38(1), Mar 2016: p.7-23.
- Kumar, A. Vijay and Shaffioddin, M D. Participation of Women in Governance in India: An Overview. *University News*, 42(50), 13 Dec 2004: p.12-14.

- Kura, Sulaiman Balarabe. Towards 'Reinventing Government': the Changing Perspectives of Democratic Governance for Development. *Public Administration and Development*, 28(3), Aug 2008: p.234-38.
- Kwon, Huck-ju and Kim, Eunju. Poverty Reduction and Good Governance: Examining the Rationale of the Millennium Development Goals. *Development and Change*, 45(2), Mar 2014: p.353-375.
- Lachapelle, Guy. Globalization and Governance: Aspiring to a Fairer Globalization. *Development*, 48(1), Mar 2005: p.52-60.
- Lakshamanasamy, T. New Institutions and Economic Development: The Significance of Governance and Social Capital for Economic Growth. *Indian Journal of Economics*, 85(336), Jul 2004: p.65-94.
- Lee, Chung-Pin, Chang, Kaiju and Berry, Frances Stokes. Testing the Development and Diffusion of E-Government and E-Democracy: A Global Perspective. *Public Administration Review*, 71(3), May-Jun 2011: p.444-453.
- Leftwich, Adrian. Governance, Democracy and Development in the Third World**.** *Third World Quarterly*, 14(3), 1993: p. 605-624.
- Lim, Yoojin and Lee, Yeonho. Governance and Policy Performance in Korea**.** *Asian Perspective*, 34(3), 2010: p. 137-163.
- Liou, Kuotsai Tom. Governance and Economic Development: Changes and Challenges. *International Journal of Public Administration*, 24(10), 2001: p.1005-022.
- Ludden, David. Development Regimes in South Asia: History and the Governance Conundrum. *Economic and Political Weekly*, 40(37), 10 Sep 2005: p.4042-051.
- Mahmood, Sohail. Good Governance and the Musharraf Regime's Performance in 1999-2000. *Pakistan Horizon*, 54(2) April 2001: p. 33-77.
- Majeed, Akhtar. Social Accountability for Governance: Neglecting Rural Development in the Name of Federalism. *Indian Journal of Federal Studies*, 2, 2004: p.162-70.
- Makara, Sabiti. Decentralization for Good Governance and Development: Uganda's experience. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000: p.73-92.
- McAuslan, Patrick. Good Governance and Aid in Africa. *Journal of African Law*, 40(2), 1996: p. 168-182.
- Minocha, O. P. Transforming India: From Good Governance to Sustainable Development Goals via Millennium Development Goals. *Indian Journal of Public Administration*, 62(4), Oct-Dec 2016: p.751-760.

- Mishra, Deepak K. and Upadhyay, Vandana. Governance and Development in Arunachal Pradesh: The Emerging Challenges. *Dialogue*, 5(4), Apr-Jun 2004: p.73-96.
- Mittal, Niti. Sustainable Development, Good Governance and Decentralization: A Comment. *Prashasnika*, 35(1), Apr-Jun 2008: p.62-68.
- Mohanan, B. Decentralised Governance and Development in the Context of Globalisation: Lessons from Kerala. *ISDA Journal*, 13(2), Apr-Jun 2003: p.417-55.
- Mohanan, B. Sustainable Development, Good Governance and Gram Swaraj. *ISDA Journal*, 7(2-3), Apr-Sep 1997: p.121-28.
- Muzammil, Mohd. IT, Governance and Economic Development. *Indian Journal of Public Administration*, 46(3), Jul-Sep 2000: p.353-363.
- Namkhaijantsan, B. Linkages between the Goals of Good Governance and the Millennium Development Goals: Lessons from the Mongolian Experience. *Asian Review of Public Administration*, 17(1-2), Jan- Dec 2005: p.137-55.
- Narain, Yogendra. Role of Legislators and the Media in Enhancing Good Governance and Development. *Mainstream*, 41(22), 17 May 2003: p.17-22.
- Narayan, Jayaprakash. Governance and Development. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.99-108.
- Neihzovi, Lal. Decentralised Governance for Rural Development in Mizoram: Problems and Prospects. *Indian Journal of Public Administration*, 57(1), Jan-Mar 2011: p.82-90.
- Nkrumah, Stephen A. Decentralization for Good Governance and Development: The Ghanian Experience. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000:p.53-67.
- Nomani, M. Zafar Mahfooz. Good Governance and Sustainable Development in India: An Assessment of Environ-legal Strategy and Human Right Institutional Mechanism. *Indian Journal of Federal Studies*, 2, 2009: p.107-27.
- Omiya, Pascaliah J. Citizen Participation for Good Governance and Development at the Local Level in Kenya. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000: p.194-212.
- Oyugi, Walter O. Decentralization for Good Governance and Development: Concepts and Issues. *Regional Development Dialogue*, 21(1), Spring 2000: p.3-22.
- Palanithurai, G. Ensuring Accountability and Transparency in Development Activities at Grassroots. *Indian Journal of Public Administration*, 56(1), Jan-Mar 2010: p.52-72.

- Palanithurai, G. Women in Governance for Development at Grassroots. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.347-361.
- Patkar, Vivek N. Governance for Development: Meeting a Multi-Dimensional Challenge. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.334-346.
- Prasad, R.N. Perspective on Democratic Decentralised Governance for Rural Development in Mizoram. *Indian Journal of Public Administration*, 47(4), Oct-Dec 2001: p.648-659.
- Rahman, Md. Ataur. Micro-Credit Delivery System and Good Governance for Rural Development. *Journal of Rural Development*, 45(1), Jan-Jun 2012: p.7-29.
- Ramulu, Ch Bala. Developmental Policies and Governance in India: From 1947to 2003.*Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.298-315.
- Rangarajan, C. Growth, Development and Governance. *Ashwastha*, 7(1), Jan-Mar 2013: p.2-8.
- Rao, P. S. N. Good Urban Governance in India - The Road Ahead. *Nagarlok*, 36(2), Apr-Jun 2004: p.51-60.
- Ray, Syamal Kumar. India: Development with a Human Face. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.379-388.
- Riley, Angela R. Good (Native) Governance**.** *Columbia Law Review*, 107(5), Jun 2007: p. 1049-1125.
- Rosell, Steven A. A Missing Step in the Governance Process. *Development*, 47(4), Dec 2004: p.43-49.
- Roy, Dilip Kumar. Governance and Development: the Challenges for Bangladesh**.** *The Bangladesh Development Studies*, 31 (3/4), Sep-Dec 2005: p.99-136.
- Sarada, A and Singh, Ila. Regulatory Governance in Infrastructure Sector in India. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.236-245.
- Sarmah, Bhupen. The Cauldron of Conflict: Politics of Peace, Governance and Development in India's North -East. *Social Scientist*, 44(11-12), Nov-Dec 2016: p.15-36.
- Satyanarayana, T. Good Governance for Sustainable Development: A Study of People's Institutions in Rural Andhra Pradesh. *Administrative Change*, 30(2) & 31(1), Jan-Dec 2003: p.30-45.
- Saxena, Anupama. E-Governance and Good Governance: the Indian context**.** *The Indian Journal of Political Science*, 66(2), Apr-Jun 2005: p. 313-328.
- Sen, Kunal. Does Better Governance Lead to Positive Outcomes?

Evidence from Asia. *Indian Journal of Economics*, 96(383), Apr 2016: p.797-814.

- Sen, Payal. Dynamics of Decentralized Governance in Urban India: Implications for Inclusive City Development. *Nagarlok,* 46(2), Apr-Jun 2014: p.15-36.
- Shangloo, Nalini and Roy, Archana. World Habitat Day 2010: Seminar Report Municipal Governance, Urban Infrastructure and Civic Services. *Urban India,* 31(1), Jan-Jun 2011: p.154-157.
- Shannon, Laura and Egeraat, Chris van. Regional Governance and Bottom-up Regional Development in the Border Region and County Cavan. *Administration,* 61(3), 2013: p.75-99.
- Sharma, B M. and Sharma, Abhishek. Development, Good Governance and Human Rights. *Indian Journal of Public Administration*, 60(2), Apr-Jun 2014: p.209-234.
- Sharma, Keshav C. Popular Participation for Good Governance and Development at the Local Level: The Case of Botswana. *Regional Development Dialogue,* 21(1), Spring 2000:p.177-91.
- Sharma, Kishor. Foreign Aid,Ggovernance and Economic Development in Nepal. *Asian Journal of Public Administration,* 33(2), Dec 2011: p.95-115.
- Sharma, Rajvir. Democratic Decentralisation and Development in India: A Review of Municipal Governance Reforms in Delhi. *Nagarlok*, 52(4), Oct-Dec 2010: p.18-39
- Shokrollahi, Masoud. Building Capacity for Governance Stakeholders Towards Achieving Millennium Development Goals in Iran through Decentralization. *Asian Review of Public Administration*, 17(1-2), Jan-Dec 2005: p.81-87.
- Singh, Awadhesh Kumar and Singh, U B. Governance and Development Deprivation in India. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.277-284.
- Singh, Bhupinder. Civil Society, Planned Development and Governance in the North-Eastern Region of India. *IASSI Quarterly*, 20(1), Jul-Sep 2001: p.70-77.
- Singh, Bhupinder. Governance and Development: The Tribal Context. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.128-137.
- Singh, D P. Good Governance and Development. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.292-297.
- Singh, Deepali, Ansari, Nafees A. and Singh, Shaifali. Good Governance and Implementation in Era of Globalization. *The Indian Journal of Political Science*, 70(4), Oct-Dec 2009:p. 1109-1120

- Singh, Gurjant. Decentralised Urban Governance in Punjab. *Nagarlok*, 44(1), Jan-Mar 2012: p.11-27.
- Singh, Shyam. Locating State: Perspectives of Governance and Development in India. *Indian Journal of Political Science*, 71(1),Jan-Mar 2010: p.123-32.
- Sinha, Madan Gopal. Development Governance (Note).*Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.389-394.
- Sivakumar, Damodaran. Social Interventions for E-Governance, Decentralised Democracy, Panchayati Raj and Sustainable Development: Challenges and Opportunities. *Indian Journal of Social Work*, 63(3), Jul 2002: p.436-44.
- Srinivasan, T N. Democracy, Markets, Governance and Development. *Review of Development and Change*, 3(2), Jul-Dec 1998:p.177-211.
- Srivastava, Mahendra P. Development Governance. *Yojana*, Aug 2005:p.41-43.
- Subramaniam, Venkateswara. Quality Governance for Sustainable Development: India's Obligation to Set a Model. *International Review of Administrative Sciences*, 69(4), Dec 2003: p.471-81.
- Tadasad, Kamalakshi G. Participative Governance and Urban Development: A Study of Hubli-Dharwad Corporation Experience. *Indian Journal of Public Administration*, 56(1), Jan-Mar 2010: p.119-129.
- Tomaney, John, et al. Regional Governance and Economic Development in England. *Administration*, 61(3), 2013: p.13-30.
- Valmores, Waldemar V. Scourging the Menace: Creating a Climate of Good Governance in Pursuit of the Millennium Development Goals. *Asian Review of Public Administration*, 17(1-2), Jan-Dec 2005: p.26-32.
- Veeraraghavan, J. Governance for Development - The Management Challenge in Education. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan- Mar 2004: p.138-150.
- Vittal, N. Governance for Development. *Indian Journal of Public Administration*, 50(1), Jan-Mar 2004: p.30-38.
- Weiss **,**Thomas G. Governance Good Governance and Global Governance: Conceptual and Actual Challenges**.** *Third World Quarterly*, 21(5) ,Oct 2000: p. 795-814.
- Woodward, David. Democratizing Global Governance for Sustainable Human Development. *Development*, 53(1), Mar 2010: p.42-47.

THE INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

NON-ELECTED MEMBERS OF THE EXECUTIVE COUNCIL

President
VENKAIAH NAIDU
Vice-President of India

Chairman
T.N. CHATURVEDI
Former Governor of Karnataka

Vice President
SHEKHAR DUTT
(Former Governor of Chhattisgarh)

Co-opted Members

ARUN KUMAR GROVER
Vice-Chancellor
Panjab University,
Chandigarh-160014.

JOSEPH K. ALEXANDER
Chairman
IIPA Kerala Regional Branch,
T.C.14/2144, Medes Lane, Palayam,
Thiruvananthapuram-695034.

S.S. KSHATRIYA
Chairman
IIPA Maharashtra Regional Branch,
16th Floor, New Administrative Building,
Opp. Mantralaya, Hutatma Rajguru Chowk,
Madame Cama Road, Mumbai-400032.

N. LOKENDRA SINGH
Chairman
IIPA Manipur Regional Branch,
C/o Registrar,
Manipur University,
Canchipur,
Imphal-795003.

AJIT KUMAR TRIPATHI
Chairman
IIPA Odisha Regional Branch,

Secretaries to Government of India

AJAY MITTAL
Secretary
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel,
Public Grievances & Pensions,
Govt. of India,
Room No.112,
North Block,
New Delhi-110001.

ASHOK LAVASA
Secretary
Department of Expenditure,
Ministry of Finance, Govt. of India,
Room No.128 C, North Block,
New Delhi-110001.

AMITABH KANT
Chief Executive Officer, NITI Aayog,
Govt. of India, NITI Bhavan,
Sansad Marg, New Delhi-110001.

IIPA Academic Staff

DOLLY ARORA
IIPA, New Delhi-110002.

K.K. PANDEY
IIPA, New Delhi-110002.

GIRISH KUMAR
IIPA,
New Delhi110002.

Director & Member-Secretary
TISHYARAKSHIT CHATTERJEE
Indian Institute of Public Administration
I.P. Estate, Ring Road,
New Delhi-110002.

Telegram: ADMNIST

Telephone: 23702400-17

INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
NEW DELHI

INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: published since January 1955)
Editor: MAHENDRA PRASAD SINGH

Yearly Subscription:
Individuals: (Inland) Rs.425.00; (Abroad) $120 or £48;
Single Copy: (Inland) Rs.120.00; (Abroad) $30 or £12;
Special Number: (Inland) Rs.275.00; (Abroad) $80 or £ 36
Institution/Library: (Inland) Rs. 700.00; (Abroad) $ 240.00 or £ 96.00
Life Members of IIPA: Annual subscription: Rs.300.00; Single Copy Rs.75.00;
Special Number Rs.200.00

IIPA NEWSLETTER

(Monthly recorder of national and international news of
public administration and allied matters since 1956)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE

Yearly Subscription: India: Rs. 10.00; Abroad: $ 4.00 or £ 2.00

DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: Published since 1973)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: A.K. NATH, Dy. Librarian, lIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 150.00; Abroad: $ 60.00 or £ 24.00

NAGARLOK

(Urban Affairs Quarterly: Published since 1969)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: V.N. ALOK, Associate Professor in Urban Finance,
IIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 200.00.

लोक प्रशासन (अर्ध–वार्षिक)

सम्पादकः एस. एन. मिश्र

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Bank drafts/postal orders should be drawn only in favour of
"**Director, Indian Institute of Public Administration**"
Note: Subscribers are advised to secure safe delivery
through Registered Post @ Rs. 100.00 per periodical.

For complete information about IIPA publications write to:

THE EDITOR
INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
Indraprastha Estate, Ring Road, New Delhi-110 002 (India)

Edited by S.N. Mishra and printed and published by Snehlata for Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Ph.: 23468368 and Printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028.